श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला २,१

मेरी जीवन-गाथा

[प्रथम भाग]

लेखक :

पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णी

प्रस्तावना-लेखक :

श्रीमान् पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र

मुख्य-मंत्री, मध्यप्रदेश

प्रकाशक

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

सम्पादक और नियामक

पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

दरबारीलाल कोठिया

जैनदर्शन-आध्यापक, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय

प्रकाशक

मंत्री, श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला,

१।१२८, डुमरावबाग-वसति

अस्सी, वाराणसी—५

प्रथमावृत्ति सन् १९४९

द्वितीयावृत्ति सन् १९५९

तृतीयावृत्ति सन् १९६७

मूल्य लागत मात्र ६-००

मुद्रक

बाबूलाल जैन फागुल्ल

महावीर प्रेस

बी० २०/४४, भेलूपुर, वाराणसी-१

"मेरी जीवनगाथा"

के

विषयमें

पूज्य श्रीवर्णीजी का अभिमत

मैं अपनी जीवनी लिखूं इसकी कल्पना स्वप्न में भी न थी। इसमें ऐसा विशेष है ही क्या। अधिकतर दूसरे भाई इसे जिस दृष्टि से देखते हैं उस में मेरा कुछ भी आकर्षण नहीं है। न तो मैं शोधक हूं और स्वतन्त्र विचारक ही हूं। मैं तो भगवान महावीर के महान् सिद्धान्तों का अनुयायी मात्र हूं। मुझे उनके मार्ग अनुसरण करने में जो आनन्दानुभव आता है। वह वचनातीत है अतः मेरी जीवनी को विशेष ख्यापन मिले यह मैं नहीं चाहता। कुछ भाई बहिनों ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिस से मुझे इस के लिखने के लिए बाध्य होना पड़ा है, यह दूसरी बात है। आशा है इस से पाठकगण मात्र मोक्षमार्ग की शिक्षा लेंगे

फाल्गुन सुदि १५ सं. २००५ — गणेश वर्णी

विजयतां वर्णी गणेशः

विजयतां वर्णी गणेशः !

ललितपुर (झाँसी) प्रसूतः,
जनक - हीरा - रत्न - भूतः,
मातुर 'जियारी' - नयनयो-
र्नन्दनः शुचि-शुभ्र-वेषः !
विजयतां वर्णी गणेशः !

धर्ममातृ - स्नेह - सिक्तः,
कटु - कषाय - समूह - रिक्तः,
यो विहाय प्रपञ्च - लोकं-
सर्वथा सेवित - जिनेशः !
विजयतां वर्णी गणेशः !

वैष्णवाद्धर्माद् विरक्तः,
जैनधर्माचारसक्तः,
बाल्यकालादेव चेतसि
यस्य निग्रह - सन्निवेशः !
विजयतां वर्णी गणेशः !

यस्य तीर्थाटन - प्रवृत्तिः,
यस्य शास्त्राध्ययन-वृत्तिः,
यः समाज सुधारकोऽभूत
तेजसासीद् यो दिनेशः !
विजयतां वर्णी गणेशः !

साधनायां यो निलीनः,
ज्ञानचर्चायां प्रवीणः,
अस्पृशन् स्वप्नेऽपि नो यं
जगन्मिथ्या-मोह-लेशः !
विजयतां वर्णी गणेशः !

सन्तु तस्मै नमस्काराः,
नोदिताः यस्मिन् विकाराः,
सर्वदा श्रद्धानतः सन्
यं स्मरिष्यति देश एषः !
विजयतां वर्णी गणेशः

प्राध्यापक—श्री रामनाथपाठकः 'प्रणयी' जैन कालेज आरा द्वारा प्रस्तुत श्रद्धांजलि

पूज्य वर्णीजी

प्रकाशकीय

हमें प्रसन्नता है कि गत अप्रैल १९६६ में 'जैनदर्शन' के द्वितीय संस्करण और अगस्त १९६६ में 'द्रव्यसंग्रह-वचनिका' इन दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंके प्रकाशनके बाद आज श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमालाद्वारा इतः पूर्व दो बार प्रकाशित 'मेरी जीवन-गाथा' (प्रथम भाग) का तीसरी बार प्रकाशन हो रहा है। इसका प्रथम संस्करण अप्रेल १९४९ (अक्षय-तृतीया, वी० नि० सं० २४७५) में और उसके कोई दस वर्ष बाद अगस्त सन् १९५९ (श्रावण, वी० नि०सं० २४८५) में द्वितीय संस्करण निकला था। इससे विदित है कि यह कृति कितनी लोकप्रिय और आदृत हुई है। जो आदर और अनुराग पाठकोंने इसके प्रति प्रदर्शित किया है, प्राय: वही वर्णी-वाणी, जैन दर्शन आदि अन्य प्रकाशनोंके प्रति भी दिखाया है। फलतः वर्णी-वाणी तृतीय भागका चतुर्थ संस्करण भी छप रहा है, जो जल्दी ही उन तक पहुँचेगा। यथार्थमें यह ग्रन्थमालाके प्रति समाजका हार्दिक सहयोग एवं निस्पृह प्रेम ही है।

यह भी कम प्रसन्नताकी बात नहीं है कि जहाँ ग्रन्थमालाके पाठकोंकी वृद्धि हो रही है वहाँ उसके संरक्षक तथा स्थायी सदस्योंकी संख्या[1] भी बढ़ रही है। हमारा विश्वास है कि जो ग्रन्थमालाके एक हजार संरक्षक-सदस्य बनानेकी योजना है वह आगामी पाँच वर्षोंमें अवश्य पूरी हो जायेगी और तब ग्रन्थमाला न केवल अपने पैरोंपर खड़ी हो सकेगी, अपितु उल्लिखित योजनाके अन्तर्गत जैन तत्त्वज्ञानके चारों अनुयोगोंपर काम करनेवाले चार विशेषज्ञ विद्वानोंकी योजना भी की जा सकेगी तथा वाराणसीमें, जो विद्या

---

१. संरक्षक-सदस्योंकी शुभ-नामावली इसमें अन्यत्र मुद्रित है और ग्रन्थमालामें छपनेवाले प्रत्येक ग्रन्थमें वह रहा करेगी।

और विद्वानों एवं साहित्यिक प्रवृत्तियोंका मुख्य केन्द्र है और सभी साधन-सुविधाओंसे सम्पन्न है, वर्णी-स्मारक-भवनके निर्माण-कार्यको भी मूर्त रूप दिया जा सकेगा।

ग्रन्थमालाको आगे बढ़ानेमें उसकी प्रबन्ध-समिति पूर्णतया तत्पर है। और उसमें जो प्रगति दिख रही है उसका श्रेय भी उसीको है।

प्रस्तुत संस्करणमें पूज्य वर्णीजीके कई चित्र पहली बार दिये जा रहे हैं। ये हमें श्री नीरजजी जैन सतनाके सौजन्यसे प्राप्त हुए हैं। कहना न होगा कि नीरजजी वर्णीजीके अन्यतम भक्तोंमें हैं। उनके हृदयमें वर्णीजीके प्रति असीम एवं जीवन्त श्रद्धा है। ग्रन्थारम्भमें दिया गया भव्य चित्र, सागरसे प्रस्थान करते समय, उत्तर भारतकी पदयात्रा करते हुये और ईसरीमें विचार-मग्न ये चारों बिल्कुल नये चित्र हैं। आशा है इन चित्रोंसे ग्रन्थकी गरिमा द्विगुणित हो जायगी। इसके लिए हम नीरजजीके विशेष आभारी हैं।

श्रद्धा-सम्पन्न एवं धार्मिकप्रवर ला० फिरोजीलालजी जैन देहलीने इस ग्रन्थके द्वितीय संस्करणकी पाँचसौ प्रतियां अपने आर्थिक द्रव्यसे प्रकाशित करायी थीं। इस बार भी जब उनसे अनुरोध किया गया तो अपनी स्वर्गीया धर्मपत्नीकी स्मृतिमें तीनसौ प्रतियोंका प्रकाशन-व्यय स्वीकार करके अपनी विशेष उदारताका परिचय दिया है। इसके लिए हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं और उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

कार्यालयमें दो अप्रकाशित ग्रन्थोंकी पाण्डुलिपियाँ :

ग्रन्थमालाके कार्यालयमें दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी पाण्डुलिपियों विद्यमान हैं, जो अभी तक अप्रकाशित हैं। वे हैं—१. जैन साहित्यका इतिहास (उत्तर भाग), और २. वर्णीजीके पत्रोंका संग्रह। ये दोनों ग्रन्थ प्रकाशमें आनेपर बड़े उपयोगी और लाभदायक सिद्ध होंगे। क्या कोई उदार जिनवाणी-भक्त इनके प्रकाशनका पूरा अथवा आंशिक व्यय-भार उठाकर ग्रन्थमालाकी चिन्ताको दूर करेगा? हमें विश्वास है कि समाजमें ऐसे

श्रुत-भक्तों और उदार दानियोंकी कमी नहीं है। यद्यपि आज पूज्य वर्णीजी नहीं हैं, किन्तु श्रुतज्ञानके प्रसार और अज्ञान-तिमिरके निराकरणके लिए किये गये उनके असाधारण प्रयासों और उपदेशोंसे पूर्ण वातावरण आज विद्यमान हैं। ग्रन्थोंमें निबद्ध उनकी अमर भारती तो हम सबको विद्या-दान तथा श्रुत-विद्याके प्रसारके लिए मूक प्रेरणा दे ही रही है। अतः उनका स्मरण-सम्बल इस पावन श्रुत-विद्याके प्रकाशन-कार्यको निश्चय ही पूरा करायेगा।

अन्तमें महावीर-प्रेसके संचालक श्री बाबूलालजी फागुल्ल और उनके कार्य-कर्तागणको धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने तत्परता और सावधानीसे प्रस्तुत ग्रन्थकी सुन्दर छपाई की है।

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री
(ज्योतिषाचार्य, एम० ए०,
पी-एच० डी०, डी० लिट्)
संयुक्त मंत्री

दरबारीलाल कोठिया
(एम० ए०, आचार्य)
मंत्री

श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

लाला फिरोजीलालजी तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती बस्सोदेवी

इसके प्रकाशनमें सहायक

ला० फिरोजीलालजी और उनकी धर्मपत्नीका जीवन-परिचय

जीवन-झाँकी

लालाजीके प्रपितामह श्री लाला मथुरादासजी कदानी जिला रोहतकके रहनेवाले थे और लगभग १२५ वर्ष पूर्व गोहाना आकर गल्लेका व्यापार करने लगे थे। इनके दो पुत्र थे—ज्येष्ठ पुत्रका नाम लाला निहालचन्द्रजी था और द्वितीय पुत्रका नाम सुगनचन्द्रजी था। लाला सुगनचन्द्रजीके चार पुत्र थे—१ लाला सीतारामजी, २ लाला श्योचन्द्ररायजी, ३ लाला उग्रसेनजी और ४ लाला बालमुकुन्दजी। साथ ही एक कन्या भी हुई। कन्याका नाम कृष्णादेवी है, जिनका विवाह दिल्लीके सुप्रसिद्ध समाजसेवी लाला राजकृष्णजीके साथ हुआ है।

लाला सीतारामजी चारों भाइयोंमें सबसे बड़े थे। इनका विवाह स्वर्गीया श्रीमती मनोहरी देवीके साथ हुआ था। अपने पति लाला सीतारामजीका स्वर्गवास २४ वर्षकी स्वल्प आयुमें ही हो जानेके कारण इन्हें ही अपने दोनों पुत्रों लाला बसन्तलालजी और लाला फिरोजीलालजीका भरण-पोषण तथा देखभाल स्वयं करनी पड़ी। लाला बसन्तलालजी बड़े हैं जो अपने पिताजीके वियोगके समय तीन वर्षके थे और फिरोजीलालजी पिताजीके परलोकवासी होनेके २ माह बाद पैदा हुए थे। अतएव इन दोनों भाइयोंको पितृ-सुख न मिल सका और अपनी माता मनोहरी देवीकी छत्रछायामें ही उनका पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा हुई। लाला फिरोजीलालजीका जन्म वैसाख सुदी ५ वि० सं० १९६३ को हुआ था।

इन दोनों भाइयोंमें लाला बसन्तलालजीने गोहाना और रोहतकमें मेट्रिक तक शिक्षा प्राप्त कर प्रारम्भमें कपड़ेकी दुकान की। बादमें सन्

१९२५ में ये ब्यावर चले गये और वहाँ कोल कम्पनियोंमें १-२ वर्ष काम करके स्वयं कोलका व्यापार करने लगे। जबसे ये ब्यावर गये हैं तबसे वहींके निवासी बन गये हैं। इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं जो सभी योग्य और सदाचारी हैं।

लाला फिरोजीलालजीकी शिक्षा गोहाना, रोहतक और दिल्लीमें हुई। इन्होंने सन् १९२४ में गवर्नमेंट हाईस्कूल दिल्लीसे मैट्रिक परीक्षा पास की। पिताजीके अभावमें सारा बोझ माताजीपर ही आ पड़नेके कारण इन्हें भी अपने बड़े भाईके समान बीचमें ही अपनी शिक्षा समाप्त कर आजीविका अर्जन करनेमें जुट जाना पड़ा। इनका विवाह सन् १९२४ में ही रेवाड़ी निवासी बाबू छाजूरामजी असिस्टेंट स्टेशन-मास्टरकी सुपुत्री श्री बस्सीदेवीके साथ सम्पन्न हुआ था।

लाला फिरोजीलालजी मैट्रिक परीक्षा पास करनेके बाद उसी वर्ष सुजानगढ़के जैन हाईस्कूलमें अंग्रेजीके अध्यापनका कार्य करने लगे। किन्तु वहाँकी सर्विस इनकी रुचिके अनुकूल न होनेसे ३ माहमें ही उसे छोड़कर ये अपने घर चले आये। इसके बाद ये मथुरामें सेठ उदयसिंहजी ठेकेदार इमारतानके यहाँ सर्विस करने लगे। ये होनहार तो थे ही, इसलिए इन्हें इमारत कण्ट्राक्टरके कार्यका अनुभव प्राप्त करनेमें डेढ़ वर्षसे अधिक समय नहीं लगा। इनकी योग्यता, प्रामाणिकता और दक्षतासे प्रभावित होकर सेठ उदयसिंहजीने इन्हें अलीगढ़के बिजलीघरके बनानेका कार्यभार सौंपकर वहाँ भेज दिया। इस कार्यमें इन्होंने अपनी योग्यताका तो परिचय दिया ही। साथ ही इनके अन्य अनेक गुणोंसे प्रभावित होकर सेठजी दूसरे प्रकारके कार्योंका भार भी इन्हींपर डालने लगे। इन्होंने उनके यहाँ रहते हुए वाटर-सप्लाई और नल फिटिंग आदिके कार्यों में भी दक्षता प्राप्त कर ली। इनका और सेठजीका यह मधुर सम्बन्ध सन् १९३५ तक चलता रहा। किन्तु इस वर्ष सेठजीकी इहलीला समाप्त हो जानेके कारण इन्होंने वहाँसे विश्राम ले लेना ही उचित समझा। इतना अवश्य है कि ये वहाँसे सहसा नहीं चले आये। किन्तु सेठजीके उत्तरा-

धिकारियोंको उनके कार्योंको पूरी जानकारी करानेके बाद ही इन्होंने मथुरा छोड़ा।

मथुरा छोड़नेके बाद ये दिल्ली आये और यहाँपर श्रीमान् लाला राजकृष्णजीके साथ कोलोनाइजेशन लि० कम्पनीके डायरेक्टर बनकर जमीनकी खरीद-बिक्रीका कार्य करने लगे। किन्तु कुछ ही दिनोंमें इनकी इस कार्यसे रुचि हट गई, इसीलिए अपने हिस्सेके शेयरज लाला राजकृष्णजीको सौंपकर ये सन् १९३८ से श्रीमान् लाला हरिश्चन्द्रजीके साथ लकड़ीका व्यापार करने लगे। इस कार्यको यद्यपि इन्होंने सन् १९५२ तक निभाया। परन्तु अन्तमें ये इससे भी विरक्त हो गये और उस समयसे ये अपना स्वतन्त्र व्यवसाय कर रहे हैं।

पूज्य वर्णीजीसे परिचय और सम्बन्ध :

एक ओर जहाँ ये अपनी भौतिक उन्नतिमें लगे हुए थे वहाँ दूसरी ओर इन्होंने अपने धार्मिक जीवनको नहीं भुलाया। विशेषतः अपनी माताके धार्मिक जीवनकी इनके जीवनपर गहरी छाप पड़ी, जिससे प्रभावित होकर ये निरन्तर योग्य गुरुकी तलाशमें रहते थे। तीर्थयात्रा और दूसरे धार्मिक कार्योंमें तो ये रुचि रखते ही थे। साथ ही जहाँ-कहीं इन्हें धार्मिक प्रवचन सुननेका अवसर मिलता था, उससे भी लाभ उठाते थे। ऐसा ही एक अवसर इन्हें सन् १९३३-३४ में आया। ये सम्मेदशिखरजीकी यात्राके लिए मधुवनमें ठहरे हुए थे और उसी समय पूज्य वर्णीजी भी वहाँ पधारे हुए थे। पूज्य वर्णीजीके पधारनेसे मधुवनकी चहल-पहल बढ़ गई। आगत धर्मबन्धुओंको उनके प्रवचनोंका लाभ मिलने लगा। उनमें ये भी सम्मिलित हुए। यद्यपि उस समय ये उनके प्रवचनसे विशेष लाभ न उठा सके। फिर भी उनके प्रवचनोंसे इनके जीवनपर ऐसी गहरी छाप पड़ी, जिससे ये सदाके लिए उनके अनुयायी बन गये। इसके बाद ये पूज्य वर्णीजीसे विशेष सम्पर्क स्थापित करनेमें तब सफल हुए जब पूज्य वर्णीजीने अपना दिल्लीमें चतुर्मास किया। तबसे लेकर ये

अवसर मिलते ही वर्णीजीके सद्भावमें उनकी सेवामें उपस्थित होकर अपने आध्यात्मिक जीवनके संशोधनमें उत्साह दिखलाते रहे और उनके स्वर्गस्थ हो जानेके बाद भी उनके प्रति आपकी भक्ति पूर्ववत बनी हुई है। इन्होंने उनके उपदेशोंसे प्रभावित होकर अबतक जो लोकोपयोगी धार्मिक कार्य किये हैं उनका विवरण आगे दिया जाता है।

लालाजी द्वारा किये गये सेवा-कार्योंका विवरण :

१. सन् १९५६ में दिल्लीमें श्रीगणेश वर्णी अहिंसा प्रतिष्ठानकी स्थापना। लालाजीने इस संस्थाका कार्य सुचारु रूपसे चलता रहे, इसके लिए ७५०००) पचहत्तर हजार रुपयाकी लागतका अपना दरियागंज २१, दिल्लीमें स्थित एक तिमंजला मकान उसके लिए अर्पित कर दिया है। जिसकी मासिक आमदनी ६५०) के लगभग है। लालाजीने इसका एक ट्रष्ट भी बना दिया है। ट्रष्टियोंके नाम ये हैं—१ लाला फिरोजीलालजी, २ लाला बसन्तलालजी, ३ बाबू ज्ञानचन्द्रजी, ४ श्रीमती वसतीदेवीजी और ५ श्रीमती सुशीलादेवीजी।

२. सन् १९५७ में गोहानामें अपनी पूज्य माता मनोहरी देवीकी स्मृतिमें जनता अस्पतालकी स्थापना। इसके लिए लालाजीने जमीन खरीद कर ३३०००) तैंतीस हजारकी लागतका अस्पतालके योग्य एक सुन्दर भवन भी बनवा दिया है।

३. २१ मार्च सन् १९५९ में जनता अस्पतालका कार्य सुचारु रूपसे चलता रहे, इसके लिए २६०००) छब्बीस हजार रुपया प्रदानकर उसका एक ट्रस्ट भी स्थापित कर दिया है। ट्रष्टियोंमें श्रीगणेश वर्णी अहिंसा प्रतिष्ठानके ट्रष्टियोंके नाम तो हैं ही। उनके सिवा ये नाम और हैं—बाबू मोहनलालजी ब्यावर, बाबू सोहनलालजी ब्यावर, लाला शिखरचन्द्रजी गोहाना, लाला हुकुमचन्द्रजी गोहाना, लाला पद्मचन्द्रजी गोहाना और लाला नेमीचन्द्रजी गोहाना।

४. इटारसी जैन मन्दिरमें वेदी-निर्माणके लिए २०००) दो हजार रुपया प्रदान किये। यह दान जनवरी सन् ५९ में दिया था।

५. स्याद्वाद-महाविद्यालयके ध्रुव फण्डमें १०००) एक हजार और उसके घाटका निर्माण करनेके लिए १०००) एक हजार रुपये दिये। (ध्रुव फण्डके रुपया ट्रष्टमें जमा हैं)

६. श्रीगणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसीके लिए ५००) पाँच सौ रुपये। (ट्रष्टमें जमा)

७. स्वर्गीया धर्मपत्नी श्रीमती बस्सी देवीकी स्मृतिमें 'बस्सीदेवी जैन चेरिटेबल अस्पताल'की अभी हालमें ४ जनवरी १९६७ को स्थापना की ।

पूज्य वर्णीजीका प्रभाव :

पूज्य वर्णीजीमें इनकी अटूट श्रद्धा है। सन् १९४९ में इनके जीवनमें एक ऐसा अवसर आया, जब ये नाथ बैंक लि० के फेल हो जानेपर अपनी संचित पूंजी लगभग सत्तर हजार रुपया गँवा बैठे थे, फिर भी इनके मनमें रंचमात्र भी खेद नहीं हुआ। इस सम्बन्धमें लालाजी अक्सर कहा करते हैं कि यह सब पूज्य वर्णीजीके उपदेशों और उनके सम्पर्कका प्रभाव है कि मेरी पूंजी चले जानेपर भी मुझे रंचमात्र भी दुःख नहीं हुआ। यदि उनके सम्पर्कमें आनेका अवसर न मिलता तो न जाने उस समय मेरा क्या हाल हुआ होता।

तीर्थ-यात्राएँ :

आपने अपने जीवनको सुसंस्कृत बनानेके लिए सकुटुम्ब सात बार श्री सम्मेदशिखरजी, चार बार श्री गिरनारजी, दो बार दक्षिणके तीर्थों और तीन बार समस्त क्षेत्रोंकी यात्राएँ की हैं।

इस प्रकार लालाजीने हर दृष्टिसे जीवनको सफल बनानेकी चेष्टा की है और आज भी आप देव-दर्शन, शास्त्र-प्रवचन आदि धार्मिक क्रियाओंमें प्रवृत्त रहते हैं।

स्वर्गीया श्रीमती बस्सीदेवी :

सौभाग्यसे आपकी धर्मपत्नी श्रीमती बस्सीदेवी भी आपके स्वभावके अनुरूप मिली थीं और प्रत्येक धार्मिक कार्यमें आपको उत्साहित करती रहती थीं। खेद है कि गत १८ जून १९६६ को आपका समाधि पूर्वक स्वर्गवास हो गया। आपको कैंसरकी बीमारी हो गई थी, जो लगभग एक वर्षतक रही और अन्तमें वही उनकी घातक हुई। लालाजीने अच्छे-अच्छे डाक्टरोंसे उनका इलाज कराया और अनेकविध उपचार किये। पर उन्हें कराल कालसे बचाया न जा सका। आपके वियोगसे लालाजी-को असह्य दुःख हुआ। पर आपने अपने विवेक, शास्त्र-ज्ञान और धैर्यसे उसे सहन किया। श्रीमती बस्सीदेवीजी बड़ी धार्मिक, दयालु, सहृदय और उदार नारी-रत्न थीं। अपनी दत्तक पुत्री सौ, सुशीला देवी, उनके बच्चों और दामाद बा० ज्ञानचन्द्रजी पर तो अपूर्व स्नेह रखती ही थीं, अपने अधीन नौकर-चाकरों, गरीब भाई-बहिनों और अनाथ बच्चों-पर भी उनका सदा स्नेह और करुणाका प्रवाह प्रवाहित रहता था। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि आपके पिता बा० छाजूरामजी थे, जो हिसारमें असिस्टेण्ट स्टेशन मास्टर थे और जो रेवाड़ीके निवासी थे। आपके दो भाई और एक बहिन हैं। भाईयोंके नाम हैं—१. ला० मुन्ना-लालजी, २. ला० शीतलप्रसादजी और बहिनका नाम है—श्रीमती कलावतीजी। आपका जन्म पोह बदी ८ वि० सं० १९६५ में हुआ था और स्वर्गवास आषाढ़ वदी १५ वि० सं० २०२३ (१८ जून १९६६) को हो गया।

लालाजीका औदार्य :

लाला फिरोजीलालजीने उल्लिखित लोकोपकारक कार्योंके अलावा अभी हालमें ४ जनवरी १९६७ को अपनी धर्मपत्नीकी स्मृतिमें 'बस्सी देवी जैन चेरिटेबल अस्पताल' की दरियागंज २१, दिल्लीमें स्थापना की है। इसके साथ ही इस 'मेरी जीवन-गाथा प्रथम भाग' की ३०० प्रतियोंका प्रकाशन-

व्यय भी श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमालाको दिया है। लालाजीकी उदारताका विशेष परिचय हमें तब और मिला जब उन्होंने हमें और विद्यार्थी नरेन्द्रजी जैन एम० ए०, पी-एच० डी० को दिल्ली बुलाया तथा हम लोगोंके परामर्शपर पूज्य वर्णीजी द्वारा लिखित समयसारकी हिन्दी-व्याख्याके प्रकाशनके लिए ११०००) ग्यारह हजार रुपयोंकी घोषणा की। यह ग्रन्थ लालाजी द्वारा स्थापित श्रीगणेश-वर्णी अहिंसा-प्रतिष्ठान ट्रस्ट दिल्लीसे श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसीके तत्त्वावधानमें शीघ्र प्रकाशित होगा।

लालाजीके ये सभी जन-सेवा और साहित्य-सेवाके कार्य निश्चय ही सराहनीय हैं। हमें आशा है उनके द्वारा भविष्यमें और भी प्रशंसनीय सत्कार्य सम्पन्न होंगे।

मंत्री,
श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

प्रस्तावना

हिन्दी भाषामें आत्म-कथाओंका अभाव है। अभी दो वर्ष पूर्व देश-रत्न डा० राजेन्द्रप्रसादकी आत्म-कथा प्रकाशित हुई थी। इसी प्रकारकी एकाध और पुस्तकें हैं[1]। वर्णीजीने अपना आत्म-चरित लिखकर जहाँ जैन-समाजका उपकार किया है वहाँ हिन्दीके भंडारको भी भरा है। एतदर्थ वे बधाईके पात्र हैं।

श्रीमान् वर्णीजीसे मेरा परिचय किस प्रकार हुआ, इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं इस ग्रन्थमें किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरा हृदय उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु है। राजनीतिक क्षेत्रमें कार्य करते रहनेके कारण मेरा सभी प्रकारके व्यक्तियोंसे सम्बन्ध आता है। साधुस्वभाव व्यक्तियोंकी ओर मैं सदा ही आकर्षित हो जाता हूँ। प्रातःस्मरणीय महात्मा गांधीके लिए मेरे हृदयमें जो असीम श्रद्धा है उसका कारण उनका राजनीतिक महत्त्व तो कम और उनके चरित्रकी उच्चता ही अधिक रही है। उनके सामने जाते ही मुझे ऐसा अनुभव होता था कि मैं जिस व्यक्तिसे मिल रहा हूँ उसने अपने सभी मनोविकारोंपर विजय प्राप्त कर ली है। वर्णीजीके सम्पर्कमें मैं अधिक नहीं आया, परन्तु मिलते ही मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया। उन्होंने जबलपुरके जैन समाजके लिए बहुत कुछ किया है जिससे भी मैं भलीभाँति परिचित हूँ। इसलिए कुछ जैन मित्रों ने जब मुझसे इस ग्रंथकी प्रस्तावना लिखनेका आग्रह किया तब समयका अभाव रहते हुए भी मैं 'नहीं' न कह सका।

बचपनमें जब मैं रायपुरमें पढ़ता था, मेरे पड़ोसमें एक जैन गृहस्थ रहते थे। उनके पाससे मैं जैनधर्म सम्बन्धी पुस्तकोंको लेकर पढ़ा करता था। अनेक बार मैं जैन मन्दिरोंमें भी गया। तीर्थंकरोंकी सौम्य मूर्तियोंने मेरे हृदयको अत्यधिक प्रभावित किया। कुछ रिश्तेदारोंको यह बुरा भी

---

1. पं० बनारसीदासजी का 'अर्धकथानक' आदि।

लगा, परन्तु जब उन्होंने देखा कि मैं ईसाई मतकी भी पुस्तकें पढ़ा करता हूँ, तब उन्होंने मेरा पीछा छोड़ दिया।

आयु बढ़ने पर भी मेरा जैन साहित्यके प्रति आकर्षण कम नहीं हुआ। कुछ वर्षों पूर्व प्रयागकी "विश्ववाणी" पत्रिकाने जैनधर्म पर एक विशेषांक निकाला था। सम्पादकने मुझे जैनधर्मका विशेष ज्ञान रखनेवाला समझ कर एक लेख भी माँगा था। महावीर जयन्तीके अवसर पर प्रायः प्रतिवर्ष मुझे किसी-न-किसी सभामें निमंत्रित किया जाता है। अभी हाल ही में सागर विश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागके अध्यक्ष श्री नंद-दुलारे जी वाजपेयीने मेरे ग्रन्थ 'कृष्णायन'की आलोचना करते हुए रेडियो पर कहा था—"जीवनकी मुक्त दशाका वर्णन हिन्दू दार्शनिक जिस रूपमें करते है, जैन दार्शनिक उससे भिन्न रूपमें करते हैं। जैनोंके निरूपणमें मुक्त जीव ही ईश्वर संज्ञा धारण करता है। वही पृथ्वी पर अवतार लेकर प्रकट होता है[1]। हिन्दू दर्शनोंमें जीवको ईश्वरकी संज्ञा नहीं दी गई है। कृष्णायनके कविने मुक्त जीवकी कल्पना जैन आधार पर ग्रहण की है, क्योंकि वह उसे अधिक व्यावहारिक प्रतीत होती है।" वाजपेयीजीका यह कथन ठीक हो, या न हो, लोगोंकी यह धारणा अवश्य है कि जैन-दर्शनका मुझ पर बड़ा प्रभाव है। मुझे ऐसी धारणाओंका खण्डन करनेकी आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। आखिर जैन-दर्शन भी मेरी उसी प्रकार पैतृक संपत्ति है जिस प्रकार अन्य भारतीय दर्शन। मैं उसकी उपेक्षा क्यों करूँ?

परन्तु आज इन बारीक विवादोंके लिए अवसर ही कहाँ रहा? मैं जैन दर्शनसे प्रभावित होऊँ, परन्तु जैन समाजके ही शिक्षित नवयुवक अपनी बहुमूल्य सम्पत्तिको छोड़ मार्क्स-वादको अपनाते जा रहे हैं! कोई जैन विद्वान् गिनती करके तो देखे कि भारतके मार्क्सवादियोंमें जैन नवयुवकोंकी संख्या कितनी है। मार्क्सके भौतिकवादके चरणोंपर समस्त भारतीय दर्शन चढ़ाये जा रहे हैं। यह खतरा हम सबके सामने है। आवश्यकता इस

---

१. जैन दर्शनके अनुसार मुक्त जीव लौटकर नहीं आता।

बातकी है कि जैन और अजैन सभी दर्शनोंके वेत्ता मार्क्सवादका अध्ययन कर उसकी निस्सारता प्रकट करें। जैन गुरुकुलोंमें मार्क्सवादका अध्ययन और खण्डन होना चाहिए। भारतवर्षमें दार्शनिक विचारोंकी धारा सूख गयी है। उसमें प्रवाह लानेके लिये हमें योरपीय दर्शन विशेषकर मार्क्स-वादका प्रगाढ़ अध्ययन करना होगा तभी हमारे दार्शनिक विचारोंमें फिरसे मौलिकताका जन्म होगा। मार्क्सवाद बिल्कुल उथला तथा थोथा है। अपनी मणियोंको तिरस्कृत कर हम काँचको ग्रहण करते जा रहे है। परन्तु हमारे नवयुवक तो पारखी नहीं हैं। जबतक हम दोनोंका तुलनात्मक अध्ययन कर उनकी भूल व प्रमाणित कर देंगे तबतक वे काँचको ही मणि समझकर ग्रहण करते जावेंगे। इसमें हमारे नवयुवकोंकी अपेक्षा हमारा ही अपराध अधिक है।

वर्णीजीने गुरुकुलोंकी स्थापना करनेमें महान् योग दिया है। मैं इन गुरुकुलोंका बड़ा पक्षपाती हूँ, पर हमें इनमें आधुनिकता लानेका भी प्रयत्न करना होगा। कठिनाई यह है कि जो हमारे प्राचीन ग्रन्थोंके विद्वान् हैं वे नई विचारधारासे अपरिचित है और जो नई विचारधारामें डूबे हुए हैं वे प्राचीन साहित्यके ज्ञानसे कोरे हैं। जब तक दोनोंका समन्वय न होगा तब तक हमारा प्राचीन ज्ञान आजकी सन्ततिका उपकार न कर सकेगा।

नयी धारावाले हमारे नवयुवकोंकी आँखें पाश्चात्य विज्ञानके आवि-ष्कारोंसे चौंधिया गई हैं। कठिनाई तो यह है कि विज्ञानकी नवीनतम प्रगतिसे भी वे अपरिचित हैं। भारतको राजनैतिक स्वराज्य अवश्य प्राप्त हो गया है, परन्तु हमारी मानसिक गुलामी अब भी कायम है। योरोपमें जिस प्रकारके फर्निचरका प्रचलन सौ साल पहले था और जिसे अब वहाँ कोई नहीं पूछता उसकी कद्र भारतमे नये फैशनके रूपमें होती है। इसी प्रकार जो विज्ञान अब योरपमे पुराना हो गया है उसे आज भी हमारे विश्व-विद्यालयोंमें विद्यार्थियोंको वेदवाक्य मानकर पढ़ाया जाता है। दो शताब्दी पूर्व जब योरपमें विज्ञानकी प्रगति हुई तो उसे धर्मका शत्रु मान लिया गया। भारतीय विद्यार्थी आज भी वही माने बैठे है। परन्तु पिछले

पच्चीस वर्षोंमें ही योरपमें विज्ञानकी और भी प्रगति हुई है। विशेष कर मनोविज्ञानके क्षेत्रमें तो इतनी उन्नति हुई है कि भौतिकवादकी जड़ें ही हिल गयी हैं। अब विज्ञानके अनुसार भी 'पदार्थ' (matter) पदार्थ न रहकर 'मन' की रचना मात्र रह गया है। 'सापेक्षवाद' (Theory of Relativity) का प्रभाव भी वैज्ञानिकोंके चिन्तनपर पड़ने लगा है। विज्ञान स्वयं ही अब 'पदार्थ' में सृष्टिका मूल न पाकर 'नेति, नेति' कहने लगा है। पदार्थविज्ञान अब गौण और मनोविज्ञान खोजका प्रधान विषय हो गया है। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि मनोविज्ञानमें भारतीयोंने जो खोज प्राचीनकालमें की थी उस तक पहुँचनेके लिए योरोपको शायद एक शताब्दी लगेगी। यदि हम योरोपकी मानसिक गुलामीसे अपना पीछा छुड़ा सके तो दस वर्षोंके अन्दर ही भारतीय मनोविज्ञानका अध्ययन कर इस क्षेत्रमें संसारको एक बड़ी देन दे सकते हैं। परन्तु जो कुछ हो रहा है उससे तो यह जान पड़ता है कि अभी पचास वर्षतक हमारे विश्व-विद्यालयोंमें वही पुराना विज्ञान पढ़ाया जावेगा। ई० सन् २००० के लगभग हमारे बच्चे वह ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे जो आज योरोपको मिल चुका है। तबतक योरोप और भी नये आविष्कार करेगा, जो हमें २०५० ई० में पढ़ाये जावेंगे। इस प्रकार हम सदा योरोपके शिष्य ही बने रहेंगे। अगर २०५० ई० में नये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तोंको सुनकर कोई संस्कृत भाषाका पंडित भारतीय विद्वान् यह कहेगा कि ये सिद्धान्त तो हमारे ग्रन्थोंमें कई हजार वर्ष पहलेसे लिखे हैं तो नयी सन्तति उसका मजाक करेगी।

आज हमारे राजनीतिक नेता हमें यह बता रहे है कि शीघ्र ही भारत-वर्ष दुनियाका नहीं, तो एशियाका नेता होनेवाला है। मैं अभी तक नहीं समझ पाया कि यह नेतृत्व हमें अपने किस गुणके बल पर प्राप्त होगा। हम अमरीकासे बढ़कर अणु-बम न बना पावेंगे। हम योरपसे बढ़कर फौजी अनुशासन अपने सिपाहियोंको न सिखा सकेंगे। सच बात तो यह है कि मनुष्यको मृत्युके मुखमें ले जानेवाले साधनोंके आविष्कारमें हम भारतीय कभी पटु नहीं रहे। हमारे बाप-दादोंने तो हमें जीवनकी कला ही सिखायी है। हम एशिया ही नहीं समस्त विश्वका नेतृत्व कर सकते हैं यदि हम

अपनी परम्पराके प्रति सच्चे रहें। आज सारा संसार द्वेषजनित युद्धाग्निमें जल रहा है। प्रेम और अहिंसाके द्वारा हम इस अग्निको बुझाकर संसारको शान्ति प्रदान कर सकते हैं। यही हमारी विशेषता और हमारा जातीय धर्म है। हमारे इस युगके विचारक गाँधीजीने भी हमें यही मार्ग बताया है। जैनियोंने अहिंसाको विशेष रूपसे अपना रक्खा है। यदि वे उसे केवल उपदेश तक ही सीमित न रख वर्तमान युगको समस्याओंके हल करनेमें उसकी उपयोगिता प्रमाणित करनेका भी प्रयास करें तो संसारके लिए प्रकाश स्तंभ सिद्ध होंगे। जैन नवयुवकोंका यह कर्तव्य है कि वे मार्क्सवाद पढ़नेके बाद जैन-दर्शनका भी अध्ययन करें। यदि वे सत्यके अन्वेषक हैं तो वह उन्हें घरमें ही प्राप्त हो जावेगा।

वर्णीजी वयोवृद्ध हैं। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें अपने पितामहको आयु प्राप्त हो, जिससे कि वे जैन समाज ही नहीं समस्त भारतीय समाजका उत्तरोत्तर कल्याण कर सकें। उनकी 'आत्मकथा' लोगोंको विद्यानुरागी, त्यागी, दृढ़प्रतिज्ञ तथा धर्मनिष्ठ बनावे यही मेरी इच्छा है।

सेमिनेरी हिल
नागपुर

द्वारकाप्रसाद मिश्र
२।४।१९४९

अपनी बात

पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी, बाबा भागीरथजी और पं० दीप-चन्दजी वर्णी ये तीनों महानुभाव जैन समाजमें वर्णित्रयके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनका पारस्परिक सम्बन्ध भी बहुत अच्छा रहा है। पूज्य वर्णीजीके सम्बन्धसे सागरमें बाबा भागीरथजी और पं० दीपचन्दजी वर्णीका अनेकों बार शुभागमन हुआ है। पहले किसी समय दीपचन्दजी वर्णी सागरकी सत्तर्कसुधातरङ्गिणी पाठशालामें (जो अब गणेश दि० जैन विद्यालयके नामसे प्रसिद्ध है) सुपरिन्टेन्डेन्ट रह चुके थे। तब उन्हें वहाँका छात्रवर्ग 'बाबूजी' कहा करता था। पीछे वर्णी बन जानेपर भी सागर में उनका वही 'बाबूजी' सम्बोधन प्रचलित रहा आया और उन्होंने छात्रवर्गद्वारा इस सम्बोधनका प्रयोग होनेमें कभी आपत्ति भी नहीं की।

एक बार अनेक त्यागी वर्गके साथ उक्त वर्णित्रयका सागरमें चातुर्मास हुआ। उस समय मैं प्रवेशिका द्वितीय खण्डमें पढ़ता था और मेरी आयु लगभग १३ वर्षकी थी। लगातार चार माह तक सम्पर्क रहनेसे श्री पं० दीपचन्दजी वर्णीके साथ मेरी अधिक घनिष्ठता हो गई। पहले उनके साथ वार्तालाप करनेमें जो भय लगता था वह जाता रहा।

पूज्य वर्णीजी सारी जैन समाजके श्रद्धा-भाजन हैं। मैंने जबसे होश सम्भाला तबसे मैं बराबर देखता आ रहा हूँ कि उनमें जैन समाजके आबाल वृद्धकी गहरी श्रद्धा है और वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। पूज्य वर्णीजी कौन हैं? इनमें क्या विशेषता है? यह सब समझना उस समय ही क्यों, अब भी मेरे ज्ञानके बाहर है। फिर भी वे जब कभी शास्त्र-प्रवचनों अथवा व्याख्यानोंमें अपनी जीवनकी कुछ घटनाओंका उल्लेख करते थे तब हृदयमें यह इच्छा होती थी कि यदि इनका पूरा जीवनचरित कोई लिख देता तो उसे एक साथ पढ़ लेता।

मैंने एक दिन श्री दीपचन्दजी वर्णीसे कहा कि 'बाबूजी आप बड़े पण्डितजीका (उस समय सागरमें पूज्य वर्णीजी इसी नामसे पुकारे जाते

थे) जीवनचरित क्यों नहीं लिख देते ? आप उनके साथ सदा रहते हैं और उन्हें अच्छी तरह जानते भी हैं।' एक छोटी कक्षाके विद्यार्थीके मुखसे इनके जीवनचरित लिख देनेकी प्रेरणा सुनकर उन्हें कुछ आश्चर्य-सा हुआ। उन्होंने सरल भावसे पूछा कि तू इनका जीवनचरित क्यों लिखाना चाहता है ? मैंने कहा—'बाबूजी ! देखो न, जब कभी ये शास्त्र-सभामें अपनी जीवन-घटनाएँ सुनाने लगते हैं तब दुखद घटनाओंसे समस्त समाजकी आँखोंसे आँसू निकल पड़ते हैं और कभी विनोदपूर्ण घटना सुनकर सभी लोग हँसने लगते हैं। मुझे तो लगता है कि इनके जीवनचरितसे लोगोंको बड़ा लाभ होगा।' उन्होंने कहा—'पन्नालाल ! तू समझता है कि इनका जीवनचरित लिखना सरल काम है और मैं इनके साथ रहता हूँ इसलिए समझता है कि मैं इन्हें जानता हूँ। पर इनका जीवनचरित इनके सिवाय किसी अन्य लेखकको लिखना सरल नहीं है और ये इतने गम्भीर पुरुष हैं कि वर्षोंके सम्पर्कसे भी इन्हें समझ सकना कठिन है। सम्भव है तेरी इच्छा ये स्वयं ही कभी पूर्ण करेंगे।' बाबूजी का उत्तर सुनकर मैं चुप रह गया और उस समयसे पूज्य वर्णीजीमें मेरी श्रद्धाका परिमाण कई गुणा अधिक हो गया।

मैं पहले लिख चुका हूँ कि वर्णीजी इस युगके सर्वाधिक श्रद्धा-भाजन व्यक्ति हैं। इन्होंने अपनी निःस्वार्थ सेवाओंके द्वारा जैन समाजमें अनूठी जागृति कर उसे शिक्षाके क्षेत्रमें जो आगे बढ़ाया है वह एक ऐसा महान् काम है कि जिससे जैन समाजका गौरव बढ़ा है। जहाँ तत्त्वार्थसूत्रका मूल पाठ कर देनेवाले विद्वान् दुर्लभ थे, वहाँ आज गोम्मटसार तथा धवलादि सिद्धान्त-ग्रन्थोंका पारायण करनेवाले विद्वान् सुलभ हैं। यह सब पूज्य वर्णीजीकी सतत साधनाओंका ही तो फल है। पूज्य वर्णीजीको आत्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्रसे प्रकाशमान है। उनके दर्शन करने मात्रसे दर्शकके हृदयमें शान्तिका संचार होने लगता है और न जाने कहाँसे पवित्रताका प्रवाह बहने लगता है। बनारसमें स्याद्वाद विद्यालय और सागरमें श्री गणेश दि० जैन विद्यालय स्थापित कर आपने जैन संस्कृतिके संरक्षण तथा पोषणके सबसे महान् कार्य किये हैं। इतना

सब होनेपर भी आप अपनी प्रशंसासे दूर भागते हैं। अपनी प्रशंसा सुनना आपको बिलकुल पसंद नहीं है। और यही कारण रहा कि आप अपना जीवनचरित लिखनेके लिए बार-बार प्रेरणा होनेपर भी उसे टालते रहे। वे कहते रहे कि 'भाई! कुन्दकुन्द, समन्तभद्र आदि लोककल्याणकारी उत्तमोत्तम महापुरुष हुए, जिन्होंने अपना चरित कुछ भी नहीं लिखा। मैं अपना जीवन क्या लिखूं? उसमें है ही क्या।'

अभी पिछले वर्षोंमें पूज्यश्री जब तीर्थराज सम्मेदशिखरसे पैदल भ्रमण करते हुए सागर पधारे और सागरकी समाजने उनके स्वागत-समारोहका उत्सव किया तब वितरण करनेके लिए मैंने जीवनझांकी नामकी १६ पृष्ठात्मक एक पुस्तिका लिखी थी। उत्सवके बाद पूज्य वर्णी जीने जब वह पुस्तिका देखी तब हंसते हुए बोले 'अरे! इसमें यह क्या लिख दिया? मेरा जन्म तो हँसेरामें हुआ था, तुमने लुहर्रामें लिखा है और मेरा जन्मसंवत् १९३१ है, पर तुमने १९३० लिखा है। बाकी सब स्तुतिवाद है। इसमें जीवनकी झांकी है ही कहाँ?' मैंने कहा, 'बाबाजी! आप अपना जीवनचरित स्वयं लिखते नहीं हैं और न कभी किसीको क्रमबद्ध घटनाओंके नोट्स ही कराते हैं। इसीसे ऐसी गलतियाँ हो जाती हैं। मैं क्या करूँ? लोगोंके मुँहसे मैंने जैसा सुना वैसा लिख दिया।' सुनकर वह हँस गये और बोले कि अच्छा अब नोट्स करा देवेंगे। मुझे प्रसन्नता हुई। परन्तु नोट्स लिखानेका अवसर नहीं आया। दूसरी वर्ष जबलपुरमें आपका चातुर्मास हुआ। वहाँ श्री ब्र० कस्तूरचन्द्रजी नायक, उनकी धर्मपत्नी तथा ब्र० सुमेरुचन्द्रजी जगाधरी आदिने जीवन-चरित लिख देनेकी आपसे प्रेरणा की। नायकन बाईने तो यहाँ तक कहा कि महाराज! जबतक आप लिखना शुरू न कर देंगे तबतक मैं भोजन न करूंगी। फलतः अवकाश पाकर उन्होंने स्वयं ही लिखना शुरू किया और प्रारंभसे लेकर ईसरीसे सागरकी ओर प्रस्थान करने तकका घटना-चक्र क्रमशः लिपिबद्ध कर लिया।

जबलपुरसे हमारे एक परिचित बन्धुने मुझे पत्र लिखा कि पूज्य वर्णीजीने समयसारकी टीका तथा अपना जीवनचरित लिखा है उसे आप

प्रकाशित करनेके लिये प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। मित्रकी बातपर मुझे विश्वास नहीं हुआ और मैंने उन्हें लिख दिया कि वर्णीजीने समयसारकी टीका लिखी है, यह तो ठीक है, पर जीवनचरित्र भी लिखा है, इस बातपर मुझे विश्वास नहीं होता।

भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्की ओरसे सागरमें सन् १९४७ के मई-जूनमें शिक्षणशिविरका आयोजन हुआ था। उस समय पूज्य वर्णीजी मलहरामें थे मैं शिविरके समय सागर पधारनेकी प्रार्थना करनेके लिए मलहरा गया। ब्र० चिदानन्दजीने (अब आप क्षुल्लक हैं) कहा कि बाबाजीने अपना जीवन-चरित लिख लिया है। मध्याह्नकी सामायिकके बाद वे उसे सुनावेंगे। सुनकर मेरे हर्षका पारावार न रहा। 'सम्भव है' यह स्वयं ही कभी तेरी इच्छा पूर्ण करेंगे' स्वर्गीय दीपचन्दजी वर्णीके उक्त शब्द स्मृतिमें आ गये। २ बजेसे पूज्य वर्णीजीने जीवनचरितके कुछ प्रकरण सुनाये। एक प्रकरण बाईजीकी सम्मेदशिखर यात्रा और श्री पार्श्वनाथ स्वामीके मन्दिरमें आलोचनाके रूपमें उनकी आत्मकथाका भी था। सुनकर हृदय भर आया। बहुत बार प्रार्थना करनेके बाद आपने सब कापियाँ मुझे दे दीं। मुझे ऐसा लगा, मानो निधि मिल गई हो।

अवकाश पाते ही मैंने प्रेस-कापी करना शुरू कर दिया, लगातार ३-४ माह काम करनेके बाद पूरी प्रेस-कापी तैयार कर पूज्यश्रीको दिखानेके लिए बरुआसागर गया। वहाँ ३-४ दिन अनवरत बैठकर आपने पूरी प्रेस-कापी देखी तथा सुनी। भाग्यवश उसी समय वहाँ पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री, बनारस, पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ, बनारस और पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य, बीना भी पहुँच गये। बाबू रामस्वरूपजी वहाँ थे ही। सब का आग्रह हुआ कि इसका प्रकाशन श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला से होना चाहिए। इसके पहले इसी प्रकारकी प्रेरणा पं० जगन्मोहनलालजी कटनीसे भी प्राप्त हो चुकी थी। अतः मैंने पूज्य वर्णीजीकी सम्मत्यनुसार पूरी प्रेस-कापी उसी वक्त पं० फूलचन्द्रजी शास्त्रीको सौंप दी और उन्होंने प्रकाशित करना भी शुरू कर दिया। ईसरीसे प्रस्थान करनेके बाद के कई प्रकरण पूज्य वर्णीजीने बादमें लिखकर दिये, जिनकी प्रेस-कापी कर

में पं० फूलचन्द्रजीके पास भेजता रहा। पं० फूलचन्द्रजीको इसके प्रकाशन में एक वर्ष तक काफी श्रम करना पड़ा है। इस पुस्तकका मेरी 'जीवन-गाथा' नाम भी बरुवासागरमें ही निश्चित हुआ था।

पाठकगण स्वयं पढ़कर देखेंगे कि 'मेरी जीवनगाथा' पुस्तक कितनी कल्याणप्रद है। वे यह भी अनायास समझ सकेंगे कि एक साधारण पुरुष कितनी विपदाओंकी आँच सहकर खरा सोना बना है। इस पुस्तकको पढ़कर कहीं पाठकोंके नेत्र आँसुओंसे भर आवेंगे तो कहीं हृदय आनन्दमें उछलने लगेंगे और कहीं वस्तुस्वरूपकी तात्त्विक व्याख्या समझ करके शान्ति-सुधाका रसास्वाद करने लगेंगे। इसमें सिर्फ जीवन घटनाएँ ही नहीं हैं किन्तु अनेक तात्त्विक उपदेश भी हैं जिससे यह एक धर्मशास्त्रका ग्रंथ बन गया है। पूज्यश्रीने अपने जीवनसे सम्बद्ध अनेकों व्यक्तियोंका इसमें परिचय दिया है जिससे यह आगे चलकर इतिहासका भी काम देगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

अन्तमें मेरी भावना है कि इसका ऐसे विशाल पैमाने पर प्रचार हो जिससे सभी इससे लाभान्वित हो सकें।

वर्णीभवन, सागर
२-२-१९४९

तुच्छ
पन्नालाल जैन

विषय-सूची

जन्म और जैनत्वकी ओर आकर्षण

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥

मेरा नाम गणेश वर्णी है । जन्म सम्वत् १९३१ के कुँवार वदि ४ को हसेरे गाँवमें हुआ था । यह जिला ललितपुर (झाँसी), तहसील महारोनीके अन्तर्गत मदनपुर थानेमें स्थित है । पिताका नाम श्रीहीरालालजी और माताका नाम उजियारी था । मेरी जाति असाटी थी । यह प्रायः बुन्देलखण्डमें पाई जाती है । इस जाति-वाले वैष्णव धर्मानुयायी होते हैं । पिताजीकी स्थिति सामान्य थी । वे साधारण दुकानदारीके द्वारा अपने कुटुम्बका पालन करते थे । वह समय ही ऐसा था, जो आजकी अपेक्षा बहुत ही अल्प द्रव्यमें कुटुम्बका भरण-पोषण हो जाता था ।

उस समय एक रुपयामें एक मनसे अधिक गेहूँ, तीन सेर घी और आठ सेर तिलका तेल मिलता था । शेष वस्तुएँ इसी अनुपातसे मिलती थीं । सब लोग कपड़ा प्रायः घरके सूतका पहिनते थे । सबके घर चरखा चलता था । खानेके लिए घी, दूध भरपूर मिलता था । जैसा कि आज कल देखा जाता है उस समय क्षय-रोगियोंका सर्वथा अभाव था ।

आजादादाकी आयु ५० वर्षकी होने पर मेरे पिताका जन्म हुआ था । इसके बाद पिताके दो भाई और हुए थे, जो क्रमशः आजादादाकी ६० और ७० वर्षकी उम्रमें जन्मे थे । तब दादीकी आयु ६० वर्षकी थी ।

उस समय मनुष्योंके शरीर सुदृढ और बलिष्ठ होते थे। वे अत्यन्त सरल प्रकृतिके होते थे। अनाचार नहीं-के-बराबर था। घर घर गायें रहती थीं। दूध और दहीकी नदियाँ बहती थीं। देहातमें दूध और दहीकी बिक्री नहीं होती थी। तीर्थ-यात्रा सब पैदल करते थे। लोक प्रसन्नचित्त दिखाई देते थे। वर्षाकालमें लोग प्रायः घर ही रहते थे। वे इतने दिनोंका सामान अपने अपने घर ही रख लेते थे। व्यापारी लोग बैलोंका लादना बन्द कर देते थे। वह समय ही ऐसा था, जो इस समय सबको आश्चर्यमें डाल देता है।

बचपनमें मुझे असाताके उदयसे सुकीका रोग हो गया था। साथ ही लीवर आदि भी बढ़ गया था। फिर भी आयुष्कर्मके निषेकोंकी प्रबलताके कारण इस संकटसे मेरी रक्षा हो गयी थी। मेरी आयु जब ६ वर्षकी हुई, तब मेरे पिता मड़ावरा आ गये थे। तब यहाँ पर मिडिल स्कूल था, डाकखाना था और पुलिसथाना भी था। नगर अतिरमणीय था। यहाँ पर १० जिनालय और दिगम्बर जैनियोंके १५० घर थे। प्रायः सब सम्पन्न थे। दो घराने तो बहुत ही धनाढ्य और जनसमूहसे पूरित थे।

मैंने ७ वर्षकी अवस्थामें विद्यारम्भ किया और १४ वर्षकी अवस्थामें मिडिल पास हो गया। चूँकि यहाँ पर यहीं तक शिक्षा थी, अतः आगे नहीं बढ़ सका। मेरे विद्यागुरु श्रीमान् पण्डित मूलचन्द्रजी ब्राह्मण थे, जो बहुत ही सज्जन थे। उनके साथ मैं गाँवके बाहर श्रीरामचन्द्रजीके मन्दिरमें जाया करता था। वहाँ रामायणपाठ होता था। उसे मैं सानन्द श्रवण करता था। किन्तु मेरे घरके सामने एक जिनालय था, इसलिये वहाँ भी जाया करता था। उस मुहल्लेमें जितने घर थे, सब जैनियोंके थे, केवल एक घर बढ़ईका था। उन लोगोंके सहवाससे प्रायः हमारे पिताका

आचरण जैनियोंके सदृश हो गया था। रात्रिभोजन मेरे पिता नहीं करते थे।

जब मैं १० वर्षका था, तबकी बात है। सामने मन्दिरजीके चबूतरेपर प्रति दिन पुराण-प्रवचन होता था। एक दिन त्यागका प्रकरण आया। इसमें रावणके परस्त्री-त्याग व्रत लेनेका उल्लेख किया गया था। बहुतसे भाइयोंने प्रतिज्ञा ली, मैंने भी उस दिन आजन्म रात्रिभोजन त्याग दिया। इसी त्यागने मुझे जैनी बना दिया।

एक दिनकी बात है, मैं शालाके मन्दिरमें गया। दैवयोगसे उस दिन वहाँ प्रसादमें पेड़ा बँटे गये। मुझे भी मिलने लगे। तब मैंने कहा—'मैंने तो रात्रिका भोजन त्याग दिया है।' यह सुन मेरे गुरुजी बहुत नाराज हुए। बोले, छोड़नेका क्या कारण है? मैंने कहा—'गुरु महाराज! मेरे घरके सामने जिनमन्दिर है। वहाँ पर पुराण-प्रवचन होता है। उसको श्रवण कर मेरी श्रद्धा उसी धर्ममें हो गई है। पद्मपुराणमें पुरुषोत्तम रामचन्द्रजीका चरित्र चित्रण किया है। वही मुझे सत्य भासता है। रामायणमें रावणको राक्षस और हनुमानको बन्दर बतलाया है। इसमें मेरी श्रद्धा नहीं है। अब मैं इस मन्दिरमें नहीं आऊँगा। आप मेरे विद्यागुरु हैं, मेरी श्रद्धाको अन्यथा करनेका आग्रह न करें।'

गुरुजी बहुत ही भद्र प्रकृतिके थे, अतः वे मेरे श्रद्धानके साधक हो गये। एक दिनका जिकर है—मैं उनका हुक्का भर रहा था। मैंने हुक्का भरनेके समय तमाखू पीनेके लिये चिलमको पकड़ा, हाथ जल गया। मैंने हुक्का जमीन पर पटक दिया और गुरुजीसे कहा—'महाराज! जिसमें ऐसा दुर्गन्धित पानी रहता है, उसे आप पीते हैं? मैंने तो उसे फोड़ दिया, अब जो करना हो सो करो।'

गुरुजी प्रसन्न होकर कहने लगे—'तुमने दस रुपयेका हुक्का

फोड़ दिया, अच्छा किया, अब न पियेंगे, एक बला टली।' मेरी प्रकृति बहुत भीरु थी, मैं डर गया, परन्तु उन्होंने सान्त्वना दी। 'कहा—भयकी बात नहीं।'

मेरे कुलमें यज्ञोपवीत संस्कार होता था। १२ वर्षकी अवस्था में बुड़ेरा गाँवसे मेरे कुल-पुरोहित आये, उन्होंने मेरा यज्ञोपवीत-संस्कार कराया, मन्त्रका उपदेश दिया। साथमें यह भी कहा कि यह मन्त्र किसीको न बताना, अन्यथा अपराधी होगे।

मैंने कहा—'महाराज! आपके तो हजारों शिष्य हैं। आपको सबसे अधिक अपराधी होना चाहिये। आपने मुझे दीक्षा दी, यह ठीक नहीं किया, क्योंकि आप स्वयं सदोष हैं।'

इस पर पुरोहितजी मेरे ऊपर बहुत नाराज हुए। माँने भी बहुत तिरस्कार किया, यहाँ तक कहा कि ऐसे पुत्रसे तो अपुत्र-वती ही मैं अच्छी थी। मैंने कहा—'माँजी! आपका कहना सर्वथा उचित है, मैं अब इस धर्ममें नहीं रहना चाहता। आजसे मैं श्री जिनेन्द्रदेवको छोड़कर अन्यको न मानूँगा। मेरा पहलेसे यही भाव था। जैनधर्म ही मेरा कल्याण करेगा। बाल्यावस्थासे ही मेरी रुचि इसी धर्मकी ओर थी।'

मिडिल क्लासमें पढ़ते समय मेरे एक मित्र थे, जिनका नाम तुलसीदास था। ये ब्राह्मण-पुत्र थे। मुझे दो रुपया मासिक वजीफा मिलता था। वह रुपया मैं इन्हींको दे देता था। जब मैं मिडिल पास कर चुका, तब मेरे गाँवमें पढ़नेके साधन न थे, अतः अधिक विद्याभ्याससे मुझे वञ्चित रहना पड़ा। चार वर्ष मेरे खेल-कूँदमें गये। पिताजीने बहुत कुछ कहा—'कुछ धन्धा करो' परन्तु मेरेसे कुछ नहीं हुआ।

मेरे दो भाई और थे, एकका विवाह हो गया था, दूसरा छोटा था। वे दोनों ही परलोक सिधार गये। मेरा विवाह अठारह

वर्षमें हुआ था। विवाह होनेके बाद ही पिताजीका स्वर्गवास हो गया था। उनकी जैनधर्ममें दृढ़ श्रद्धा थी। इसका कारण णमोकार मन्त्र था।

वह एक बार दूसरे गाँव जा रहे थे, साथमें बैलपर दुकानदारीका सामान था। मार्गमें भयङ्कर वन पार करके जाना था। ठीक बीचमें, जहाँ दो कोश गाँव इधर-उधर न था, शेर-शेरनी आगये। बीस गजका फासला था, मेरे पिताजीकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। उन्होंने मनमें णमोकार मन्त्रका स्मरण किया, दैवयोगसे शेर-शेरनी मार्ग काटकर चले गये। यही उनकी जैनमतमें दृढ़ श्रद्धाका कारण हुआ।

स्वर्गवासके समय उन्होंने मुझे यह उपदेश दिया कि—

'बेटा, संसारमें कोई किसीका नहीं···यह श्रद्धान दृढ़ रखना। तथा मेरी एक बात और दृढ़ रीतिसे हृदयंगम कर लेना। वह यह कि मैंने णमोकार मन्त्रके स्मरणसे अपनेको बड़ी-बड़ी आपत्तियोंसे बचाया है। तुम निरन्तर इसका स्मरण रखना। जिस धर्ममें यह मन्त्र है उस धर्मकी महिमाका वर्णन करना हमारेसे तुच्छ ज्ञानियोंद्वारा होना असम्भव है। तुमको यदि संसार बन्धनसे मुक्त होना इष्ट है तो इस धर्ममें दृढ़ श्रद्धान रखना और इसे जाननेका प्रयास करना। बस, हमारा यही कहना है।'

जिस दिन उन्होंने यह उपदेश दिया था, उसी दिन सायंकालको मेरे दादा, जिनकी आयु ११० वर्षकी थी, बड़े चिन्तित हो उठे। अवसानके पहले जब पिताजीको देखनेके लिए वैद्यराज आये, तब दादाने उनसे पूछा—'महाराज! हमारा बेटा कबतक अच्छा होगा?'

वैद्य महोदयने उत्तर दिया—'शीघ्र नीरोग हो जायगा?'

यह सुनकर दादाने कहा—'मिथ्या क्यों कहते हो? वह तो

प्रातःकालतक ही जीवित रहेगा। दुःख इस बातका है कि मेरी अपकीर्ति होगी—'बुड्ढा तो बैठा रहा, पर लड़का मर गया।' इतना कह कर वे सो गये। प्रातःकाल मैं दादाको जगाने गया, पर कौन जागे? दादाका स्वर्गवास हो चुका था। उनका दाह कर आये ही थे कि मेरे पिताका भी वियोग हो गया। हम सब रोने लगे, अनेक वेदनाएँ हुईं, पर अन्तमें सन्तोष कर बैठ गये।

मेरे पिता ही व्यापार करते थे, मैं तो बुद्ध था ही—कुछ नहीं जानता था। अतः पिताके मरनेके बाद मेरी माँ बहुत व्यथित हुईं। इससे मैंने मदनपुर गाँवमें मास्टरी कर ली। वहाँ चार मास रहकर नार्मल स्कूलमें शिक्षा लेनेके अर्थ आगरा चला गया, परन्तु वहाँ दो मास ही रह सका। इसके बाद अपने मित्र ठाकुरदासके साथ जयपुरकी तरफ चला गया। एक माह बाद इन्दौर पहुँचा, शिक्षा-विभागमें नौकरी कर ली। देहातमें रहना पड़ा। वहाँ भी उपयोगकी स्थिरता न हुई, अतः फिर देश चला आया।

मार्गदर्शक कड़ोरेलालजी भायजी

दो मासके बाद द्विरागमन हो गया। मेरी स्त्री भी माँके बहकावेमें आ गई और कहने लगी—'तुमने धर्म परिवर्तन कर बड़ी भूल की. अब फिर अपने सनातन धर्ममें आ जाओ और सानन्द जीवन बिताओ।' ये विचार सुनकर मेरा उससे प्रेम हट गया। मुझे आपत्ति-सी जँचने लगी; परन्तु उसे छोड़नेको असमर्थ था। थोड़े दिन बाद मैंने कारीटोरन गाँवकी पाठशालामें अध्यापकी कर ली और वहीं उसे बुला लिया। दो माह आमोद-प्रमोदमें अच्छी तरह निकल गये। इतनेमें मेरे चचेरे भाई लक्ष्मणका विवाह आ गया। उसमें वह गई, मेरी माँ भी गई, और मैं भी गया। वहाँ पंक्तिभोजनमें मुझसे भोजन करनेके लिए आग्रह किया गया। मैंने

काकाजीसे कहा कि 'यहाँ तो अशुद्ध भोजन बना है। मैं पंक्ति-भोजनमें सम्मिलित नहीं हो सकता।' इससे मेरी जातिवाले बहुत क्रोधित हो उठे, नाना अवाच्य शब्दोंसे मैं कोशा गया। उन्होंने कहा—'ऐसा आदमी जाति-बहिष्कृत क्यों न किया जाय, जो हमारे साथ भोजन नहीं करता, किन्तु जैनियोंके चौकोंमें खा आता है।'

मैंने उन सबसे हाथ जोड़कर कहा—कि 'आपकी बात स्वीकार है।' और दो दिन रहकर टीकमगढ़ चला आया। वहाँ आकर मैं श्रीराम मास्टरसे मिला। उन्होंने मुझे जतारा स्कूलका अध्यापक बना लिया। यहाँ आनेपर मेरा पं० मोतीलाल जी वर्णी, श्रीयुत कड़ोरेलाल भायजी तथा स्वरूपचन्द बनपुरिया आदिसे परिचय हो गया।

इससे मेरी जैनधर्ममें और अधिक श्रद्धा बढ़ने लगी। दिन-रात धर्म-श्रवणमें समयजाने लगा। संसारकी असारतापर निरन्तर परामर्श होता था। हम लोगोंमें कड़ोरेलालजी भायजी अच्छे तत्त्वज्ञानी थे। उनका कहना था—'किसी कार्यमें शीघ्रता मत करो, पहले तत्त्वज्ञानका सम्पादन करो, पश्चात् त्यागधर्मकी ओर दृष्टि डालो।'

परन्तु हम और मोतीलाल वर्णी तो रंगरूट थे ही, अतः जो मनमें आता, सो त्याग कर बैठते। वर्णीजी पूजनके बड़े रसिक थे। वे प्रतिदिन श्रीजिनेन्द्रदेवको पूजन करनेमें अपना समय लगाते थे। मैं कुछ-कुछ स्वाध्याय करने लगा था और खाने-पीनेके पदार्थोंके छोड़नेमें ही अपना धर्म समझने लगा था। चित्त तो संसारसे भयभीत था ही।

एक दिन हम लोग सरोवरपर भ्रमण करनेके लिए गये। वहाँ मैंने भायजी साहबसे कहा—'कुछ ऐसा उपाय बतलाइये, जिस कारण कर्मबन्धनसे मुक्त हो सकूँ।'

उन्होंने कहा—'उतावली करनेसे कर्मबन्धसे छुटकारा न मिलेगा, शनैः शनैः कुछ-कुछ अभ्यास करो, पश्चात् जब तत्त्वज्ञान हो जावे, तब रागादि निवृत्तिके लिए व्रतोंका पालन करना उचित है।'

मैंने कहा—'आपका कहना ठीक है परन्तु मेरी स्त्री और माँ है, जो कि वैष्णवधर्मकी पालनेवाली हैं। मैंने बहुत कुछ उनसे आग्रह किया कि यदि आप जैनधर्म स्वीकार करें तो मैं आपके सहवासमें रहूँगा, अन्यथा मेरा आपसे कोई सम्बन्ध नहीं।'

माँने कहा—'बेटा! इतना कठोर वर्त्ताव करना अच्छा नहीं, मैंने तुम्हारे पीछे क्या क्या कष्ट सहे, यदि उनका दिग्दर्शन कराऊँ, तो तुम्हें रोना आजायगा।'

परन्तु मैंने एक न सुनी; क्योंकि मेरी श्रद्धा तो जैनधर्मकी ओर झुक गई थी। उस समय विवेक था ही नहीं, अतः माँसे यहाँ तक कह दिया—'यदि तुम जैनधर्म अंगीकार न करोगी तो माँ! मैं आपके हाथका भोजन तक न करूँगा।' मेरी माँ सरल थीं, रह गईं और रोने लगीं।

उनकी यह धारणा थी कि अभी छोकरा है, भले ही इस समय मुझसे उदास हो जाय, कुछ हानि नहीं, परन्तु स्त्रीका मोह न छोड़ सकेगा। उसके मोहवश झक मारकर घर रहेगा। परन्तु मेरे हृदयमें जैनधर्मकी श्रद्धा होनेसे अज्ञानतावश ऐसी धारणा हो गई थी कि 'जितने जैनी होते हैं वे सब ही उत्तम प्रकृतिके मनुष्य होते हैं। इसके सिवा दूसरोंसे सम्बन्ध रखना अच्छा नहीं।' अतः मैंने माँसे कह दिया—'अब न तो हम तुम्हारे पुत्र ही हैं और न तुम हमारी माता हो।' यही बात स्त्रीसे भी कह दी; जब ऐसे कठोर वचन मेरे मुखसे निकले, तब मेरी माता और स्त्री अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगीं, पर मैं निष्ठुर होकर वहाँसे चला गया।

यह बात जब भायजीने सुनी तब उन्होंने बड़ा डाँटा और कहा—'तुम बड़ी गलतीपर हो। तुम्हें अपनी माँ और स्त्रीका सहवास नहीं छोड़ना चाहिये। तुम्हारी उम्र ही कितनी है, अभी तुम संयम के पात्र नहीं हो, एक पत्र डालकर उन दोनोंको बुला लो। यहाँ आनेसे उनकी प्रवृत्ति जैनधर्म में हो जायगी। धर्म क्या है? यह भी तुम नहीं जानते। धर्म आत्माकी वह परिणति है जिसमें मोह-राग-द्वेषका अभाव हो। अभी तुम पानी छानकर पीना, रात्रि को भोजन नहीं करना, मन्दिरमें जाकर भगवान्‌का दर्शन कर लेना, दुखित-बुभुक्षित—तृषित प्राणिवर्गके ऊपर दया करना, स्त्रीसे प्रेम नहीं करना, जैनियोंके सहवासमें रहना और दूसरोंके सहवासका त्याग करना आदिको ही धर्म समझ बैठे हो।'

मैंने कहा—'भायजी साहब! मेरी तो यही श्रद्धा है जो आप कह रहे हैं। जो मनुष्य या स्त्री जैनधर्मको नहीं मानते उनसे सहवास करनेको मेरा चित्त नहीं चाहता। जिनदेवके सिवा अन्यमें मेरी जरा भी अभिरुचि नहीं।'

उन्होंने कहा—'धर्मका स्वरूप जाननेके लिये काल चाहिये, आगमाभ्यासकी महती आवश्यकता है। इसके बिना तत्त्वोंका निर्णय होना असम्भव है। तत्त्वनिर्णय आगमज्ञ पण्डितोंके सहवाससे होगा, अतः तुम्हें उचित है कि शास्त्रोंका अध्ययन करो।'

मैंने कहा—'महाराज! तत्त्व जाननेवाले महात्मा लोगोंका निवास स्थान कहाँ पर है?'

उन्होंने कहा—'जयपुरमें अच्छे-अच्छे विद्वान् हैं। वहाँ जानेसे तुम्हें यह लाभ हो सकेगा।'

मैं रह गया, कैसे जयपुर जाया जाय?

उनका आदेश था कि 'पहले अपनी धर्मपत्नी और पूज्य माताको बुलाओ फिर सानन्द धर्मसाधन करो।' मैंने उसे

शिरोधार्य किया और एक पत्र उसी दिन अपनी माँको डाल दिया। पत्रमें लिखा था—

'हे माँ! मैं आपका बालक हूँ, बाल्यावस्थासे ही बिना किसीके उपदेश तथा प्रेरणाके मेरा जैनधर्ममें अनुराग है। बाल्यावस्थामें ही मेरे ऐसे भाव होते थे कि हे भगवन्! मैं किस कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ? जहाँ न तो विवेक है और न कोई धर्मकी ओर प्रवृत्ति ही है। धर्म केवल पराश्रित ही है। जहाँ गायकी पूजा की जाती है, ब्राह्मणोंको भगवान्के समान पूजा जाता है, भोजन करनेमें दिन-रातका भेद नहीं किया जाता है। ऐसी दुर्दशामें रहकर मेरा कल्याण कैसे होगा? हे प्रभो! मैं किसी जैनीका बालक क्यों न हुआ? जहाँपर छना पानी, रात्रि भोजनका त्याग, किसी अन्य धर्मीके हाथकी बनी हुई रोटीका न खाना, निरन्तर जिनेन्द्रदेवकी पूजन करना, स्तवन करना, गा-गाकर पूजन करना, स्वाध्याय करना, रोज रात्रिको शास्त्रसभाका होना, जिसमें मुहल्ला भरको स्त्रीसमाज और पुरुषसमाजका आना, व्रत नियमोंके पालनेका उपदेश होना आदि धर्मके कार्य होते हैं। मैं यदि ऐसे कुलमें जनमता तो मेरा भी कल्याण होता···! परन्तु आपके भयसे मैं नहीं कहता था। आपने मेरे पालन-पोषणमें कोई त्रुटि नहीं की। यह सब आपका मेरे ऊपर महोपकार है। मैं हृदयसे वृद्धावस्थामें आपकी सेवा करना चाहता हूँ, अतः आप अपनी वधूको लेकर यहाँ आ जावें। मैं यहाँ मदरसामें अध्यापक हूँ। मुझे छुट्टी नहीं मिलती, अन्यथा मैं स्वयं आपको लेनेके लिए आता। किन्तु आपके चरणोंमें मेरी एक प्रार्थना अब भी है। वह यह कि आपने अब तक जिस धर्ममें अपनी ६० वर्षकी आयु पूर्ण की, अब उसे बदल कर श्रीजिनेन्द्रदेव द्वारा प्रकाशित धर्मका आश्रय लीजिए, जिससे आपका जन्म सफल हो और आपकी चरणसेविका बहूका भी संस्कार उत्तम हो। आशा है, मेरी विनयसे आपका हृदय द्रवीभूत

हो जायगा। यदि इस धर्मका अनुराग आपके हृदयमें न होगा तब न तो आपके साथ ही मेरा कोई सम्बन्ध रहेगा और न आपकी बहूके साथ ही। मैं चार मास तक आपके चरणोंकी प्रतीक्षा करूँगा। यद्यपि ऐसी प्रतिज्ञा न्यायके विरुद्ध है, क्योंकि किसीको यह अधिकार नहीं कि किसीका बलात्कार पूर्वक धर्म छुड़ावे, तो भी मैंने यह नियम कर लिया है कि जिसके जिनधर्मकी श्रद्धा नहीं उसके हाथका भोजन नहीं करूँगा। अब आपकी जैसी इच्छा हो, सो करें।'

पत्र डालकर मैं निःशल्य हो गया और श्रीभायजी तथा वर्णी मोतीलालजीके सहवाससे धर्म-साधनमें काल बिताने लगा। तब मर्यादाका भोजन, देवपूजा, स्वाध्याय तथा सामायिक आदि कार्योंमें सानन्द काल जाता था।

धर्ममाता श्री चिरौंजाबाईजी

एक दिन श्रीभायजी व वर्णीजीने कहा—'सिमरामें चिरौंजाबाई बहुत सज्जन और त्यागकी मूर्ति हैं, उनके पास चलो।'

मैंने कहा—'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु मेरा उनसे परिचय नहीं, उनके पास कैसे चलूँ?'

तब उन्होंने कहा—'वहाँ पर एक क्षुल्लक रहते हैं। उनके दर्शन के निमित्त चलो, अनायास बाईजीका भी परिचय हो जायेगा।'

मैं उन दोनों महाशयोंके के साथ सिमरा गया। यह गाँव अतारा से चार मील पूर्व है। उस समय वहाँ पर दो जिनालय और जैनियों के बीस घर थे। वे सब सम्पन्न थे। जिनालयोंके दर्शन कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। एक मन्दिर बाईजीके श्वसुरका बनवाया हुआ है। इसमें संगमर्मरकी वेदी और चार फुटकी एक सुन्दर मूर्ति है,

जिसके दर्शन करनेसे बहुत आनन्द आया। दर्शन करनेके बाद शास्त्र पढ़नेका प्रसङ्ग आया। भायजीने मुझसे शास्त्र पढ़नेको कहा। मैं डर गया। मैंने कहा—'मुझे तो ऐसा बोध नहीं जो सभामें शास्त्र पढ़ सकूँ। फिर क्षुल्लक महाराज आदि अच्छे-अच्छे विज्ञ पुरुष विराजमान हैं। उनके सामने मेरी हिम्मत नहीं होती।' परन्तु भायजी साहबके आग्रहसे शास्त्रगद्दीपर बैठ गया। यद्यपि चित्त कम्पित था, तो भी साहस कर बाँचनेका उद्यम किया। दैवयोगसे शास्त्र पद्मपुराण था, इसलिये विशेष कठिनाई नहीं हुई। दस पत्र बाँच गया। शास्त्र सुनकर जनता प्रसन्न हुई, क्षुल्लक महाराज भी प्रसन्न हुए।

उस दिन भोजन भी बाईजीके घर था। बाईजी साहब हम तीनोंको भोजनके लिए ले गईं। चौकामें पहुँचनेपर अपरिचित होनेके कारण मैं भयभीत होने लगा, किन्तु अन्य दोनों जन चिरकालसे परिचित होनेके कारण बाईजीसे वार्तालाप करने लगे। परन्तु मैं चुपचाप भोजन करनेके लिए बैठ गया। यह देख बाईजीने मुझसे स्नेह भरे शब्दोंमें कहा—'भयकी कौन-सी बात है ? सुखपूर्वक भोजन करो।'

मैं फिर भी नीची दृष्टि किये चुपचाप भोजन करता रहा। यह देख बाईजीसे न रहा गया। उन्होंने भायजी व वर्णीजीसे पूछा—'क्या यह मौनसे भोजन करता है ?' उन्होंने कहा—'नहीं, यह आपसे परिचित नहीं है। इसीसे इसकी ऐसी दशा हो रही है।

इसपर बाईजीने कहा—बेटा ' सानन्द भोजन करो, मैं तुम्हारी धर्ममाता हूँ, यह घर तुम्हारे लिए है, कोई चिन्ता न करो, मैं जब तक हूँ, तुम्हारी रक्षा करूँगी।'

मैं संकोचमें पड़ गया। किसी तरह भोजन करके बाईजीकी स्वाध्यायशालामें चला गया। वहीं पर भायजी व वर्णीजी आ

बाईजी (चिरौंजाबाईजी) ने कहा—"बेटा !...मैं तुम्हारी धर्ममाता हूँ, यह घर तुम्हारे लिए है, कोई चिन्ता न करो।" [पृ० १८]

गये। भोजन करनेके बाद बाईजी भी वहीं पर आ गईं। उन्होंने मेरा परिचय पूछा। मैंने जो कुछ था, वह बाईजीसे कह दिया। परिचय सुनकर प्रसन्न हुईं। और उन्होंने भायजी तथा वर्णीजीसे कहा—'इसे देखकर मुझे पुत्र जैसा स्नेह होता है—इसको देखते ही मेरे भाव हो गये हैं कि इसे पुत्रवत् पालूँ।'

बाईजीके ऐसे भाव जानकर भायजीने कहा 'इसकी माँ और धर्मपत्नी दोनों हैं।'

बाईजीने कहा—'उन दोनोंको भी बुला लो, कोई चिन्ताकी बात नहीं, मैं इन तीनोंकी रक्षा करूँगी।'

भायजी साहबने कहा—'इसने अपनी माँको एक पत्र डाला है। जिसमें लिखा है कि यदि जो तुम चार मासमें जैनधर्म स्वीकार न करोगी तो मैं तुमसे सम्बन्ध छोड़ दूँगा।'

यह सुन बाईजीने भायजीको डाँटते हुए कहा—'तुमने पत्र क्यों डालने दिया?' साथ ही मुझे भी डाँटा—'बेटा! ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं। इस संसारमें कोई किसीका स्वामी नहीं, तुमको कौन-सा अधिकार है जो उनके धर्मका परिवर्तन कराते हो।'

मैंने कहा—'गलती तो हुई। परन्तु मैंने प्रतिज्ञा ले ली थी कि यदि वह जैनधर्म न मानेगी तो मैं उसका सम्बन्ध छोड़ दूँगा। बहुत तरहसे बाईजीने समझाया, परन्तु यहाँ तो मूढ़ता थी, एक भी बात समझमें न आई।

यदि दूसरा कोई होता, तो मेरे इस व्यवहारसे रुष्ट हो जाता। फिर भी बाईजी शान्त रहीं, और उन्होंने समझाते हुए कहा—'अभी तुम धर्मका मर्म नहीं समझते हो, इसीसे यह गलती करते हो।' मैं फिर भी जहाँ-का-तहाँ बना रहा। बाईजीके इस उपदेश-का मेरे ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा। अन्तमें बाईजीने कहा—'अविवेकका कार्य अन्तमें सुखावह नहीं होता।' अस्तु,

सायंकालको बाईजीने दूसरी बार भोजन कराया, परन्तु मैं अबतक बाईजीसे संकोच करता था। यह देख बाईजीने फिर समझाया—'बेटा ! माँसे संकोच मत करो।'

रात्रिको फिर शास्त्रसभा हुई, भायजी साहबने शास्त्रप्रवचन किया, क्षुल्लक महाराज भी प्रवचनमें उपस्थित थे। उन्हें देख मेरी उनमें अत्यन्त भक्ति हो गई। मैंने रात्रि उन्हींके सहवासमें निकाली। प्रातःकाल नित्यकार्यसे निवृत्त होकर श्री जिनमन्दिर गया और वहाँ दर्शन, पूजन व स्वाध्याय करनेके बाद क्षुल्लक महाराजकी वन्दना करके बहुत ही प्रसन्न चित्तसे याञ्चा की। निवेदन किया—'महाराज ! ऐसा उपाय बताओ, जिससे मेरा कल्याण हो सके। मैं अनादिकालसे इस संसार बन्धनमें पड़ा हूँ। आप धन्य हैं, यह आपकी ही सामर्थ्य हैं जो इस पदको अङ्गीकार कर आत्महितमें लगे हो। क्या कोई ऐसा उपाय है, जिससे मेरा भी हित हो।'

क्षुल्लक महाराजने कहा—'हमारे समागममें रहो और शास्त्र लिखकर आजीविका करो। साथ ही व्रत-नियमोंका पालन करते हुए आनन्दसे जीवन बिताओ। आत्महित होना दुर्लभ नहीं।'

मैंने कहा—'आपके साथ रहना इष्ट है, परन्तु आपका यह आदेश कि शास्त्रोंको लिखकर आजीविका करो मान्य नहीं। आजीविकाका साधन तो मेरे लिये कोई कठिन नहीं, क्योंकि मैं अध्यापकी कर सकता हूँ। वर्तमानमें यही आजीविका मेरी है भी। मैं तो आपके साथ रहकर धार्मिक तत्त्वोंका परिचय प्राप्त करना चाहता था। यदि आप इस कार्यकी अनुमति दें, तो मैं आपका शिष्य हो सकता हूँ। किन्तु जो कार्य आपने बताया है वह मुझे इष्ट नहीं। संसारमें मनुष्य जन्म मिलना अति दुर्लभ है। आप जैसे महान् पुरुषोंके सहवाससे आपकी सेवावृत्ति करते हुए हमारे जैसे क्षुद्र पुरुषोंका भी कल्याण हो यही हमारी भावना है।'

यह सुन पहले तो महाराज अचरजमें पड़ गये। बादमें उन्होंने कहा 'यदि तुमको मेरा कहना इष्ट नहीं, तो जो तुम्हारी इच्छा हो, सो करो।'

उस समय वहाँ उस गाँवके प्रतिष्ठित व्यक्ति बसोरेलाल आदि बैठे हुए थे। वे मुझसे बोले—'तुम चिन्ता न करो, हमारे यहाँ रहो और हम लोगोंको दोनों समय पुराण सुनाओ। हम लोग आपको कोई कष्ट न होने देंगे।'

वहाँपर बाईजी भी बैठी थीं। सुनकर कुछ उदास हो गईं और बोलीं—'बेटा! घरपर चलो'। मैं उनके साथ घर चला गया।

घर पहुँचनेपर सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा—'बेटा! चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारा पुत्रवत् पालन करूँगी। तुम निःशल्य होकर धर्मसाधन करो और दशलक्षण पर्वमें यहीं आ जाओ; किसीके चक्करमे मत आओ। क्षुल्लक महाराज स्वयं पढ़े नहीं है, तुम्हें वे क्या पढ़ायेंगे? यदि तुम्हें विद्याभ्यास करना ही इष्ट है, तो जयपुर चले जाना।'

यह बात आजसे ५० वर्ष पहलेकी है। उस समय इस प्रान्तमें कहीं भी विद्याका प्रचार न था। ऐसा सुननेमें आता था कि जयपुरमें बड़े-बड़े विद्वान् हैं। मैं बाईजीकी सम्मतिसे सन्तुष्ट हो मध्याह्नोपरान्त जतारा चला गया।

भाद्रमास था, संयमसे दिन बिताने लगा, पर संयम क्या वस्तु है, यह नहीं जानता था। संयम समझकर भाद्रमास भरके लिये छहों रस छोड़ दिये थे। रस छोड़नेका अभ्यास तो था नहीं, इससे महान् कष्टका सामना करना पड़ा। अन्नकी खुराक कम हो गई और शरीर शक्तिहीन हो गया।

व्रतोंमें बाईजीके यहाँ आनेपर उन्होंने व्रतका पालन सम्यक् प्रकारसे कराया और अन्तमें यह उपदेश दिया—'तुम पहले ज्ञानार्जन

करो, पश्चात् व्रतोंको पालना, शीघ्रता मत करो, जैनधर्म संसारसे पार करनेकी नौका है, इसे पाकर प्रमादी मत होना, कोई भी काम करो, समतासे करो। जिस कार्यमें आकुलता हो, उसे मत करो।'

मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और भाद्र मासके बीतने पर निवेदन किया कि 'मुझे जयपुर भेज दो।'

बाईजीने कहा—'अभी जल्दी मत करो, भेज देंगे।'

मैंने पुनः कहा—'मैं तो जयपुर जाकर विद्याभ्यास करूँगा।'

बाईजी बोलीं—'अच्छा बेटा, जो तुम्हारी इच्छा हो, सो करो।'

जयपुरकी असफल यात्रा

जाते समय बाईजीने कहा—'भैया! तुम सरल हो, मार्गमें सावधानीसे जाना, ऐसा न हो कि सब सामान खोकर फिर वापिस आ जाओ।' मैं श्री बाईजीके चरणोंमें प्रणाम कर सिमरासे श्री सोनागिरिकी यात्राको चल पड़ा। यहाँसे सोलह मील मऊ रानीपुर है। वहाँ आया और वहाँके जिनालयोंके दर्शन कर आनन्दमें मग्न हो गया। यहाँसे रेलगाड़ीमें बैठकर श्रीसोनागिरि पहुँच गया। यहाँकी वन्दना व परिक्रमा की। दो दिन यहाँपर रहा। पश्चात् लश्कर-ग्वालियरके लिए स्टेशनपर गया। टिकिट लेकर ग्वालियर पहुँचा। चम्पाबागकी धर्मशालामें ठहर गया। यहाँके मन्दिरोंकी रचना देखकर आश्चर्यमें डूब गया। चूँकि ग्रामीण मनुष्योंको बड़े बड़े शहरोंके देखनेका अवसर नहीं आता, अतः उन्हें इन रचनाओंको देख महान् आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। श्रीजिनालय और जिनबिम्बोंके दर्शन कर मुझे जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है। दो दिन

इसी तरह निकल गये। तीसरे दिन दो बजे दिनके शौचको बाधा होनेपर आदतके अनुसार गाँवके बाहर दो मील तक चला गया। लौटकर शहरके बाहर कुआँपर हाथ पांव धोए, स्नान किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ धर्मशालामें लौट आया। आकर देखता हूँ कि जिस कोठीमें ठहरा था, उसका ताला टूटा पड़ा है और पासमें जो कुछ सामान था, वह सब नदारत है। केवल बिस्तर बच गया था। इसके सिवा अंटीमें पाँच आना पैसे, एक लोटा, छन्ना, डोरी, एक छतरी और एक धोती, जो बाहर ले गया था, इतना सामान शेष बचा था। चित्त बहुत खिन्न हुआ। 'जयपुर जाकर अध्ययन करूंगा' यह विचार अब वर्षोंके लिये टल गया। शोक-सागरमें डूब गया। किस प्रकार सिमरा जाऊँ ? इस चिन्तामें पड़ गया।

शामको भूखने सताया, अतः बाजारसे एक पैसेके चने और एक छदामका नमक लेकर डेरेमें आया और आनन्दसे चने चाब कर सायकाल जिन भगवान्के दर्शन किये तथा अपने भाग्यकी निन्दा करता हुआ कोठीमें सो गया। प्रातःकाल सोनागिरिके लिए प्रस्थान कर दिया। पासमें न तो रोटी बनानेको बर्तन थे और न सामान ही था। एक गाँवमें, जो ग्वालियर से १२ मील होगा, वहाँ आकर दो पैसेके चने और थोड़ासा नमक लेकर एक कुएपर आया और उन्हें आनन्दसे चाबकर विश्रामके बाद सायं-काल चल दिया। १२ मील चलकर फिर दो पैसेके चने लेकर-वियालू की। फिर पञ्चपरमेष्ठीका ध्यान कर सो गया। यही विचार आया कि जन्मान्तरमें जो कमाया था उसे भोगनेमें अब आनाकानीसे क्या लाभ ?

इस प्रकार ३ या ४ दिन बाद सोनागिरि आ गया। फिरसे सिद्धक्षेत्रकी वन्दना की। पुजारीके बर्तनोंमें भोजन बनाकर फिर पैदल चल दतिया आया। मार्गमें चने खाकर ही निर्वाह करता था। दतियामें एक पैसा भी पास न रहा, बाजारमें गया, पासमें

कुछ न था, केवल छतरी थी। दुकानदारसे कहा—'भैया! इस छतरीको ले लो।' उसने कहा—'चोरीकी तो नहीं है, मैं चुप रह गया। आँखोंमें अश्रु आगये, परन्तु उसने उन अश्रुओंको देखकर कुछ भी समवेदना प्रकट न की। कहने लगा—'लो छह आना पैसे ले जाओ।' मैंने कहा—'छतरी नवीन है, कुछ और दे दो।' उसने तीव्र स्वरमें कहा—'छह आने ले जाओ, नहीं तो चले जाओ।' लाचार छह आना ही लेकर चल पड़ा।

दो पैसेके चने लेकर एक कुएपर चावे, फिर चल दिया, दूसरे दिन झाँसी पहुँचा। जिनालयोंकी वन्दना कर बाजारमें गया, परन्तु पासमें तो साढ़े पाँच आना ही थे, अतः एक आने के चने लेकर गांवके बाहर एक कुएपर आया और खाकर सो गया। दूसरे दिन बरुआसागर पहुँच गया। यह वही बरुआ-सागर है जो स्वर्गीय श्री मूलचन्द्रजी सर्राफ और पं० देवकी-नन्दनजी महाशयकी जन्मभूमि है। उन दिनों मेरा किसीसे परिचय नहीं था, अतः जिनालयकी वन्दना कर बाजारसे एक आनेके चने लेकर गाँवके बाहर चावे और बाईजीके गाँवके लिए प्रस्थान कर दिया।

यहाँसे चलकर कटेरा आया। थक गया। कई दिनसे भोजन नहीं किया था। पासमें कुल तीन आना ही शेष थे। यहाँ एक जिनालय है उसके दर्शन कर बाजारसे एक आनेका आटा, एक पैसेकी उड़दकी दाल, आध आनेका घी और एक पैसेका नमक धनियाँ आदि लेकर गाँवके बाहर एक कुए पर आया। पासमें बर्तन न थे, केवल एक लोटा और छन्ना था। कैसे दाल बनाई जाय? यदि लोटामें दाल बनाऊँ तो पानी कैसे छानूँ? आटा कैसे गूनूँ? 'आवश्यकता आविष्कारकी जननी है' यह बात यहाँ चरितार्थ हुई। आटाको तो पत्थर पर गून लिया। परन्तु दाल कैसे बने? तब यह उपाय सूझा कि पहले उड़दकी दालको कपड़ेके पल्लेमें

भिगो दी। इसके भींग चुकनेपर आटेकी रोटी बनाकर उसके अन्दर उसे रख दिया। उसीमें नमक, धनिया व मिर्च भी मिला दी। पश्चात् उसका गोला बनाकर और उस पर पलाशके पत्ते लपेट कर जमीन खोद कर एक खड्डेमें उसे रख दिया। ऊपर अण्डे कण्डा रख दिये। उसकी आग तैयार होने पर शेष आटेकी ४ बाटियाँ बनाईं और उन्हें सेंक कर घीसे चुपड़ दिया। उन दिनों दो पैसेमें एक छटाँक घी मिलता था, इसलिये बाटियाँ अच्छी तरह चुपड़ी गईं। पश्चात् आगको हटाकर नीचेका गोला निकाल लिया। धीरे-धीरे उसके ठण्डा होने पर उसके ऊपरसे अधजले पत्तोंको दूर कर दिया। फिर गोलेको फोड़कर छेवलेकी पत्तरमें दाल निकाल लिया। दाल पक गई थी। उसको खाया। मैंने आजतक बहुत जगह भोजन किया है, परन्तु उस दालका जो स्वाद था, वैसी दाल आजतक भोजनमें नहीं आई। इस प्रकार चार दिनके बाद भोजन कर जो तृप्ति हुई उसे मैं ही जानता हूँ। अब पासमें एक आना रह गया। यहाँसे चलकर फिर वही चाल अर्थात् दो पैसेके चने लेकर चाबे और वहाँसे चलकर पारके गाँव पहुँच गया।

यहाँसे सिमरा नौ मील दूर था, परन्तु लज्जावश वहाँ न जाकर यहीं पर रहने लगा। और यहीं एक जैनी भाईके घर आनन्दसे भोजन करता था और गाँवके जैन बालकोंको प्राथमिक शिक्षा देने लगा।

दैवका प्रबल प्रकोप तो था ही—मुझे मलेरिया आने लगा। ऐसे वेगसे मलेरिया आया कि शरीर पीला पड़ गया। औषधि रोगको दूर न कर सकी। एक वैद्यने कहा—'प्रातःकाल वायु-सेवन करो और ओसमें आध घंटा टहलो।'

मैंने वही किया। पन्द्रह दिनमें ज्वर चला गया। फिर वहाँसे आठ मील चलकर अतारा आगया। यहाँ पर भायजी साहब और

वर्णीजीसे भेंट हो गई और उनके सहवासमें पूर्ववत् धर्मसाधन करने लगा।

श्रीस्वरूपचन्द्रजी बनपुरया और खुरई-यात्रा

बाईजीने बहुत बुलाया, परन्तु मैं लज्जाके कारण नहीं गया। उस समय यहाँपर स्वरूपचन्द्र बनपुरया रहते थे। उनके साथ उनके गाँव माची चला गया, जो जतारासे तीन मील दूर है। वह बहुत ही सज्जन व्यक्ति थे। इनकी धर्मपत्नी इनके अनुकुल तो थी ही, साथ ही अतिथि-सत्कारमें भी अत्यन्त पटु थी। इनके चौकेमें प्रायः प्रतिदिन तीन या चार अतिथि (श्रावक) भोजन करते थे। ये बड़े उत्साहसे मेरा अतिथि-सत्कार करने लगे। इनके समागमसे स्वाध्यायमें मेरा विशेष काल जाने लगा। श्री मोतीलालजी वर्णी भी यहीं आगये। उनके आदेशानुसार मैंने बुधजन-छहढाला कण्ठस्थ कर लिया। अन्तरङ्गसे जैनधर्मका मर्म कुछ नहीं समझता था। इसका मूल कारण यह था कि इस प्रान्तमें पद्धतिसे धर्मकी शिक्षा देनेवाला कोई गुरु न था। यों मन्दकषायी जीव बहुत थे, व्रत-उपवास करनेमें श्रद्धा थी, घर घर शुद्ध भोजनकी पद्धति चालू थी, श्रीजीके विमान निकालनेका पुष्कल प्रचार था, विमानोत्सवके समय चारसौ पाँचसौ साधर्मियोंको भोजन कराया जाता था, दिनमें श्री जिनेन्द्रदेवका अभिषेक-पूजन गानविद्याके साथ होता था, लोग गानविद्यामें अतिकुशल थे व झाँझ-मजीरा, ढोल आदि बाजोंके साथ श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करते थे। इतना सुन्दर गान होता था कि लोग विशुद्ध परिणामोंके द्वारा अनायास पुण्यबन्ध कर लेते थे। इन उत्सवोंसे जनतामें सहज ही जैनधर्मका प्रचार हो जाता था।

स्वरूपचन्द्रजी बनपुरयाके यहाँ प्रतिवर्ष श्री जिनेन्द्रकी जल-

यात्रा होती थी। इनके यहाँ आनन्दसे दो माह बीत गये। अनन्तर श्री स्वरूपचन्द्रजी बनपुरयाका किसी कार्यवश श्रीमन्तके यहाँ जानेका विचार हुआ। उन्होंने आग्रहके साथ मुझसे कहा—'जबतक मैं वापिस न आ जाऊँ तबतक आप यहाँ से अन्यत्र न जाएँ।' इस समय श्रीयुत वर्णीजी जतारा चले गये थे। इससे मेरा चित्त खिन्न हो उठा। किन्तु संसारकी दशाका विचारकर यही निश्चय किया कि 'जहाँ संयोग है वहाँ वियोग है और जहाँ वियोग है वहाँ संयोग है। अन्यकी कथा छोडिये, संसारका वियोग होने पर ही मोक्षका संयोग होता है। जब वस्तुस्थिति ही इस रूप है तब शोक करना व्यर्थ है।' इतना विचार किया तो भी वर्णीजीके वियोगमें मैं उदास ही रहने लगा। इससे इतना लाभ अवश्य हुआ कि मेरा माची रहना छूट गया। यदि वर्णीजी महोदय जतारा न जाते तो मैं माची कदापि न छोड़ता। स्वरूपचन्द्रजी बनपुरयाके साथ मेरे भी भाव खुरई जानेको हो गये। उन्होंने भी हार्दिक प्रेमसे साथ चलनेकी अनुमति दे दी। दो दिनमें हम लोग टीकमगढ़ पहुँच गये। उन दिनों यहाँ जैन धर्मके मार्मिक ज्ञाता दो विद्वान् थे। एकका नाम श्री मोटीराम भायजी था। आप संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वान् तो थे ही, साथ ही श्रीगोम्मटसारादि ग्रन्थोंके मार्मिक विद्वान् थे। आपकी वचनिकामें अच्छा जनसमुदाय उपस्थित रहता था। मैं भी आपके प्रवचनमें गया और आपकी व्याख्यानशैली सुन मुग्ध हो गया। मनमें यही भाव हुआ कि—'हे प्रभो! क्या आपके दिव्यज्ञानमे यह देखा गया है कि मै भी किसी दिन जैनधर्मका ज्ञाता होऊँगा।'

दूसरे पण्डित जवाहरलाल दरगैयां थे। इनके शास्त्र-प्रवचनमें भी मैं गया। आप भाषाके प्रखर पण्डित थे। गला इतना सुरीला था कि अच्छे अच्छे गानविद्यावाले मोहित हो जाते थे। जब ये उच्चस्वरसे किसी चौपाई या दोहेका उच्चारण करते थे, तब दो फर्लांग तक इनका शब्द सुनाई पड़ता था। पाँच हजार

जनता भी इनका प्रवचन सुन सकती थी। इनकी मधुर ध्वनि सुन रोते हुए बालक भी शान्त हो जाते थे। कहाँ तक लिखूँ ? इनके प्रवचनमें आपसे आप सभा शान्त भावका आश्रय ले धर्म-काम करती हुई अपनेको कृतकृत्य समझती थी। जो एक बार आपका प्रवचन सुन चुकता था, वह पुनः प्रवचन सुननेको उत्सुक रहता था। इनके प्रवचनके लिये लोग पहलेसे ही उपस्थित हो जाते थे। मैंने दो दिन इनके श्रीमुखसे प्रवचन सुना था और फिर भी सुननेकी इच्छा बनी रही। किन्तु खुरई जाना था, इसलिये तीसरे दिन यहाँसे प्रस्थान कर दिया। यहाँसे श्रीनन्दकिशोर वैद्य भी खुरईके लिये बनपुरयाके साथ हो गये। आप वैद्य ही न थे जैन-धर्मके भी विद्वान थे। इनका साथ हो जानेसे मार्गमें किसी प्रकारकी थकान नहीं हुई। आपने मुझे बहुत समझाया और यह आदेश दिया कि तुम इस तरह भ्रमण मत करो, इससे कोई लाभ नहीं। यदि वास्तवमें जैनधर्मका रहस्य जाननेकी अभिलाषा है तो मड़ावरा रहो और अपनी माँ तथा धर्मपत्नीको साथ रखो। वहाँ भी जैनी हैं। उनके सम्बन्धसे तुम्हारी समझमें जैनधर्मका रहस्य आ जायगा। इसीमें तुम्हारी प्रतिष्ठा है। घर-घर फिरनेसे अनादर होने लगता है। मैं उनकी बात मान गया और खुरई यात्राके बाद घर चले जानेकी इच्छा जाहिर की। खुरई चलनेका प्रयोजन बतलाते हुए मैंने कहा—'सुनते हैं कि वहाँ पर श्री पन्नालालजी जैनधर्मके प्रखर विद्वान् है। उनके दर्शन कर मड़ावरा चला जाऊँगा।'

खुरईमें तीन दिन

तीन या चार दिनमें मैं खुरई पहुँच गया। वे सब श्रीमन्तके यहाँ ठहर गये। उनके साथ मैं भी वहीं ठहर गया। यहाँ श्रीमन्तसे

तात्पर्य श्रीमान् श्रीमन्त सेठ मोहनलालजीसे है। आप करोड़-पति थे। करोड़पति तो बहुत होते हैं परन्तु आपकी प्रतिभा बृहस्पतिके सदृश थी। आप जैनशास्त्रके मर्मज्ञ विद्वान् थे। आप प्रतिदिन पूजा करते थे। आप जैनशास्त्रके ही मर्मज्ञ विद्वान् न थे, किन्तु राजकीय कानूनके भी प्रखर पण्डित थे। सरकारमें आपकी प्रतिष्ठा अच्छे रईसोंके समान होती थी। खुरईके तो आप राजा कहलाते थे। आपके सब ठाट राजाओंके समान थे। जैन जातिके आप भूषण थे। आपके यहाँ तीन माह बाद एक कमेटी होती थी, जिसमें खुरई-सागर प्रान्तको जैन जनता सम्मिलित होती थी। उसका कुल व्यय आप ही करते थे। आपके यहाँ पण्डित पन्नालालजी न्यायदिवाकर व श्रीमान् शान्तिलालजी साहब आगरा वाले आते रहते थे। उनके आप अत्यन्त भक्त थे। उस समय आप दिगम्बर जैन महासभाके मन्त्री भी थे।

सायंकालको सब लोग श्रीजिनालय गये। श्रीजिनालयकी रचना देखकर चित्त प्रसन्न हुआ, किन्तु सबसे अधिक प्रसन्नता श्री १००८ देवाधिदेव पार्श्वनाथके प्रतिबिम्बको देखकर हुई। यह सातिशय प्रतिमा है। देखकर हृदयमें जो प्रमोद हुआ वह अवर्णनीय है। नासाग्रदृष्टि देखकर यही प्रतीत होता था कि प्रभुकी सौम्यता अतुल है। ऐसी मुद्रा वीतरागताकी अनुमापक है। निरा-कुलतारूप वीतरागता ही अनन्त सुखकी जननी है। मुझे जो आनन्द आया वह किससे कहूँ? उसकी कुछ उपमा हो, तब तो कहूँ। वह ज्ञानमें तो आ गया, परन्तु वर्णन करनेको मेरे पास शब्द नहीं। इतना भर कह सकता हूँ कि वह आनन्द पञ्चेन्द्रियोंके विषय-सेवनसे नहीं आ सकता। यद्यपि पञ्चेन्द्रियोंके विषयसे भी आनन्द आता है, परन्तु उसमें तृष्णारोगरूप आकुलता बनी रहती है। मूर्तिके देखनेसे जो आनन्द आया उसमें वह बात नहीं थी। आप लोग मानें, या न मानें परन्तु मुझे तो विलक्षणताका

भान हुआ और आप मेरे द्वारा सुनना चाहें तो मेरी शक्तिसे बाह्य है। मेरा तो यहाँ तक विश्वास है कि सामान्य घटपटादिक पदार्थोंका जो ज्ञान है उसके व्यक्त करनेकी भी हममें सामर्थ्य नहीं है फिर इसका व्यक्त करना तो बहुत ही कठिन है।

श्रीप्रभु पार्श्वनाथके दर्शनके अनन्तर श्रीमान् पण्डितजीका प्रवचन सुना। पण्डितजी बहुत ही रोचक और मार्मिक विवेचनके साथ तत्त्वकी व्याख्या करते थे। यद्यपि पण्डितजीका विवेचन सारगर्भित था, परन्तु हम अज्ञानी लोग उसका विशेष लाभ नहीं ले सके। फिर भी विशुद्ध भाव होनेसे पुण्यका संचय करनेमें समर्थ हुए। शास्त्र-समाप्तिके अनन्तर डेरापर आकर सो गये।

प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर श्रीमन्दिरजीमें दर्शनादि करनेके निमित्त चले गये। प्रातःकालका समय था। लोग स्वरके साथ पूजन कर रहे थे। सुनकर मैं तो गद्गद हो गया। देव-देवाङ्गनाओंकी तरह मन्दिरमें पुरुष और नारियोंका समुदाय था। इन सबके स्तवनादि पाठसे मन्दिर गूँज उठा था। ऐसा प्रतीत होता था, मानो मेघध्वनि हो रही हो। पूजा समाप्त होनेके अनन्तर श्रीमान् पण्डितजीका प्रवचन हुआ। पण्डितजी समयसार और पद्मपुराण शास्त्रोंका रहस्य इतनी स्वच्छ प्रणालीसे कह रहे थे कि दो-सौ स्त्री-पुरुष चित्रलिखित मनुष्योंके समान स्थिर हो गये थे। मेरी आत्मामें विलक्षण स्फूर्ति हुई। जब शास्त्र विराजमान हो गये, तब मैंने श्रीमान् वक्ताजीसे कहा—'हे भगवन्! मै अपनी मनोवृत्तिमे जो कुछ आया उसे आपको श्रवण कराना चाहता हूँ।' आज्ञा हुई—'सुनाओ।' मैंने कहा—ऐसा भी कोई उपाय है जिससे मैं जैनधर्मका रहस्य जान सकूँ?' आपने कहा—'तुम कौन हो?' मैंने कहा—भो भगवन्! मैं वैष्णव कुलके असाटीवंशमें उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे वंशके सभी लोग वैष्णव धर्मके उपासक हैं। वंश ही क्या, जितने भी असाटी वैश्य है सब ही वैष्णव धर्मके उपासक हैं, किन्तु मेरी श्रद्धा भाग्योदयसे इस जैनधर्ममें दृढ़ हो गई

है। निरन्तर इसी चिन्तामें रहता हूँ कि जैनधर्मका कुछ ज्ञान हो जाय।' पण्डितजी महोदयने प्रश्न किया—कि 'तुमने जैनधर्ममें कौन-सी विलक्षणता देखी, जिससे कि तुम्हारी अभिरुचि जैनधर्मकी ओर हो गई है?' मैंने कहा—'इस धर्मवाले दयाका पालन करते है, छानकर पानी पीते हैं, रात्रि भोजन नहीं करते, स्वच्छता पूर्वक रहते है, स्त्री-पुरुष प्रतिदिन मन्दिर जाते है, मन्दिरमे मूर्तियाँ बहुत सुन्दर होती है, प्रतिदिन मन्दिरमे शास्त्र-प्रवचन होता है, किसी दूसरी जातिका भोजन नहीं करते है और भोजनकी सामग्री सम्यक् प्रकार देखकर उपयोगमे लाते है इत्यादि शुभाचरणकी विशेषता देखकर मैं जैनधर्ममें दृढ़ श्रद्धावान् हो गया हूँ।' पण्डितजी ने कहा—यह क्रिया तो हर धर्मवाले कर सकते हैं, हर कोई दया पालता है। तुमने धर्मका मर्म नहीं समझा। आजकल मनुष्य न तो कुछ समझें और न जानें, केवल खान-पानके लोभसे जैनी हो जाते हैं। तुमने बड़ी भूल की, जो जैनी हो गये, ऐसा होना सर्वथा अनुचित है। वञ्चना करना महापाप है। जाओ, मैं क्या समझाऊँ। मुझे तो तुम्हारे ऊपर तरस आता है। न तो तुम वैष्णव ही रहे और न जैनी ही। व्यर्थ ही तुम्हारा जन्म जायेगा।'

पण्डितजीकी बात सुनकर मुझे बहुत खेद हुआ। मैंने कहा—'महाराज! आपने मुझे सान्त्वनाके बदले वाक्बाणोंकी वर्षासे आछन्न कर दिया। मेरी आत्मामें तो इतना खेद हुआ, जिसे मै व्यक्त ही नहीं कर सकता। आपने मेरे साथ जो इस तरह व्यवहार किया, सो आप ही बतलाइये कि मैंने क्या आपसे चन्दा माँगा था, या कोई याचना की थी, या आजीविकाका साधन पूछा था? व्यर्थ ही आपने मेरे साथ अन्यथा व्यवहार किया। क्या यहाँ पर जितने श्रोता है वे सब आपकी तरह शास्त्र बाँचनेमे पटु है या सब ही जैनधर्मके मार्मिक पण्डित है? नहीं, मैं तो एक भिन्न कुलका भिन्न धर्मका अनुयायी हूँ। थोड़ेसे कालमें बिना किसी समागमके जैनधर्मका स्वरूप कैसे जान सकता था? और फिर आप जैसे विद्वानोंके सामने कहता ही क्या? मैंने जो कुछ कहा बहुत था, परन्तु न जाने आपको मेरे

ऊपर क्यों इतनी बेरहमी हो गई। मेरे दुर्दैवका ही प्रकोप है। अस्तु, अब पण्डितजी! आपसे शपथपूर्वक कहता हूं—उस दिन ही आपके दर्शन करूंगा, जिस दिन धर्मका मार्मिक स्वरूप आपके समक्ष रख कर आपको सन्तुष्ट कर सकूंगा। आज आप जो वाक्य मेरे प्रति व्यवहारमें लाये हैं तब आपको वापिस लेने पड़ेंगे।'

मैं इस तरह पण्डितजीके ऊपर बहुत ही खिन्न हुआ। साथ ही यह प्रतिज्ञा की कि किसी तरह ज्ञानार्जन करना आवश्यक है। प्रतिज्ञा तो कर ली, परन्तु ज्ञानार्जन करनेका कोई भी साधन न था। पासमें न तो द्रव्य ही था और न किसी विद्वान्‌का समागम ही था। कुछ उपाय नहीं सूझता था, रेवाके तटपर स्थित मृग जैसी दशा थी। रेवा नदीके तटपर एक बड़ा भारी पर्वत है, वहाँ पर असहाय एक मृगका बच्चा खड़ा हुआ है, उसके सामने रेवा नदी है और पर्वत भी। दाएँ-बाएँ दावानलकी ज्वाला धधक रही है, पीछे शिकारी हाथमें धनुष-बाण लिए मारनेको दौड़ रहा है। ऐसी हालतमें वह हरिणका शावक विचार करता है कि कहाँ जावें और क्या करें? इसी बातको एक कवि इन शब्दोंमें व्यक्त करता है—

> 'पुरारे वापारे गिरिरतिदुरारोहशिखरो
> गिरौ सव्येऽसव्ये दवदहनज्वालाव्यतिकरः।
> धनुःपाणिः पश्चान्मृगयुशतको धावति भृशं
> क्व यामः किं कुर्मः हरिणशिशुरेवं विलपति॥'

उस समय हमारी भी ठीक यही अवस्था थी। क्या करें, कुछ भी निर्णय नहीं कर सके। दो या तीन दिन खुरईमें रहकर बनपुरया और वैद्य नन्दकिशोरजीकी इच्छानुसार मैं मड़ावरा अपनी माँके पास चला गया। रास्तेमें तीन दिन लगे। लज्जावश रात्रिको घर पहुँचा।

सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी

मुझे आया हुआ देख माँ बड़ी प्रसन्न हुई। बोली—'बेटा! आ गये?' मैंने कहा—'हाँ माँ! आ गया।' माँने उपदेश दिया—'बेटा! आनन्दसे रहो, क्यों इधर-उधर भटकते हो। अपना मौलिक धर्म पालन करो और कुछ व्यापार करो, तुम्हारे काका समर्थ हैं। वे तुम्हें व्यापारकी पद्धति सिखा देंगे।' मैं माँकी शिक्षा सुनता रहा, परन्तु जैसे चिकने घड़ेमें पानीका प्रवेश नहीं होता वैसे ही मेरे ऊपर उस शिक्षाका कोई भी असर नहीं हुआ। मैं तीन दिन वहाँ रहा। पश्चात् माँकी आज्ञासे बमराना चला गया।

यहाँ श्री सेठ व्रजलाल, चन्द्रभान व श्री लक्ष्मीचन्द्रजी साहब रहते थे। तीनों भाई धर्मात्मा थे। निरन्तर पूजा करना, स्वाध्याय करना व आये हुए जैनोंको सहभोजन कराना आपका प्रतिदिनका काम था। तब आपके चौकामें प्रतिदिन ५० से कम जैनी भोजन नहीं करते थे। कोई विद्वान् व त्यागी आपके यहाँ सदा रहता ही था। मन्दिर इतना सुन्दर था, मानो स्वर्गका चैत्यालय ही हो। जिस समय तीनों भाई पूजाके लिये खड़े होते थे, उस समय ऐसा मालूम होता था मानों इन्द्र ही स्वर्गसे आये हों। तीनों भाइयोंमें परस्पर राम-लक्ष्मणकी तरह प्रेम था। मन्दिरमें पूजा आदि महोत्सव होते समय चतुर्थ कालका स्मरण हो आता था। स्वाध्यायमें तीनों भाई बराबर तत्त्वचर्चा कर एक घण्टा समय लगाते थे। साथ ही अन्य श्रोतागण भी उपस्थित रहते थे। इन तीनोंमें लक्ष्मीचन्द्रजी सेठ प्रखरबुद्धि थे। आपको शास्त्र-प्रवचनका एक प्रकारसे व्यसन ही था। आपकी चित्तवृत्ति भी निरन्तर परोपकारमें रत रहती थी।

उन्होंने मुझसे कहा—'आपका शुभागमन कैसा हुआ?' मैंने कहा—'क्या कहूँ? मेरी दशा अत्यन्त करुणामयी है। उसका

दिग्दर्शन करानेसे आपके चित्तमें खिन्नता ही बढ़ेगी। प्राणियोंने जो अर्जन किया है उसका फल कौन भोगे? मेरी कथा सुननेकी इच्छा छोड़ दीजिये। कुछ जैनधर्मका वर्णन कीजिये, जिससे शान्तिका लाभ हो।' आपने एक घण्टा आत्मधर्मका समीचीन रीतिसे विवेचन कर मेरे खिन्न चित्तको सन्तोष लाभ कराया। अनन्तर पूछा—अब तो अपनी आत्म-कहानी सुना दो। मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ था, अतः सारी बातें तो न बता सका। केवल जानेकी इच्छा जाहिर की। यह सुन श्रीसेठ लक्ष्मीचन्द्रजीने बिना माँगे ही दस रुपया मुझे दिये और कहा आनन्दसे जाइये। साथ ही यह आश्वासन भी दिया कि यदि कुछ व्यापार करनेकी इच्छा हो तो सौ या दो-सौकी पूँजी लगा देंगे।

पाठकगण, इतनी छोटी-सी रकमसे क्या व्यापार होगा, ऐसी आशंका न करें, क्योंकि उन दिनों दो-सौमें बारह मन घी और पाँच मन कपड़ा आता था। तथा एक रुपयेका एक मन गेहूँ, सवा मन चना, डेढ़ मन जुवारी और दो मन कोदों बिकते थे। उस समय अन्नादिकी व्यग्रता किसीको न थी। घर-घर दूध और घीका भरपूर संग्रह रहता था।

रेशन्दीगिरि और कुण्डलपुर

मैं दस रुपया लेकर बमरानासे मड़ावरा आ गया। पाँच दिन रहकर माँ तथा स्त्रीकी अनुमतिके बिना ही कुण्डलपुरकी यात्राके लिये प्रस्थान कर दिया। मेरी यात्रा निरुद्देश्य थी। क्या करना, कुछ भी नहीं समझता था। 'हे प्रभो! आप ही संरक्षक हैं' ऐसा विचारता हुआ मड़ावरासे चलकर चौदह मील बरायठा नगरमें आया। यहाँ जैनियोंके साठ घर हैं। सुन्दर उच्चस्थानपर जिनेन्द्र-देवका मन्दिर है। मन्दिरके चारों तरफ कोट है। कोटके बीचमें ही छोटी-सी धर्मशाला है। उसीमें रात्रिको ठहर गया। यहाँ सेठ

कमलापतिजी बहुत ही प्रखरबुद्धिके मनुष्य हैं। आपका शास्त्रज्ञान बहुत अच्छा है। उन्होंने मुझे बहुत आश्वासन दिया और समझाया कि तुम यहाँ ही रहो। मैं सब तरहसे सहायता करूँगा। आजीविकाकी चिन्ता मत करो। अपनी माँ और पत्नीको बुला लो। साथ ही यह भी कहा कि मेरे सहवाससे आपको शीघ्र ही जैनधर्मका बोध हो जायगा। मैंने कहा—'अभी श्री कुण्डलपुरकी यात्राको जा रहा हूँ। यात्रा करके आ जाऊँगा।' सेठजी साहबने कहा—'आपकी इच्छा, परन्तु निरुद्देश्य भ्रमण करना अच्छा नहीं है।'

मैं उनको धन्यवाद देता हुआ श्री सिद्धक्षेत्र नैनागिरिके लिये चल पड़ा। मार्गमें महती अटवी थी, जहाँ पर वनके हिंसक पशुओंका संचार था। मैं एकाकी चला जाता था। कोई सहायी न था। केवल आयुकर्म सहायी था। चलकर दरावन पहुँचा। यहाँ भी एक जैनमन्दिर है। दस घर जैनियोंके हैं। रात्रि भर यहीं रहा। प्रातःकाल श्री नैनागिरिके लिये प्रस्थान कर दिया और दिनके दस बजे पहुँच गया। स्नानादिसे निवृत्त हो श्री जिनमन्दिरोंके दर्शनके लिये उद्यमी हुआ। प्रथम तो सरोवरके दर्शन हुए, जो अत्यन्त रम्य था। चारों ओर सारस आदि पक्षीगण शब्द कर रहे थे। चकवा आदि अनेक प्रकारके पक्षीगणोंके कलरव हो रहे थे। कमलोंके फूलोंसे वह ऐसा सुशोभित था, मानो गुलाबका बाग ही हो। सरोवरका बँधान चँदेल राजाका बँधाया हुआ है। इसी परसे पर्वतपर जानेका मार्ग था। पर्वत बहुत उन्नत न था। दस मिनटमें ही मुख्य द्वारपर पहुँच गया।

यहाँ पर एक अत्यन्त मनोहर देवीका प्रतिबिम्ब देखा, जिसे देखकर प्राचीन सिलावटोंकी करकुशलताका अनुमान सहजमें हो जाता था। ऐसी अनुपम मूर्ति इस समयके शिल्पकार निर्माण करनेमें समर्थ नहीं। पश्चात् मन्दिरोंके बिम्बोंकी भक्तिपूर्वक पूजा

की। यह वही पर्वतराज है जहाँ श्री१००८ देवाधिदेव पार्श्वनाथ प्रभुका समवसरण आया था और वरदत्तादि पाँच ऋषिराजोंने निर्वाण प्राप्त किया था। नैनागिरि इसीका नाम है। यहाँपर चार या पाँच मन्दिरोंको छोड़ शेष सब मन्दिर छोटे हैं। जिन्होंने निर्माण कराये वे अत्यन्त रुचिमान् थे, जो मन्दिर तो मामूली बनवाये, पर प्रतिष्ठा करानेमें पचासों हजार रुपये खर्च कर दिये। यहाँ अगहन सुदी ग्यारससे पूर्णिमा तक मेला भरता है। जिसमें प्रान्त भरके जैनियोंका समारोह होता है। दस हजार तक जैन-समुदाय हो जाता है। यह साधारण मेलाकी बात है। रथके समय तो पचास हजार तककी संख्या एकत्रित हो जाती है। एक नाला भी है जिसमें सदा स्वच्छ जल बहता रहता है। चारों तरफ सघन वन है। एक धर्मशाला है, जिसमें पाँचसौ आदमी ठहर सकते हैं। यह प्रान्त धर्मशाला बनानेमें द्रव्य नहीं लगाता। प्रतिष्ठामें लाखों रुपये व्यय हो जाते हैं। जो कराता है उसके पच्चीस हजारसे कम खर्च नहीं होते। आगन्तुक महाशयोंके आठ रुपया प्रति आदमीके हिसाबसे चार लाख हो जाते हैं। परन्तु इन लोगोंकी दृष्टि धर्मशालाके निर्माण करानेकी ओर नहीं जाती। मेला या प्रतिष्ठाके समय यात्री अपने-अपने घरसे डेरा या झुंगी आदि लाते हैं और उन्हींमें निवासकर पुण्यका संचय करते हैं। यहाँ पर अगहन मासमें इतनी सरदी पड़ती है कि पानी जम जाता है। प्रातःकाल कँपकँपी लगने लगती है। ये सब कष्ट सहकर भी हजारों नर-नारी धर्मसाधन करनेमें कायरता नहीं करते। ऐसा निर्मल स्थान प्रायः भाग्यसे ही मिलता है।

यहाँ मैं तीन दिन रहा। चित्त जानेको नहीं चाहता था। चित्तमें यही आता था कि 'सर्व विकल्पोंको त्यागो और धर्म-साधन करो। परन्तु साधनोंके अभावमे दरिद्रोंके मनोरथोंके समान कुछ न कर सका।' चार दिनके बाद श्रीअतिशयक्षेत्र कुण्डलपुरके लिये

प्रस्थान किया। प्रस्थानके समय आँखोंमें अश्रुधारा आ गई। चलनेमें गतिका वेग न था, पीछे-पीछे देखता जाता था और आगे-आगे चला जाता था। बलात्कार जाना ही पड़ा। सायंकाल होते-होते एक गाँवमें पहुँच गया। थकावटके कारण एक अहीरके घरमें ठहर गया। उसने रात्रिको आग जलाई और कहा 'भोजन बना लो। मेरे यहाँ भूखे पड़े रहना अच्छा नहीं। आप तो भूखे रहो और हम लोग भोजन कर लें, यह अच्छा नहीं लगता' मैंने कहा—'भैया! मैं रात्रिको भोजन नहीं करता।' उसने कहा—'अच्छा, भैंसका दूध ही पी लो, जिससे मुझे तसल्ली हो जाय।' मैंने कहा—'मैं पानीके सिवा और कुछ नहीं लेता।' वह बहुत दुखी हुआ। स्त्रीने तो यहाँ तक कहा—'भला, जिसके दरवाजे पर मेहमान भूखा पड़ा रहे उसको कहाँ तक संतोष होगा।' मैंने कहा—'माँ जी! लाचार हूँ।' तब उस गृहिणीने कहा—'प्रातःकाल भोजन करके जाना, अन्यथा आप दूसरे स्थानपर जाकर सोवें।' मैंने कहा—'अब आपका सुन्दर घर पाकर कहाँ जाऊँ? प्रातःकाल होने पर आपकी आज्ञाका पालन होगा।'

किसी प्रकार उन्हें संतोष कराके सो गया। बाहर दालानमें सोया था, अतः प्रातःकाल मालिकके बिना पूछे ही ५ बजे चल दिया और १० मील चलकर एक ग्राममें ठहर गया। वहीं पर श्रीजिनालयके दर्शनकर पश्चात् भोजन किया और सायंकाल फिर १० मील चलकर एक ग्राममें रात्रिको सो गया, पश्चात् प्रातःकाल वहाँसे चल दिया। इसी प्रकार मार्गको तय करता हुआ तीन दिन बाद कुण्डलपुर पहुँच गया। अवर्णनीय क्षेत्र है। यहाँ पर कई सरोवर तथा आमके बगीचे हैं। एक सरोवर अत्यन्त सुन्दर है। उसके तटपर अनेक जैनमन्दिर गगनचुम्बी शिखरोंसे सुशोभित एवं चारों तरफ आमके वृक्षोंसे वेष्टित भव्य पुरुषोंके मनको विशुद्ध परिणामोंके कारण बन रहे हैं। उनके दर्शन कर चित्त अत्यन्त

प्रसन्न हुआ। प्रतिमाओंके दर्शन करनेसे जो आनन्द होता है उसे प्रायः सब ही आस्तिकजन लोग जानते हैं और नित्य प्रति उसका अनुभव भी करते हैं। अनन्तर पर्वतके ऊपर श्री महावीर स्वामीके पद्मासन प्रतिबिम्बको देखकर तो साक्षात् श्रीवीरदर्शनका ही आनन्द आगया। ऐसी सुभग पद्मासन प्रतिमा मैंने तो आज तक नहीं देखी। तीन दिन इस क्षेत्रपर रहा और तीनों ही दिन श्रीवीर-प्रभुके दर्शन किये। मैंने वीरप्रभुसे जो प्रार्थना की थी, उसे आजके शब्दोंमें निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—'हे प्रभो! यद्यपि आप वीतराग सर्वज्ञ हैं, सब जानते हैं, परन्तु वीतराग होनेसे चाहे आपका भक्त हो चाहे भक्त न हो, उस पर आपको न राग होता है और न द्वेष। जो जीव आपके गुणोंमें अनुरागी हैं उनके स्वयमेव शुभ परिणामोंका संचार हो जाता है और वे परिणाम ही पुण्यबन्धमें कारण हो जाते हैं।' तदुक्तम्—

'इति स्तुतिं देव! विधाय दैन्याद्
वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छाया तरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्
कश्छायया याचितयात्मलाभः।'

यह श्लोक धनञ्जय सेठने श्री आदिनाथ प्रभुके स्तवनके अन्तमें कहा है। इस प्रकार आपका स्तवन कर हे देव! मैं दीनतासे कुछ वरकी याचना नहीं करता; क्योंकि आप उपेक्षक हैं। 'रागद्वेषयो-रप्रणिधानमुपेक्षा' यह उपेक्षा जिसके हो उसको उपेक्षक कहते हैं। श्री भगवान् उपेक्षक हैं, क्योंकि उनके राग-द्वेष नहीं है। जब यह बात है तब विचारो, जिनके राग-द्वेष नहीं उनकी अपने भक्तमें भलाई करनेकी बुद्धि ही नहीं हो सकती। वह देवेंगे ही क्या? फिर यह प्रश्न हो सकता है कि उनकी भक्ति करनेसे क्या लाभ? उसका उत्तर यह है कि जो मनुष्य छायादार वृक्षके नीचे बैठ गया, उसको इसकी आवश्यकता नहीं कि वृक्षसे याचना करे—हमें

छाया दीजिये। वह तो स्वयं ही वृक्षके नीचे बैठनेसे छायाका लाभ ले रहा है। एवं जो रुचिपूर्वक श्री अरिहन्तदेवके गुणोंका स्मरण करता है उसके मन्द कषाय होनेसे स्वयं शुभोपयोग होता है और उसके प्रभावसे स्वयं शान्तिका लाभ होने लगता है। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बन रहा है। परन्तु व्यवहार ऐसा होता है जो वृक्षकी छाया। वास्तवमें छाया तो वृक्षकी नहीं, सूर्यकी किरणोंका वृक्षके द्वारा रोध होनेसे वृक्षतलमें स्वयमेव छाया हो जाती है। एवं श्री भगवान्‌के गुणोंका रुचिपूर्वक स्मरण करनेसे स्वयमेव जीवोंके शुभ परिणामोंकी उत्पत्ति होती है, फिर भी व्यवहारमें ऐसा कथन होता है कि भगवान्‌ने शुभ परिणाम कर दिये। भगवान्‌को पतितपावन कहते हैं अर्थात् जो पापियोंका उद्धार कर उनका नाम पतिपावन है....यह कथन भी निमित्त-कारणकी अपेक्षा है। निमित्तकारणोंमें भी उदासीन निमित्त हैं प्रेरक नहीं, जैसे मछली गमन करे तो जल सहकारी कारण हो जाता है। एवं जो जीव पतित है वह यदि शुभ परिणाम करे तो भगवान् निमित्त हैं। यदि वह शुभ परिणाम न करे तो निमित्त नहीं। वस्तुकी मर्यादा यही है परन्तु उपचारसे कथनशैली नाना प्रकारकी है। 'यथा कुलदीपकोऽयं बालकः। माणवकः सिंहः।' विशेष कहाँ तक लिखें? आत्माकी अचिन्त्य शक्ति है। वह मोहकर्मके निमित्तसे विकासको प्राप्त नहीं होती। मोहकर्मके उदयमें यह जीव नाना प्रकारकी कल्पनाएँ करता है। यद्यपि वे कल्पनाएँ वर्तमान पर्यायकी अपेक्षा तो सत् हैं परन्तु कर्मोदयके बिना उनका अस्तित्व नहीं, अतः असत् हैं। पुद्गल द्रव्यकी भी अचिन्त्य शक्ति है। यही कारण है कि वह आत्माके अनन्त ज्ञानादि गुणोंको प्रकट नहीं होने देता और इसीसे कार्तिकेय स्वामीने स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है कि—

'कापि अपुव्वा दिस्सइ पुग्गलदव्वस्स एरिसो सत्ती।
केवलणाणसहावो विणासिदो जाइ जीवस्स॥"

'अर्थात् पुद्गल द्रव्यमें कोई अपूर्व शक्ति है जिससे कि जीवका स्वभावभूत केवलज्ञान भी तिरोहित हो जाता है।' यह बात असत्य नहीं। जब आत्मा मदिरापान करता है तब उसके ज्ञानादि गुण विकृत होते प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। मदिरा पुद्गल द्रव्य ही तो है। अस्तु,

यद्यपि जो आपके गुणोंका अनुरागी है वह पुण्यबन्ध नहीं चाहता, क्योंकि पुण्यबन्ध संसारका ही तो कारण है, अतः ज्ञानी जीव, संसारका कारण जो भाव है उसे उपादेय नहीं मानता। चारित्रमोहके उदयमें ज्ञानी जीवके रागादिक भाव होते हैं, परन्तु उनमें कर्तृत्वबुद्धि नहीं। तथाहि—

'कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत्।
अज्ञानादेव कर्तायं तदभावादकारकः॥'

'जिस प्रकार कि भोक्तापन आत्माका स्वभाव नहीं है उसी प्रकार कर्तापन भी आत्माका स्वभाव नहीं है। अज्ञानसे ही यह आत्मा कर्ता बनता है। अतः अज्ञानके अभावमें अकर्ता ही है।'

अज्ञानी जीव भक्तिको ही सर्वस्व मान तल्लीन हो जाते हैं, क्योंकि उससे आगे उन्हें कुछ सूझता ही नहीं। परन्तु ज्ञानी जीव जब श्रेणि चढ़नेको समर्थ नहीं होता तब अन्यत्र—जो मोक्ष-मार्गके पात्र नहीं उनमें राग न हो इस भावसे तथा तीव्र राग ज्वरके अपगमकी भावनासे श्री अरिहन्तादि देवकी भक्ति करता है। श्री अरिहन्तके गुणोंमें अनुराग होना यही तो भक्ति है। अरिहन्तके गुण हैं—वीतरागता, सर्वज्ञता तथा मोक्षमार्गका नेतापना। इनमें अनुराग होनेसे कौन-सा विषय पुष्ट हुआ? यदि इन गुणोंमें प्रेम हुआ तो उन्हींकी प्राप्तिके अर्थ तो प्रयास है। सम्यग्दर्शन होनेके बाद चारित्रमोहका चाहे तीव्र उदय हो चाहे मन्द उदय हो, उसकी जो प्रवृत्ति होती है उसमें कर्तृत्व बुद्धि नहीं रहती। अतएव श्री दौलतरामजी ने एक भजनमें लिखा है कि—

'जे भव-हेतु अबुधिके तस करत बन्धकी छटाछटी।'

अभिप्रायके बिना जो क्रिया होती है वह बन्धकी जनक नहीं। यदि अभिप्रायके अभावमें भी क्रिया बन्ध जनक होने लगे तब यथाख्यातचारित्र होकर भी अबन्ध नहीं हो सकता, अतः यह सिद्ध हुआ कि कषायके सद्भावमें ही क्रिया बन्धकी उत्पादक है। इसलिये प्रथम तो हमें अनात्मीय पदार्थोंमें जो आत्मीयताका अभिप्राय है और जिसके सद्भावमें हमारा ज्ञान तथा चारित्र मिथ्या हो रहा है उसे दूर करनेका प्रयास करना चाहिए। उस विपरीत अभिप्रायके अभावमें आत्माकी जो अवस्था होती है वह रोग जानेके बाद रोगीके जो हल्कापन आता है तत्सदृश हो जाती है। अथवा भारापगमके बाद जो दशा भारवाही की होती है वही मिथ्या अभिप्रायके जानेके बाद आत्माकी हो जाती है और उस समय उसके अनुपामक प्रशम, संवेग, अनुकम्पा एवं आस्तिक्य आदि गुणोंका विकास आत्मामें स्वयमेव हो जाता है।

रामटेक

श्री कुण्डलपुरसे यात्रा करनेके पश्चात् श्री रामटेकके वास्ते प्रयाण किया। हिंडोरिया आया। यहाँ तालाब पर प्राचीन कालका एक जिनबिम्ब है। यहाँ पर कोई जैनी नहीं। यहाँसे चलकर दमोह आया, यहाँ पर २०० घर जैनियोंके बड़े-बड़े धनाढ्य हैं। मन्दिरोंकी रचना अति सुदृढ़ और सुन्दर है। मूर्ति समुदाय पुष्कल है। अनेक मन्दिर हैं। मेरा किसीसे परिचय न था और न करनेका प्रयास ही किया, क्योंकि जैनधर्मका कुछ विशेष ज्ञान न था और न त्यागी ही था, जो किसीसे कुछ कहता। अतः दो दिन यहाँ निवास कर जबलपुरकी सड़क द्वारा जबलपुरको प्रयाण कर दिया। मार्गमें अनेक जैन मन्दिरोंके दर्शन किये। चार दिनमें

जबलपुर पहुँच गया। यहाँके जैन मन्दिरोंकी अवर्णनीय शोभा देखकर जो प्रमोद हुआ उसे कहनेमें असमर्थ हूँ। यहाँसे रामटेकके लिये चल दिया। ६ दिनमें सिवनी पहुँचा। यहाँ भी मन्दिरोंके दर्शन किये। दर्शन करनेसे मार्गका श्रम एकदम चला गया। २ दिन बाद श्री रामटेकके लिये चल दिया। कई दिवसोंके बाद रामटेक क्षेत्रपर पहुँच गया।

यहाँके मन्दिरोंकी शोभा अवर्णनीय है। यहाँ पर श्री शान्तिनाथ स्वामीके दर्शन कर बहुत आनन्द हुआ। यह स्थान अति रमणीय है। ग्रामसे क्षेत्र ३ फर्लाङ्ग होगा। निर्जन स्थान है। यहाँसे चारों तरफ बस्ती नहीं। २ मील पर १ पर्वत है जहाँ श्री रामचन्द्र जी महाराजका मन्दिर है। वहाँ पर मैं नहीं गया। जैनमन्दिरोंके पास जो धर्मशाला थी उसमें निवास कर लिया। क्षेत्रपर पुजारी, माली, जमादार, मुनीम आदि कर्मचारी थे। मन्दिरोंकी स्वच्छता पर कर्मचारीगणोंका पूर्ण ध्यान था। ये सब साधन यहाँ पर अच्छे हैं, कोष भी क्षेत्रका अच्छा है, धर्मशाला आदिका प्रबन्ध उत्तम है। परन्तु जिससे यात्रियोंको आत्मलाभ हो उसका साधन कुछ नहीं। उस समय मेरे मनमें जो आया उसे कुछ विस्तारके साथ आज इस प्रकार कह सकते हैं—

ऐसे क्षेत्रोंपर तो आवश्यकता एक विद्वान्‌की थी, जो प्रतिदिन शास्त्रप्रवचन करता और लोगोंको मौलिक जैन सिद्धान्तका अवबोध कराता। जो जनता वहाँ पर निवास करती है उसे यह बोध हो जाता कि जैनधर्म इसे कहते हैं। हमलोग मेलेके अवसर पर हजारों रुपये व्यय कर देते हैं, परन्तु लोगोंको यह पता नहीं चलता कि मेला करनेका उद्देश्य क्या है? समयकी बलवत्ता है जो हमलोग बाह्य कार्योंमें द्रव्यका व्ययकर ही अपनेको कृतार्थ मान लेते हैं। मन्दिरके चाँदीके किवाड़ोंकी जोड़ी, चाँदीकी चौकी, चाँदीका रथ, सुवर्णके चमर, चाँदीकी पालकी आदि बनवाने

में ही व्यय करना पुण्य समझते हैं। जब इन चाँदीके सामानको अन्य लोग देखते हैं तब यही अनुमान करते हैं कि जैनीलोग बड़े धनाढ्य हैं, किन्तु यह नहीं समझते कि जिस धर्मका यह पालन करनेवाले हैं उस धर्मका मर्म क्या है? यदि उसको यह लोग समझ जावें तो अनायास ही जैनधर्मसे प्रेम करने लगें। श्री अमृतचन्द्र सूरिने तो प्रभावनाका यह लक्षण लिखा है कि—

'आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपोजिनपूजाविद्यातिशयैर्जिनधर्मः॥"

वास्तविक प्रभावना तो यह है कि अपनी परिणति, जो अनादि कालसे परको आत्मीय मान कलुषित हो रही है तथा परमें निजत्वका अवबोध कर विपर्यय ज्ञानवाली हो रही है एवं परपदार्थोंमें राग द्वेष कर मिथ्याचारित्रमयी हो रही है, उसे आत्मीय श्रद्धान-ज्ञान-चारित्रके द्वारा ऐसी निर्मल बनानेका प्रयत्न किया जाय, जिससे इतर धर्मावलम्बियोंके हृदयमें स्वयमेव समा जावे कि धर्म तो यह वस्तु है। इसीको निश्चय प्रभावना कहते हैं। अथवा ऐसा दान करो, जिससे साधारण लोगोंका भी उपकार हो। ऐसे विद्यालय खोलो, जिनसे यथाशक्ति सबको ज्ञान-लाभ हो। ऐसे औषधालय खोलो, जिनमें शुद्ध औषधोंका भण्डार हो। ऐसे भोजनालय खोलो, जिनमें शुद्ध भोजनका प्रबन्ध हो। अनाथों को भी भोजन दो। अनुकम्पासे प्राणीमात्रको दानका निषेध नहीं। अभयदानादि देकर प्राणियोंको निर्भय बना दो। ऐसा तप करो, जिसे देखकर कट्टरसे कट्टर विरोधियोंकी तपमें श्रद्धा हो जावे। श्री जिनेन्द्रदेवकी ऐसे ठाटबाटसे पूजा करो, जो नास्तिकोंके चित्तमें भी आस्तिक्य भावोंका संचार करे। इसका नाम व्यवहारमें प्रभावना है। श्री समन्तभद्र स्वामीने भी कहा है कि—

'अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना॥'

अज्ञानरूपी अन्धकारकी व्याप्तिसे जगत् आच्छन्न है, उसे यथाशक्ति दूरकर जिनशासनके माहात्म्यका प्रकाश करना, इसीका नाम सच्ची प्रभावना है। संसारमें अनादि कालसे मोहके वशीभूत होकर प्राणियोंने नाना प्रकारके धर्मोंका प्रचार लोकमें कर रक्खा है। कहाँ तक इसका वर्णन किया जाय? जीववध करके भी लोग उसे धर्म मानने लगे। जिसे अच्छे अच्छे लोग पुष्ट करते हैं और प्रमाण देते हैं कि शास्त्रोंमें लिखा है। उसे यहाँ लिखकर मैं आप लोगोंका समय नहीं लेना चाहता।

संसारमें जो मिथ्या प्रचार फैल रहा है उसमें मूल कारण राग द्वेषकी मलिनतासे जो कुछ लिखा गया वह साहित्य है। वही पुस्तकें कालान्तरमें धर्मशास्त्रके रूपमें मानी जाने लगीं। लोग तो अनादिकालसे मिथ्यात्वके उदयमें शरीरको ही आत्मा मानते हैं। जिनको अपना ही बोध नहीं वे परको क्या जानें? जब अपना-पराया ज्ञान नहीं तब कैसा सम्यग्दृष्टि? यही श्री समयसारमें लिखा है—

'परमाणुमित्तयं पि हु रागादीणं दु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं दु सव्वागमधरो वि॥'

जो सर्वागमको जाननेवाला है, रागादिकोंका अंशमात्र भी यदि उसके विद्यमान है तो वह आत्माको नहीं जानता है, जो आत्माको नहीं जानता है वह जीव और अजीवको नहीं जानता, जो जीव-अजीवको नहीं जानता वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है? कहनेका तात्पर्य यह कि आगमाभ्यास ही जीवादिकोंके जाननेमें मुख्य कारण है और आगमाभासका अभ्यास ही जीवादिकोंको अन्यथा जाननेमें कारण है। जिनको आत्म-कल्याणकी लालसा है वे आत्मकथित आगमका अभ्यास करें। विशेष कहाँ तक लिखें? क्षेत्रोंपर ज्ञानके साधन कुछ नहीं, केवल रुपये इकट्ठे करनेके साधन हैं। कल्पना करो यह धन यदि एकत्रित होता रहे

और व्यय न हो तो अन्तमें नहींके तुल्य हुआ। अस्तु, इस कथासे क्या लाभ ? यहाँ चार दिन रहा।

मुक्तागिरि

चार दिन बाद यहाँसे चल दिया, बीचमें कामठीके जैन मन्दिरोंके दर्शन करता हुआ नागपुर पहुँचा। यहाँ पर अनेक जैन मन्दिर हैं। उनमें कितने ही बुन्देलखण्डसे आए हुए परवारोंके हैं। ये सर्व तेरापन्थी आम्नायवाले हैं। मन्दिरोंके पास एक धर्मशाला है। अनेक जिनालय दक्षिणवालोंके भी हैं जो कि बीसपन्थी आम्नायके हैं।

यहाँ पर रामभाऊ पांडे एक योग्य पुरुष थे। आप बीसपन्थी आम्नायके भट्टारकके चेले थे। परन्तु आपका प्रेम तत्त्वचर्चासे था, अतः चाहे तेरापन्थी आम्नायका विद्वान् हो, चाहे बीसपन्थी आम्नायका, समानभावसे आप उन विद्वानोंका आदर करते थे। यहाँ दो या तीन दिन रहकर मैंने अमरावतीको प्रस्थान कर दिया। बीचमें वर्धा मिला। यहाँ भी जिनमन्दिरोंका समुदाय है, उनके दर्शन किये।

कई दिवसोंके बाद अमरावती पहुँचा। यहाँ पर भी बुन्देलखण्डसे आये हुए परवारोंके अनेक घर हैं जो कि तेरापन्थ आम्नायके माननेवाले हैं। मन्दिरोंके पास एक जैनधर्मशाला है। यहाँ पर श्री सिंघई पन्नालालजी रहते थे। उनके यहाँ नियम था कि जो यात्रीगण बाहरसे आते थे, उन सबको भोजन कराये बिना नहीं जाने देते थे। यहीं पर उनके मामा नन्दलालजी थे, जो बहुत ही निपुण थे। वे मकान,ग्राम आदिकी दलाली करते थे। अत्यन्त उदार थे। हजारों रुपये मासिक अर्जन करते थे। कृपणताका तो उनके पास अंश ही नहीं था। अस्तु, यहाँसे श्री

सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरिके लिए उत्सुकतापूर्वक चल पड़ा। बीचमें एलचपुर मिला। यहाँ जिनमन्दिरोंके दर्शन कर दूसरे दिन मुक्तागिरि पहुँच गया। क्षेत्रकी शोभा अवर्णनीय है। सर्वतः वनोंसे वेष्टित पर्वत है। पर्वतके ऊपर अनेक जिनालय हैं। नीचे भी कई मन्दिर और धर्मशालाएँ हैं। तपोभूमि है। परन्तु अब तो न वहाँ कोई त्यागी है न साधु। जो अन्य क्षेत्रोंकी व्यवस्था है वही व्यवस्था यहाँ की है। सानन्द वन्दना की।

कर्म-चक्र

पासमें पाँच रुपये मात्र रह गये। कपड़े विवर्ण हो गये। शरीरमें खाज हो गई। एक दिन बाद ज्वर आने लगा। सहायी कोई नहीं। केवल दैव ही सहायी था। क्या करूँ? कुछ समझमें नहीं आता था—कर्तव्यविमूढ हो गया। कहाँ जाऊँ? यह भी निश्चय नहीं कर सका। किससे अपनी व्यथा कहूँ? यह भी समझमें नहीं आया। कहता भी तो सुननेवाला कौन था? खिन्न होकर पड़ गया। रात्रिको स्वप्न आया—'दुःख करनेसे क्या लाभ?' कोई कहता है—'श्री गिरिनारको चले जाओ।' 'कैसे जावें? साधन तो कुछ है नहीं···' मैंने कहा। वही उत्तर मिला—'नारकी जीवोंकी अपेक्षा तो अच्छे हो।'

प्रातःकाल हुआ। श्री सिद्धक्षेत्रकी वन्दना कर बैतूल नगरके लिये चल दिया। तीन कोश चलकर एक हाट मिली। वहाँ एक स्थानपर पत्तेका जुआ हो रहा था। १) के ५) मिलते थे। हमने विचार किया—'चलो ५) लगा दो २५) मिल जावेंगे, फिर आनन्दसे रेलमें बैठकर श्री गिरिनारकी यात्रा सहजमें हो जावेगी। इत्यादि।' १) के ५) मिलेंगे इस लोभसे ३) लगा दिये। पत्ता हमारा नहीं आया। ३) चले गये। अब बचे दो रुपया सो

विचार किया कि अब गलती न करो, अन्यथा आपत्तिमें फँस जाओगे। मनको संतोष कर वहाँसे चल दिया। किसी तरह कष्टोंको सहते हुए बैतूल पहुँचे।

उन दिनों अन्न सस्ता था। दो पैसेमें ऽ॥ जवारीका आटा मिल जाता था। उसकी रोटी खाते हुए मार्ग तय करते थे। जब बैतूल पहुँचे, तब ग्रामके बाहर सड़क पर कुली लोग काम कर रहे थे। हमने विचार किया कि यदि हम भी इस तरहका काम करें तो हमें भी कुछ मिल जाया करेगा। मेटसे कहा—'भाई! हमको भी लगालो।' दयालु था, उसने हमको एक गेंती दे दी और कहा कि 'मिट्टी खोदकर इन औरतोंकी टोकनीमें भरते जाओ। तीन आने शामको मिल जावेंगे।' मैंने मिट्टी खोदना आरम्भ किया और एक टोकनी किसी तरहसे भर कर उठा दी, दूसरी टोकनी नहीं भर सका। अन्तमें गेंतीको वहीं पटक कर रोता हुआ आगे चल दिया। मेटने दया कर बुलाया—'रोते क्यों हो? मिट्टीको ढोओ. दो आना मिल जावेंगे।' गरज वह भी न बन पड़ा, तब मेटने कहा—'आपकी इच्छा सो करो।' मैंने कहा—'जनाब, बन्दगी, जाता हूँ।' उसने कहा—'जाइये, यहाँ तो हट्टे-कट्टे पुरुषोंका काम है।'

उस समय अपने भाग्यके गुणगान करता हुआ आगे बढ़ा। कुछ दिन बाद ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ पर जिनालय था। जिनालयमें श्री जिनेन्द्रदेवके दर्शन किये। पश्चात् यहाँसे गजपन्थाके लिये प्रस्थान कर दिया और श्री गजपन्था पहुँच भी गया। मार्गमें कैसे कैसे कष्ट उठाये उनका इसीसे अनुमान कर लो कि जो ज्वर एक दिन बाद आता था वह अब दो दिन बाद आने लगा। इसको हमारे देशमें तिजारी कहते हैं। उसमें इतनी ठंड लगती है कि चार सोड़रोंसे भी नहीं जाती। पर पासमें एक भी नहीं थी। साथमें पकनूँ खाज हो गई, शरीर कृश हो गया।

इतना होने पर भी प्रतिदिन २० मील चलना और खानेको दो पैसेका आटा। वह भी जवारीका और कभी बाजरेका और वह भी बिना दाल शाकका। केवल नमककी कंकरी शाक थी। घी क्या कहलाता है? कौन जाने, उसके दो माससे दर्शन भी न हुए थे। दो माससे दालका भी दर्शन न था। किसी दिन रूखी रोटी बनाकर रक्खी और खानेकी चेष्टा की कि तिजारी महारा-णीने दर्शन देकर कहा—'सो जाओ, अनधिकार चेष्टा न करो, अभी तुम्हारे पापकर्मका उदय है, समतासे सहन करो।'

पापके उदयकी पराकाष्ठाका उदय यदि देखा तो मैंने देखा। एक दिनकी बात है—सघन जंगलमें, जहाँ पर मनुष्योंका संचार न था, एक छायादार वृक्षके नीचे बैठ गया। वहीं बाजरेके चूनकी लिट्टी लगाई, खाकर सो गया। निद्रा भंग हुई, चलनेको उद्यमी हुआ, इतनेमें भयंकर ज्वर आ गया। बेहोश पड़ गया। रात्रिके नौ बजे होश आया। भयानक वनमें था। सुध-बुध भूल गया। रात्रि भर भयभीत अवस्थामें रहा। किसी तरह प्रातःकाल हुआ। श्री भगवान्का स्मरण कर मार्गमें अनेक कष्टोंकी अनुभूति करता हुआ, श्री गजपन्थाजीमें पहुँच गया और आनन्दसे धर्मशालामें ठहर गया।

गजपन्थासे बम्बई

वहीं पर एक आरवीके सेठ ठहरे थे। प्रातःकाल उनके साथ पर्वतकी वन्दनाको चला। आनन्दसे यात्रा समाप्त हुई। धर्मकी चर्चा भी अच्छी तरहसे हुई। आपने कहा—'कहाँ जाओगे?' मैंने कहा—'श्री गिरिनारजीकी यात्राको जाऊँगा।' 'कैसे जाओगे?' 'पैदल जाऊँगा।' उन्होंने मेरे शरीरकी अवस्था देकर बहुत ही दयाभावसे कहा—'तुम्हारा शरीर इस योग्य नहीं' मैंने कहा—'शरीर तो नश्वर है एक दिन जावेगा ही कुछ धर्मका कार्य

इससे लिया आवे।' वह हँस पड़े और बोले—'अभी बालक हो, 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' शरीर धर्मसाधनका आद्य कारण है, अतः इसको धर्मसाधनके लिए सुरक्षित रखना चाहिये।' मैंने कहा—'रखनेसे क्या होता है? भावना हो तब तो यह बाह्य कारण हो सकता है। इसके बिना यह किस कामका?' परन्तु वह तो अनुभवी थे, हँस गये, बोले—'अच्छा इस विषयमें फिर बातचीत होगी, अब तो चलें, भोजन करें, आज आपको मेरे ही डेरेमें भोजन करना होगा।' मैंने बाह्यसे तो जैसा लोगोंका व्यवहार होता है वैसा ही उनके साथ किया, पर अन्तरङ्गसे भोजन करना इष्ट था। स्थानपर आकर उनके यहाँ आनन्दसे भोजन किया। तीन माससे मार्गके खेदसे खिन्न था तथा जबसे माँ और स्त्रीको छोड़ा, मड़ावरासे लेकर मार्गमें आज वैसा भोजन किया। दरिद्रको निधि मिलनेमें जितना हर्ष होता है उससे भी अधिक मुझे भोजन करनेमें हुआ।

भोजनके अनन्तर वह मन्दिरके भण्डारमें द्रव्य देनेके लिए गये। पाँच रुपये मुनीमको देकर उन्होंने जब रसीद ली तब मैं भी वहीं बैठा था। मेरे पास केवल एक आना था और वह इस लिये बच गया था कि आजके दिन आरवी सेठके यहाँ भोजन किया था। मैंने विचार किया था कि यदि आज अपना निजका भोजन करता तो यह एक आना खर्च हो जाता और ऐसा मधुर भोजन भी नहीं मिलता, अतः इसे भाण्डारमें दे देना अच्छा है। निदान, मैंने वह एक आना मुनीमको दे दिया। मुनीमने लेनेमें संकोच किया। सेठजी भी हँस पड़े और मैं भी संकोचवश लज्जित हो गया, परन्तु मैंने अन्तरङ्गसे दिया था, अतः उस एक आनाके दानने मेरा जीवन पलट दिया।

सेठजी कपड़ा खरीदने बम्बई आ रहे थे। आरवीमें उनकी दुकान थी। उन्होंने मुझसे कहा—'बम्बई चलो, वहाँसे गिरना-

रजी चले जाना।' मैंने कहा-'मैं तो पैदल यात्रा करूँगा।' यद्यपि साधन कुछ भी न था—साधनके नाम पर एक पैसा भी पास न था, फिर भी अपनी दरिद्र अवस्था वचनों द्वारा सेठके सामने व्यक्त न होने दी—मनमें याचनाका भाव नहीं आया।

सेठजीको मेरे ऊपर अन्तरङ्गसे प्रेम हो गया। प्रेमके साथ ही मेरे प्रति दयाकी भावना भी हो गई। बोले 'तुम आग्रह मत करो, हमारे साथ बम्बई चलो, हम आपके हितैषी हैं।' उनके आग्रह करने पर मैंने भी उन्हींके साथ बम्बईके लिये प्रस्थान कर दिया। नासिक होता हुआ रात्रिके नौ बजे बम्बईकी स्टेशनपर पहुँचा। रोशनी आदिकी प्रचुरता देख कर आश्चर्यमें पड़ गया। यह चिन्ता हुई कि पासमें तो पैसा नहीं, क्या करूँगा? नाना विकल्पोंके जालमें पड़ गया. कुछ भी निश्चित न कर सका। सेठजीके साथ घोड़ागाड़ीमें बैठकर जहाँ सेठ साहब ठहरे उसी मकानमें ठहर गया। मकान क्या था, स्वर्गका एक खण्ड था। देखकर आनन्दके बदले खेद सागरमें डूब गया। क्या करूँ? कुछ भी निश्चय न कर सका। रात्रि भर नींद नहीं आई। प्रातः शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर बैठा था कि सेठजीने कहा—'चलो मन्दिर चलें और आपका जो भी सामान हो वह भी लेते चलें। वहीं मन्दिरके नीचे धर्मशालामें ठहर जाना।' मैंने कहा—'अच्छा।'

सामान लेकर मन्दिर गया, नीचे धर्मशालामें सामान रखकर ऊपर दर्शन करने गया। लज्जाके साथ दर्शन किये, क्योंकि शरीर क्षीण था। वस्त्र मलिन थे। चेहरा बीमारीके कारण विकृत था। शीघ्र दर्शन कर एक पुस्तक उठा ली और धर्मशालामें स्वाध्याय करने लगा। सेठजी आठ आने देकर चले गये।

मैं किंकर्तव्यविमूढ़की तरह स्वाध्याय करने लगा। इतनेमें ही एक बाबा गुरुदयालसिंह, जो खुरजाके रहनेवाले थे, मेरे पास आये

और पूछने लगे—'कहाँसे आये हो और बम्बई आकर क्या करोगे ?' मुझसे कुछ नहीं कहा गया, प्रत्युत गद्गद हो गया। श्रीयुत बाबा गुरुदयालसिंहजीने कहा—'हम आध घंटा बाद आवेंगे तुम यहीं मिलना।' मैं शान्तिपूर्वक स्वाध्याय करने लगा।

उनकी अमृतमयी वाणीसे इतनी तृप्ति हुई कि सब दुःख भूल गया। आध घंटाके बाद बाबाजी आ गये और दो धोती, दो जोड़े दुपट्टे, रसोईके सब बर्तन, आठ दिनका भोजनका सामान, सिगड़ी कोयला तथा दस रुपया नकद देकर बोले—'आनन्दसे भोजन बनाओ, कोई चिन्ता न करना, हम तुम्हारी सब तरहसे रक्षा करेंगे। अशुभ कर्मके विपाकमें मनुष्योंको अनेक विपत्तियों-का सामना करना पड़ता है और जब शुभ कर्मका विपाक आता है तब अनायास जीवोंको सुख-सामग्रीका लाभ हो जाता है। कोई न कर्ता है न हर्ता है, देखो, हम खुरजाके निवासी हैं। आजीविकाके निमित्त बम्बई रहते हैं। दलाली करते हैं, तुम्हें मन्दिरमें देख स्वयमेव हमारे यह परिणाम हो गये कि इस जीवकी रक्षा करनी चाहिये। आप न तो हमारे सम्बन्धी हैं। और न हम तुमको जानते ही हैं। तुम्हारे आचारादिसे भी अभिज्ञ नहीं हैं फिर भी हमारे परिणामोंमें तुम्हारी रक्षाके भाव हो गये। इससे अब तुम्हें सब तरहकी चिन्ता छोड़ देनी चाहिए तथा ऊपर भी जिनेन्द्रदेवके प्रतिदिन दर्शनादि कर स्वाध्यायमें उपयोग लगाना चाहिये। तुम्हारी जो आवश्यकता होगी हम उसकी पूर्ति करेंगे।' इत्यादि वाक्यों द्वारा मुझे सन्तोष कराके चले गये।

विद्याध्ययनका सुयोग

मैंने आनन्दसे भोजन किया। कई दिनसे चिन्ताके कारण निद्रा नहीं आई थी, अतः भोजन करनेके अनन्तर सो गया।

तीन घण्टे बाद निद्रा भंग हुई, मुख मार्जन कर बैठा ही था कि इतनेमें बाबा गुरुदयालजी आ गये और १०० कापियाँ देकर यह कह गये कि इन्हें बाजारमें जाकर फेरीमें बेच आना। छह आनासे कममें न देना। यह पूर्ण हो जाने पर मैं और ला दूँगा। उन कापियोंमें रेशम आदि कपड़ोंके नमूने विलायत से आते थे।

मैं शामको बाजारमें गया और एक ही दिनमें बीस काफी बेच आया। कहनेका यह तात्पर्य है कि छः दिनमें वे सब कापियाँ बिक गईं और उनकी बिक्रीके मेरे पास ३१।=) हो गये। अब मैं एकदम निश्चिन्त हो गया।

यहाँ पर मन्दिरमें एक जैन पाठशाला थी। जिसमें श्री जीवाराम शास्त्री गुजराती अध्यापक थे। वे संस्कृतके प्रौढ़ विद्वान् थे। ३०) मासिक पर २ घंटा पढ़ाने आते थे। साथमें श्री गुरूजी पन्नालालजी वाकलीवाल सुजानगढ़वाले ऑनरेरी धर्मशिक्षा देते थे। मैंने उनसे कहा—'गुरुजी! मुझे भी ज्ञानदान दीजिये।' गुरुजीने मेरा परिचय पूछा, मैंने आनुपूर्वी अपना परिचय उनको सुना दिया। वह बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि तुम संस्कृत पढ़ो।

उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर कातन्त्र व्याकरण श्रीयुत शास्त्री जीवारामजीसे पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। और रत्नकरण्डश्राव-काचार जी पण्डित पन्नालालजी से पढ़ने लगा। मैं पण्डितजीसे गुरुजी कहता था।

बाबा गुरुदयालजीसे मैंने कहा-'बाबाजी! मेरे पास ३१।=) कापियोंके आ गये। १०) आप दे गये थे। अब मैं भाद्रमास तकके लिये निश्चिन्त हो गया। आपकी आज्ञा हो तो मैं संस्कृत अध्ययन करने लगूँ।' उन्होंने हर्षपूर्वक कहा-'बहुत अच्छा विचार है, कोई चिन्ता मत करो, सब प्रबन्ध कर दूँगा, जिस किसी पुस्तककी आवश्यकता हो, हमसे कहना।'

मैं आनन्दसे अध्ययन करने लगा और भाद्रमासमें रत्नकरण्ड-श्रावकाचार तथा कातन्त्र व्याकरणकी पञ्चसन्धिमें परीक्षा दी। उसी वर्ष बम्बई परीक्षालय खुला था। रिजल्ट निकला। मैं दोनों विषयमें उत्तीर्ण हुआ साथमें पच्चीस रुपये इनाम भी मिला। समाज प्रसन्न हुई।

श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित गोपालदासजी वरैया उस समय वहीं पर रहते थे। आप बहुत ही सरल तथा जैनधर्मके मार्मिक पण्डित थे, साथमें अत्यन्त दयालु भी थे। वह मुझसे बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि–'तुम आनन्दसे विद्याध्ययन करो, कोई चिन्ता मत करो।' वह एक साहबके आफिसमें काम करते थे। साहब इनसे अत्यन्त प्रसन्न था। पण्डितजीने मुझसे कहा—'तुम शामको मुझे विद्यालय आफिसमें ले आया करो, तुम्हारा जो मासिक खर्च होगा, मैं दूँगा। यह न समझना कि मैं तुम्हें नौकर समझूँगा। मैं उनके समक्ष कुछ नहीं कह सका।'

परीक्षाफल देख कर देहलीके एक झवेरी लक्ष्मीचन्द्रजीने कहा कि 'दस रुपया मासिक हम बराबर देंगे, तुम सानन्दसे अध्ययन करो।' मैं अध्ययन करने लगा किन्तु दुर्भाग्यका उदय इतना प्रबल था कि बम्बईका पानी मुझे अनुकूल न पड़ा। शरीर रोगी हो गया। गुरुजी और स्वर्गीय पं० गोपालदासजीने बहुत ही समवेदना प्रकट की। तथा यह आदेश दिया कि तुम पूना जाओ, तुम्हारा सब प्रबन्ध हो जावेगा। एक पत्र भी लिख दिया।

मैं उनका पत्र लेकर पूना चला गया। धर्मशालामें ठहरा। एक जैनीके यहाँ भोजन करने लगा। वहाँकी जलवायु सेवन करनेसे मुझे आराम हो गया। पश्चात् एक मास बाद मैं बम्बई आ गया। यहाँ कुछ दिन ठहरा कि फिरसे ज्वर आने लगा।

श्री गुरुजीने मुझे अजमेरके पास केकड़ी है, वहाँ भेज दिया। केकड़ीमें पं० धन्नालाल, साहब रहते थे। योग्य पुरुष थे। आप

बहुत ही दयालु और सदाचारी थे। आपके सहवाससे मुझे बहुत ही लाभ हुआ। आपका कहना था कि 'जिसे आत्म-कल्याण करना हो वह जगत्के प्रपञ्चोंसे दूर रहे।' आपके द्वारा यहाँ पर एक पाठशाला चलती थी।

मैं श्रीमान् रानीवलोंकी दुकान पर ठहर गया। उनके मुनीम बहुत योग्य थे। उन्होंने मेरा सब प्रबन्ध कर दिया। यहाँ पर औषधालयमें जो वैद्यराज दौलतरामजी थे,वह बहुत ही सुयोग्य थे। मैंने कहा-'महाराज मैं तिजारीसे बहुत दुःखी हूँ। कोई ऐसी औषधि दीजिये जिससे मेरी बीमारी चली जावे।' वैद्यराज ने मूँगके बराबर गोली दी और कहा-'आज इसे खालो तथा ऽ४ दूधकी ऽ- चावल डालकर खीर बनाओ और जितनी खाई जावे खाओ। कोई विकल्प न करना।' मैंने दिन भर खीर खाई। पेट खूब भर गया : रात्रिको आठ बजे वमन हो गया। उसी दिनसे रोग चला गया। पन्द्रह दिन केकड़ीमें रहकर जयपुर चला गया।

चिरकांक्षित जयपुर

जयपुरमें ठोलियाकी धर्मशालामें ठहर गया। यहाँ पर जमुनाप्रसादजी कालासे मेरी मैत्री हो गई। उन्होंने श्रीवीरेश्वर शास्त्रीके पास, जो कि राज्यके मुख्य विद्वान् थे, मेरा पढ़नेका प्रबन्ध कर दिया। मैं आनन्दसे जयपुरमें रहने लगा। यहाँ पर सब प्रकारकी आपत्तियोंसे मुक्त हो गया।

एक दिन श्री जैनमन्दिरके दर्शन करनेके लिये गया। मन्दिरके पास श्रीनेकरजीकी दूकान थी। उनका कलाकन्द भारतमें प्रसिद्ध था। मैंने एक पाव कलाकन्द लेकर खाया। अत्यन्त स्वाद आया। फिर दूसरे दिन भी एक पाव खाया। कहनेका तात्पर्य यह है कि मैं बारह मास जयपुरमें रहा परन्तु एक दिन भी उसका

त्याग न कर सका। अतः मनुष्योंको उचित है कि ऐसी प्रकृति न बनावें जो कष्ट उठाने पर भी उसे त्याग न सकें। जयपुर छोड़ने के बाद ही वह आदत छूट सकी।

एक बात यहाँ और लिखनेकी है कि अभ्याससे सब कार्य हो सकते हैं। यहाँ पर पानीके गिलासको मुखसे नहीं लगाते। ऊपर-से ही धार डाल कर पानी पीनेका रिवाज है। मुझे उस तरह पीनेका अभ्यास न था, अतः लोग बहुत लज्जित करते थे। कहते थे कि 'तुम जूँठा गिलास कर देते हो।' मैं कहता था कि 'आपका कहना ठीक है पर मैं बहुत कोशिश करता हूँ तो भी इस कार्यमें उत्तीर्ण नहीं हो पाता।' कहनेका तात्पर्य यह है कि मैंने बारह वर्ष जल पीनेका अभ्यास किया। अन्तमें उस कार्यमें उत्तीर्ण हो गया। अतः मनुष्यको उचित है कि वह जिस कार्यकी सिद्धि करना चाहे उसे आमरणान्त न त्यागे।

यहाँपर मैंने १२ मास रहकर श्रीवीरेश्वरजी शास्त्रीसे कातन्त्र व्याकरणका अभ्यास किया और श्रीचन्द्रप्रभचरित्र भी पाँच सर्ग पढ़ा। श्रीतत्त्वार्थसूत्रजीका अभ्यास किया और एक अध्याय श्रीसर्वार्थसिद्धिका भी अध्ययन किया। इतना पढ़ बम्बईकी परीक्षामें बैठ गया। जब कातन्त्र व्याकरणका प्रश्नपत्र लिख रहा था, तब एक पत्र मेरे ग्रामसे आया। उसमें लिखा था कि तुम्हारी स्त्रीका देहावसान हो गया। मुझे अपार आनन्द हुआ। मैंने मन ही मन कहा—'हे प्रभो! आज मैं बन्धनसे मुक्त हुआ। यद्यपि अनेक बन्धनोंका पात्र था, परन्तु वह बन्धन ऐसा था जिससे मनुष्यकी सर्व सुध-बुध भूल जाती है।' पत्रको पढ़ते देखकर श्रीजमुनालालजी मन्त्रीने कहा—'प्रश्नपत्र छोड़कर पत्र क्यों पढ़ने लगे?' मैंने उत्तर दिया कि 'पत्र पर लिखा था—'जरूरी पत्र है।' उन्होंने पत्रको मांगा मैंने दे दिया। पढ़कर उन्होंने समवेदना प्रकट की और कहा कि 'चिन्ता' मत करना, प्रश्नपत्र सावधानीसे लिखना, हम तुम्हारी फिरसे

शादी कर देवेंगे।' मैंने कहा—'अभी तो प्रश्नपत्र लिख रहा हूँ, बादमें सर्व व्यवस्था आपको श्रवण कराऊँगा।' अन्तमें सब व्यवस्था उन्हें सुना दी और उसी दिन श्रीबाईजीको एक पत्र सिमरा दिया एवं सब व्यवस्था लिख दी। यह भी लिख दिया कि 'अब मैं निःशल्य होकर अध्ययन करूँगा। इतने दिनसे पत्र नहीं दिया सो क्षमा करना।'

यह जयपुर है

जयपुर एक महान् नगर है। मैंने ३ दिन पर्यन्त श्री जैन मन्दिरोंके दर्शन किये तथा ३ दिन पर्यन्त शहरके बाह्य उद्यानोंमें जो जिन मन्दिर थे उनके दर्शन किये, बहुत शान्त भाव रहे। यहाँ पर बड़े बड़े दिग्गज विद्वान् उन दिनों थे—श्रीमान् पं० मोतीलाल जी तथा श्रीमान् पण्डित गुलजीकाठ जो ५० वर्षके होंगे। श्रीमान् पण्डित चिम्मनलालजी भी उस समय थे जो कि वक्ता थे और सभामें संस्कृत ग्रन्थोंका ही प्रवचन करते थे। आपकी कथनशैली इतनी आकर्षक थी कि जो श्रोता आपका एक बार शास्त्र श्रवण कर लेता था उसे स्वाध्यायकी रुचि हो जाती थी। आपके प्रवचन को जो बराबर श्रवण करता था वह २ या ३ वर्षमें जैनधर्मका धार्मिक तत्त्व समझनेका पात्र हो जाता था। आपके शास्त्रमें प्रायः मन्दिर भर जाता था। कहाँ तक आपके गुणोंकी प्रशंसा करें? आपसे वक्ता जैनियोंमें आप ही थे। आप वक्ता ही न थे सन्तोषी भी थे। आपके पक्के गोटेकी दुकान होती थी। आप भोजनोपरान्त ही दुकानपर जाते थे।

जयपुरमें इन दिनों विद्वानोंका ही समागम न था, किन्तु बड़े बड़े गृहस्थोंका भी समागम था जो अष्टमी चतुर्दशीको

व्यापार छोड़कर मन्दिरमें धर्मध्यानद्वारा समयका सदुपयोग करते थे। सैकड़ों घर शुद्ध भोजन करनेवाले श्रावकोंके थे। पठन पाठनका जितना सुअवसर यहाँ था उतना अन्यत्र न था। एक जैन पाठशाला मनियारोंके रास्तेमें थी। श्रीमान् पं० नानूलालजी शास्त्री, श्रीमान् पं० कस्तूरचन्द्रजी शास्त्री, श्रीमान् पं० जवाहरलालजी शास्त्री तथा श्रीमान् पं० इन्द्रलालजी शास्त्री आदि इसी पाठशाला द्वारा गणनीय विद्वानोंमें हुए। कहाँ तक लिखूँ? बहुतसे छात्र अभ्यास कर यहाँसे पण्डित बन प्रखर विद्वान् हो जैनधर्मका उपकार कर रहे हैं।

यहाँपर उन दिनों जब कि मैं पढ़ता था, श्रीमान् स्वर्गीय अर्जुनदासजी भी एन्ट्रेंसमें पढ़ते थे। आपकी अत्यन्त प्रखर बुद्धि थी। साथ ही आपको जातिके उत्थानकी भी प्रबल भावना थी। आपने एक सभा स्थापित की थी। मैं भी उसका सदस्य था। आपका व्याख्यान इतना प्रभावक होता था कि जनता तत्काल ही आपके अनुकूल हो जाती थी। आपके द्वारा एक पाठशाला भी स्थापित हुई थी। उसमें पठन-पाठन बहुत सुचारुरूपसे होता था उसको आगे चलकर अच्छी प्रख्याति हुई। कुछ दिनोंके बाद उसको राज्यसे भी सहायता मिलने लगी। अच्छे-अच्छे छात्र उसमें आने लगे।

आपका ध्येय देशोद्धारका विशेष था, अतः आपका काँग्रेस संस्थासे अधिक प्रेम हो गया। आपका सिद्धान्त जैनधर्मके अनुकूल ही राजनैतिक क्षेत्रमें कार्य करनेका था। इससे आप विरोधीके सामने कायरताका वर्त्ताव करना अच्छा नहीं समझते थे। आप अहिंसाका यथार्थ स्वरूप समझते थे। बहुधा बहुतसे पुरुष दयाको ही अहिंसा मान बैठते हैं पर आपको अहिंसा और दयाके मार्मिक भेदका अनुगम था।

महान् मेला

उन दिनों जयपुरमें एक महान् मेला हुआ था, जिसमें भारतवर्षके सभी प्रान्तके विद्वान् और धनिक वर्ग तथा सामान्य जनताका बृहत्समारोह हुआ था। गायक भी अच्छे-अच्छे आये थे। मेलाको भरानेवाले श्री स्वर्गीय मूलचन्द्रजी सोनी अजमेरवाले थे। यह बहुत ही धनाढ्य और सद्गृहस्थ थे। आपके द्वारा ही तेरापन्थका विशेष उत्थान हुआ—शिखरजी में तेरापन्थी कोठीका विशेष उत्थान आपके ही सत्प्रयत्नसे हुआ। अजमेरमें आपके मन्दिर और नसियाँजी देखकर आपके वैभवका अनुमान होता है। आप केवल मन्दिरोंके ही उपासक न थे पण्डितोंके भी बड़े प्रेमी थे। श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित बलदेवदासजी आपहीके मुख्य पण्डित थे। जब पण्डितजी अजमेर जाते और आपकी दुकानपर पहुँचते तब आप आदर-पूर्वक उन्हें अपने स्थानपर बैठाते थे। पण्डितजी महाराज जब यह कहते कि आप हमारे मालिक हैं. अतः दूकानपर यह व्यवहार योग्य नहीं, तब सेठजी साहब उत्तर देते कि महाराज! यह तो पुण्योदयकी देन है परन्तु आपके द्वारा वह लक्ष्मी मिल सकती है जिसका कभी नाश नहीं। आपकी सौम्य मुद्रा और सदाचारको देखकर बिना ही उपदेशके जीवोंका कल्याण हो जाता है। हम तो आपके द्वारा उस मार्गपर हैं जो आजतक नहीं पाया।' इस प्रकार सेठजी और पण्डितजीका परस्पर सद्-व्यवहार था। कहाँ तक उनका शिष्टाचार लिखा जावे? पण्डित-जीकी सम्मतिके बिना कोई भी धार्मिक कार्य सेठजी नहीं करते थे। जो जयपुरमें मेला हुआ था वह पण्डितजीकी सम्मतिसे ही हुआ था।

मेला इतना भव्य था कि मैंने अपनी पर्यायमें वैसा अन्यत्र नहीं देखा। उस मेलामें श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित पन्नालालजी न्याय-

दिवाकर, श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित गोपालदासजी बरैया तथा श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित प्यारेलालजी अलीगढ़वाले आदि विद्वानों का तथा सेठोंमें प्रमुख सेठ जो आज विद्यमान हैं तथा श्रीमान् स्वर्गीय उग्रसेनजी रईस, उनके भ्राता श्रीस्वरूपचन्द्रजी रईस, श्रीमान् लाला जम्बूप्रसादजी रईस सहारनपुरवाले, श्री चौधरी झुन्नामल्लजी दिल्ली आदि अनेक महाशय एवं बुन्देलखण्ड प्रान्त के श्रीमन्त स्वर्गीय मोहनलालजी साहब खुरई, जबलपुरके महाशय सिंघई गरीबदासजी साहब तथा श्रीमन्त स्वर्गीय गुपाली साहु आदि प्रमुख व्यक्तियोंका सद्भाव था। श्री शिवलालजी भोजक तथा ताण्डवनृत्य करने वाले श्री सिंघई धर्मदासजी आदि भी प्रस्तुत थे। ये ऐसे गवैया थे कि जिनके गानका श्रवणकर मनुष्य मुग्ध हो जाता था। जब वह भगवान्‌के गुणोंका वर्णन कर अदा दिखाते थे तो दर्शकोंको ऐसा मालूम होता था कि यह भगवान्‌को हृदयमें ही धारण किये हों। कहनेका तात्पर्य यह है कि इस मेले में अनेक भव्य लोगोंने पुण्यबन्ध किया था।

मेलामें श्रीमहाराजाधिराज जयपुर नरेश भी पधारे थे। आपने मेलाकी सुन्दरता देख बहुत ही प्रसन्नता व्यक्त की थी। तथा श्रीजिनबिम्बको देखकर स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा था कि—'शुभ ध्यानकी मुद्रा तो इससे उत्तम संसारमें नहीं हो सकती। जिसे आत्म कल्याण करना हो वह इस प्रकारकी मुद्रा बनानेका प्रयत्न करे। इस मुद्रामें बाह्याडम्बर छू भी नहीं गया है। साथ ही इसकी सौम्यता भी इतनी अधिक है कि इसे देखते ही निश्चय हो जाता है कि जिनकी यह मुद्रा है उनके अन्तरङ्गमें कोई कलुषता नहीं थी। मैं यही भावना भाता हूँ कि मैं भी इसी पदको प्राप्त होऊँ। इस मुद्राके देखनेसे जब इतनी शान्ति होती है तब जिनके हृदयमें कलुषता नहीं उनकी शान्तिका अनुमान होना भी दुर्लभ है।'

इस प्रकार मेलामें जो जैनधर्मकी अपूर्व प्रभावना हुई उसका

श्रेय श्रीमान् स्वर्गीय सेठ मूलचन्द्रजी सोनी अजमेरवालोंके ही भाग्यमें था। द्रव्यका होना तो पूर्वोपार्जित पुण्योदयसे होता है परन्तु उसका सदुपयोग विरले ही पुण्यात्माओंके भाग्यमें होता है। जो वर्तमानमें पुण्यात्मा हैं वही मोक्षमार्गके अधिकारी हैं। सम्पत्ति पाकर मोक्षमार्गका लाभ जिसने लिया उसी नररत्नने मनुष्य जन्मका लाभ लिया। अस्तु, यह मेलाका वर्णन हुआ।

पं० गोपालदासजी वरैयाके सम्पर्कमें

बम्बई परीक्षाफल निकला। श्रीजीके चरणोंके प्रसादसे मैं परीक्षामें उत्तीर्ण हो गया। महती प्रसन्नता हुई। श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित गोपालदासजीका पत्र आया कि मथुरामें दिगम्बर जैन महाविद्यालय खुलनेवाला है, यदि तुम्हें आना हो तो आ सकते हो। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मैं श्रीपण्डितजीकी आज्ञा पाते ही आगरा चला गया और मोतीकटराकी धर्मशालामें ठहर गया। यहीं श्री गुरु पन्नालालजी वाकलीवाल भी आ गये। आप बहुत ही उत्तम लेखक तथा संस्कृतके ज्ञाता थे। आपकी प्रकृति अत्यन्त सरल और परोपकाररत थी। मेरे तो प्राण ही थे—इनके द्वारा जो मेरा उपकार हुआ उसे इस जन्ममें नहीं भूल सकता। आप श्रीमान् स्वर्गीय पं० बलदेवदासजीसे सर्वार्थसिद्धिका अभ्यास करने लगे। मैं भी आपके साथ जाने लगा।

उन दिनों छापेका प्रचार जैनियोंमें न था। मुद्रित पुस्तकका लेना महान् अनर्थका कारण माना जाता था, अतः हाथसे लिखे हुए ग्रन्थोंका पठन-पाठन होता था। हम भी हाथकी लिखी सर्वार्थसिद्धिपर ही अभ्यास करते थे:

पण्डितजी महाराजको मध्याह्नोपरान्त ही अध्ययन करानेका अवकाश मिलता था। गर्मी के दिन थे। पण्डितजीके घर जानेमें प्रायः पत्थरोंसे पटी हुई सड़क मिलती थी। मोतीकटरासे

पण्डितजीका मकान एक मीलसे अधिक दूर था, अतः मैं जूता पहिने ही हस्तलिखित पुस्तक लेकर पण्डितजीके घरपर जाता था। यद्यपि इसमें अविनय थी और हृदयसे ऐसा करना नहीं चाहता था, परन्तु निरुपाय था। दुपहरीमें यदि पत्थरोंपर चलूँ तो पैरोंमें कष्ट हो, न जाऊँ तो अध्ययनसे वञ्चित रहूँ—मैं दुविधामें पड़ गया। लाचार, अन्तरात्माने यही उत्तर दिया कि अभी तुम्हारी छात्रावस्था है, अध्ययनकी मुख्यता रक्खो। अध्ययनके बाद कदापि ऐसी अविनय नहीं करना.........इत्यादि तर्क-वितर्कके बाद मैं पढ़नेके लिए चला जाता था।

यहाँ पर श्रीमान् पं० नन्दरामजी रहते थे जो कि अद्वितीय हकीम थे। हकीमजी जैनधर्मके विद्वान् ही न थे, सदाचारी भी थे। भोजनादिकी भी उनके घरमें पूर्ण शुद्धता थी। आप इतने दयालु थे कि आगरेमें रहकर भी नाली आदिमें मूत्र क्षेपण नहीं करते थे। एक दिन पण्डितजीके पास पढ़नेको जा रहा था, दैवयोगसे आप मिल गये। कहने लगे—'कहाँ जाते हो?' मैंने कहा—'महाराज! पण्डितजीके पास पढ़नेको जा रहा हूँ।' 'बगलमें क्या है?' मैंने कहा—'पाठ्य पुस्तक सर्वार्थसिद्धि है।' आपने मेरा वाक्य श्रवण कर कहा—'पञ्चम काल है, ऐसा ही होगा, तुमसे धर्मोन्नतिकी क्या आशा हो सकती है और पण्डितजीसे क्या कहें?' मैंने कहा—महाराज निरुपाय हूँ।' उन्होंने कहा—'इससे तो निरक्षर रहना अच्छा।' मैंने कहा—'महाराज! अभी गर्मीका प्रकोप है पश्चात् यह अविनय न होगी।' उन्होंने एक न सुनी और कहा—'अज्ञानीको उपदेश देनेसे क्या लाभ?' मैंने कहा—'महाराज! जब कि भगवान् पतितपावन हैं और आप उनके सिद्धान्तोंके अनुगामी हैं तब मुझ जैसे अज्ञानियोंका भी उद्धार कीजिये। हम आपके बालक हैं, अतः आप ही बतलाइये कि ऐसी परिस्थितिमें मैं क्या

करूँ ?' उन्होंने कहा—'बातोंके बनानेमें तो अज्ञानी नहीं, पर आचारके पालनेमें अज्ञान बनते हो!' ऐसी ही एक गलती और भी हो गई। वह यह कि मथुरा विद्यालयमें पढ़ानेके लिये श्रीमान् पं० ठाकुरप्रसादजी शर्मा उन्हीं दिनों यहाँ पर आये थे और मोतीकटराकी धर्मशालामें ठहरे थे। आप व्याकरण और वेदान्तके आचार्य थे, साथमें साहित्य और न्यायके प्रखर विद्वान् थे। आपके पाण्डित्यके समक्ष अच्छे-अच्छे विद्वान् नत मस्तक हो जाते थे। हमारे श्रीमान् स्वर्गीय पं० बलदेवदासजी ने भी आपसे भाष्यान्त व्याकरणका अभ्यास किया था।

आपके भोजनादिकी व्यवस्था श्रीमान बरैयाजीने मेरे जिम्मे कर दी। चतुर्दशीका दिन था। पण्डितजीने कहा 'बाजारसे पूड़ी शाक लाओ।' मैं बाजार गया और हलवाई के यहाँसे पूड़ी तथा शाक ले आ रहा था कि मार्गमें दैवयोगसे वहीं श्रीमान् पं० नन्दरामजी साहब पुनः मिल गये। मैंने प्रणाम किया। पण्डितजीने देखते ही पूछा—'कहाँ गये थे?' मैंने कहा—'पण्डितजीके लिये बाजारसे पूड़ी शाक लेने गया था।' उन्होंने कहा—'किस पण्डितजीके लिये?' मैंने उत्तर दिया—'हरिपुर जिला इलाहाबादके पण्डित श्री ठाकुरप्रसादजी के लिये, जो कि दि० जैन महाविद्यालय मथुरामें पढ़ानेके लिये नियुक्त हुए हैं।' 'अच्छा, बताओ शाक क्या है?' मैंने कहा—'आलू और बेंगनका।' सुनते ही पण्डितजी साहब अत्यन्त कुपित हुए। क्रोधसे झल्लाते हुए बोले—'अरे मूर्ख नादान! आज चतुर्दशीके दिन यह क्या अनर्थ किया?' मैंने धीमे स्वरमें कहा—'महाराज! मैं तो छात्र हूँ? मैं अपने खानेको तो नहीं लाया, कौन-सा अनर्थ इसमें हो गया? मैं तो आपकी दयाका ही पात्र हूँ।'

यद्यपि मैंने उनके साथ बहुत ही विनय और शिष्टाचारका

व्यवहार किया था तो भी अपराधी बनाया गया। उन्होंने कहा कि 'ऐसे उद्दण्ड छात्रोंको विद्यालयमें प्रवेश करना उत्तर कालमें महान् अनर्थ-परम्पराका कारण होगा।' मैंने कुछ कहना चाहा पर वे बीच हीमें रोकते हुए बोले—'अच्छा, अब तुम मत बोलो। हम पं० गोपालदासजीसे तुम्हारे अपराधोंका दण्ड दिलाकर तुम्हें मार्गपर लावेंगे। यदि मार्गपर न आये तो पृथक करा देंगे।'

मैं उनकी मुद्रा देखकर बहुत खिन्न हुआ, परन्तु हृदयने यह साक्षी दी कि 'भय मत करो तुमने कोई अपराध नहीं किया,—तुमने तो नहीं खाया, गुरुजीकी आज्ञासे लाये हो। श्रीमान् पं० गोपालदासजी महान् विवेकी और दयालु जीव है। वह तुम्हें पृथक् न करेंगे। ऐसे २ अपराधोंपर यदि छात्र पृथक् किये जाने लगे तो विद्यालयमें पढ़ेगा ही कौन?' इत्यादि ऊहापोह चित्तमें होता रहा, पर अन्तमें सब शान्त हो गया।

मैं श्रीमान् वरैयाजीसे न्यायदीपिका पढ़ा करता था। एक दिन मैंने कह ही दिया कि 'महाराज! मेरेसे दो अपराध बन गये हैं—एक तो यह है कि मैं दोपहरीके समय जूता पहिने धर्मशास्त्रकी पुस्तक लेकर पण्डितजीके यहाँ पढ़नेके लिये जाता हूँ और दूसरा यह कि चतुर्दशीके दिन श्रीमान् पं० ठाकुरप्रसाद जीके लिये आलू तथा बेंगनका शाक लाया। क्या इन अपराधों के कारण आप मुझे खुलनेवाले विद्यालयमें न रक्खेंगे?' पण्डितजी सुनकर हँस गये और मधुर शब्दोंमें कहने लगे कि 'क्या श्री पं० नन्दरामजीने तुम्हें शाक लाते हुए देख लिया है?' मैंने कहा—'हाँ महाराज! बात तो यही है।' 'तूँ तो नहीं खाया'—उन्होंने पूछा। 'नहीं महाराज! मैंने नहीं खाया और न मैं कभी खाता ही हूँ।' मैंने स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया। पण्डितजीने प्रेम प्रदर्शित करते हुए कहा कि 'सन्तोष करो, चिन्ता

छोड़ो, जो पाठ दिया जावे उसे याद करो, तुम्हारे वह सब अपराध माफ किये जाते हैं। आगामी यदि अष्टमी या चतुर्दशीका दिन हो, तो कहारको साथ ले जाया करो और जो भी काम करो, विवेकके साथ करो। जैनधर्मका लाभ बड़े पुण्योदयसे होता है। एक बात तुमसे और कहता हूँ वह यह कि महापुरुषोंके समक्ष नम्रता पूर्वक ही व्यवहार करना चाहिये। जाओ, पर तुम्हें एक काम दिया जाता है कि प्रतिदिन यहाँ आकर विद्यालयसम्बन्धी चार छह पत्र लेटरबक्समें डाल दिया करना।' मैंने कहा—'आज्ञा शिरोधार्य है।'

महासभाका वैभव

मेरी प्रकृति बहुत ही डरपोक थी। जो कुछ कोई कहता था, चुपचाप सुन लेता था। किन्तु इतना सुयोग अवश्य था कि श्रीमान् पं० गोपालदासजी वरैया मुझसे प्रसन्न थे। आप जैसे स्वाभिमानी एवं प्राचीन पद्धतिके संरक्षक आप ही थे। आपही के प्रभावसे बम्बई परीक्षालयकी स्थापना हुई, आपके ही सदुपदेशसे महाविद्यालयकी स्थापना हुई तथा आपके ही प्रयत्न और पूर्ण हस्तदानके द्वारा ही महासभा स्थापित एवं पल्लवित हुई। आपके सिवाय महासभाकी स्थापनामें श्रीमान् स्वर्गीय मुकुन्दरामजी मुंशी मुरादाबाद, श्रीमान् पं० चुन्नीलालजी और स्वर्गीय प० प्यारेलालजी अलीगढ़वालोंका भी विशेष हाथ था। महासभाके प्रधानमन्त्री स्वर्गीय डिप्टी चम्पतरायजी थे और सभापति थे स्वर्गीय नररत्न राजा लक्ष्मणदासजी साहब मथुरा। उस समय जब कि मथुरामें महासभाकी बैठकें हुआ करती थीं तब उसका बहुत ही प्रभाव नजर आता था। पुराने जैनगजटोंकी फाइलें इसका प्रमाण हैं।

उस समय जैनगजटके सम्पादक श्री सूरजभानुजी वकील थे और श्री करोड़ीमल्लजी महासभाके मुनीम थे। महासभाके

अधिवेशनोंमें प्रायः बड़े २ श्रीमानों और पण्डितोंका समुदाय उपस्थित रहता था। कार्तिक वदिमें मथुराका मेला होता था। राजा साहबकी ओरसे मेलाका प्रबन्ध रहता था। किसी यात्रीको कोई प्रकारका कष्ट नहीं उठाना पड़ता था। राजा साहब स्वयं डेरे-डेरेपर जाकर लोगोंको तसल्ली देते थे और बड़ी नम्रताके साथ कहा करते थे कि 'यदि कुछ कष्ट हुआ हो तो क्षमा करना। मेले-ठेले हैं। हम लोग कहाँ तक प्रबन्ध कर सकते हैं?' आपकी सरलता और सौम्यतासे आपके प्रति जनताके हृदयमें जो अनुराग उत्पन्न होता थ। उसका वर्णन कौन कर सकता है?

मेलामें शास्त्र-प्रवचनका उत्तम प्रबन्ध रहता था। प्रायः बड़े-बड़े पण्डित जनताको शास्त्र-प्रवचनके द्वारा जैनधर्मका मर्म समझाते थे। जिसे श्रवण कर जनताकी जैनधर्ममें गाढ़ श्रद्धा हो जाती थी। नाना प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर अनायास हो जाता था। वक्ताओंमें श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित गोपालदासजी वरैया, श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित प्यारेलालजी अलीगढ़, श्रीमान् पण्डित शान्तिलालजी आगरा और शान्तिमूर्ति, संस्कृतके पूर्णज्ञाता एवं अलौकिक प्रतिभाशाली स्वर्गीय पण्डित बलदेवदासजी प्रमुख थे। इनके सिवाय अन्य अनेक गण्यमान्य पण्डित वर्गके द्वारा भी मेलाकी अपूर्व शोभा होती थी। साथमें भाषाके धुरंधर विद्वानोंका भी समुदाय रहता था। जैसे कि लश्करनिवासी श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित लक्ष्मीचन्द्रजी साहब। इनकी व्याख्यान-शैलीको सुनकर श्रोताओंको चकाचौंध आजाती थी। जिस वस्तुका आप वर्णन करते थे उसे पूर्ण कर ही श्वास लेते थे। जब आप स्वर्गका वर्णन करने लगते थे तब एक-एक विमान, उनके चैत्यालय और वहाँके देवोंकी विभूतिको सुनकर यह अनुमान होता था कि इनकी धारणाशक्तिकी महिमा विलक्षण है। इसी प्रकार श्रीमान् पं० चुन्नीलालजी साहब तथा पं० बलदेव-

दासजी कलकत्तावाले भी जैनधर्मके धुरंधर विद्वान् थे। यही नहीं, कितने ही ऐसे भी महानुभाव मेलामें पधारते थे, जो धनशाली भी थे और विद्वान् भी अपूर्व थे। जैसे कि श्रीमान् प० मेवारामजी राणीवाले तथा श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित जम्बूप्रसादजी। बहुतसे महानुभाव ऐसे भी आते थे, जो आँग्ल विद्याके पूर्ण मर्मज्ञ होनेके साथ ही साथ पण्डित भी थे। जैसे श्रीमान् स्वर्गीय बैरिष्टर चम्पतरायजी साहब तथा श्रीमान् पण्डित अजितप्रसादजी साहब। आप लोगोंका जैनधर्मपर पूर्ण विश्वास ही नहीं था पाण्डित्य भी था। यहाँ मैं लिखते-लिखते एक नाम भूल गया बैरिष्टर जुगमंधरदासजी साहबका। आप अँग्रेजीके पूर्ण मर्मज्ञ थे। आपकी वक्तृत्वशक्ति अँग्रेजोमें इतनी उच्चतम थी कि जब आप बैरिष्टरी पास करनेके लिये विलायत गये तब बड़े-बड़े लार्डवंशके लड़के आपके मुखसे अँग्रेजी सुननेकी अभिलाषा हृदयमें रख आपके पास आते थे। अँग्रेजीकी तरह ही आपका जैनधर्मविषयक पाण्डित्य भी अगाध था। श्रीमान् अर्जुनदासजी सेठी भी एक विशिष्ट विद्वान् थे। आप गोम्मटसारादि ग्रन्थोंके मर्मज्ञ विद्वान् थे। आपके प्रश्नोंका उत्तर बरैयाजी ही देनेमें समर्थ थे। एक बात भाषाके विद्वानोंकी और भूल गया। यह कि उस समय गोम्मटसारके मर्मको जाननेवाले श्री अर्जुनदासजी बाबा इतने भारी विद्वान् थे कि उनके सामने बड़े-बड़े धुरंधर विद्वान् भी झिझकते थे। ऐसे ऐसे अनेक महानुभाव मथुरामें आते थे। आठ दिन तक मथुरा नगरीके चौरासी स्थानपर चतुर्थकालकी स्मृति आ जाती थी।

गुरु गोपालदासजी बरैया

चौरासीमें जो मन्दिर है उसे दुर्ग कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी। मन्दिरमें जो अजितनाथजीकी प्रतिमा है वह कितनी

अनुपम और सुन्दर है इसको देखनेसे ही अनुभव होता है। मन्दिरका चौक इतना बड़ा है कि उसमें पाँच हजार आदमी एक साथ बैठ सकते हैं। मन्दिरके उत्तर भागमें एक अनुपम उद्यान है, दक्षिणमें यमुनाकी नहर, पूर्वमें शस्यसम्पन्न क्षेत्र और पश्चिममें विद्यालयका मकान है। मन्दिरके तीन ओर धर्मशालाओंकी बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ शोभा दे रही हैं। कहाँ तक कहें? भारतवर्षमें यह मेला अपनी शानका एक ही है।

यहीं पर श्री दि० जैन महाविद्यालयकी भी स्थापना श्रीमान् राजा साहबके करकमलों द्वारा हो चुकी थी। उसके मन्त्री श्रीमान् पं० गोपालदासजी बरैया आगरानिवासी थे। आपका ध्येय इतना उन्नतम था कि चूँकि जैनियोंमें प्राचीन विद्या व धार्मिक ज्ञानकी महती त्रुटि हो गई है, अतः उसे पुनरुज्जीवित करना चाहिये। आपका निरन्तर यही ध्येय रहा कि जैनधर्ममें सर्व विषयके शास्त्र हैं अतः पठनक्रममें जैनधर्मके ही शास्त्र रक्खे जावें। आपका यहाँ तक सदाग्रह था कि व्याकरण भी पठनक्रममें जैनाचार्यकृत ही होना चाहिये। यही कारण था कि आपने प्रथमाके कोर्समें व्याकरणमें कातन्त्रको, न्यायमें न्यायदीपिकाको और साहित्यमें चन्द्रप्रभचरितको ही स्थान दिया था।

आपकी तर्कशैली इतनी उत्तम थी कि अन्तरङ्ग कमेटीमें आपका ही पक्ष प्रधान रहता था। आपको शिक्षा खातेसे इतना गाढ़ प्रेम था कि आगरा रहकर भी विद्यालयका कार्य सुचारुरूपसे चलाते थे। यद्यपि आप उस समय अधिकांश बम्बईमें रहते थे, फिर भी जब कभी आगरा आनेका अवसर आता, तब मथुरा, विद्यालयमें अवश्य पदार्पण करते थे। स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि मथुरा, विद्यालयकी स्थापना आपके ही प्रयत्नसे हुई थी।

आप धर्मशास्त्रके अपूर्व विद्वान् थे। केवल धर्मशास्त्रके ही

नहीं, द्रव्यानुयोगके भी अपूर्व विद्वान् थे। पञ्चाध्यायीके पठन-पाठनका प्रचार आप ही के प्रयत्न का फल है। इस ग्रन्थके मूल अन्वेषक श्रीमान् पं० बलदेवदासजी हैं। उन्होंने अजमेरके शास्त्र-भण्डारमें इसे देखा और श्रीमान् पं० गोपालदासको अध्ययन कराया। अनन्तर उसका प्रचार श्री पण्डितजीने अपने शिष्योंमें किया। इसकी जो भाषा-टीकाएँ हैं वे आपके ही शिष्य श्री पं० मक्खनलालजी सिद्धान्तालंकार और पं० देवकीनन्दन जी व्याख्यानवाचस्पतिकी कृतियाँ हैं।

आप विद्वान् ही न थे, लेखक भी थे। आपकी भाषामय गद्य-पद्यकी रचना अनुपम होती थी। आपने श्रीजैनसिद्धान्त-प्रवेशिका और जैनसिद्धान्तदर्पणकी रचनाके द्वारा जैन सिद्धांत में प्रवेशका मार्ग खोल दिया था। आपका 'सुशीला' उपन्यास सर्वथा वेजोड़ है। उसमें आपने धार्मिक सिद्धान्तोंका रहस्य कथा द्वारा इस उत्तम शैलीसे विद्वानोंके सामने रक्खा है जिसे अवगत कर अत्यन्त आह्लाद होता है। आपकी भजनावलीको सुनकर यह भ्रम हो जाता है कि क्या यह स्वर्गीय पं० दौलतराम जीकी रचना है?

आपमें एक गुण महान् था। वह यह कि यदि कोई त्यागी आपसे विद्याभ्यास करना चाहता था तो आप उसका समुचित प्रबन्ध करनेमें कसर नहीं करते थे। आप परीक्षक भी प्रथम श्रेणीके थे। एक बारका जिक्र है—मैंने मथुरासे एक पत्र श्रीमान् पण्डितजीको इस आशयका लिखा कि 'बाईजीका स्वास्थ्य अत्यन्त खराब है, अतः उन्होंने मुझे १५ दिनके लिये सिमरा बुलाया है।' आपने उत्तर दिया कि 'बाईजीका जो पत्र आया है उसे हमारे पास भेज दो।' मैंने क्या किया? एक पत्र बाईजीके हस्ताक्षरका लिखकर मथुरामें डाल दिया। दूसरे दिन वह पत्र चौरासीमें मुझे मिल गया। मैंने उसे ही लिफाफामें बन्दकर श्री पण्डितजीके पास

भेज दिया। उन्होंने बांचकर उत्तर लिखा कि 'तुम शीघ्र ही चले जाओ। परन्तु जब देशसे लौटो तब आगरामें हमसे मिलकर मथुरा जाना।' मैं जतारा गया और ५ दिन बाद आगरा आ गया। जब पन्डितजीसे मिला तब उन्होंने मुस्कराते हुए पूछा— 'बाईजीका स्वास्थ्य अच्छा है?' मैंने कहा—'हाँ महाराज! अच्छा है।' पण्डितजीने कहा—'अच्छा, यह श्लोक याद कर लो और फिर विद्यालय चले जाओ।' श्लोक यह था—

'उपाध्याये नटे धूर्ते कुट्टिन्या च तथैव च।
माया तत्र न कर्तव्या माया तैरेव निर्मिता॥

एक ही बारमें श्लोक याद हो गया। साथ ही भाव भी समझमें आ गया। मैंने गुरुजीसे महती नम्र प्रार्थना की कि 'महाराज मैंने बड़ी गलती की है जो आपको मिथ्या पत्र देकर असभ्यताका व्यवहार किया।' गुरुजीने कहा—जाओ हम तुमसे खुश है, यदि इस प्रकारकी प्रकृतिको अपनाओगे तो आजन्म आनन्दसे रहोगे। हम तुम्हारे व्यवहारसे सन्तुष्ट है और तुम्हारा अपराध क्षमा करते है। तुम्हें जो कष्ट हो, हमसे कहो हम निवारण करेंगे। जितने छात्र है हम उन्हे पुत्रसे भी अधिक समझते है। यदि अब जैनधर्मका विकास होगा तो इन्हीं छात्रोंके द्वारा होगा, इन्हीके द्वारा धर्मशास्त्र तथा सदाचारको परिपाटी चलेगी। मैं तुम्हें दो रुपया मासिक अपनी ओरसे दुग्ध-पानके लिये देता हूँ।' मैं मथुरा चला गया।

आज जो जयधवलादि ग्रन्थोंकी भाषा-टीका हो रही है वह आपके द्वारा व्युत्पन्न-शिक्षित विद्वानोंके द्वारा ही हो रही है। इसके प्रधान कार्यकर्ता या तो आपके अन्यतम शिष्य हैं या आपके शिष्योंके शिष्य हैं। यह आपका ही भगीरथ प्रयत्न था जो आज भारतवर्षके जैनियोंमें करणानुयोगका प्रचार हो रहा है। आप केवल विद्वान् ही नहीं थे। सदाचारी भी अद्वितीय थे। आपका मकान आगरामें था। म्युनिसिपल जमादारके

शौचगृहके बनानेमें बहुत बाधा दी। यदि आप उसे १०) की घूस दे देते तो मुकदमा न चलता परन्तु पण्डितजीके घूस देनेका त्याग था। मुकदमा चला। बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। सैकड़ों रुपयोंका व्यय हुआ, परन्तु श्री पण्डितजीने घूस नहीं दी। अन्त में आप विजयी हुए। आपमें सहनशीलता भी पूर्ण थी। आपकी गृहिणीका स्वभाव कुछ उग्र था परन्तु आपने उसके ऊपर कभी भी रोष नहीं किया। आपके एक सुपुत्र और सुपुत्री थी। आपके ही प्रयत्नके फलस्वरूप मुरैना विद्यालयकी स्थापना हुई थी। यह वह विद्यालय है जिसके द्वारा आज भारतवर्षमें गोम्मटसारादि ग्रन्थोंके मर्मज्ञ विद्वानोंका सद्भाव हो रहा है। आपके सहवास में श्रीमान् पं० ठाकुरदासजी ब्रह्मचारी सर्वदा मुरैना रहते थे।

आप एक बार कलकत्ता गये। वहाँ आमंत्रित महती विद्वन्मण्डलीके समक्ष आपने जैनधर्मके तत्त्वोंका इतना सुन्दर विवेचन किया कि उसे सुनकर धुरन्धर विद्वान् चकित रह गये और उन विद्वानोंने आपको 'न्यायवाचस्पति' की पदवी प्रदान की। अस्तु, आपके विषयमें कहाँ तक लिखूँ। आपने मेरा जो उपकार किया है उसे मैं आजन्म नहीं भूल सकता।

मथुरासे खुरजा

मैं जिस समय मथुरा विद्यालयमें अध्ययन करता था उस समय वहाँपर न्यायाचार्य माणिकचन्द्र भी अध्ययन करते थे। साथ ही श्रीमान् लालारामजी शास्त्री, श्रीमान् रामप्रसादजी शास्त्री तथा वर्णी मोतीलालजी आदिका सहवास था। श्रीमान् पं० नरसिंहदासजी शास्त्री धर्मशास्त्रका अध्ययन कराते थे। आप बहुत ही योग्य विद्वान् थे। आपने चरणानुयोगके अनेक शास्त्रोंका अवलोकन किया था। प्रतिष्ठाचार्य भी आप अद्वितीय थे।

मैं यहाँ दो वर्ष रहा। पश्चात् कारणवश खुरजा चला गया। उस समय जैनसमाजमें श्रीराणीवालोंकी कीर्ति दिगदिगन्त तक फैल रही थी। आपके यहाँ संस्कृत पढ़ानेका पूर्ण प्रबन्ध था। श्रीमान् चण्डीप्रसादजी बहुत बड़े भारी विद्वान् थे—आप व्याकरण, न्याय तथा साहित्यके अपूर्व विद्वान् थे। श्रीमान् स्वर्गीय मेवारामजी साहब राणीवाले संस्कृत-विद्याके अपूर्व प्रेमी थे। आपने व्याकरणमें मध्यमा परीक्षा तक अध्ययन किया था। साहित्यमें भी आपकी अपूर्व गति थी। शास्त्रप्रवचनमें मुख्य थे। व्याख्यानकला तो आपकी बहुत ही प्रसिद्ध थी। आपने कई बार आर्यसमाजके पण्डितोंके साथ शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की थी। आप छात्रोंकी उन्नतिमें सदैव प्रयत्नशील रहते थे। आपके चाचा श्रीअमृतलालजी धर्मशास्त्रके प्रखर विद्वान् थे। श्री पद्मराजजी आपके ही चचेरे भाई थे, जो कि हिन्दू महासभाके सेक्रेटरी थे।

खुरजामें एक ब्राह्मणोंकी भी संस्कृतपाठशाला थी जिसमें पं० जियालालजी अध्ययन कराते थे। उस समय वहाँ २०० छात्र संस्कृतका अध्ययन करते थे। छात्रोंको सब प्रकारकी सुविधा थी।

इसी समय यहाँ एक नवीन जैनमन्दिर बना और उसकी प्रतिष्ठा बड़े समारोहके साथ हुई। प्रायः प्रसिद्ध प्रसिद्ध सभी पण्डित इसमें आये थे। १००००० जैनी भाई होंगे, जिनका सत्कार सेठ मेवारामजीकी ओरसे हुआ था।

यहाँ पर मैं दो वर्ष पढ़ा। बनारसकी प्रथमा परीक्षा तथा न्यायमध्यमाका प्रथम खण्ड यहींसे पास किया। यद्यपि मुझे यहाँ सब प्रकारकी सुविधा थी, परन्तु फिर भी खुरजा छोड़ना पड़ा।

शिखरजीके लिए प्रस्थान

एक दिनकी बात है। मैंने एक ज्योतिषीसे पूछा—'बतलाइये, मैंने न्यायमध्यमाके प्रथम खण्डमें परीक्षा दी है, पास हो जाऊँगा ?' ज्योतिषीने कहा—पास हो जाओगे पर यह निश्चित है कि तुम वैशाख सुदी १३ के ९ बजेके बाद खुरजा नहीं रह सकोगे—चले जाओगे।' मैंने कहा—'आपने कैसे जान लिया ?' 'ज्योतिर्विद्यासे जान लिया'....उन्होंने गर्वके साथ उत्तर दिया। 'मैं आपके निर्णयको मिथ्या कर दूँगा'....मैंने हँसते हुए कहा। 'कर देना' यह कहकर ज्योतिषीजी चले गये।

उस दिनसे मुझे निरन्तर यह चिन्ता रहने लगी कि वैशाख सुदी १३ की कथाको मिथ्या करना है। वैशाख सुदी १२ के दोपहरका समय था, कुछ लू चल रही थी। सब ओर सन्नाटा था। मैं कमराके भीतर सो रहा था। अचानक बहुत ही भयानक स्वप्न आया। निद्रा भंग होते ही मनमें चिन्ता हुई कि यदि असमयमें मरण हो जावेगा तो शिखरजीकी यात्रा रह जावेगी, अतः शिखरजी अवश्य ही जाना चाहिये। कुछ देर बाद विचार आया कि कैसे जाऊँ ? गर्मीके दिन हैं, एकाकी जानेमें अनेक आपत्तियाँ हैं।

मैं विचार-मग्न ही था कि सेठ मेवारामजी आ गये। आपने सरल स्वभावसे पूछा—'चिन्तित क्यों हो ? कौनसी आपत्ति आ गई ? हमारे विद्यमान होते हुए चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है ? हम सब प्रकारकी सहायता करनेको सन्नद्ध हैं।' मैंने कहा—'यह तो आपकी सज्जनता है, आपकी सहायतासे ही तो हमारा संस्कृत-विद्यामें प्रवेश हुआ तथा अन्य सब प्रकारके सुभीते प्राप्त हैं। परन्तु आज दोपहर बाद ऐसा स्वप्न आया कि उसका फल मैंने मृत्यु समझ रक्खा है। यतः पर्यायका कुछ भरोसा नहीं, अतः मनमें यह भावना होती है कि एक बार गिरिराज

शिखरजीकी वन्दना अवश्य कर आऊँ। परन्तु एकाकी होनेसे भयभीत हूँ—कैसे जाऊँ?' आपने कहा—'चिन्ता मत करो, हम लोग शीतकालमें यात्राके निमित्त चलेंगे; पूर्वकी सब यात्रा करेंगे, आप भी आनन्दसे सभी यात्रा करना; हमारे समागममें कष्ट न होगा।' मैंने कहा—'आपका कहना अक्षरशः सत्य है परन्तु उतने दिनके अन्दर यदि मेरी आयु पूर्ण हो जावेगी तो मनकी बात मनमें ही रह जावेगी। किसी नीतिकारने कहा है कि—

'काल करै सो आज कर आज करै सो अब्ब।
पलमें परलय होयगा बहुरि करैगा कब्ब॥'

अथवा यह भी उक्ति है कि—

'करले सो काम भजले सो राम।'

मुझे बहुत ही अधीरता हो रही है, अतः मैं गिरिराजको जाऊँगा ही।' श्रीमान् सेठजी बोले—'हम तो आपके हितकी कहते हैं, गर्मीके दिन हैं, १८ मीलकी यात्रा कैसे करोगे? मुझे आपके ऊपर दया आती है; आशा है आप हमारी कथाको प्रमाणीभूत करेंगे।' मैंने कहा—'आप अनुभवी पुरुष हैं, योग्य सम्मति आपकी है किन्तु मुझे यह विश्वास है कि जहाँसे अनन्तानन्त मुनि निर्वाण लाभ कर चुके हैं, इस एक हुण्डावसर्पिणी कालको छोड़कर अनन्त चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी जो निश्चित निर्वाणभूमि है, तथा वर्तमान तेवीसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वप्रभु जहाँसे निर्वाणधामको प्राप्त हुए हैं और जिनके नामसे आज पर्वतकी प्रसिद्धि हो रही है उसी गिरिराजकी वन्दनाके भाव हमारे हुए हैं तो क्या इतना पुण्य संचय न हुआ होगा कि जिस दिन हमारी यात्रा होगी उसके पहले रात्रिको मेघराज कृपा करेंगे? मेरा तो पूर्ण विश्वास है कि यात्राके ४ घंटा पहले अखंड जलधारा गिरेगी।' श्री सेठजी हँस गये और हँसते हँसते बोले—'अच्छा पानी बरसै तो हमें भी पत्र देना।' मैंने दृढ़ताके साथ कहा—'बरसै क्या? बरसेगा

ही। मुझे दृढ़ विश्वास है कि जिस गिरिराजकी भक्तिपूर्वक बन्दना करनेसे तिर्यग्गति नरकगति मिट जाती है अर्थात् सम्यग्दर्शनका लाभ हो जाता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टिके ही नरक और तिर्यग्गतिका बन्ध नहीं होता। फिर भला विचारिये कि जो बन्दना अनन्त संसारके कारण मिथ्यात्वको भी ध्वस्त कर देती है, यदि वह मेरी यात्राके लिये जल बरसा देवे तो कौन आश्चर्य है?' श्री सेठजी पुनः हँस गये--'अच्छा।' इतनेमें वहाँ पर एक जैनी भाई, जो कि पेड़ा आदि को फेरी द्वारा बेंच कर आजीविका करते थे, आये और बोले--'हम यात्राको चलेंगे परन्तु रेलभाड़ा देना होगा।' मैंने कहा—'भाई! मैं तो छात्र हूँ मेरे पास रेलभाड़ा नहीं है।' सेठजीने कहा—'इसकी चिन्ता मत करो जितना रुपया आने-जानेमें खर्च हो दुकानसे ले लो।'

यह चर्चा होनेके बाद सेठजी तो दुकान पर चले गये। मैंने उस जैनी भाईसे कहा कि 'कल ९ बजे ही गाड़ी जाती है. अतः मार्गके लिये कुछ मिठाई बना लो।' 'अच्छा जाते हैं....'यह कह कर वह चला गया। प्रसन्नतासे रात बीती। प्रातःकाल हमने श्रीजिनेन्द्रदेवका दर्शन, पूजन कर भोजन किया और साढ़े आठ बजे दोनों स्टेशनपर पहुँच गये। इलाहाबादका टिकट खरीदा, गाड़ीमें बैठ गये और ९ बजे जब गाड़ी छूटने लगी तब याद आई कि ज्योतिषीने कहा था कि 'तुम वैशाख सुदि १३ को ९ बजेके बाद खुरजा न रह सकोगे तथा साथमें यह भी कहा था कि फिर खुरजा नहीं आओगे।' मनमें बड़ा हर्ष हुआ कि अब भी ऐसे-ऐसे निमित्तज्ञानी हैं।

मार्गमें गङ्गा-यमुनासङ्गम

दूसरे दिन इलाहाबाद पहुँच गये। स्टेशनसे ताँगा कर जैन धर्मशाला पहुँचे। यहाँ पर बड़े-बड़े जिनालय हैं जिनमें प्राचीन

जिनबिम्ब भी हैं। यहाँसे अक्षयवट देखनेके लिये किलेमें गये। किलेके अन्दर एक मकान है। उसमें एक कल्पित सूखा पेड़ बना रक्खा है। वह जो भी हो परन्तु हजारों यात्री उसके दर्शनार्थ आते हैं। हम भी इस अभिप्रायसे गये थे कि 'भगवान् आदिनाथने वट वृक्षके नीचे दैगम्बरी दीक्षा धारण की थी।' वहाँसे दो मीलपर गंगा-यमुनाका संगम देखनेके लिए गये। वहाँ सहस्रों यात्री स्नानार्थ आते हैं, सैकड़ों पण्डोंके स्थान किनारेपर हैं जो यात्रियोंको अच्छा सुभीता देते हैं तथा उनसे द्रव्य भी उपार्जन करते हैं। वास्तवमें यही उनकी आजीविका है। तीर्थयात्रा धर्म-साधनका उत्तम निमित्त है। परन्तु अब उन स्थानोंपर आजीविकाके निमित्त लोगोंने अनेक असत्य कल्पनाओंके द्वारा पुण्य-संचय करनेका लेश भी नहीं रहने दिया है। कहीं नाई, कहीं पिण्ड सामग्रीवाले और कहीं टेक्स वसूल करनेवाले पण्डे ही नजर आते हैं। इन सबकी खींचतानसे बेचारे यात्रीगण दुःखी हो जाते हैं। जो हो, भारतवर्षके जीवोंमें अब भी धर्मकी श्रद्धा निष्कपट रूपसे विद्यमान है।

हमारा जो साथी था, उसने कहा—'चलो हम तुम भी स्नान कर लें, मार्गकी थकावट मिट जायगी।' मैंने कहा—'आपकी इच्छा।' अन्तमें हम दोनोंने गङ्गास्नान किया। घाटके पण्डेके पास वस्त्रादि रख दिये। जब स्नान कर चुका तब पंडा महाराजने दक्षिणा माँगी। हमने कहा—'महाराज! हम तो जैनी हैं।' पंडाने डाँट दिखाते हुए कहा कि 'क्या जैनी दान नहीं देते?' मैंने कहा—'देते क्यों नहीं? परन्तु आप ही बतलाइये—आपको कौनसा दान दिया जाय? आप त्यागी तो हैं नहीं जिससे कि पात्रदान दिया जावे। करुणादानके पात्र मालूम नहीं होते क्योंकि आपके शरीरमें रईसोंका प्रत्यय होता है, फिर भी यदि आप नाराज होते हैं तो लीजिये यह एक रुपया है।' पण्डाने कहा—

'बात तो ठीक है परन्तु हमारा यही धन्धा है। तुम लोग खुश रहो, तुमने हमारे वचनको व्यर्थ नहीं जाने दिया। यदि तुमको दुख हो तो यह रुपया ले जाओ। यहाँ ३) या ४) की कोई बात ही नहीं है। पनपियाईमें चले जाते हैं।' 'नहीं, महाराज! क्लेशकी कोई बात नहीं। परन्तु यह आजीविका आप जैसे मनुष्योंको शोभाप्रद नहीं है। आगे आपकी इच्छा'...यह मैंने कहा। पण्डाजी बोले—'भाई यह कलिकाल है, यहाँ तो यही कहावत चरितार्थ होती है कि 'फुट्ट देवी ऊँट पुजारी।' यहाँ जो दान देनेवाले आते हैं वे सात्त्विकवृत्तिके तो आते नहीं। जो महापातकी होते हैं वे ही अपने पापको दूर करनेके लिये आते हैं। अब तुम्हीं बताओ यदि हम उनका दान अंगीकार न करें तो उनके उद्धारका कौनसा मार्ग है?' 'मैंने कहा—महाराज! अब जाता हूँ, अपराध क्षमा करना।' पण्डा महाराज पुनः बोले—'अच्छा, अपराधकी कौनसी बात है? संसारमें यही चलता है। जो अत्यन्त निर्मल परिणामी हैं उन्हें तीर्थों पर भटकनेकी आवश्यकता नहीं। जिसके मल नहीं वह स्नान क्यों करे? जिसने पाप नहीं किया वह क्यों किसीके आराधनमें अपना काल लगावे? चूँकि भगवान्को पतितपावन कहते हैं, अतः जरा सोचो, जिसने पाप ही नहीं किया वह पतितपावनके पास भक्ति आदि करनेकी चेष्टा क्यों करेगा? तुम जो गिरिराजकी यात्राके लिये जा रहे हो सो इसीलिये न कि हमारे पातक दूर हों और आगामी कालमें सद्गति हो। कल्पना करो—यदि जैनियोंमें पापका परिणाम न होता तो वे भगवान् अर्हन्की उपासना क्यों करते? अतः बेटा! तुम अभी बालक हो, किसीकी निन्दा मत करना, अपने धर्मको पालो, अपनी वृत्ति निर्मल करो, वही तुमको पार लगावेगी। हमारे सिद्धान्तोंमें भी कहा है—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'—ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं हो सकती। फिर भी इस रांड़ आजीविकाके लिये बाह्यमें नाना वेष करना पड़ता है। विशेष

कुछ नहीं तुम जाओ, हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं तुम्हारी यात्रा सानन्द होगी।

दर्शन और परिक्रमा

हम दोनों वहाँसे चले और सायंकालकी गाड़ीपर सवार होकर पटना—सुदर्शन सेठके निर्वाणस्थानपर पहुँच गये। धर्मशालामें ठहरे, प्रातःकाल स्नान कर श्रीसुदर्शन निर्वाणक्षेत्रकी वन्दना की। मध्यान्हमें भोजनादिसे निवृत्त होकर गिरेटीके लिये चल दिया। बीचमें मधुपुर गाड़ी बदलते हुए गिरेटी पहुँचे। मन्दिरोंके दर्शन कर अपूर्व आनन्द पाया। यहाँ पर श्रीकिशोरीलाल रामचन्द्रजी सरावगी बड़े सज्जन व्यक्ति हैं। यहाँसे चलकर बड़ाकर आये, फिर श्रीशिखरजी पहुँच गये।

श्रीपार्श्वप्रभुकी निर्वाणभूमिका साधारण दर्शन तो गिरेटीसे ही हो गया था, पर बड़ाकर पहुँचने पर विशेष दर्शन होने लगा। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे, त्यों-त्यों स्पष्ट दर्शन होते जाते थे। श्री पाश्वर्प्रभुके मन्दिर पर सर्व प्रथम दृष्टि पड़ती थी। चिरकी पहुँचने पर सानन्द दर्शन हुए और मनमें ऐसी उमंग आई कि यदि पंख होते तो उड़कर इसी क्षण प्रभुके दर्शन करते। चित्तमें यही भावना उत्पन्न हो रही थी कि कब प्रभुके चरणोंका स्पर्श करें। पैर उतावलीके साथ आगे बढ़ रहे थे, एक-एक क्षण एक-एक दिन-सा प्रतीत होता था।

अन्तमें मधुबन पहुँच गये, तेरापंथी धर्मशालामें आश्रय लिया। प्रातःकाल शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर श्रीपार्श्वप्रभुके दर्शन कर परम आनन्दका अनुभव किया। बादमें बीसपन्थी कोठीके दर्शन कर स्थान पर आये और भोजनादिसे निवृत्त हो सो

गये। तीन बजे उठकर सामग्री तैयार की और वस्त्रप्रक्षालन कर सूखनेके लिये डाल दिये। सायंकाल भोजनोपरान्त बाहर चबूतराके ऊपर सामायिक क्रिया करके सो गये। रात्रिके ९ बजेसे लेकर १० बजे तक अखण्ड वर्षा हुई। मन आह्लादसे भर गया और हम दोनों पार्श्वप्रभुके गुण गाने लगे। हृदयमें इस बातकी दृढ़ श्रद्धा हो गई कि अब तो पार्श्वप्रभुकी वन्दना सुखपूर्वक होगी। निद्रा नहीं आई, हम दोनों ही श्रीपार्श्वके चरित्रकी चर्चा करते रहे। चर्चा करते-करते ही एक बज गया। उसी समय शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर स्वच्छ वस्त्र पहिने और एक आदमी साथ लेकर श्री गिरिराजकी वन्दनाके लिए प्रस्थान कर दिया। मार्गमें स्तुति-पाठ किया। स्तुति-पाठके अनन्तर मैं मन ही मन कहने लगा कि 'हे प्रभो! यह हमारी वन्दना निर्विघ्न हो जावे। इसके उपलक्ष्यमें हम आपका पञ्चकल्याणक पाठ करेंगे। ऐसा सुनते हैं कि अधम जीवोंको वन्दना नहीं होती। यदि हमारी वन्दना नहीं हुई तो हम अधम पुरुषोंकी श्रेणीमें गिने जावेंगे; अतः हे प्रभो! हम और कुछ नहीं माँगते। केवल यही माँगते हैं कि आपके स्मरण प्रसादसे हमारी यात्रा हो जावे। हे प्रभो आपकी महिमा अवर्णनीय है। यदि न हुई तो हमारा जीवन निष्फल है। आशा है हमारी प्रार्थना विफल न जावेगी। प्रभो! मेरी प्रार्थनापर प्रथम ध्यान दीजिये, मैं बड़े कष्टसे आया हूँ, इस भीषण गर्मीमें यात्राके लिये कौन आता है? आपके जो अनन्य भक्त हैं वे ही इस भीषण समयमें आपके गुणगान करते हुए गिरिराजपर आते हैं' इत्यादि—कहते कहते श्रीकुन्थुनाथ स्वामीकी शिखर पर पहुँच गया। उसी समय आदमीने कहा कि 'सावधान हो जाओ श्रीकुन्थुनाथ स्वामीकी टोंक आ गई। दर्शन करो और मानव-जन्मकी सफलताका लाभ लो।'

हम दोनोंने बड़े ही उत्साहके साथ श्रीकुन्थुनाथ स्वामीको

टोंक पर देव, शास्त्र, गुरुका पूजन किया और वहाँसे अन्य टोंकों की वन्दना करते हुए श्रीचन्द्रप्रभकी टोंक पर पहुँचे। अपूर्व दृश्य था। मनमें आया कि धन्य है उन महानुभावोंको, जिन्होंने इन दुर्गम स्थानोंसे मोक्षलाभ लिया। श्रीचन्द्रप्रभ स्वामीकी पूजन कर शेष तीर्थंकरोंकी वन्दना करते हुए जलमन्दिर आये। वहाँ बीचमें श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी प्रतिमाके, जो कि श्वेताम्बर आम्नाय-अनुकूल थी, नेत्र आदि जड़े थे। बगलमें दो मन्दिर और भी थे जिनमें दिगम्बर सम्प्रदायके अनुकूल प्रतिबिम्ब थे। वहाँसे वन्दना कर श्रीपार्श्वनाथकी टोंकपर पहुँच गये। पहुँचते ही ऐसी मन्द-मन्द सुगन्धित वायु आई कि मार्गका परिश्रम एकदम चला गया। आनन्दसे पूजा की। पश्चात् मनमें अनेक विचार आये, परन्तु शक्तिकी दुर्बलतासे सब मनोरथ विफल हुए।

वन्दना निर्विघ्न होनेसे अनुपम आनन्द आया और मनमें जो यह भय था कि यदि वन्दना न हुई तो अधम पुरुषोंमें गणना की जावेगी वह मिट गया। फिर वहाँसे चल कर ग्यारह बजे श्री मधुबनकी तेरापन्थी कोठीमें आगये। भूखकी वेदना व्याकुल कर रही थी, अतः शीघ्र ही भोजन बना कर सो गये। यद्यपि थकान बहुत थी, परन्तु वन्दनाके अपूर्व लाभके समक्ष उसकी स्मृति भूल गये। एक दिन आराम किया, फिर यह विचार हुआ कि परिक्रमा करना चाहिये। साथीने भी स्वीकार किया। एक आदमीको भी साथ लिया और प्रातःकाल होते होते तीनोंने परिक्रमाके लिये प्रस्थान कर दिया। दस मील चल कर भोजन बनाया, भोजनसे निवृत्त होकर फिर मार्ग चलने लगे। एक बजे नीमियाघाट पहुँच गये। यहाँ कुछ विश्राम कर फिर चलने लगे। डेढ़ मील चल कर मार्ग भूल गये। तृषाने बहुत सताया। जो आदमी साथ था उसे भी मार्गका पता नहीं था, बड़े असमंजसमें पड़ गये। हे भगवन्! यह क्या आपत्ति आगई?

जेठका महीना, मध्याह्नका समय, मार्गका परिश्रम, नीरस भोजनका प्रभाव आदि कारणोंसे पिपासा बढ़ने लगी, कण्ठ सूखने लगा, बेचैनीसे चित्तमें अनेक प्रकारके विचार आने लगे, कुछ स्थिर भाव नहीं रहा। प्रथम तो यह विचार आया कि भवितव्य दुर्निवार है। कहाँ तो यह विचार था कि जिस प्रकार वन्दना निर्विघ्न समाप्त हो गई उसी प्रकार परिक्रमा भी निर्विघ्न समाप्त हो जायगी और इस तरह पूर्ण वन्दनाका जो फल है उसके हम पात्र हो जावेंगे, पर अब तो यह विचार आता है कि वन्दनाका फल तो कालान्तरको गया। इस समय यदि मरण हो गया तो नियम से नरकगति होगी। यहाँ यह कहावत हुईकि 'चौबे छब्बे बननेके लिये गये पर दुबे ही रह गये' अस्तु। फिर यह विचार आया कि श्रीपार्श्वप्रभु संसारके विघ्नहर्ता हैं। रविवारके दिन अनेक प्राणि जिनप्रभुकी पूजा करते हैं और उससे उनके अनेक संकट स्वयमेव पलायमान हो जाते हैं। जब कि भगवान् पार्श्वनाथका यह वरद है तब हम यदि निष्कपट परिणामोंसे उनका स्मरण करेंगे तो क्या यह आपत्ति दूर न होगी? यद्यपि निरीह वृत्तिसे ही भगवान्का स्मरण करना श्रेयोमार्गका साधक है। हमें पानीके लिये भक्ति करना उचित न था। परन्तु क्या करें? उस समय तो हमें पानीकी प्राप्ति मुक्तिसे भी अधिक भान हो रही थी। अतः हमने स्वर्गादि विषयक याचनाओंको तुच्छ समझ केवल यही याचना पार्श्वप्रभुसे की कि 'हे प्रभो! मैं पिपासासे बहुत ही व्याकुल हूँ, यह मेरी प्रार्थना सामान्य है। रत्नके बदले यदि कोई कांचका खण्ड मांगे तो देनेवालेको उसमें क्या क्षति? हे प्रभो! जब कि आपकी भक्तिसे वह निर्वाणपद मिलता है जहाँ कि यह कोई रोग ही नहीं है तब केवल पानी माँगनेवाले मनुष्यको पानी न मिले यह क्या न्याय है? अथवा हे नाथ! आप क्या करेंगे? मैंने जन्मान्तरमें ऐसा ही कर्म अर्जन किया होगा कि गिरिराजकी

परिक्रमा कर तृषित हो प्राण त्यागूँ। हे भगवन्! यह भी तो आगम-में लिखा है कि अतिशय विशुद्धतासे पापप्रकृतिका संक्रमण हो जाता है। यदि घुणाक्षरन्यायसे मेरे भी इस समय वह हो जावे तो कौन आश्चर्यकी बात है? देखो तो प्रभो! यदि इस समय मेरी अपमृत्यु हो गई तो यह लाञ्छन किसे लगेगा? आखिर लोगसमुदाय यही तो कहेगा कि शिखरजीकी परिक्रमामें तीन आदमी पानीके बिना प्राण विहीन हो गये। जहाँ अनन्त प्राणी निर्वाण लाभ कर चुके वहाँ किसी भी देवने इनकी सहायता न की। कदाचित् यह कहो कि पञ्चमकालमें देव नहीं आते सो ठीक है, कल्पवासी नहीं आते परन्तु व्यन्तरादिक तो सर्वत्र हैं। उन्होंने सहायता क्यों नहीं की? यह भी कहना कि जब पापकर्मका प्रबल उदय होता है तब कोई सहायक नहीं होता, बुद्धिमें नहीं आता, क्योंकि हे पतितपावन! यदि हमारे पापका प्रबल उदय होता तो इस भयंकर समयमें आपकी यात्राके भाव न होते। हमने यह यात्रा किसी वांछासे भी नहीं की है। केवल आपके गुणस्मरणके लिये ही की है। हाँ, मेरी यह भावना अवश्य थी कि एकबार आपकी यात्रा करके मनुष्यजन्म सफल करूं। मुझे सम्पत्तिकी इच्छा नहीं, क्योंकि मेरा कोई कुटुम्ब नहीं है और न कोई पुत्रादि की ही वांछा है, क्योंकि मैंने बहुत समयसे ब्रह्मचर्यव्रत ले रक्खा है। न कोई अन्य वांछा ही मुझे है, क्योंकि मैं जन्मसे ही अकि-ञ्चित्कर हूँ। यह सब होने पर भी आज निःसहाय हो पानीके बिना प्राण गमाता हूँ। हे प्रभो! एक लोटा पानी मिल जावे, यही विनय है। यदि पानीके बिना प्राण चले गये तो कहाँ जाऊँगा, इसका पता नहीं। यदि पिपासासे परलोक नहीं हुआ और जीवित बच गया तब जन्मभर आपका नाम तो न भूलूँगा, पर इतना स्मरण अवश्य रहेगा कि आपके दर्शनसे मैं पिपासाकुलित हो मधुबन आया था। अतः हे दीनबन्धो! कृपा कीजिये, जिससे

कि पानीका कुण्ड मिल जावे' इत्यादि विकल्पोंने आत्माकी दशा चिन्तातुर बना दी। बादमें यह विचार हुआ चलो, भाग्यमें जो बदा है वही होगा, फिर भी हे प्रभो! आपके निमित्तने क्या उपकार किया? इतनेमें अन्तरात्मासे उत्तर मिला—यह पार्श्वनाथका दरबार है। इसमें कष्ट होनेका विकल्प छोड़ो। जो बीचमें गली है उसीसे प्रस्थान करो, अवश्य ही मनोभिलषितकी पूर्ति हो जावेगी।

हम तीनों एक फर्लाङ्ग चले होंगे कि सामने पानीसे लबालब भरा हुआ एक कुण्ड दिखाई पड़ा। देखकर हर्षका पारावार न रहा, मानो अन्धेको नेत्र मिल गये हों या दरिद्रको निधि। एकदम तीनों आदमी कुण्डके तटपर बैठ गये। देखकर ही तृषाकी शान्ति हो गई। थोड़ी देर बाद जलपान किया, फिर प्रभु पार्श्वके गुण गान गाने लगे—'धन्य है प्रभु तेरी महिमा जब कि आपकी महिमा प्राणियोंको संसार-बन्धनसे मुक्त कर देती है तब उससे यह क्षुद्र बाधा मिट गई, इसमें आश्चर्य ही क्या है? परन्तु महाराज! हम मोही जीव संसारकी बाधाओंके सहने में असमर्थ हैं, अतः इन क्षुद्र कार्योंकी पूर्तिमें ही भक्तिके अचिन्त्य भावको खो देते हैं। आपका तो यहाँ तक उपदेश है कि यदि मोक्षकी कामना है तो मेरी भक्ति की भी उपेक्षा कर दो; क्योंकि वह संसार-बन्धनका कारण है। जो कार्य निष्काम किया जाता है वही बन्धनसे मुक्त करनेवाला है। जो भी कार्य करो उसमें कर्तृत्व बुद्धिको त्यागो'...इत्यादि चिन्तना करते-करते बहुत समय बीत गया।

साथके आदमीने कहा—'शीघ्रता करो, अभी मधुवन यहाँसे चार मील है।' हमने कहा—'जिस प्रभुने इस भयानक अटवीमें जलकुण्डका दर्शन कराया वही सब मधुवन पहुँचावेगा। अब हम तो आनन्दसे बियालू कर जब पार्श्वप्रभुकी माला जप चुकेंगे तब

चलेंगे।' आदमी बोला—'हठ मत करो, अगम्य अरण्य है, इसमें भयानक हिंसक पशुओंकी बहुलता है, अतः दिनमें ही यहाँसे चला जाना अच्छा है।' हमने एक न सुनी और आनन्दसे कुण्डके किनारे आराममें तीन घण्टे बिता दिये। पश्चात् भोजन कर श्री णमोकार मन्त्रकी माला फेरी। दिन अस्त हो गया। तीनों आदमी वहाँसे मधुवनको चल दिये और डेढ़ घंटेमें मधुवन पहुँच गये। चार मील मार्ग डेढ़ घंटेमें कैसे तय हो गया, यह नहीं कह सकते। यह क्षेत्रका अतिशय था। हमको तो उस दिनसे धर्ममें ऐसी श्रद्धा हो गई जो बड़े-बड़े उपदेशों और शास्त्रोंसे भी बहु परिश्रम साध्य थी।

आत्माकी अचिन्त्य महिमा है, यह मिथ्यात्वके द्वारा प्रकट नहीं हो पाती। यदि एक मिथ्याभाव चला जावे तो आत्मामें आज ही वह स्फूर्ति आ जावे तो अनन्त संसारके बन्धनको क्षण-मात्रमें ध्वस्त कर देते। परन्तु चूँकि अनादि कालसे अनात्मीय पदार्थोंमें इसकी आत्मीय बुद्धि हो रही है, अतः आपापरका विवेक नहीं हो पाता। इस प्रकार इस मिथ्यादर्शनके प्रभावसे जीवकी अनादि दुर्दशा हो रही है। अस्तु, सुखपूर्वक वन्दना और परिक्रमा कर हम बहुत ही कृतकृत्य हुए। मनमें यह निश्चय किया कि एकबार फिर पार्श्वप्रभुके निर्वाण-क्षेत्रकी वन्दना करूँगा।

मैंने प्रायःबहुतसे सिद्ध-क्षेत्रोंकी वन्दना की है, परन्तु परिणामों की जो निर्मलता यहाँ हुई उसकी उपमा अन्यत्र नहीं मिलती। यह सब ऊहापोह होनेके बाद सो गये और प्रातःकाल प्रभु पार्श्वनाथ-के दर्शन-पूजन कर गिरेटीको प्रस्थान कर दिया। वहाँसे रेलमें बैठकर मैं मऊ चला गया और साथी खुरईको। श्रीशिखरजी की मेरी यह यात्रा सम्वत् १९५९ में हुई थी।

श्री दुलार झा

मऊसे श्रीबाईजीके यहाँ सिमरा पहुँच गया। बाईजीने कहा—'बेटा! कहाँसे आये?' मैंने कहा—'खुरजासे श्री गिरिराजकी वन्दनाको गया था वहाँसे आ रहा हूँ।' उन्होंने कहा—'बड़ा अच्छा किया, अब कुछ दिन यहीं रहो और शास्त्रस्वाध्याय करो।' मैंने डेढ़ मास सिमरामें बिताया।

अनन्तर यह सुना कि टीकमगढ़में मैथिल देशके बड़े भारी विद्वान् दुलार झा राजाके यहाँ प्रमुख विद्वान हैं और न्यायशास्त्रके अपूर्व विद्वान् हैं। मैं उनके पास चला गया और टीकमगढ़में श्री नन्दकिशोरजी वैद्यके यहाँ भोजन करने लगा। उस समय वहाँ ब्राह्मण विद्वानोंका बड़ा भारी समागम था।

दुलार झा बहुत ही व्युत्पन्न और प्रतिभाशाली विद्वान् थे। न्यायमें तो उनके सदृश विद्वान् भारतवर्षमें दो या तीन ही निकलेंगे। उन्होंने लगातार पच्चीस वर्ष तक नवद्वीप (नदिया-शान्तिपुर) में न्यायशास्त्रका अध्ययन किया था। उनके समक्ष शास्त्रार्थमें अच्छे अच्छे विद्वान् परास्त हो जाते थे।

मैं एक दिन उनके पास गया और उनसे बोला कि—महाराज! मैं आपसे न्यायशास्त्र पढ़ना चाहता हूँ। उन्होंने 'पूछा—क्या पढ़े हो?' मैंने कहा—'काशीकी मध्यमाका प्रथमखण्ड न्यायका पढ़ा हूँ और उसमें उत्तीर्ण भी हो गया हूँ।' उन्होंने कहा—'अच्छा, व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव ग्रन्थ लाओ।' मैंने कहा—'महाराज! मैं तो नाम सुनकर ही घबड़ा गया हूँ, अध्ययन तो दूर रहा।' वे बोले 'चिन्ता मत करो हम तुम्हें अनायास पढ़ा देवेंगे।'

दूसरे दिनसे उनके पास मैंने मुक्तावली, पञ्चलक्षणी, व्यधिकरणादि ग्रन्थोंका अध्ययन किया। उनकी मेरे ऊपर बहुत अनुकम्पा थी, परन्तु उनके एक व्यवहारसे मेरी उनमें अरुचि

हो गई। चूँकि वे मैथिल थे, अतः बलिप्रथाके पोषक थे—देवीको बकरा चढ़ानेका पोषण करते थे। मैंने कहा—'जीवोंकी रक्षा करना ही तो धर्म है। जहाँ जीवघातमें धर्म माना जावे वहाँ जितनी भी बाह्य क्रियाएँ हैं सब विफल हैं। धर्म तो वह पदार्थ है जिसके द्वारा यह प्राणी संसार बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जहाँ प्राणीका वध धर्म बताया जावे वहाँ दयाका अभाव निश्चित है, जहाँ दयाका अभाव है वहाँ धर्मका अंश नहीं, जहाँ धर्म नहीं वहाँ संसारसे मुक्ति नहीं। अतः महाराज! आप इतने विद्वान् होकर भी इन असत् कर्मोंकी पुष्टि करते हैं—यह सर्वथा अनुचित है।' महाराज बोले—'बेटा! तुमने अभी वेदादि शास्त्रोंको नहीं देखा, इससे तुम्हारी बुद्धि विकाससे रहित है। जिस दिन तुम विद्वान् हो जाओगे उस दिन आपसे आप इस बलिप्रथाके पोषक हो जाओगे। देखो, शास्त्रोंमें ही लिखा है—

'यज्ञार्थं पशवः सृष्टा यज्ञार्थं पशुघातनम्।
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥'

इत्यादि बहुतसे प्रमाण हैं, तुम व्यर्थ शंका मत करो।' मैंने कहा—'महाराज! शास्त्रकी कथा छोड़िये, परन्तु अनुभवसे बताइये, यदि मैं एक सुई आपके अंगमें छेदूँ तो आपकी क्या दशा होगी? जरा उसका अनुभव कीजिये, पश्चात् बलि प्रथाकी पुष्टि कीजिये। चूँकि संसार भोला है, अतः लोगोंने उसकी वञ्चनाके लिए ऐसे समर्थक वाक्यों द्वारा अनर्थकारी पापपोषक शास्त्रोंकी रचना की है। लोगोंका यह प्रयत्न केवल अपनी आजीविका सिद्ध करनेके लिये रहा है। देखिये, उन्हीं शास्त्रोंमें यह वाक्य भी तो मिलता है 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि।' क्या 'सर्व'के अन्दर बकरा नहीं आता? इस संसारमें अनादिकालसे अनेक प्रकारके दुःख भोगते भोगते बड़ी दुर्लभतासे यह मनुष्य जन्म प्राप्त हो सका है। इसे यों ही हिंसादि कार्योंमें लगा देना आप जैसे महान्

विद्वान्‌को क्या उचित है ? मैं तो आपके सामने तुच्छ बुद्धिवाला बालक हूँ । आप ही के प्रसादसे मेरी न्यायशास्त्रमें पढ़नेकी रुचि और आपकी पाठनशैलीको देखकर आपमें मेरी अत्यन्त श्रद्धा हो गई । परन्तु आपकी प्रवृत्ति देख मेरा हृदय कम्पित हो उठता है और हृदयमें यह भाव आता है कि मूर्ख रहना अच्छा किन्तु हिंसाको पुष्ट करनेवाले अध्यापकसे विद्यार्जन करना उत्कृष्ट नहीं । यद्यपि विद्याका अर्जन करना श्रेष्ठ है, क्योंकि विद्याके द्वारा ही ज्ञानका लाभ होता है और ज्ञानसे ही सब पदार्थोंका परिचय होता है—यह सब कुछ है परन्तु आपकी श्रद्धा देख आपमें मेरी श्रद्धा नहीं रही । आप इन वाक्योंको श्रवणकर मेरे प्रति कुपित होंगे, पर कुपित होनेकी बात नहीं । आप मेरे विद्यागुरु हैं । आपके द्वारा मेरा उपकार हुआ है । मेरा कर्तव्य है कि मैं आपकी विपरीत श्रद्धाको पलट दूँ, यद्यपि मेरे पास वह तर्क व प्रमाण नहीं है जिसके द्वारा आपको यथार्थ उत्तर दे सकूँ । परन्तु मेरी श्रद्धा इतनी सरल और विशुद्ध है कि हिंसा द्वारा कालत्रयमें भी धर्म नहीं हो सकता । आप हिंसा विधायक आगामोंको एकबार आलमारीमें ही रहने दीजिये और अपने अन्तर्गत हृदयसे परामर्श कीजिये कि हिंसा और अहिंसामें संसार बन्धनको छेदन करनेकी शक्ति किसमें है ? जो आपका हृदय माने उसी पर श्रद्धा रखिये, शङ्कित श्रद्धाको हटाइये ।'

महाराज वृद्ध थे, बोले—'बेटा ! तुम ठीक कहते हो, परन्तु हमारी जो श्रद्धा है वह कुलपरम्परासे चली आ रही है । इसके सिवाय हमारे यहाँ यह व्यवहार भी चला आता है कि नव-दुर्गामें बलिप्रदान करना । इन दोनोंके साथ आगम भी मिलता है, अतः इसे हम एकदम त्याग देवें, यह कठिन है । तुम्हारी बालको हम आदरकी दृष्टिसे देखते हैं—इतना ही बहुत समझो । तुम्हें उचित तो यह था कि अध्ययन करते, इस व्यर्थके विवादमें न

पढ़ते।' मैंने कहा—'महाराज! यह विवाद व्यर्थ नहीं। आखिर पठन-पाठनका यही तो प्रयोजन है कि हिताहितको पहिचानना, यदि वह न पहिचान सके तो पढ़नेसे क्या लाभ? उदर-पोषणके लिये विद्याका अर्जन नहीं। वह तो काक-मार्जार आदि भी कर लेते हैं। मनुष्य-जन्म पाकर यदि उसका प्रयोजन उदरपोषण तक ही सीमित रक्खा तो आप ही बतलाइये उसकी विशेषता क्या रही? मनुष्य-जन्म तो मोक्षका साधक है। उसके द्वारा इन हिंसादि कार्योंका पोषण करना कहाँका न्याय है?'

बहुत कुछ बात हुई पर उनका प्रभाव न हमपर पड़ा और न हमारा प्रभाव उनपर पड़ा। अन्तमें मैंने यही निश्चय किया कि यहाँसे अन्यत्र चला जाना ही उत्तम है। बश, क्या था? वहाँसे चलकर सिमरा चला आया।

पं० ठाकुरदासजी

सम्वत् १९६० की बात है। बाईजीसे आज्ञा लेकर श्रीमान् पं० ठाकुरदासजीके यहाँ हरिपुर चला गया। यह ग्राम इलाहाबादसे पूर्व झूसीसे पन्द्रह मील पर हंडिया तहसीलमें है। पण्डितजीका मेरे ऊपर अतिस्नेह था, अतः आनन्दसे प्रमेयकमलमार्तण्ड पढ़ने लगा। सिद्धान्तकौमुदीका भी कुछ अंश पढ़ा था। पण्डितजी इसी समय योगवाशिष्ठकी हिन्दी टीका करते थे। मैंने भी कुछ उसे पढ़ा। वेदान्तविषयक चर्चा उसमें थी।

एक जज साहब थे, जो कि संसारसे विरक्त थे। उन्होंने हृषीकेशमें एक आश्रम बनवाया जिसमें एक लाख रुपया लगाया। एकान्तमें धर्मसाधनकी रुचि रखनेवालोंको वहाँ आश्रय मिलता था। पं० ठाकुरदासजीका उक्त जज साहबसे बहुत स्नेह था।

पण्डितजीके घरपर मैं तीन या चार मास रहा। एक दिन पण्डितजीने कहा—'हाथसे भोजन मत बनाया करो, तुम्हारी माँ बना देंगी।' माँजीने कहा—'का बेटा! क्यों कष्ट उठाते हो? हमारे यहाँ भोजन कर लिया करो।' मैंने कहा—माँजी ठीक है परन्तु आपके यहाँ न तो पानी छाना जाता है और न ढोमरके जलका परहेज ही है। साथ ही हमें शामको भोजन न मिल सकेगा।' माँजीने बड़े प्रेमसे उत्तर दिया—'जिसप्रकार तुम कहोगे उसी प्रकार भोजन बना दूँगी और हम लोग भी रात्रिका भोजन शामको ही कर लिया करेंगे, अतः तुम्हें शामका भोजन मिलनेमें कठिनाई न होगी।' लाचार मैंने उनके यहाँ भोजन करना स्वीकार कर लिया।

एक दिनकी बात है—पण्डितजीका एक शिष्य भाँग पीता था, उसने मुझसे कहा कि 'महादेवजीके साक्षात् दर्शन करना हो तो तुम भी एक गोली खा लो।' मैं उसकी बातोंमें आ गया। वह बोला कि 'भाँगका नशा आनेके बाद ही महादेवजीका साक्षात् दर्शन होने लगेगा।' मैंने विचार किया कि मुझे श्रीजिनेन्द्रदेवके साक्षात् दर्शन होने लगेंगे। ऐसा विचार कर मैंने भाँगकी एक गोली खा ली। एक घण्टा बाद जब भाँगका नशा आ गया तब पुस्तक लेकर पण्डितजीके पास पढ़नेके लिए गया। वहाँ जाकर पण्डितजीसे बोला—'महाराज! आज तो पढ़नेको चित्त नहीं चाहता, सोना माँगता हूँ।' पण्डितजी महाराजने ऐसे असमंजस वचन सुन कर निश्चय कर लिया कि आज यह भी उस भँगेड़ीके चक्करमें आ गया है। उन्होंने कहा—'सो जाओ।' मैंने कहा—'अच्छा जाता हूँ, सोनेकी चेष्टा करूँगा।'

जाकर खाटपर लेट गया। पण्डितजीने माँजीसे कहा—'देखो, आज इसने भङ्ग पी ली है, अतः इसे दही और खटाई खिला दो।' मैंने उस नशाकी दशामें भी विचार किया कि मैं तो

रात्रिके समय पानीके सिवाय कुछ लेता नहीं, पर आज प्रतिज्ञा भङ्ग होती दिखती है। उक्त विचार मनमें आया था कि पण्डितजी महाराज दही और खटाई लेकर पहुँच गये तथा कहने लगे-'लो, यह खटाई व दही खालो, तुम्हारा नशा उतर जावेगा।' मैंने कहा-'महाराज! मैं तो रात्रिके समय पानीके सिवाय कुछ भी नहीं लेता, यह दही-खटाई कैसे ले लूँ ?' पण्डितजीने डाँटते हुए कहा-'भंग पीनेको जैनी न थे।' मैंने कहा—'महाराज मैं शास्त्रार्थ नहीं करना चाहता, कृपा कर मुझे शयन करने दीजिये।' पण्डितजी विवश होकर चले गये, मैं पछताता हुआ पड़ा रहा। बड़ी गलती की जो भंग पीकर पण्डितजीकी अविनय की। किसी तरह रात्रि बीत गई, प्रातःकाल सोकर उठा। पण्डितजीके चरणोंमें पड़ गया और बड़े दुःखके साथ कहा कि 'महाराज! मुझसे बड़ी गलती हुई।'

जैनत्वका अपमान

यहाँपर कुछ दिन रहकर सम्वत् १९६१ में बनारस चला गया, यहाँपर धर्मशालामें ठहरा। बिना कार्यके कुछ उपयोग स्थिर नहीं रख सका—यों ही भ्रमण करता रहा। कभी गङ्गाके किनारे चला जाता था और कभी मन्दाकिनी (मैंदागिनी)। परन्तु फिर भी चित्तको शान्ति नहीं मिलती थी।

उस समय कीन्स कालेजमें न्यायके मुख्य अध्यापक जीवनाथ मिश्र थे। बहुत ही प्रतिभाशाली विद्वान् थे। आपकी शिष्य-मण्डलीमें अनेक शिष्य प्रखर बुद्धिके धारक थे। एक दिन मैं उनके निवास स्थानपर गया और प्रणाम कर महाराजसे निवेदन किया कि 'महाराज! मुझे न्यायशास्त्र पढ़ना है यदि आपकी आज्ञा हो तो आपके बताये हुए समयसे आपके पास आया

करूँ।' मैंने एक रुपया भी उनके चरणोंमें भेंट किया। पण्डितजीने पूछा—'कौन ब्राह्मण हो ?' सुनते ही अन्तरङ्गमें चोट पहुँची। मनमें आया—'हे प्रभो ! यह कहाँकी आपत्ति आगई ?' अवाक् रह गया, कुछ उत्तर नहीं सूझा। अन्तमें निर्भीक होकर कहा—'महाराज ! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ और न क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ, यद्यपि मेरा कौलिक मत श्रीरामका उपासक था—सृष्टिकर्ता परमात्मामें मेरे वंशके लोगोंकी श्रद्धा थी और आज तक चली भी आ रही है परन्तु मेरे पिताकी श्रद्धा जैनधर्ममें दृढ़ हो गई तथा मेरा विश्वास भी जैनधर्ममें दृढ़ हो गया। अब आपकी जो इच्छा हो, सो कीजिये।' श्रीमान् नैयायिकजी एकदम आवेगमें आ गये और रुपया फेंकते हुए बोले—'चले जाओ, हम नास्तिक लोगोंको नहीं पढ़ाते। तुम लोग ईश्वरको नहीं मानते हो और न वेदमें ही तुम लोगोंकी श्रद्धा है। तुम्हारे साथ सम्भाषण करना भी प्रायश्चित्तका कारण है, जाओ यहाँसे।' मैंने कहा—'महाराज ! इतना कुपित होनेकी बात नहीं। आखिर हम भी तो मनुष्य हैं, इतना आवेग क्यों ? आप तो विद्वान् हैं साथ ही प्रथम श्रेणीके माननीय विद्वानोंमें मुख्यतम हैं। आप ही इसका निर्णय कीजिये—जब कि सृष्टिकर्ता ईश्वर है तब उसने ही तो हमको बनाया है। तथा हमारी जो श्रद्धा है उसका भी निमित्तकारण वही है। कार्यान्तर्गत हमारी श्रद्धा भी तो एक कार्य है। जब कार्यमात्रके प्रति ईश्वर निमित्तकारण है तब आप हमको क्यों धूसते हो ? ईश्वरके प्रति कुपित होना चाहिये। आखिर उसने ही तो अपने विरुद्ध पुरुषोंकी सृष्टिकी है या फिर यों कहिये कि हम जैनोंको छोड़कर अन्यका कर्ता है और यथार्थ में यदि ऐसा है तो कार्यत्व हेतु व्यभिचारी हुआ। यदि मेरा कहना सत्य है तो आपका हम पर कुपित होना न्यायसंगत नहीं।' श्री नैयायिकजी महाराज बोले—'शास्त्रार्थ करने आये हो ?' मैंने कहा—'महाराज ! यदि शास्त्रार्थ

करने योग्य पाण्डित्य होता तो आपके सामने शिष्य बननेकी चेष्टा ही क्यों करता ? खेदके साथ कहना पड़ता है कि आप जैसे महापुरुष भी ऐसे-ऐसे शब्दोंका प्रयोग करते हैं जो साधारण पुरुषके लिये भी सर्वथा असंगत हैं। वही मनुष्यता आदरणीय होती है जिसमें शान्तिमार्गकी अवहेलना न हो। आप तर्कशास्त्रमें अद्वितीय विद्वान् हैं फिर मेरे साथ इतना निष्ठुर व्यवहार क्यों करते हैं ?' नैयायिकजी तेवरी चढ़ाते हुए बोले—'तुम बड़े धीठ हो, जो कुछ भी भाषण करते हो उसमें ईश्वरके अस्तित्वका लोप कर एक नास्तिक मतकी ही पुष्टि करते हो। मैंने ठीक ही तो कहा है कि तुम नास्तिक हो—वेदनिन्दक हो, तुमको विद्या पढ़ाना सर्पको दुग्ध और मिश्री खिलानेके सदृश होगा। गुड़ और दुग्ध पिलानेसे क्या सर्प निर्विष हो सकता है ? तुम जैसे हठग्राही मनुष्योंको न्यायविद्याका पण्डित बनाना नास्तिकमतकी पुष्टि करना है। जानते हो—ईश्वरकी महिमा अचिन्त्य है। उसीके प्रभावसे यह सब व्यवहार चल रहा है। यदि यह न होता तो आज संसारमें नास्तिक मतकी ही प्रभुता हो जाती।' नैयायिकजी यह कहकर ही सन्तुष्ट नहीं हुए, डेस्क पर हाथ पटकते हुए जोरसे बोले—'हमारे स्थानसे निकल जाओ।' मैंने कहा—'महाराज ! आखिर जब आपको मुझसे संभाषण करनेकी इच्छा नहीं तब अगत्या जाना ही श्रेयस्कर होगा। किन्तु खेद होता है कि आप अद्वितीय तार्किक विद्वान् होकर भी मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं। मेरी समझमें तो यही आता है कि आप स्वयं ईश्वरको नहीं मानते और हमसे कहते हो कि तुम नास्तिक हो। जब कि ईश्वरकी इच्छाके बिना कोई कार्य नहीं होता तब हम क्या ईश्वरकी इच्छाके बिना ही हो गये ? नहीं हुए तब आप जाकर ईश्वरसे झगड़ा करो 'कि आपने 'ऐसे-ऐसे नास्तिक क्यों बनाये जो कि आपका अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करते। आप मुझसे कहते हैं

कि चूँकि तुम वेद-निन्दक हो अतः नास्तिक हो, परन्तु अन्तर्दृष्टिसे परामर्श करने पर मालूम हो सकता है कि हम वेदके निन्दक हैं या आप ? वेदमें लिखा है—'मा हिंस्यात्सर्वभूतानि' अर्थात् यावन्तः प्राणिनः सन्ति ते न हिंस्याः—जितने प्राणी हैं वे अहिंस्य हैं। अब आप ही बतलाइये कि जो मत्स्य-मांसादिका भक्षण करें, देवताको बलिप्रदान करें और श्राद्धमें पितृतृप्तिके लिये मांसपिण्डका दान करें वे वेदको न माननेवाले हैं या हमलोग, जो कि जलादि जीवोंकी भी रक्षा करनेकी चेष्टा करते हैं। ईश्वरकी सृष्टिमें सभी जीव हैं तब आपको क्या अधिकार है कि सृष्टिकर्ताकी रची हुई सृष्टिका घात करें और ऐसे-ऐसे निम्नाङ्कित वाक्य वेदमें प्रक्षिप्त कर जगत्को असन्मार्गमें प्रवृत्त करें—

यज्ञार्थं पशवः सृष्टा यज्ञार्थं पशुघातनम् ।
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥'

और इस 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' वाक्यको अपनी इन्द्रियतृप्तिके लिये अपवाद वाक्य कहें ? खेदके साथ कहना पड़ता है कि आप स्वयं तो वेदको मानते नहीं और हमपर लांछन देते हैं कि जैन लोग वेदके निन्दक हैं।' पण्डितजी फिर बोले—'आज कैसे नादानके साथ संभाषण करनेका अवसर आया ? क्यों जी, तुमसे कह दिया न कि यहाँसे चले जाओ, तुम महान् असभ्य हो, आज तक तुममें भाषण करने की भी योग्यता न आई, किन ग्रामीण मनुष्योंके साथ तुम्हारा सम्पर्क रहा ? अब यदि बहुत बकझक करोगे तो कान पकड़ कर बाहर निकाल दिये जाओगे।' जब पण्डितजी महाराज यह शब्द कह चुके, तब मैंने कहा—'महाराज ! आप कहते हैं कि तुम बड़े असभ्य हो, ग्रामीण हो, शरारत करते हो, निकाल दिये जाओगे। महाराज ! मैं तो आपके पास इस अभिप्रायसे आया था कि दूसरे ही दिन उषःकालसे न्यायशास्त्रका अध्ययन करूँगा, पर फल यह हुआ कि कान पकड़ने

तककी नौबत आ गई। अपराध क्षमा हो, आप ही बताइये कि असभ्य किसे कहते हैं ? और महाराज ! क्या यह व्याप्ति है कि जो जो ग्रामवासी हों वे वे असभ्य ही हों, ऐसा नियम तो नहीं जान पड़ता, अन्यथा इस बनारस नगरमें जो कि भारतवर्षमें संस्कृत भाषाके विद्वानोंका प्रमुख केन्द्र है गुण्डाव्रज नहीं होना चाहिए था और यहाँपर जो बाहरसे ग्रामवासी बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान् काशीवास करनेके लिये आते हैं उन्हें सभ्य कोटिमें नहीं आना चाहिए था। साथ ही महाराज ! आप भी तो ग्रामनिवासी ही होंगे। तथा कृपा कर यह तो समझा दीजिये कि सभ्यका क्या लक्षण है ? केवल विद्याका पाण्डित्य ही तो सभ्यताका नियामक नहीं है, साथमें सदाचार गुण भी तो होना चाहिए। मैं तो बारम्बार नतमस्तक होकर आपके साथ व्यवहार कर रहा हूँ और आप मेरे लिये उसी नास्तिक शब्दका प्रयोग कर रहे हैं ! महाराज ! संसारमें उसीका मनुष्य जन्म प्रशंसनीय है जो राग-द्वेषसे परे हो। जिसके राग-द्वेषकी कलुषता है वह चाहे वृहस्पति तुल्य भी विद्वान् क्यों न हों ईश्वराज्ञाके प्रतिकूल होनेसे अधोमार्गको ही जानेवाला है। आपकी मान्यताके अनुसार ईश्वर चाहे जो हो, परन्तु उसकी यह आज्ञा कदापि नहीं हो सकती कि किसी प्राणीके चित्तको खेद पहुँचाओ। अन्यकी कथा छोड़ो, नीतिकारका भी कहना है कि—

'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।'

परन्तु आपने मेरे साथ ऐसे मधुर शब्दोंमें व्यवहार किया कि मेरी आत्मा जानती है। मेरा तो निजी विश्वास है कि सभ्य वही है जो अपने हृदयको पाप-पङ्कसे अलिप्त रक्खें, आत्महितमें प्रवृत्ति करे। केवल शास्त्रका अध्ययन संसार-बन्धनसे मुक्त करनेका मार्ग नहीं। तोता राम-राम उच्चारण करता है परन्तु रामके मर्मसे अनभिज्ञ ही रहता है। इसी तरह बहुत शास्त्रोंका बोध होनेपर

भी जिसने अपने हृदयको निर्मल नहीं बनाया उससे जगत्‌का क्या उपकार होगा ? उपकार तो दूर रहा, अनुपकार ही होगा। किसी नीतिकारने ठीक ही कहा है—

'विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥'

यद्यपि मैं आपके समक्ष बोलनेमें असमर्थ हूँ, क्योंकि आप विद्वान् हैं, राजमान्य हैं, ब्राह्मण हैं तथा उस देशके हैं जहाँ ग्राम-ग्राममें विद्वान् हैं। फिर भी प्रार्थना करता हूँ, कि आप शयन समय विचार कीजियेगा कि मनुष्यके साथ ऐसा अनुचित व्यवहार करना क्या सभ्यताके अनुकूल था। समयकी बलवत्ता है कि जिस धर्मके प्रवर्तक वीतराग सर्वज्ञ थे और जिस नगरीमें श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकरका जन्म हुआ था, आज उसी नगरीमें जैनधर्मके मानने वालोंका इतना तिरस्कार।'

उनके साथ कहाँ तक बातचीत हुई लिखना बेकार है। अन्तमें उन्होंने यही उत्तर दिया कि यहाँसे चले जाओ, इसीमें तुम्हारी भलाई है। मैं चुपचाप वहाँसे चल दिया और मार्गमें भाग्यकी निन्दा तथा पञ्चम कालके दुष्प्रभावकी महिमाका स्मरण करता हुआ श्रीमन्दाकिनी आकर कोठरीमें रुदन करने लगा, पर सुननेवाला कौन था ?

गुरुदेवकी खोजमें

सायंकालका समय था, कुछ जलपान किया। अनन्तर श्री पार्श्वनाथ स्वामीके मन्दिरमें जाकर सायंकालकी वन्दनासे निवृत्त हो कोठरीमें आकर सो गया। सो तो गया, पर निद्राका अंश भी

नहीं। सामने वही नैयायिकजी महाराजके स्थानका दृश्य अन्ध-कार होते हुए भी दृश्य हो रहा था। नाना विकल्पोंकी लहरी मनमें आती थी और विलय जाती थी। मनमें आता—कि हे प्रभो! यह वही वाराणसी है जहाँ आपके गर्भमें आनेके पहले छह मास पर्यन्त तीनों समय अविरल रत्नधारा बरसती थी और जिसकी संख्या प्रतिदिन साढ़े दस करोड़ होती थी। इस तरह छः मास गर्भसे प्राक् और नौ मास जब तक आप गर्भमें रहे थे इसी प्रकार रत्न-धारा बरसती थी। आज उसी नगरीमें आपके सिद्धान्त-पथपर चलनेवालोंपर यह वाग्वज्र-वर्षा हो रही है। हे प्रभो! क्या करें? कहाँ जावें? कोई उपाय नहीं सूझता। क्या आपको जन्म-नगरीसे मैं विफल मनोरथ ही देशको चला जाऊँ? इस तरहके विचार करते करते कुछ निद्रा आ गई। स्वप्नमें क्या देखता हूँ कि—एक सुन्दर मनुष्य सामने खड़ा है, कहता है—'क्यों भाई! उदास क्यों हो?' मैंने कहा—'आपको क्या प्रयोजन? न आपसे हमारा परि-चय है और न आपसे हम कुछ कहते हैं, फिर तुमने कैसे जान लिया कि मैं उदासीन हूँ?' उस भले आदमीने कहा कि 'तुम्हारा मुख वैवर्ण्य तुम्हारे शोकको कह रहा है।' मैंने उसे इष्ट समझ-कर नैयायिक महाराजकी पूरी कथा सुना दी। उसने सुनकर कहा—'रोनेसे किसी कार्यकी सिद्धि नहीं होती। पुरुषार्थ करनेसे मोक्षलाभ हो जाता है फिर विद्याका लाभ कौनसी भारी बात है।' मैंने कहा—'हमारी परिस्थिति ऐसी नहीं कि हम कुछ कर सकें।' आग-न्तुक महाशयने सान्त्वना देते हुए कहा—'चिन्ता मत करो, पुरु-षार्थ करो, सब कुछ होगा। दुःख करनेसे पाप ही का बन्ध होगा और पुरुषार्थ करनेसे अभीष्ट फलकी सिद्धि होगी। तुम्हारे परम-हितैषी बाबा भागीरथजी हैं उन्हें बुलाओ, उनके द्वारा आपको बहुत सहायता मिलेगी। हम विश्वास दिलाते हैं कि उनका तुम्हारा साथ आमृत्यु रहेगा। वह बहुत ही निःस्पृह और तुम्हारे

शुभचिन्तक हैं। उन जैसा तुम्हारा मित्र 'न भूतो न भविष्यति।' शीघ्र ही उनको बुलानेकी चेष्टा करो, उनके आते ही तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा। तुम दोनों यहाँपर एक पाठशाला खोलनेका प्रयत्न करो, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारा मनोरथ श्रुतपञ्चमी तक नियमसे पूर्ण होगा।' मैंने कहा—'इतनी कथा क्या करते हो? क्या तुम अवधिज्ञानी हो, इस कालमें इतने ज्ञानी नहीं देखे जाते। अथवा संभव है आपका निमित्तज्ञान ठीक भी हो, क्योंकि खुर्जाके एक ज्योतिषीने हमसे जो कहा था वह यथार्थ हुआ। हम आपको कोटिशः धन्यवाद देते हैं और इच्छा करते हैं कि आपके वाक्य सफलीभूत हों।' आगन्तुक महाशयने कहा—'धन्यवाद अपने पास रखिये किन्तु विशुद्ध परिणामोंसे पुरुषार्थ करो, सब कुछ होगा, अच्छा हम जाते हैं।'

इतनेमें निद्राभंग हो गई, देखा तो कहीं कुछ नहीं। प्रातःकालके ५ बजे होंगे, हाथ पैर धोकर श्रीपार्श्वप्रभुकी स्मृतिके लिये बैठ गया और इसीमें सूर्योदय हो गया। पक्षीगण कलरव करने लगे, मनुष्यगण जयध्वनि करते हुए मन्दिरमें आने लगे। मैं भी स्नानादि क्रियासे निवृत्त हो श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके पूजनादि कार्य कर पञ्चायती मन्दिरमें वन्दनाके निमित्त चला गया। वहाँसे बाजार भ्रमण करता हुआ चला आया। भोजनादिसे निवृत्त होकर गङ्गाजीके घाटपर चला गया। सहस्रों नर-नारी स्नान कर रहे थे, जय गङ्गे, जय विश्वनाथके शब्दसे घाट गूँज रहा था। वहाँ से चलकर विश्वनाथजीके मन्दिरका दृश्य देखनेके लिए चला गया।

वहाँ पर एक महानुभाव मिल गये, 'बोले कहाँ आये हो?' मैंने कहा—'विश्वनाथजीका मन्दिर देखने आये हैं।' क्या देखा?' उन्होंने कहा। मैंने उत्तर दिया—'जो आपने देखा सो हमने देखा। देखना काम तो आँखका है, सबकी आँख देखनेका ही कार्य करती

हैं। हाँ, आप महादेवके उपासक हैं—आपने देखनेके साथ मनमें यह विचार किया होगा कि हे प्रभो! मुझे सांसारिक यातनाओंसे मुक्त करो। मैं जैनी हूँ, अतः यह भावना मेरे हृदयमें नहीं आई। प्रत्युत यह स्मरण आया कि महादेव तो भगवान् आदिदेव 'नाभिनन्दन ऋषभदेव हैं जिन्होंने स्वयं आत्मकल्याण किया और जगत्के प्राणियोंको कल्याणका मार्ग दर्शाया। इस मन्दिरमें जो मूर्ति है, उसकी आकृतिसे तो आत्मशुद्धिका कुछ भी भाव नहीं होता।' उस महाशयने कहा—'विशेष बात मत करो, अन्यथा कोई पण्डा आगया तो सर्वनाश हो जावेगा। यहाँसे शीघ्र ही चले जाओ।' मैंने कहा—'अच्छा जाता हूँ।'

जाते जाते मार्गमें एक श्वेताम्बर विद्यालय मिल गया, मैं उसमें चला गया। वहाँ देखा कि अनेक छात्र संस्कृत अध्ययन कर रहे हैं, अनेक साधु, जिनके कि शरीरपर पीत वस्त्र थे, वे भी अध्ययन कर रहे हैं। साहित्य, न्याय तथा धर्मशास्त्रका अध्ययन हो रहा है। मैंने पाठशालाध्यक्ष श्री धर्मविजय सूरिको विनयके साथ प्रणाम किया। आपने पूछा—'कौन हैं?' मैंने कहा—'जैनी हूँ।' उन्होंने कहा—'किस धर्मके उपासक हो और यहाँ किस प्रयोजनसे आये हो?' मैंने कहा—'दिगम्बर सम्प्रदायका माननेवाला हूँ, यहाँ अनायास ही आगया—कोई उद्देश्य आनेका न था। हाँ, बनारस इस उद्देश्यसे आया हूँ कि संस्कृतका अध्ययन करूँ।' उन्होंने कहा—'कहाँ तक अध्ययन किया है?' मैंने कहा—'न्याय मध्यमाके प्रथम खण्डमें उत्तीर्ण हूँ और अब इसी विषयका आगे अध्ययन करना चाहता हूँ। परन्तु यहाँ पर कोई पढ़ानेको राजी नहीं। कल मैं एक नैयायिक महोदयके समीप गया था। उन्होंने पढ़ाना स्वीकार भी कर लिया और कहा कि कलसे आना। परन्तु जब उन्होंने पूछा कि 'कौन ब्राह्मण हो?' तब मैंने कहा—'ब्राह्मण नहीं जैनधर्मानुयायी वैश्य हूँ। बस क्या था, जैनका नाम सुनते

ही उन्होंने मर्मभेदी शब्दोंका प्रयोग कर अपने स्थानसे निकाल दिया। यही मेरी रामकथा है। आज इसी चिन्तामें भटकता-भटकता यहाँ आगया हूँ।'

'बस, और कुछ कहना चाहते हो, नहीं तो हमारे साथ चलो, हम तुमको न्यायशास्त्रमें अद्वितीय व्युत्पन्न शास्त्रीके पास ले चलते हैं। वे हमारे यहाँ अध्यापक हैं।' मैं श्री धर्मविजय सूरिके साथ श्री अम्बादासजी शास्त्रीके पास पहुँच गया। आप छात्रोंको अध्ययन करा रहे थे। मैंने बड़ी नम्रताके साथ महाराजको प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए बैठनेका आदेश दिया और मेरे आनेका कारण पूछा। मैंने जो कुछ वृत्तान्त था अक्षरशः सुना दिया।

इसके अनन्तर श्रीयुत शास्त्रीजी बोले-'क्या चाहते हो?' मैंने कहा—'चाहनेसे क्या होता है? मेरी तो चाह इतनी है कि सब विद्याओंका पण्डित हो जाऊँ। परन्तु भाग्य तो अनुकूल नहीं, दैवके अनुकूल हुए बिना हाथका ग्रास मुखमें जाना असंभव हो जाता है।' श्रीधर्मविजय सूरि महाराजने कहा कि तुम चिन्ता मत करो, यहाँ पर आओ और शास्त्रीजीसे अध्ययन करो, तुम्हें कोई रोक-टोक नहीं। मैंने कहा—'महाराज! आपका कहना बहुत सन्तोषप्रद है, परन्तु साथमें मेरा यह कहना है कि मैं दिगम्बर सम्प्रदायका हूँ अतः मेरी श्रद्धा निर्ग्रन्थ साधुमें है। आप साधु हैं, लोग आपको साधु-मुनि कहते भी हैं पर मैं जो वस्त्रधारी हैं उन्हें साधु नहीं मानता, क्योंकि दिगम्बर सम्प्रदायमें एक लंगोटीमात्र परिग्रह होनेसे श्रावक संज्ञा हो जाती है इत्यादि। अब आप ही बतलाइये यदि मैंने आपके शिष्यवर्गकी तरह आपकी वन्दना न की तो आपके चित्तमें अनायास क्षोभ हो जावेगा और उस समय आपके मेरे प्रति क्या भाव होंगे, सो आप ही जान सकते हैं। अतः मैं अध्ययनका सुअवसर मिलते हुए भी उसे खो रहा हूँ। आपके

मैं श्री धर्मविजय सूरिके साथ अपने विद्यागुरु
श्री अम्बादासजी शास्त्रीके पास पहुँच गया।

[पृ० ९२]

शिष्ट व्यवहारसे मेरी आपमें श्रद्धा है, आप महान् व्यक्ति हैं। परन्तु चूँकि जिन मतमें साधुका जैसा स्वरूप कहा है वैसा आपमें नहीं पाता, अतः श्रद्धा होते हुए भी साधु-श्रद्धा नहीं। मैं अब आपको प्रणाम करता हूँ और अपने निवास स्थानपर जाता हूँ।'

जानेकी चेष्टा कर ही रहा था कि इतनेमें श्रीशास्त्रीजीने कहा कि 'अभी ठहरो, एक घण्टा बाद हम यहाँसे चलेंगे, तुम हमारे साथ चलना।' मैंने कहा—'महाराज ! जो आज्ञा।'

शास्त्रीजी अध्ययन कराने लगे, मैं आपकी पाठन-प्रणालीको देख कर मुग्ध हो गया। मनमें आया कि यदि ऐसे विद्वानसे न्यायशास्त्रका अध्ययन किया जावे तो अनायास ही महती व्युत्पत्ति हो जावे। एक घण्टाके बाद श्रीशास्त्रीजीके साथ पीछे-पीछे चलता हुआ उनके घर पहुँच गया। उन्होंने बड़े स्नेहके साथ बात-चीत की और कहा कि 'तुम हमारे यहाँ आओ,हम तुम्हें पढ़ावेंगे।' उनसे प्रेमसे ओतप्रोत वचन श्रवणकर मेरा समस्त क्लेश एक साथ चला गया।

वहाँसे चलकर मंदाकिनी आया, यहाँसे शास्त्रीजीका मकान दो मील पड़ता था, प्रतिदिन पैदल जानेमें कष्ट होता था, अतः वहाँसे डेरा उठाकर श्रीभदैनीके मन्दिरमें जो अस्सीघाटके ऊपर है चला आया। यहाँ पर श्री बद्रीदास पुजारी रहते थे जो बहुत ही उच्च प्रकृतिके जीव थे। उनके सहवासमें रहने लगा और एक पत्र श्रीबाबाजीको डाल दिया। उस समय आप आगरामें रहते थे। बनारसके सब समाचार उसमें लिख दिये, साथ ही यह भी लिख दिया कि महाराज ! आपके शुभागमनसे सब ही कार्य सम्पन्न होगा, अतः आप पत्र देखते ही चले आइये। महाराज पत्र पाते ही बनारस आ गये।

स्याद्वाद विद्यालयका उद्घाटन

माघका महीना था, सर्दी खूब पड़ती थी, मैं अपना भोजन स्वयं बनाता था। बाबाजी और हम दोनों भोजनादिसे निवृत्त होकर २४ घण्टा यही चर्चा करते थे कि कौनसे उपायोंका अवलम्बन किया जावे जिससे काशीमें एक दिगम्बर विद्यालय स्थापित हो जावे।

इतनेमें ही बनारसमें अग्रवाल महासभाका जल्सा हुआ। राजघाटके स्टेशनके पास सभाका मण्डप लगा था। मैंने बाबाजी से कहा—'महाराज! हम लोग भी सभा देखनेके लिये चलें।' बाबाजीने सहर्ष चलना स्वीकृत किया। हम, बाबाजी तथा कामा जिला मथुराके झम्मनलालजी—तीनों व्यक्ति एक साथ सभास्थान पर पहुँचे। सभाकी व्यवस्था देखकर बहुत ही प्रसन्नता हुई। अच्छे-अच्छे व्याख्यान श्रवणगोचर हुए, हम भी चार मिनट बोले।

जब हम लोग सभासे लौटे तब मार्गमें यही चर्चाका विषय था कि यहाँ दिगम्बर जैन विद्यालय कब स्थापित होगा! इसे सुनकर झम्मनलालजी कामावालोंने एक रुपया विद्यालयकी सहायताके लिये दिया। मैंने बड़ी प्रसन्नतासे रुपया ले लिया। बाबाजीने कहा—'भाई! एक रुपयासे क्या होगा?' मैंने कहा—'महाराज! आपका आशीर्वाद ही सब कुछ करेगा। जरासे बीजसे ही तो वटका महान् वृक्ष हो जाता है जिसके तलमें हजारों नर-नारी पशु-पक्षीगण आश्रय पाते हैं। कौन जाने? वीर प्रभुने यह एक रुपया ही जैन विद्यालयके उत्थानका मूल-कारण देखा हो।' मैंने श्री झम्मनलालजीको सहस्रों धन्यवाद दिये और मार्गमें ही पोष्टआफिससे ६४ पोस्टकार्ड ले लिये। यह स्मरण आया कि—

> 'अवश्यंभाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
> नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः॥'

यही निश्चय किया जो होनेवाला है वह अवश्य होगा। बड़े हर्षके साथ निवास स्थान पर आये।

सायंकाल हो गया, जलपान कर छतके ऊपर श्री पार्श्वप्रभुके मन्दिरमें दर्शन किये और वहीं गङ्गाजीके सन्मुख सामायिक की। मनमें यह भाव आया कि हे प्रभो ! क्या आपके ज्ञानमें काशी-नगरीमें हम लोगोंको साक्षर होना नहीं देखा गया है ? अन्त-रात्मासे उत्तर मिलता है कि 'नहीं शब्दको मिटा दो। अवश्य ही तुम लोगोंके लिये इसी स्थान पर विद्याका ऐसा आयतन होगा, जिसमें उच्चकोटिके विद्वान् बनकर धर्मका प्रसार करेंगे। जाओ आजसे ही पुरुषार्थ करनेकी चेष्टा करो।'

क्या करें ? मनमें प्रश्न हुआ। अन्तरात्माने यही उत्तर दिया कि खरीदे हुए पोष्टकार्डोंका उपयोग करो। वहाँसे आकर रात्रिको ही ६४ पोस्टकार्ड लिखकर ६४ स्थानोंपर भेज दिये। उनमें यह लिखा था कि वाराणसी जैसी विशाल नगरीमें जहाँ हजारों छात्र संस्कृत-विद्याका अध्ययन कर अपने आज्ञानान्धकारका नाश कर रहे हों, वहाँ पर हम जैन छात्रोंको पढ़नेकी सुविधा न हो। यहाँ पर छात्रोंको भोजन प्रदान करनेके लिये सैकड़ों भोजनालय विद्यमान हों, वहाँ अधिककी बात जाने दो, पाँच जैन छात्रोंके लिए भी निर्वाह योग्य स्थान न हो। जहाँ पर श्वेताम्बर समाजका यशो-विजय विद्यालय है जिसके भव्य भवनको देखकर चकाचौंध आ जाती है, जहाँ पर २० साधु और १० छात्र श्वेताम्बर जैन साहि-त्यका अध्ययन कर अपने धर्मका प्रकाश कर रहे हैं। यह सब श्री धर्मविजय सूरिके पुरुषार्थका फल है। क्या हमारी दिगम्बर समाज १० या २० छात्रोंके अध्ययनका प्रबन्ध न कर सकेगी ? आशा है आप लोग हमारी वेदनाका प्रतीकार करेंगे। यह मेरी एक की ही वेदना नहीं है किन्तु अखिल समाजके छात्रोंकी वेदना है। यद्यपि महाविद्यालय मथुरा, महापाठशाला जयपुर तथा सेठ

मेवारामजीका खुर्जाका विद्यालय आदि स्थानों पर संस्कृतके पठन-पाठनका सुभीता है तथापि यह स्थान जितना भव्य और संस्कृत पढ़नेके लिये उपयुक्त है वैसा अन्य स्थान नहीं है। आशा है हमारी नम्र प्रार्थनापर आप लोगोंका ध्यान अवश्य जायगा इत्यादि।

एक मासके भीतर बहुतसे महानुभावोंके आशाजनक उत्तर आ गये साथ ही १००) मासिक सहायताके भी वचन मिल गये। हम लोगोंके हर्षका ठिकाना न रहा। हमारे हर्षके हृदय-कमल फूल गये। अब श्रीमान् गुरु पन्नालालजी बाकलीवालको भी एक पत्र इस आशयका लिखा कि यदि आप आकर इस कार्यमें सहायता करें तो यह कार्य अनायास हो सकता है। १० दिनके बाद आपका भी शुभागमन हो गया, आपके पधारते ही हमारे हृदयकी प्रसन्नताका पारावार न रहा। रात्रि दिन इसी विषयकी चर्चा और इसी विषयका आन्दोलन प्रायः दिगम्बर जैन पत्रोंमें कर दिया कि काशीमें एक जैन विद्यालयकी महती आवश्यकता है। कितने ही स्थानोंसे इस आशयके भी पत्र आये कि आप लोगों ने यह क्या आन्दोलन मचा रक्खा है? काशी जैसे स्थानमें दिगम्बर जैन विद्यालयका होना अत्यन्त कठिन है। जहाँपर पर कोई सहायक नहीं, जैनमतके प्रेमी विद्वान् नहीं वहाँ क्या आप लोग हमारी प्रतिष्ठा भंग कराओगे। परन्तु हम लोग अपने प्रयत्नसे विचलित नहीं हुए।

श्रीमान् स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी रईस आराको भी एक पत्र इस आशयका दिया कि आपकी अनुकम्पासे यह कार्य अनायास हो सकता है। आप चाहें तो स्वयं एक विद्यालय खोल सकते हैं। भदैनीघाट पर गङ्गाजीके किनारे आपके जो विशाल मन्दिर हैं उन्हें देखकर आपके पूर्वजोंके विशाल द्रव्य तथा भावोंकी विशुद्धताका स्मरण होता है। उसमें ५० छात्र सानन्द अध्ययन कर सकते हैं, ऊपर रसोईघर भी है। आशा है आपका विशाल हृदय

हमारी प्रार्थना पर अवश्य साक्षी होगा कि यह कार्य अवश्य करणीय है। आठ दिनके बाद ही उत्तर आगया कि चिन्ता मत करो श्री पार्श्वप्रभुके चरणप्रसादसे सब होगा।

एक पत्र श्रीमान् स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्रजी जे० पी० बम्बई को भी लिखा कि जैनधर्मका मर्म जाननेकेलिये संस्कृत-विद्याकी महती आवश्यकता है। इस विद्याके लिये बनारस जैसा स्थान अन्यत्र उपयुक्त नहीं। इस समय आप ही एक ऐसे महापुरुष हैं जो यथाशक्ति धर्मकी उन्नति करनेमें दत्तचित्त हैं। आप तीर्थक्षेत्रों तथा छात्रावासोंकी व्यवस्था कर दिगम्बरोंका महोपकार कर रहे हैं। एक कार्य यह भी करनेमें अग्रेसर हूजिये। मेरी इच्छा है कि इस विद्यालयका उद्घाटन आपके ही करकमलोंसे हो। आशा है नम्र प्रार्थनाकी अवहेलना न होगी। बनारस समाजके गण्य-मान्य बाबू छेदीलालजी, श्री स्वर्गीय बाबू बनारसीदासजी झवेरी आदि सब समाज सब तरहसे सहायता करनेकेलिये प्रयत्नशील है। केवल आपके शुभागमनकी महती आवश्यकता है।

आठ दिन बाद सेठजी साहबका पत्र आ गया कि हम उद्घाटनके समय अवश्य काशी आवेंगे। इतनेमें ही एक पत्र बरुआ-सागरसे बाईजीका आया कि भैया! पत्रके देखते ही शीघ्र चले आओ। यहाँपर श्री सर्राफ मूलचन्द्रजी सख्त बीमार हैं, पत्रको तार जानो। हम तीनों अर्थात् मैं, गुरुजी और बाबाजी मेल ट्रेनसे बैठकर बरुआसागरको चल दिये। दूसरे दिन बरुआसागर पहुँच भी गये। श्रीसर्राफजीकी अवस्था रोगसे ग्रसित थी, किन्तु श्रीजी के प्रसादसे उन्होंने स्वास्थ्य लाभ कर लिया। हमने कहा— सर्राफजी! हम लोगोंका विचार है कि बनारसमें एक दिगम्बर जैन विद्यालय खोला जावे जिससे जैनियोंमें प्राचीन साहित्यका प्रचार हो। आपने कहा उत्तम कार्य है २०००) गजाशाही जिनके १५००) कल्दार होते हैं, हम देवेंगे, हम लोग बहुत ही प्रसन्न हुए।

कि हम अपने बालकोंको इस विद्याका मार्मिक विद्वान् बनानेका प्रयत्न करें। आज संसारमें जो जैनधर्मका ह्रास हो रहा है उसका मूल कारण यही है कि हमारी समाजमें संस्कृत और प्राकृतके मार्मिक विद्वान नहीं रहे। आज विद्वानोंके न होनेसे जैनधर्मका प्रचार एकदम रुक गया है। लोग यहाँ तक कहने लगे हैं कि यह तो एक वैश्यजातिका धर्म है, पूर्ण वैश्यजातिका नहीं, इने-गिने वैश्योंका है। अतः हमें आवश्यकता इस बातकी है कि हम उस धर्मके प्रसारके लिये मार्मिक पण्डित बनानेका प्रयत्न करें। एतदर्थ ही आज मेरे द्वारा इस विद्यालयका उद्‌घाटन हो रहा है। मैं अपनेको महान् पुण्यशाली समझ रहा हूँ कि मेरे द्वारा इस महान् कार्यकी नींव रखी जा रही है। यद्यपि मेरा यह पक्ष था कि एक ऐसा छात्रावास खोला जाय जिसमें अंग्रेजी छात्रोंके साथ-साथ संस्कृतके भी छात्र रहते। परन्तु श्रीमान् देवकुमारजी रईस आरा और बाबू छेदीलालजी रईस बनारसने कहा कि यह सर्वथा अनुचित है, छात्रावाससे विशेष लाभ न होगा, अतः मैंने अपना पक्ष छोड़ उसी पक्षका समर्थन किया और जहाँ तक मुझसे बनेगा इस कार्यमें पूर्ण प्रयत्न करूँगा।'

आपके बाद बाबू शीतलप्रसादजीने विशद व्याख्यान द्वारा सेठजीके अभिप्रायकी पुष्टि की। यहाँ आपको बाबू लिखनेका यह तात्पर्य है कि उस समय आप बाबू ही थे। जैनधर्मके प्रसारमें आपकी अद्वितीय लगन थी। आपने प्रतिज्ञा की थी कि मैं आजीवन हर तरहसे इस विद्यालयकी सहायता करूँगा और वर्षमें दो चार बार यहाँ आकर निरीक्षण द्वारा इसकी उन्नतिमें पूर्ण सहयोग दूँगा। यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि आपने अपनी उक्त प्रतिज्ञाका आजीवन निर्वाह किया। आप जहाँ जाते थे विद्यालयको एक मुश्त तथा मासिक चन्दा भिजवाते थे। जहाँ पर चतुर्मास करते थे वहाँसे हजारों रुपये विद्यालयको भिजवाते थे। कुछ दिन

बाद आप ब्रह्मचारी हो गये, परन्तु विद्यालयको न भूले—उसकी सहायता निरन्तर करते रहे। वर्षोंतक आप विद्यालयके अधिष्ठाता रहे। समयकी बलिहारी है कि ऐसा उदार महानुभाव कुछ समय बाद विधवाविवाहका पोषक हो गया। अस्तु, यहाँ उसकी कथा करना मैं उचित नहीं समझता। यद्यपि इस एक बातके पीछे जैन समाजमें आपकी प्रतिष्ठा कम होने लगी फिर भी आपकी श्रद्धा दिगम्बर धर्ममें आजन्म रही। आपने धर्मप्रचारके लिये निरन्तर परिश्रम किया। ब्रह्मा व लंकामें जाकर आपने दिगम्बर जैनधर्मका प्रचार किया।

इसी उद्घाटनके समय श्रीमोतीलालजी देहलीवालोंने भी विद्यालयके प्रारम्भमें सहायता प्रदान करनेका आश्वासन दिया। इस तरह विद्यालयका उद्घाटन सानन्द सम्पन्न हो गया। पठनक्रम क्वीन्स कालेज बनारसका रहा। विद्यालयको सहायता भी अच्छी मिलने लगी, भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तसे छात्र आने लगे।

इसी विद्यालयके मुख्य छात्र पण्डित बंशीधरजी साहब हैं जो कि आज इन्दौरमें श्रीमान् सर सेठ हुकुमचन्द्रजी साहबके प्रमुख विद्वान् हैं। आप बड़े ही प्रतिभाशाली हैं। आपके ही द्वारा समाजमें सैकड़ों छात्र गोम्मटसारादि महान् ग्रन्थोंके ज्ञाता हो गये हैं। आपकी प्रवचनशैली अद्भुत है। आप विद्वान् ही नहीं, त्यागी भी हैं। अब आपने पञ्चमी प्रतिमा ले ली है। अपने पुत्रको आपने एम. ए. तक अंग्रेजी पढ़ाई है और साथ ही संस्कृतमें दर्शनाचार्य भी बनाया है। आपके सुपुत्रका नाम श्री पं० धन्यकुमार है जो आजकल इन्दौरमें प्रधानाध्यापक है। श्रीमान् पं० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य भी इसी विद्यालयके छात्र हैं जो अद्वितीय प्रतिभाशाली हैं। सहारनपुरमें श्रीमान् लाला प्रद्युम्नकुमारजीके मुख्य विद्वान् हैं। आपने अनेक स्थानोंपर शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की है। बहुतसे छात्रोंको न्यायशास्त्रमें विद्वान् बनाया है तथा भी

श्लोकवार्तिककी भाषा-टीका की है। श्री जम्बू विद्यालयका उद्घाटन आप हीके द्वारा हुआ था। आज कल आप सहारनपुर-में ही निवास करते हैं। इनके सिवाय श्रीमान् पं० देवकीनन्दनजी व्याख्यानवाचस्पति भी इसी विद्यालयके छात्र थे। आज आप भी श्रीमान् सर सेठ हुकुमचन्द्रजीके प्रधान पण्डितोंमें हैं। आपके द्वारा कारञ्जा गुरुकुलकी जो उन्नति हुई सो सर्वविदित है। परवारसभा भी आपके द्वारा समय-समयपर उन्नत हुई है।

अधिष्ठाता बाबा भागीरथजी

कुछ दिन बाद पण्डित दीपचन्द्रजी वर्णी, जो कि यहाँ के सुपरिन्टेन्डेन्ट थे, कारण पाकर मुझसे रुष्ट हो गये। यद्यपि मैं उनकी आज्ञामें चलता था, परन्तु मूर्खतावश कभी-कभी गलती कर बैठता था। फल उसका यह हुआ कि आप विद्यालयको छोड़ कर इलाहाबाद चले गये। उनके बाद वैसा श्रम करने वाला सुपरिन्टेण्डेण्ट वहाँ पर आज तक नहीं आया। उनके अनन्तर श्रीमान् बाबा भागीरथजी अधिष्ठाता हो गये। आप विलक्षण त्यागी थे। आपके आजन्म नमक और मीठाका त्याग था। आप निरन्तर स्वाध्यायमें रत रहते थे, कोई हो, आप सत्य बात कहनेमें कभी नहीं चूकते थे। आपने मेरठ प्रान्तसे विद्यालयके लिए हजारों रुपये भेजे। मैं तो आपका अनन्यभक्त प्रारम्भसे ही था।

आपका शासन इतना कठोर था कि अपराधके अनुकूल दण्ड देनेमें आप स्नेहको तिलाञ्जलि दे देते थे। एक बारकी कथा है कि—सिरसी जिला ललितपुरके एक छात्रने होलीके दिन एक छात्रके गालपर गुलाल लगा दी। लगाते हुए बाबाजीने आँखसे देख लिया। आपने उसे बुलाया और प्रश्न किया कि तुमने इस छात्रके गालमें क्यों गुलाल लगाई ? वह उत्तर देता है—'महा-

राज ! होलीका दिवस था, इससे यह हरकत हो गई। ये दिन आमोद-प्रमोदके हैं। इनमें ऐसी त्रुटियाँ होती रहती हैं। वर्ष भरमें यह एक दिन ही तो हम लोगोंको आमोद-प्रमोदके लिए मिलता है। मैंने कोई गुरुतम अपराध नहीं किया, इसपर इतनी कुपितता भव्य नहीं।' बाबाजी महाराजने कहा—'आप किस अवस्थामें हो ?' छात्रने उत्तर दिया—'छात्रावस्थामें हूँ।' तब बाबाजी महाराजने कहा—'तुम छात्र हो, ब्रह्मचारी हो, अध्ययन करना ही तुम्हारा तप है, तुमसे संसारकी भावी उन्नति होनेवाली है, ऐसे कुत्सित कार्य करना क्या तुम्हारे पदके योग्य हैं ? हमारे भारतवर्षके पतनके कारण यही कार्य तो हुए हैं। यदि हमारी छात्र सन्तति सुमार्गपर आरूढ़ रहती तो यह अवसर भारतवर्षको न आता। आजके दिन जवान ही क्यों, बूढ़े और बालक भी अश्लील वाक्यों द्वारा जो अनर्थ करते हैं उसे कहते हुए शर्म आती है। जिस देशमें मनुष्योंकी ऐसी निन्द्य प्रवृत्ति हो वहाँ कल्याण होना बहुत दूर है।' छात्र बोला—'ऐसे अपराधको आप इतना गुरुतम रूप देते हैं यह बुद्धिमें नहीं आता।' बाबाजी महाराज बोले-'आप कृपा कर शीघ्र ही विद्यालयसे पृथक् होकर जहाँ आपकी इच्छा हो चले जाइये। ऐसे छात्रोंसे विद्यालयकी क्या उन्नति होगी ?' वह छात्र चला गया, छात्रलोग एकदम भय-भीत हो गये और उस दिन से हँसी मजाकका नाम न रहा।

सब छात्र बाबाजीकी आज्ञा पालन करते थे। यद्यपि मैं बाबा जीके मुँह लगा था तथापि भयभीत अवश्य रहता था। एक दिनकी बात है—बनारसमें गङ्गाके पार रामनगर है। वहाँ पर महाराज बनारस रहते हैं। गङ्गाके तट पर आपका महल है। आपके रामनगर में आश्विन मास भर रामलीला होती है और उसमें १०००००)रु० खर्च होता है। अयोध्या आदिसे बड़ी बड़ी साधुमण्डली आती है। आश्विन सुदि ९ को मेरे मनमें आया कि रामलीला देखनेके लिये

रामनगर जाऊँ। सैकड़ों नौकाएँ गङ्गामें रामनगरको जा रही थीं, मैंने भी जानेका विचार कर लिया। ५ या ६ छात्रोंको भी साथमें ले लिया। उचित तो यह था कि बाबाजी महाराजसे आज्ञा लेकर जाता, परन्तु महाराज सामायिकके लिये बैठ गये, बोल नहीं सकते थे। अतः मैंने सामने खड़े होकर प्रणाम किया और निवेदन किया कि 'महाराज ! आज रामलीला देखनेके लिये रामनगर जाते हैं, आप सामायिकमें बैठ चुके, अतः आज्ञा न ले सके।'

वहाँसे शनैः शनैः गङ्गाघाट पर पहुँचे और नौकामें बैठ गये। नौका गङ्गाजीमें मल्लाह द्वारा चलने लगी। नौका घाटसे कुछ ही दूर पहुँची थी कि इतनेमें वायुका वेग आया और नौका डगमगाने लगी। बाबाजीकी दृष्टि नौका पर गई और उनके निर्मल मनमें एकदम यह विकल्प उठा कि अब नौका डूबी। बड़ा अनर्थ हुआ, इस नादानको क्या सूझी ? जो आज इसने अपना सर्वनाश किया और छात्रोंका भी। हे भगवन ! आप ही इस विघ्नसे छात्रोंकी रक्षा कीजिये। माला भूल गये, सामायिकका यही एक विषय रह गया कि ये छात्र निर्विघ्न यहाँ लौट आवें जिससे पाठशाला कलङ्कित न हो....इत्यादि विकल्पोंको पूरा करते करते सामायिककाल पूर्ण किया। पश्चात् सुपरिन्टेन्डेन्टसे कहा कि 'तुमने क्यों जाने दिया ?' उन्होंने कहा कि 'महाराज ! हमें पता नहीं कब चले गये ?' इस प्रकार बाबाजीकी जितने कर्मचारी वहाँ थे सबसे झड़प होती रही। इतनेमें रात्रिके १० बज गये, हम लोग रामनगरसे वापिस आगये। आते ही साथ बाबाजीने कहा—'पण्डितजी ! कहाँ पधारे थे ?'

यह शब्द सुनकर हम तो भयसे अवाक् रह गये, महाराज कभी तो पण्डितजी कहते नहीं थे, आज कौनसा गुरुतम अपराध होगया जिससे महाराज इतनी नाराजी प्रकट कर रहे हैं ?' मैंने कहा—'महाराज ! रामलीला देखने गये थे।' उन्होंने कहा—'किससे छुट्टी लेकर गये थे ?' मैंने कहा—'उस समय सुपरिन्टेन्डेन्ट

साहब तो मिले न थे और आप सामायिक करने लग गये थे, अतः आपको प्रणाम कर आज्ञा ले चला गया था। मुझसे अपराध अवश्य हुआ है, अतः क्षमाकी भिक्षा माँगता हूँ।' महाराज बोले- 'यदि नौका डूब जाती तो क्या होता ?' मैंने कहा—'प्राण जाते।' उन्होंने कहा—'फिर क्या होता ?' मैंने मुसकराते हुए कहा—'महाराज ! जब हमारे प्राण ही जाते तब क्या होता, वह आप जानते या जो यहाँ रहते वे जानते, मैं क्या कहूँ ?' 'इस गुस्ताखीसे पेश आते हो·······' महाराजने उच्च स्वरमें कहा। मैंने कहा- 'महाराज ! मैं क्या मिथ्या उत्तर देता, भला आप ही बतलाइये जब मैं डूब जाता तब उत्तर कालकी बात कैसे कहता ? हाँ, अब जीवित बच गया हूँ। यदि आप पूछें कि अब क्या होगा ? तो उत्तर दे सकता हूँ ?' उन्होंने उपेक्षा भावसे पूछा—'अच्छा, अब क्या होगा ? बताओ।' मुझे कह आया कि 'महाराज ! मैं निमित्तज्ञानी नहीं, अवधिज्ञानी भी नहीं तब क्या उत्तर दूं कि क्या होगा !' बाबाजीने उच्च स्वरमें कहा—'बड़े चालाक हो, ठीक ठीक बोलते भी नहीं, अपराध भी करो और विनयके साथ उत्तर भी न दो।' मैंने साहसके साथ कहा—'महाराज। आप ही कहिये—मैंने कौनसी उद्दण्डता की। यही तो कहा कि मैं क्या जानूँ ? मैं मनःपर्ययज्ञानी तो नहीं कि हृदयकी बात बता सकूँ। हाँ, मेरे मनमें जो विकल्प हुआ है उसे बता सकता हूँ, क्योंकि वह मेरे मानस प्रत्यक्षका विषय है और आपके मनमें जो है वह आपकी बाह्य चेष्टासे अनुमित हो रहा है। यदि आज्ञा हो तो कह दूँ।' अच्छा कहो····बाबाजीने शान्त होकर कहा। मैं कहने लगा—'मेरे मनमें तो यह विकल्प आया कि आज तुमने महान् अपराध किया है जो बाबाजीकी आज्ञाके बिना रामलीला देखनेके लिये रामनगर गये। यदि आज नौका डूब जाती तो पाठशालाध्यक्षोंकी कितनी निन्दा होती ? अतः इस अपराधमें बाबाजी तुम्हें पाठशालासे

निकाल देवेंगे। तुम धोबीके कुत्ते जैसे हुए—न घरके न घाटके। फिर भी विचार किया कि एकबार बाबाजीसे अपराध क्षमाकी प्रार्थना करो, संभव है, वे दयालु हैं अतः अपराधका दण्ड देकर क्षमा कर देवें···। यह विकल्प तो मेरे मनमें आया और आपकी आकृति देखनेसे यह निश्चय होता है कि इस अपराधका मूल कारण यही छात्र है इसे इस पाठशालासे पृथक् कर दिया जावे। शेष छात्रोंका उतना अपराध नहीं, वे तो इसीके बहकाये चले गये, अतः उन छात्रोंका केवल एक मासका घी जुर्माना किया जावे। परन्तु यह बहुत बातें बनावेगा, अतः सुपरिन्टेन्डेण्टसाहब अभी दवात-कलम-कागज लाओ और पं० जैनेन्द्रकिशोरजी मंत्री आराको एक पत्र लिखो कि आज गणेशप्रसाद छात्रने महती गलती की अर्थात् गङ्गामें रामनगर गया, बीचमें पहुँचते ही नौका डगमगाने लगी, दैवयोगसे बचकर आया, अतः ऐसे उद्दण्ड छात्रको रखना पाठशालाको कलंकित करना है। यह सब सोचकर आज रात्रिके ११ बजे इसे पृथक् करते हैं। आपके मनमें यह है···ऐसा मुझे भान होता है।' बाबाजीने कुछ विस्मयके साथ कहा कि 'अक्षरशः सत्य कहते हो।'

उन्होंने सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबको बुलवाया और शीघ्र ही जैसा मैंने कहा था वैसा ही आनुपूर्वी पत्र लिखकर उसी समय लिफाफामें बन्द किया और उसके ऊपर लेटफीस लगाकर चपरासीके हाथमें देते हुए कहा कि 'तुम इसे इसी समय पोस्ट-आफिसमें डाल आओ।' मैंने बहुत ही विनयके साथ प्रार्थना की कि महाराज! अबकी बार माफी दी जावे, आयति-कालमें अब ऐसा अपराध न होगा। यहाँसे पृथक् होने पर मेरा पढ़ना-लिखना सब चला जावेगा। अनजान मनुष्यसे अपराध होता है और महाराज! आपसे ज्ञानी महात्मा उसे क्षमा करते हैं। आप महात्मा हैं, हम क्षुद्र छात्र हैं। यदि क्षुद्र प्रकृतिके न होते तो

आपकी शरणमें न आते। हमने कोई अनाचार तो किया नहीं, रामलीला ही तो देखने गये थे। यदि अपराध न करते तो यह नौबत न आती।' महाराजने यही उत्तर दिया कि अपील कर लेना। मैंने कहा—'न मुझे अपील करना है और न सपील। जो कुछ कहना था आपसे निवेदन कर दिया। यदि आपके दयाका संचार हो तो हमारा काम बन जावे, अन्यथा जो श्रीवीरप्रभुने देखा होगा वही....।' बाबाजीने बीचमें ही रोकते हुए कहा—'चुप रहो न्यायमें अनुचित दया नहीं होती। यदि अनुचित दयाका प्रयोग किया जावे तो संसार कुमार्गरत हो जावे, समाजका बन्धन टूट जावे। प्रबन्धकर्ताओंको बड़े-बड़े अवसर आते हैं। यदि वे दयावश न्यायमार्गका उल्लंघन करने लग जावें, तो कोई भी कार्य व्यवस्थित नहीं चल सकते।' मैंने कहा—'महाराज! अब तो एक बार क्षमा कर दीजिए, क्या अपवाद-शास्त्र नहीं होता?' बाबाजी एकदम गरम हो गये—जोरसे बोले—'तुम बड़े नालायक हो, यदि अब बहुत बकवक किया तो बेत लगाके निकलवा दूँगा। तुम नहीं जानते, मेरा नाम भागीरथ है। और मैं व्रजका रहनेवाला हूँ। अब तुम्हारी इसीमें भलाई है कि यहाँसे चले जाओ।' मैंने कुछ तने हुए स्वरमें कहा—'महाराज! जितनी न्यायकी व्यवस्था है वह मेरे ही वास्ते थी? अच्छा, जो आपकी इच्छा। मैं जाता हूँ, किन्तु एक बात कहता हूँ कि आप पीछे पछतावेंगे।'

बाबाजीने पुनः बीचमें ही बात काट कर कहा 'चुप रहो, उपदेश देने आया है।' 'अच्छा महाराज! जाता हूँ'....कहकर शीघ्र ही बाहर आया और चपरासीसे, जो कि बाबाजीकी चिट्ठी डाँकमें डालनेके लिए जा रहा था, मैंने कहा—'भाई क्यों चिट्ठी डालते हो, बाबाजी महाराज तो क्षणिक रुष्ट हैं, अभी प्रसन्न हो जावेंगे, यह एक रुपया मिठाई खानेको लो और चिट्ठी हमें दे दो।' वह भला आदमी था, चिट्ठी हमें दे दी और दस मिनट

बाद आकर बाबाजीसे कह गया कि 'चिट्ठी डाल आया हूँ।' बाबाजी बोले—'अच्छा किया पाप कटा।' मैं इन विरुद्ध वाक्यों को श्रवण कर सहम गया। हे भगवन्! क्या आपत्ति आई जो मुझे हार्दिक स्नेह करते थे, आज उन्हींके श्रीमुखसे यह निकले कि पाप कटा, अर्थात् यह इस स्थानसे चला जावेगा तो पाठशाला शान्तिसे चलेगी।

छात्रसभामें मेरा भाषण

मैंने कहा—'महाराज! प्रणाम, अब जाता हूँ। क्या मैं छात्रगणोंसे अन्तिम क्षमा माँग सकता हूँ। यदि आज्ञा हो तो छात्रसमुदायमें कुछ भाषण करूँ और चला जाऊँ।' बाबाजीने कुछ उदासीनतासे कहा—'अच्छा, जो कहना हो शीघ्रतासे कहकर १५ मिनटमें चले जाना!'

घण्टी बजी, सब छात्र एकत्र हो गये, एक छात्रने मङ्गलाचरण किया। मैंने कहा—'सनियम सभा होनेकी आवश्यकता है अतः एक सभापति अवश्य होना चाहिये, अन्यथा हुल्लड़बाजी होनेकी सम्भावना है।' एक छात्रने प्रस्ताव किया कि सभापतिका आसन श्रीयुत पूज्य बाबाजी ग्रहण करें, एकने समर्थन किया, सबने अनुमोदना की, मैं विरोधमें रहा, परन्तु मेरी कौन सुनता था? क्योंकि मैं अपराधी था।

मैंने बाबाजी महाराजसे अनुमति माँगी, उन्होंने कहा—१५ मिनट भाषण करके चले जाओ।' 'चले जाओ' शब्द सुनकर बहुत खिन्न हुआ। अन्तमें साहस बटोर कर भाषण करनेके लिये खड़ा हुआ। प्रथम ही मङ्गलाचरणका पाठ किया—

'जानासि त्वं मम भवभवे यच्च यादृक् च दुःखं
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।

त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम् ॥'

'हे भगवन्! हमको भव भवमें जो और जिस प्रकारके दुःख हुए हैं उन्हें आप जानते हैं, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। यदि उन दुःखों का स्मरण किया जावे तो शस्त्रके घाव सदृश पीड़ा देते हैं, अतः इस विषयमें क्या करना चाहिये? वह आप ही के ऊपर छोड़ते हैं, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं, सर्वज्ञ ही नहीं सबके ईश हैं, ईश ही नहीं कृपावान् भी हैं। यदि केवल जाननेवाले होते तो हम प्रार्थना न करते। आप जाननेवाले भी हैं और तीर्थंकर प्रकृतिके उदयसे मोक्षमार्गके नेता भी। आशा है मेरी प्रार्थना निष्फल न होगी।'

महानुभाव बाबाजी महोदय! श्रीसुपरिन्टेन्डेन्ट महाशय! तथा छात्रवर्ग! मैं आपके समक्ष भव्य भावनासे प्रेरित होकर कुछ कहनेका साहस करता हूँ। यद्यपि सम्भव है कि मेरा कहना आपको यथार्थ प्रतीत न हो, क्योंकि मैं अपराधी हूँ, परन्तु यह कोई नियम नहीं कि अपराधी सदैव अपराधी ही बना रहे। जिस समय मैंने अपराध किया था उस समय अपराधी था न कि इस समय भी। इस समय तो मैं भाषण करनेके लिये मञ्च पर खड़ा हुआ हूँ अतः वक्ता हूँ, इस समय जो भी कहूँगा, विचार-पूर्वक ही कहूँगा।

पहले मैंने इष्टदेवको नमस्कार किया। उसका यह तात्पर्य है कि मेरे विघ्न पलायमान हों, क्योंकि मङ्गलाचरणका करना विघ्न विनाशक है। आप लोग यह न समझें कि मैं यहाँसे जो पृथक् किया जानेवाला हूँ वह विघ्न न आवे। वह तो कोई विघ्न नहीं, ऐसे विघ्न तो असाता कर्मके उदयसे आते हैं और असाता कर्मकी गणना अघातिया कर्ममें है वह आत्मगुणघातक नहीं। उस विघ्न से हमारी कोई क्षति नहीं। कल्पना करो कि यहाँसे पृथक् हो

गये—क्षेत्रान्तर चले गये। इसका यह अर्थ नहीं कि बनारससे ही चले गये। यहाँसे जाकर भेलूपुर ठहर सकते हैं और वहाँ रहकर भी अभ्यास कर सकते हैं। मङ्गलाचरण इसलिए किया है कि मैं बाबाजीके प्रति शत्रुत्वका भाव न रखूँ, क्योंकि वे मेरे परम मित्र हैं। ऐसी अवस्थामें उनसे मेरा वैरभाव हो सक्ता है, वह न हो, इसीलिये मङ्गलाचरण किया है।

आप इससे यह व्यङ्गय भी न निकालना कि बाबाजी महाराज! आप मेरे अवगुणोंको जानते हैं, मेरे स्वामी भी हैं और साथ ही दयालु भी, अतः मेरा अपराध क्षमा कर निकालनेकी आज्ञाको वापिस ले लेवें...कदापि मेरा यह अभिप्राय नहीं है।

जैनधर्म तो इतना विशाल और विशद है कि परमार्थ दृष्टि से परमात्मासे भी याचना नहीं करता, क्योंकि जैन सम्मत परमात्मा वीतराग सर्वज्ञ है। अब आप ही बतलावें कि जहाँ परमात्मामें वीतरागता है वहाँ याचनासे क्या मिलेगा? फिर कदाचित् आप लोग यह शका करें कि मङ्गलाचरण क्यों किया? उसका उत्तर यह है कि यह सब निमित्त कारणकी अपेक्षा कर्तव्य है न कि उपादानकी अपेक्षा। तथाहि—

'इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्
वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छाया तरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्
कश्छायया याचितयात्मलाभः॥

जब श्री धनंजय सेठ श्रीआदिनाथ स्वामी की स्तुति कर चुके तब अन्तमें कहते हैं कि हे देव! इस प्रकार मैं आपकी स्तुति करके दीनतासे कुछ वर नहीं माँगता, क्योंकि वर वहाँ माँगा जाता है जहाँ मिलनेकी सम्भावना होती है। आप तो उपेक्षक हैं—अर्थात् आपके न राग है न द्वेष है—आपके भाव ही देनेके

नहीं, क्योंकि जिसके भक्तमें अनुराग हो वह भक्तकी रक्षा करनेमें अपनी शक्तिका उपयोग कर सकता है, अतः आपसे याचना करना व्यर्थ है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि यदि वस्तुकी परिस्थिति इस प्रकार है तो स्तुति करना निष्फल हुआ। सो नहीं, उसका उत्तर यह है कि जैसे जो मनुष्य छायावृक्षके नीचे बैठ गया उसे छायाका लाभ स्वयमेव हो रहा है, उसको वृक्षसे छायाकी याचना करना व्यर्थ है। यहाँपर विचार करो कि जो मनुष्य वृक्षके निम्न भागमें बैठा है उसे छाया स्वयमेव मिलती है क्योंकि सूर्यकी किरणोंके निमित्तसे जो प्रकाश परिणमन होता था वह किरणें वृक्षके द्वारा रुक गईं, अतः वृक्षके तलकी भूमि स्वयमेव छायारूप परिणमनको प्राप्त हो गई। यद्यपि तथ्य यही है फिर भी यह व्यवहार होता है कि वृक्षकी छाया है। क्या यथार्थमें छाया वृक्षकी है? छायारूप परिणमन तो भूमिका हुआ है। इसी प्रकार जब हम रुचिपूर्वक भगवान्‌को अपने ज्ञानका विषय बनाते हैं तब हमारा शुभोपयोग निर्मल होता है। उसके द्वारा पाप प्रकृतिका उदय मन्द पड़ जाता है अथवा अत्यन्त विशुद्ध परिणाम होनेसे पाप प्रकृतिका संक्रमण होकर पुण्यरूप परिणमन हो जाता है। यद्यपि इस प्रकारके परिणमनमें हमारा शुभ परिणाम कारण है, परन्तु व्यवहार यही होता है कि प्रभुवीतराग द्वारा शुभ परिणाम हुए अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग शुभ परिणामोंमें निमित्त हुए। यद्यपि उन शुभ परिणामोंके द्वारा हमारा कोई अनिष्ट दूर होता है, परन्तु व्यवहार ऐसा ही होता है कि भगवान्‌ने हमारा सङ्कट टाल दिया। जब कि यह सिद्धान्त है तब हम आप लोगोंसे कदापि यह प्रार्थना नहीं कर सकते कि आप बाबाजीसे यह सिफारिश करें, कि वे हमारा अपराध क्षमा कर पाठशालामें ही रहनेकी अनुमति दे देवें, क्योंकि समयसार में कहा है—

'सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्मोदयान्मरणजीवनदुःखसौख्यम् ।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्यान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥'

इस लोकमें जीवोंके जो मरण, जीवन, दुःख और सुख होते हैं वे सब स्वकीय स्वकीय कर्मोंके उदयसे होते हैं....ऐसा होनेपर भी जो ऐसा मानते हैं कि परके द्वारा परके जीवन, मरण, दुःख और सुख होते हैं....यह अज्ञान है।'

बाबाजीके प्रति मेरी यह दृढ़ श्रद्धा है कि उन्होंने मेरा कुछ नहीं किया और न अब आगे ही कुछ कर सकते हैं। मेरा असाताका उदय था, उन्होंने पृथक् करनेका आदेश दे दिया और कौन देख आया, साताका उदय आ जावे तो उनके ही श्रीमुखसे निकल पड़े कि तुम्हारा अपराध क्षमा किया जाता है। यह बात असम्भव भी नहीं, कर्मोंकी गति विचित्र है। जैसे देखिये प्रातः काल श्रीरामचन्द्रजी महाराजको युवराज-तिलक होनेवाला था, जहाँ बड़े-से-बड़े ऋषिलोग मुहूर्त शोधन करनेवाले थे, किसी प्रकारकी सामग्रीकी न्यूनता न थी, पर हुआ क्या ? सो पुराणोंसे सबको विदित है। किसी कविने कहा भी है।

'यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति
यच्चेतसापि न कृतं तदिहाभ्युपैति
प्रातर्भवामि वसुधाधिपचक्रवर्ती
सोऽहं व्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी ॥

इत्यादि बहुत कथानक शास्त्रोंमें मिलते हैं। जिन कार्योंकी सम्भावना भी नहीं वह आकर हो जाते हैं और जो होनेवाले हैं वह क्षणमात्रमें विलीन हो जाते हैं, अतः मैं आप लोगोंसे यह भिक्षा नहीं चाहता कि बाबाजीसे मेरे विषयमें कुछ कहें।

कहाँ तो यह मनोरथ कि इस वर्ष अष्टसहस्रीमें परीक्षा देकर अपनी मनोवृत्तिको पूर्ण करेंगे एवं देहातमें जाकर पद्मपुराणके स्वाध्याय द्वारा ग्रामीण जनताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करेंगे और कहाँ यह बाबाजीका मर्मघाती उपदेश।""कहाँ तो बाबाजी से यह घनिष्ट सम्बन्ध कि बाबाजी मेरे बिना भोजन न करते थे और कहाँ यह आज्ञा कि निकल जाओ....पाप कटा। यह उनका दोष नहीं, जब अभाग्यका उदय आता है तब सबके यही होता है। अब इस रोनेसे क्या लाभ ? आप लोगोंसे हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा, आप लोगोंके सहवाससे अनेक प्रकारके लाभ उठाये। अर्थात् ज्ञानार्जन, सिंहपुरी-चन्द्रपुरीको यात्रा, पठन-पाठनका सौकर्य और सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि आज स्याद्वाद पाठशाला विद्यालयके रूपमें परिणत हो गई, जिन ग्रन्थोंके नाम सुनते थे वे आज पठन-पाठनमें आगये। जैसे आप्तमीमांसा, आप्तपरीक्षा, परीक्षामुख, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, साहित्यमें चन्द्रप्रभ, धर्मशर्माभ्युदय, यशस्तिलकचम्पू आदि इन सबके प्रचारसे यह लाभ हुआ कि जहाँ काशीमें जैनियोंके नामसे पण्डितगण नास्तिक शब्दका प्रयोग कर बैठते थे आज उन्हीं लोगों द्वारा यह कहते सुना जाता है कि जैनियोंमें प्रत्येक विषयका उच्चकोटिका साहित्य विद्यमान है। हम लोग इनकी व्यर्थ ही नास्तिकोंमें गणना करते थे। इनके यहाँ परमात्माका स्वरूप बहुत ही विशेषरूपसे प्रतिपादित किया गया है। न्यायशास्त्रमें तो इनकी वर्णनशैली कितनी गम्भीर और सरल है कि जिसको देखते ही जैनाचार्योंके पाण्डित्यकी प्रशंसा बृहस्पति भी करना चाहे तो नहीं कर सकता। अध्यात्मका वर्णन वर्णनातीत है...यह सब आप छात्र तथा बाबाजीका उपकार है, जिसे समाजको हृदयसे मानना चाहिये। मैं बाबाजीको कोटिशः धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपने धर्मध्यानके कालको गौण कर

दिल्ली प्रान्तसे पाठशालाको धनकी महती सहायता पहुँचाई। इतना ही उपकार आपका नहीं, किन्तु बहुत काल यहाँ रहकर छात्रोंको सच्चरित बनानेमें आप सहयोग भी देते हैं। यह ही नहीं, आपके द्वारा जो यात्रीगण पाठशालाका निरीक्षण करनेके लिये आते हैं उन्हें संस्थाका परिचय देकर उनसे सहायता भी कराते हैं। आपका छात्रोंसे लेकर अध्यापकवर्ग तथा समस्त कर्मचारीवर्ग-के साथ समान प्रेम रहता है। मेरे साथ तो आपका सर्वदा स्नेहमय व्यवहार रहा, परन्तु अब ऐसा अभाग्योदय आया कि आपने एकदम मुझे पाठशालासे पृथक् कर दिया।

बन्धुवर! यहाँ पर मुझे दो शब्द कहना है, आशा है आप लोग उन्हें ध्यानपूर्वक श्रवण करेंगे। मैंने इस योग्य अपराध नहीं किया है कि निकाला जाऊँ! प्रथम तो मैंने आज्ञा ले ली थी। हाँ, इतनी गलती अवश्य हुई कि सामायिकके पहले नहीं ली थी। फिर भी इस बातकी चेष्टा की थी कि सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबसे आज्ञा ले लूँ, परन्तु वे समय पर उपस्थित न थे, अतःमैं बिना किसीकी आज्ञाके ही चला गया।

आज रामलीलाका अन्तिम दिवस था। रामचन्द्रजी रावण पर विजय प्राप्त करेंगे, यह देखना अभीष्ट था और इसका अभिप्राय यह था कि इतना वैभव-शक्तिशाली रावण श्रीरामचन्द्रजीसे किस प्रकार परास्त होता है। मैंने वहाँ जाकर देखा कि रामके द्वारा रावण पराजित हुआ। मैंने तो यह अनुभव किया कि रावणने श्रीरामचन्द्रजी महाराजकी सीताका अपहरण किया, अतः वह चोर था, तथा उसके भाव मलिन थे, निन्द्य थे जो मन्दोदरी आदि अनेक विद्याधरी महिलाओंके रहने पर भी सीताको बलात्कार ले गया।

पापके सुनते ही मनुष्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती है: जटायु पक्षीने अपनी चोंचसे सीताजीकी रक्षा करनी चाही, परन्तु उस

दुष्टने अनाथ पक्षी पर भी आघात कर दिया। इस महापापका फल यह हुआ कि पुरुषोत्तम रामचन्द्रजीके द्वारा एक महाप्रतापी रावणका घात हुआ। यह कथा रामायणकी है। हमारे यहाँ रावणका घात श्रीलक्ष्मणके चक्रद्वारा हुआ। यह चक्र रावणका ही था। जब उसके समस्त अस्त्र-शस्त्र विफल हो चुके तब अन्तमें उसने इस महाशस्त्र—चक्रका उपयोग लक्ष्मणपर किया, परन्तु श्री लक्ष्मणके प्रबल-पुण्यसे वह चक्र इनके हाथमें आ गया। उस समय श्रीरामचन्द्रजी महाराजने अतिसरल-निष्कपट-मधुर-परहितरत वचनोंके द्वारा रावणको सम्बोधन कर यह कहा कि हे रावण! अब भी कुछ नहीं गया। अपना चक्ररत्न वापिस ले लो। आपका राज्य है, अतः सब ही वापिस लो। आपके भ्राता कुम्भकर्ण आदि तथा पुत्र मेघनाद आदि जो हमारे यहाँ बन्दीरूपमें हैं उन्हें वापिस ले जाओ। आपका जो भाई बिभीषण हमारे पक्षमें आगया है उसे भी सहर्ष ले जाओ। केवल सीताको दे दो। जो नरसंहारादि तुम्हारे निमित्तसे हुआ है उसकी भी हम अब समालोचना नहीं करना चाहते। हम सीताको लेकर किसी वनमें कुटी बनाकर निवास करेंगे और तुम अपने राजमहलमें मन्दोदरी आदि पट्ट-रानियोंके साथ आनन्दसे जीवन बिताओ। हजारों स्त्रियोंको वैधव्यका अवसर मत आने दो। आशा है हमारे प्रस्तावको अङ्गीकार कर उभय लोकमें यशके भागी बनोगे।'

रावण महाराज रामचन्द्रजीका यह भाषण सुनकर आग बबूला हो गया और कहने लगा कि आपने यह कुम्भकारका चक्र पाकर इतने अभिमानसे सम्भाषण किया? आपकी जो इच्छा हो सो करो। रावण कभी भी नतमस्तक नहीं हो सकता 'महतां हि मानं धनम्।' हमको मरना स्वीकार है, परन्तु आपके सामने नतमस्तक होना स्वीकार नहीं। जो लक्ष्मणकी इच्छा हो उसे करे।

इसके बाद जो हुआ सो आप जानते ही हैं। यह कथा छात्रोंसे

कही और बाबाजी महाराजसे कहा कि 'आज इस रामलीलाको देखकर मेरे मनमें यह भावना हो गई कि पापके फलसे कितना ही वैभवशाली क्यों न हो अन्तमें पराजित हो ही जाता है। जितने दर्शक थे सबने रामचन्द्रजीकी प्रशंसा की और रावण तथा उसके अनुयायीवर्गकी निन्दा की। वह बात प्रत्येक दर्शकके हृदयमें समा गई कि परस्त्रीविषयक इच्छा सर्वनाशका कारण होती है। जैसा कहा भी है—

'जाही पाप रावणके न छोना रह्यो भौना मांहि।
ताही पाप लोकन खिलौना कर राख्यो है।'

इत्यादि लोगोंमें परस्पर वार्तालाप होती थी। यह बात, जिसने उस समयका दृश्य देखा, वही जानता है। मेरे कोमल हृदयमें तो यह अच्छी परह समा गया कि पाप करना सर्वथा हेय है। इस रामायणके वांचनेसे यही शिक्षा मिलती है कि रामचन्द्रजीके सदृश व्यवहार करना, रावणके सदृश असत्कार्यमें नहीं पड़ना। जो श्री रामचन्द्रजी महाराजका अनुकरण करेगा वही संसारमें विजयी होगा और जो रावणके सदृश व्यवहार करेगा वह अधःपतनका भागी होगा। इत्यादि शिक्षाको लेकर आ रहा था और यह सोच-सोचकर मनमें फूला न समाता था कि बाबाजी महाराजको आजके दृश्यका समाचार सुना कर कुछ विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त करूँगा। पर यहाँ आकर विपरीत ही फल पाया। 'गये तो छब्बे होनेको पर रह गये दुबे' या पांसा पाड़ते समय इरादा तो किया था 'पौ बारह आवें पर आ गये तीन काना।' अस्तु, किसीका दोष नहीं, अपने कर्त्तव्यका फल पाया, परन्तु 'ककरीके चोरको कटार मारिये नहीं' इसे महाराज एकदम भूल गये। आप लोग ही बतावें कि मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया कि पाठशालासे निकाला जाऊँ, आप सबने इस विषयमें बाबाजीसे अणुमात्र भी प्रार्थना न की कि महाराज! इतना दण्ड देना उचित नहीं। आखिर यही न्याय किसी दिन आप

के ऊपर भी तो होगा। आप लोग साधु तो हैं नहीं कि किसी तमाशा आदिको देखने न जाते हों, परन्तु बलवान्‌के समक्ष किसीकी हिम्मत नहीं पड़ती।

बाबाजीका यह कहना है कि यदि नौका डूब जाती तो क्या होता ? सो प्रथम तो वह डूबी नहीं, अतः अब वह सम्भावना करना व्यर्थ ही है। हाँ,हमारा दण्ड करना था,जिससे भविष्यमें यह अपराध नहीं करते और विद्याध्ययनमें उपयोग लगाते। परन्तु बाबाजी क्या करें ? हमारा तीव्र पापका उदय आ गया, जिससे बाबाजी जैसे निर्मल और सरल परिणामी भी न्यायमार्गकी अवहेलना कर गये। यह मेरा हतभाग्य ही है कि जो मैं एक दिन स्याद्वाद विद्यालयके प्रारम्भमें बाबाजीको बनारस बुलानेमें निमित्त था और निमन्त्रण पत्रिकामें बाबाजीके नीचे जिसका नाम भी था, आज वार्षिक रिपोर्टमें उसी मेरे लिये लिखा जावेगा कि बाबा भागीरथजीकी अध्यक्षतामें गणेशप्रसादको अमुक अपराधमें पृथक् किया गया। अब मैं क्या प्रार्थना करूँ कि मेरा अपराध क्षमा कीजिये। यदि कोई अन्य होता तो उसकी अपील भी करता परन्तु यह तो निरपेक्ष साधु ठहरे,इनकी अपील किससे की जावे। केवल अपने परिणामों द्वारा अपने ही से अपील करता हूँ।

महान् प्रायश्चित्त

'हे आत्मन् ! यदि तूने पृथक् होने योग्य अपराध किया है तो व्याख्यान समाप्त होनेके बाद सबसे क्षमा याचना कर इसी समय यहाँसे चला जाना और यदि ऐसा अपराध नहीं है कि तू पृथक् किया जावे तो बाबाजीके श्रीमुखसे यह ध्वनि निकले कि तुम्हारा अपराध क्षमा किया जाता है, भविष्यमें ऐसा अपराध न करना....'इत्यादि विकल्प मनमें हो ही रहे थे कि बाबाजी उच्च स्वरसे बोल उठे—'बैठ जाओ समय हो गया,१५ मिनटके स्थान

पर ३० मिनट ले लिये।' मैंने नम्रताके साथ कहा—'महाराज! बैठा जाता हूँ, अब तो जाता ही हूँ, इतनी नाराजी क्यों प्रदर्शित करते हैं,मुझे एक श्लोक याद आ गया है,यदि आज्ञा हो, तो कह दूँ।' 'लज्जा नहीं आती,जो मनमें आया सो बोल दिया। व्याख्यान-देनेकी भी कला है, अभी कुछ दिन सीखो। आजकल विद्या-र्थियोंमें एक यह भी रोग लग गया है कि छात्रगणोंसे व्याख्यान देनेका भी अभ्यास कराया जाता है, शास्त्रप्रवचन कराया जाता है, व्याख्यानकी भी मुख्यता हो रही है। पाठ्यपुस्तकोंका अभ्यास हो, चाहे न हो,पर यह विषय होना ही चाहिये। अच्छा, कह लो अन्तिम समय है फिर यह अवसर न आवेगा'……बाबाजीने उपेक्षाभावसे कहा। मैंने कहा—'महाराज! यह नहीं कहिये। नहीं मालूम अन्तमें क्या हो? इसका निश्चय न तो आपको है और न मुझे ही। मरते मरते हेमगर्भ दिया जाता है, कौन जाने बच जावे, अतः यह कहना आप जैसे त्यागी विवेकी पुरुषों द्वारा अच्छा नहीं लगता कि अन्तिम समय है जो कुछ कहना हो कह लो।' बाबाजी महाराज बोले—'रात्रि अधिक हो गई, सब छा-त्रोंको निद्रा आती है। यदि जल्दी न बोलोगे तो सभा भंग कर दी जावेगी।' मैं बोला—महाराज! इन छात्रोंको तो आज ही निद्रा जानेका कष्ट है, परन्तु मेरी तो सर्वदाके लिये निद्रा भंग हो गई। तथा आपने कहा कि रात्रि बहुत हो गई सो ठीक है, परन्तु रात्रिके बाद दिन तो आवेगा,मुझे तो सदाके लिए रात्रि हो गई।' बाबाजी बोले—'बोलता क्यों नहीं, व्यर्थकी बहस करता है।' मैंने कहा—'महाराज! आप जानते हैं मेरा तो सर्वनाश हो रहा है आपकी तो दो घण्टा ही रात्रि गई। आखिर बोलना ही पड़ा।' मैंने कहा—

'अपराधिनि चेत्क्रोधः क्रोधे क्रोधः कथं न हि।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां परिपन्थिनि॥'

किसी कविने कहा है—'यदि अपराधी व्यक्तिपर क्रोध करते हो तो सबसे बड़ा अपराधी क्रोध है, क्योंकि वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका शत्रु है। उसी पर क्रोध करना चाहिये।' कहनेका तात्पर्य यह है कि मैं आपके ऊपर क्रोध कर रहा हूँ और उसी कारण आप मुझे यहाँसे पृथक् कर रहे हैं, परन्तु सबसे बड़ा अपराध तो क्रोध है। वही मेरे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सबका नाश कर देगा अतः महाराज! मैं सानन्द यहाँ से जाता हूँ। न आपके ऊपर मेरा कोई वैरभाव है और न छात्रोंके ही ऊपर। बोलो श्रीमहावीरस्वामीकी जय।

अन्तमें महाराजजीको प्रणाम और छात्रोंको सस्नेह जय-जिनेन्द्र कर जब चलने लगा, तब नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा। न जाने बाबाजीको कहाँ से दयाने आ दबाया। आप सहसा बोल उठे—'तुम्हारा अपराध क्षमा किया जाता है तथा इस आनन्दमें कल विशेष भोजन खिलाया जावेगा।' मैंने भूली हुई बातकी याद दिलाते हुए कहा—'महाराज! यह सब तो ठीक है, परन्तु जो लिफाफा आरा गया है उसका क्या होगा? अतः मैं अन्तिम प्रणाम कर जाता हूँ, इसी प्रकार मेरे ऊपर कृपा रखना, संसारमें उदयकी बलवत्ता द्वारा अच्छे-अच्छे महानुभाव आपत्तिके जालमें फँस जाते हैं, मैं तो कोई महान् व्यक्ति नहीं।'

बाबाजी महाराज चुप रहे और कुछ देर बाद कहने लगे 'बात तो ठीक है, परन्तु हम तुम्हारा अपराध क्षमा कर चुके।' बादमें सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबसे कहने लगे कि दवात कलम लाओ और एक पत्र फिर मन्त्रीजीको लिख दो कि आज मैंने गणेशप्रसादको पाठशालासे पृथक् करनेकी आज्ञा दी थी और उसका पत्र भी आपको डाल चुका था, परन्तु जब यह जाने लगा और सब छात्रोंसे माफी माँगनेके लिये व्याख्यान देने लगा तब मेरा चित्त द्रवीभूत हो गया, अतः मैंने इसका अपराध क्षमा कर दिया तथा प्रसन्न

होकर दूसरे दिन विशिष्ट भोजनकी आज्ञा दी। अब आप प्रथम पत्रको मिथ्या मानना और नवीन पत्रको सत्य समझना। इस विषयमें कोई सन्देह नहीं करना, हम लोग त्यागी हैं—हमारी कषाय गृहस्थोंके सदृश स्थायी नहीं रहती। और चूँकि ऐसा करनेसे प्रबंध में गड़बड़ी हो जानेकी सम्भावना है, अतः आपको चाहिये कि मेरे स्थान पर अन्यको अधिष्ठाता बनावें।'

जब बाबाजी महाराज यह कह चुके तब मैंने नम्रतापूर्वक मायाचारी वाक्योंसे यह निवेदन किया कि 'महाराज! मैं तो आपके द्वारा निरपराधी हो चुका, अब आप यह पत्र न डालें और आपकी जब मेरे ऊपर दया है तब मेरा पठन-पाठन भी असाध्य नहीं। मैं आपका आभारी हूँ। बाबाजी बोले—'तुम्हें बोलनेका अधिकार नहीं, अनन्तर मैंने जो पत्र चपरासीके हाथसे ले लिया था उसे हाथमें लेकर बाबाजीसे निवेदन किया—'महाराज! यदि आप मेरे अपराधको क्षमा कर दें तो कुछ कहूँ।' महाराज बोले—'अच्छा, कहो।' मैं बोला—'महाराज! आपने जो पत्र चपरासीके हाथ पोस्ट आफिसमें डालनेके लिये दिया था उसे मैंने किसी प्रकार उससे ले लिया था। प्रथम तो उस चपरासीका अपराध क्षमा किया जावे, क्योंकि मैंने उसके साथ बहुत ही मायाचारीका व्यवहार किया, परन्तु उसने दया कर मुझे दे दिया। यह पत्र जो कि मेरे हाथमें है वही है, लीजिये, आपके श्रीचरणोंमें समर्पित करता हूँ तथा इस अपराधका दण्ड चाहता हूँ। बहुत भारी अपराध मैंने किया कि इस प्रकार आपके पत्रको मैंने दूसरेसे ले लिया। ऐसा भयंकर आदमी न जाने कब क्या कर बैठे?....यह आपके मनमें शङ्का हो सकती है, परन्तु महाराज! बात तो असलमें यह है कि मुझे विश्वास था—आप दयालु प्रकृतिके हैं। यदि मैं नम्र शब्दोंमें इनके समक्ष प्रार्थना करूँगा तो बाबाजी महाराज क्षमा देनेमें विलम्ब न करेंगे। अन्तमें वही हुआ। अब

पत्र डालनेकी आवश्यकता नहीं और न आपको अधिष्ठाता पदके त्यागकी इच्छा करना भी उचित है।'

बाबाजी मेरे वाक्योंको सुनकर प्रथम तो कुछ ध्यानस्थ रहे। बादमें बोले कि—'आपत्ति कालमें मनुष्य क्या-क्या नहीं करता''''इसका आज प्रत्यक्ष हो गया। धिक्कार इस संसारको जो कपटमय व्यवहारसे पूर्ण है। भाई! मैं तो माफी दे चुका, अब यदि दण्ड देता हूँ तो यह सब विवरण लिखना होगा। अन्ततोगत्वा तुम सदा अपराधी समझे जाओगे और मैं भी अयोग्य शासक। अतः अब न तो तुम्हें दण्ड देनेके भाव हैं और न ही इस पद पर मेरी काम करनेकी इच्छा है। मैं तुम्हें परम मित्र समझता हूँ, क्योंकि तुम्हारे ही निमित्तसे आज मैंने आत्मीय पदको समझा है। भविष्यमें कभी किसी संस्थाके अध्यक्षका पद ग्रहण न करूँगा और इस पदसे आज ही स्तीफा देता हूँ। चूँकि तुम मेरे परम मित्र हो, अतः तुम्हें भी यह शिक्षा देता हूँ कि परोपकार करना परन्तु अध्यक्ष न बनना, आगे तुम्हारी जो इच्छा हो सो करना। अभी इस अपराधका दण्ड स्वयं ले लो।' मैं बोला—'महाराज! मैंने जो किया सो इसी लोभसे कि बाबाजी महाराजके पत्रोंमें परस्पर विरोध न हो। जेब काटने-वालोंकी तरह यह मेरा पेशा नहीं था, फिर भी बाह्य दृष्टिसे देखनेवाले इसे न मानेंगे और मुझे इस अपराधका दण्ड ही देवेंगे, आपकी जो आज्ञा है कि इस अपराधका प्रायश्चित्त स्वयं कर लो...वह मुझे मान्य है। महाराज! कल जो सामूहिक भोजन होगा, मैं उसमें छात्रोंकी पंक्तिसे बाह्य स्थान पर बैठ कर भोजन करूँगा और भोजनोपरान्त छात्रगणके भोजनका स्थान पवित्र करूँगा। पश्चात् स्नान कर श्रीपार्श्वप्रभुका वन्दन करूँगा तथा एक मास पर्यन्त मधुर भोजन न करूँगा।'

बाबाजी बहुत प्रसन्न हुए छात्रगण भी हर्षित हो धन्यवाद

देने लगे। अनन्तर हम सब लोग सो गये। प्रातःकाल विशेष भोजन हुआ। सब लोग आनन्दसे पङ्क्ति भोजनमें एकत्रित हुए। मैंने जैसा प्रायश्चित लिया था उसीके अनुकूल कार्य किया। इसके बाद मैं आनन्दसे अध्ययन करने लगा और महाराज दूसरे ही दिन इस्तीफा देकर चले गये।

लाला प्रकाशचन्द्र रईस

कुछ दिनके बाद सहानपुरसे स्वर्गीय लाला रूपचन्द्रजी रईसके सुपुत्र श्रीप्रकाशचन्द्रजी बनारस विद्यालयमें अध्ययनके लिए आये। आप बड़े भारी गण्यमान्य प्रसिद्ध रईसके पुत्र थे, अतः जहाँ मैं रहता था उसीके सामनेकी कोठरीमें रहने लगे। जिसमें मैं रहता था वह श्रीमान् बाबू छेदीलालजी रईस बनारसवालों-का मन्दिर है। गङ्गाके तटपर बना हुआ मन्दिरका अनुपम और सुन्दर भवन अब भी बड़ा भला मालूम होता है। मन्दिरके नीचे धर्मशाला थी। वहीं पर एक कोठरीमें मैं ठहरा था और सामने-वाली कोठरीमें श्रीप्रकाशचन्द्रजी साहब ठहर गये। आप रईसके पुत्र थे तथा पढ़नेमें कुशाग्रबुद्धि थे। आपकी भोजनादि क्रिया रईसोंके समान थी। यदि आप छात्र बनकर बनारस रहते और विद्याध्ययनमें उपयोग लगाते तो इसमें सन्देह नहीं कि गिनती-के विद्वान् होते और इनके द्वारा जैनधर्मका विशेष प्रचार होता परन्तु भवितव्य दुर्निवार है। आपको विद्यालयका भोजन रुचि-कर नहीं हुआ, अतः आपकी पृथक् रसोई बनने लगी तथा रसो-इया लोग भी उनकी रुचिके अनुकूल ही सब कार्य करने लगे। पर यह निश्चित सिद्धान्त है कि पठनकार्यमें रसनालम्पटता भी बाधक है। यहाँ तक ही सीमा रहती तो कुछ हानि न थी, पर आप बहुत कुछ आगे बढ़ चुके थे।

एक दिन छात्रगण, मैं तथा आप प्रतिपदाकी छुट्टी होनेसे सायंकालके समय मन्दाकिनीके मन्दिर गये थे। वन्दना कर जिस मार्गसे वापिस लौट रहे थे उसमें एक नाटकगृह था। उस दिन 'हसीरे हिर्स' नाटक था। आप बोले—'चलो नाटक देख आवें।' हम छात्र लोगोंने कहा—'प्रथम तो हम लोगोंके पास पैसा नहीं, दूसरे सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब से छुट्टी नहीं लाये, अतः हम तो जाते हैं।' परन्तु आप तो स्वतंत्र प्रकृतिके निर्भय रईस-पुत्र थे, अतः कहने लगे—'हम तो नाटक देखकर ही आवेंगे।' हम लोग तो उसी समय चले गये पर आप नाटक देखकर रात्रिके दो बजे भदैनीघाट पहुँचे। प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर पढ़नेके लिये चले गये।

लाला प्रकाशचन्द्रजी केवल साहित्यग्रन्थ पढ़ते थे। धनिक होनेसे सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबका भी आपपर कोई विशेष दबाव नहीं था। अध्यापकगण यद्यपि आपपर इस बातका बहुत कुछ प्रभाव डालते थे कि केवल साहित्य पढ़नेसे विशेष लाभ नहीं। इसके साथ न्याय और धर्मशास्त्रका भी अध्ययन करो, परन्तु आप बातोंमें ही टाल देते थे और धर्मशर्माभ्युदयके चार या पाँच श्लोक पढ़कर अपनेको छात्र-गणोंमें मुख्य समझने लगे थे।

जिस दिनसे आप नाटक देखकर आये, न जाने क्यों उस दिनसे आपकी प्रवृत्ति एकदम विरुद्ध हो गई। आपके दो ही काम मुख्य रह गये—१ दिनको भोजनके बाद चार बजे तक सोना और रात्रिको बारह बजे तक नाटक देखना, पश्चात् दो घण्टा कहाँ पर बिताते थे? भगवान् जाने, ढाई बजे निवास स्थान पर आते थे।

एक दिन बड़े आग्रहके साथ हमसे बोले—'नाटक देखने चलो।' मैंने कहा—'मैं नहीं जाता, आप तो ३) की कुर्सी पर आसीन होंगे और हम ।।) के टिकटमें गँवार मनुष्योंके बीच बैठ

कर सिगरेट तथा बीड़ीकी गन्ध सूँघेंगे''''यह हमसे न होगा।' आप बोले—'अच्छा ३) की टिकट पर देखना।' मैंने कहा—'एक दिन देखनेसे क्या होगा ?' आपने झट १०००) का नोट मेरे हाथमें देते हुए कहा—'लो बारह मासका जिम्मा मैं लेता हूँ।' मै डर गया, मैंने उनका नोट उन्हें देते हुए कहा कि 'जब रात्रिभर नाटक देखेंगे तब पाठ्यपुस्तक कब देखेंगे। अतः आप कृपा कीजिये, मेरे साथ ऐसा व्यवहार करना अच्छा नहीं। तथा आपको भी उचित है कि यदि बनारस आये हो तो विद्यार्जन द्वारा पण्डित बनकर जाओ, जिसमें आपके पिताको आनन्द हो और आपके द्वारा जैन-धर्मका प्रचार भी हो क्योंकि आप धनाढ्य हैं, आपका कण्ठ भी उत्तम है, बुद्धि भी निर्मल हैं और रूप-सौन्दर्यमें भी आप राज-कुमारोंको लज्जित करते हैं। आशा है आप हमारी सम्मतिको अपनावेंगे। यदि आप हमारी सम्मतिका अनादर करेंगे तो उत्तर-कालमें पश्चात्तापके पात्र होंगे।'

पर कौन सुनता था, उन्होंने हमारी सम्मतिका अनादर करते हुए कहा कि हमारे पास इतना विभव है कि बीसों पण्डित हमारा दरवाजा खटखटाते हैं। मैंने कहा—'आपका दरवाजा ही तो खटखटाते हैं अर्थात् आपको (?) बना आपसे कुछ ले जाते हैं, तुम तो उनसे कुछ नहीं ले पाते, बुद्धू-के-बुद्धू ही बने रहते हो। स्वयं पण्डित बनो, भाग्यने तुम्हारे लिये सब अनुकूल योग्यता दी है, आपका कुल धार्मिक है, पूजा-प्रभावनासे प्रसिद्ध है। आप ही के दादा भारूमल्लजीने शिखरजीका संघ निकाला, आप ही के चाचाने अलीगढ़ पाठशालामें १००) मासिककी सहायता दी, आप ही के चाचा लाला उग्रसेनजीने १००) मासिक देकर महाविद्यालय मथुराका सञ्चालन कराया, आप ही के चाचाके यहाँ न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजी साहब अधिकांश निवास करते थे तथा पण्डित लालमनजी साहब और फारसीके पण्डित उनके

सहयोगमें अपना समय देते थे, आप ही के भाई साहब लाला जम्बूप्रसादजी आदि जैनधर्मके प्रमुख विद्वान् हैं, विद्वान् ही नहीं प्रतिदिन चार घण्टा नित्य नियममें लगाते हैं, आपके ही भाई लाला हुलासरायजी कितने धर्मात्मा हैं यह किसीसे छिपा नहीं, तथा आपके यहाँ दो या चार धर्मात्मा-त्यागी लोग आपके चौकामें भोजन कर धर्मसाधन करते हैं, आपके पिता अपना समय निरन्तर धर्मध्यानमें लगाते हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि आपके वशमें निरन्तर धर्मक्रियाओंका समादर है, पर आप क्या कर रहे हैं? आपकी यह निन्द्य—धर्मविरुद्ध प्रवृत्ति आपके पतनमें कारण होगी, अतः इसे त्यागो।'

मैंने सब कुछ कहा परन्तु सुनता कौन था? जब आदमी मदान्ध हो जाता हैं तब हितकी बात कहनेवालोंको भी शत्रु समझने लगता है। आप बोले—'अभी तुमने इन कार्योंका स्वाद नहीं पाया, प्रथम तो तुम छात्र हो, छात्र ही नहीं, पराधीन वृत्तिसे अध्ययन कर रहे हो, पासमें पैसा नहीं, तुम्हें ऐसे नाट्य-कलाके दृश्य कहाँ नसीब हैं? देहाती आदमी हो, कभी तुम्हें नगरनिवासी जनका सम्पर्क नहीं मिला, तुम राग-रंगमें क्या जानो? तथा तुम बुन्देलखण्डी हो जहाँ ऐसे सरस नाटक आदि करनेवालोंका प्रायः अभाव ही है, अतः हमको शिक्षा देने आये, अपनी शिक्षा अपने ही में सीमित रखो, हम रईसके बालक हैं, हमारा जीवन निरन्तर आमोद-प्रमोदमें जाता है। देखो हमारी चर्या, जब प्रात.काल हुआ और हमारी निद्रा भंग हुई नहीं कि एक नौकर लोटा लिये खड़ा, हम शौचगृहमें गये नहीं कि लोटा रखा पाया, शौचगृहसे बाहर आये कि लोटा उठानेके लिए आदमी दौड़ा, अनन्तर एक आदमी ने पानी देकर हाथ-पैर धुलाये तो दूसरेने झटसे तौलियासे साफ किये, उसी समय तीसरे नौकरने आकर हाथमें दन्तधावन दी, हमने

मुखमार्जन किया, पश्चात् नाई आया, वह सिरमें तथा सम्पूर्ण शरीरमें मालिश कर जानेको उद्यत हुआ कि पाँचवा नौकर गरम पानीसे स्नान कराने लगता है, स्नानके अनन्तर सर्वांगको तौलियासे मार्जन कर कंघासे शिरके बाल सँभारनेके लिये तैयार हुआ कि एक आदमीने सन्मुख हाथमें दर्पण लिया, एक आदमी धोती लिये अलग खड़ा रहता है, हमने धोती पहन कर कुरता पहना और दर्पणमें मुख देख सब कार्योंसे निवृत्त हो मन्दिर जानेके लिये तैयार हुए कि एक आदमी छतरी लिये पीछे-पीछे चलने लगा, मन्दिर पहुँच कर श्रीजिनेन्द्र प्रभुके दर्शन कर नाममात्रको स्वाध्याय किया, फिर उसी रीतिसे घर आ गये, अनन्तर दुग्धपानादि कर पश्चात् अध्यापकों द्वारा कुछ पढ़कर शिक्षाकी रस्मको अदा किया पश्चात् मध्याह्नके भोजनकी क्रियासे निवृत्त होकर सो गये, सोनेके बाद सन्तरा, अनार, मौसंबीका शर्बत पान कर कुछ जल-पान किया, अनन्तर खेल-कूदके बागमें चले गये, वहाँसे आकर सायंकालका भोजन किया, फिर गल्प-बाजारको हरा-भरा कर यद्वा तद्वा गोष्ठी-कथा करने लगे, रात्रिके नौ बजेके बाद किसी नाटक-गृह अथवा सिनेमामें चले गये और वहाँसे आकर दुग्धादि-पान कर सो गए। यह हमारी दिनरात्रिकी चर्या है। तुम लोगोंको इन राजकीय सुखोंका क्या अनुभव? इसीलिये हमसे कहते हो कि इस कार्यको त्यागो, कल्पना करो यदि तुम्हारा भाग्य तुम्हारे अनुकूल होता और जो सामग्री हमें सुलभ है, तुमको भी सुलभ होती तो आप क्या करते? न होने पर यह सब शिक्षा सूझती है। 'वस्त्राभावे ब्रह्मचारी।' अथवा किसी कविने कहा है—

> 'कहा करूँ धन है नही होता, तो किस काम।
> जिनके है उन सम कहा होत नहीं परिणाम॥'

भावार्थ इसका यह है—'कोई मनुष्य मनमें सोचता है कि क्या करूँ? पासमें धन नहीं है, अन्यथा ससारमें अपूर्व दान कर दीन-दरिद्रोंको संतुष्ट कर देता। परन्तु फिर विचारता है कि यदि

धन होता भी तो किस कामका ? क्योंकि जिनके पास धन है, क्या उनके सदृश मेरे भी परिणाम न हो जाते ?' कहनेका तात्पर्य यह है कि यदि तुम्हारे पास धन होता तो इसी तरहके कार्योंमें प्रवृत्ति तुम्हारी भी हो जाती, परन्तु पासमें यथेष्ट पैसा नहीं, अतः हमको ही शिक्षा देनेमें अपनी प्रभुता दिखाना जानते हो। अथवा किसीने ठीक कहा है—

'जो धनवन्त सो देय कुछ देय कहा धनहीन।
कहा निचोरे नग्न जन नहाय सरोवर कौन॥'

अर्थात् जो कुछ दे सकता है वह धनवन्त ही दे सकता है, जो धनहीन-दरिद्र है वह क्या देगा ? जैसे सरोवरमें स्नान करनेवाला नग्न जन वस्त्र न होनेसे क्या निचोड़ेगा ? अतः तुम्हारे पास कुछ पैसा तो है नहीं, इसीलिये हमें शिक्षा देने आये हो। तुम्हारा भाग्य था कि हम जैसे वैभवशाली तुम्हें मिल गये थे, हम तुम्हें नाटक ही नहीं सब रसका आस्वादन करा देते, परन्तु तुम क्या करो, भाग्य भी तो इस योग्य होना चाहिये। अब हमने यह निश्चय कर लिया कि तुम रसास्वादोंके पात्र नहीं।'

लाला प्रकाशचन्द्रजी जब इतना कह चुके तब मैंने कहा— 'लालाजी ! तुम बड़ी भूल कर रहे हो, इसका फल अत्यन्त ही कटुक होगा। अभी तो तुम्हें नाटककी चाट लगी है, कुछ दिन बाद वेश्या और मद्यकी चाट लगेगी और तब तुम अपनी कुल-परम्पराकी रक्षा न कर सकोगे। बड़े-बड़े राजा महाराजा इन व्यसनोंमें अनुरक्त होकर अधोगतिके भाजन हुए, आप तो उनके समक्ष कुछ भी नहीं, क्या आपने चारुदत्तका चरित नहीं पढ़ा है जो कि इस विषयमें करोड़ों दीनारें खो चुका था। हमें तुम्हारे रूप और ज्ञानपर तरस आता है तथा आपके वंश-परम्पराकी निर्मल कीर्तिका स्मरण होते ही एकदम खेद होने लगता है। मनमें आता है कि हे भगवान् ! यह क्या हो रहा है ? हमारा

आपसे कोई सम्बन्ध नहीं, फिर भी मनुष्यताके नाते आपकी कुत्सित प्रवृत्ति देख उद्विग्न हो जाता हूँ,साथ ही इस बातका भय भी लगता है कि आपके पूज्य पिताजी व भाई साहब क्या कहेंगे कि तुम वहाँ पर थे फिर चिरजीवो प्रकाशकी ऐसी प्रवृत्ति क्यों हुई ? अतः आप हमारी शिक्षा मानो या न मानो, परन्तु आगममें जो लिखा है उसे तो मानो। छात्रोंका काम अध्ययन करना ही मुख्य है, नाटकादि देखकर समयको बरबाद करना छात्र-जीवनका घातक है। तुम्हारी बुद्धि निर्मल है, अभी वय भी छोटी है, अभी तुम समीचीन मार्गमें आ सकते हो, अभी तुम्हें लज्जा है, गुरु-जीका भय है और यह भी भय है कि पिताजी न जान सकें। खर्चके लिये आपके पिताजी २५०) मासिक ही तो भेजते हैं, पर तुम २५०) की एवजमें ५००) मासिक व्यय करते हो। यदि ऐसा न होता तो दो मासमें तुम्हें ५००) कर्ज कैसे हो जाते ? तुमने हमसे उधार माँगे, यद्यपि मेरे पास न थे तो भी मैंने बाईजीकी सोनेकी सँकली गहने रख कर ५००) तुम्हें दिये, फिर भी तुम निरन्तर व्यग्र रहते हो। अब दो मास हो गये, तुम्हें ५००) और चाहिये तथा बाईजी कहती हैं कि भैया संकली लाओ, अतः मैं भी असमंजसमें पड़ा हूँ।' दैवयोगसे उसी दिन लाला प्रकाशचन्द्रका १०००) एक हजार रुपया आ गया, ५००) मुझे दे दिये, मैं बाईजीकी चिन्तासे उन्मुक्त हुआ।

बातचीतका सिलसिला जारी रखते हुए मैंने फिर कहा—'कहो प्रकाश ! अब क्या इस कुटेवको छोड़ोगे या गर्तमें पड़ोगे ?' बहुत कुछ कहा, परन्तु एक भी न सुनी और निरन्तर प्रतिरात्रि नाटक देखनेके लिये जाना और रात्रिके दो बजे वापिस आना यह उनका मुख्य कार्य जारी रहा। कभी-कभी तो प्रातःकाल आते थे, अतः अन्य पापकी भी शङ्का होने लगी और वह भी सत्य ही निकली। एक दिन मैं अचानक उनकी कोठरीमें पहुँच गया, उस समय

आप एक ग्लासमें कुछ पान कर रहे थे, मुझे देखते ही उन्होंने वह ग्लास गङ्गा तटपर फेंक दिया। मैंने कहा—'क्या था ?' आप बोले-'गुलाब शर्बत था।' मैंने कहा-'फेंकनेकी क्या आवश्यकता थी ?' आप बोले-'उसमें कीड़ी निकल आई थी।' मैंने कहा—'ठीक, पर ग्लास फेंकनेकी आवश्यकता न थी।' आपने कुछ अभिमानके साथ कहा—'हम लोग रईस हैं। ऐसी पर्वाह नहीं करते।' मैंने कहा—'ठीक, परन्तु यह जो गन्ध महक रही है, किसकी है ?' आप बोले—'तुम्हें यदि सन्देह है तो पीकर देख लो, महाराज! लाओ एक ग्लास शर्बत गुलाबका इनको पिला दो, तब इनको पता लग जावेगा क्या है ? यह जो सन्देह करते हैं, आज इन्हें जाने मत दो।'

मैं तो डर गया और पेशाबका बहाना कर भाग आया। उस दिनसे लाला प्रकाशचन्द्रसे मेरा संसर्ग छूट गया। उसके बाद उनकी जो अवस्था हुई वह गुप्त नहीं। उनके पिता व भाई साहब आदि सबको उनका कृत्य विदित हो गया। उसी वर्ष उनकी शादी राजा दीनदयाल, जो नवाब हैदराबादके यहाँ रहते थे, उनके यहाँ हो गई। उनका चरित्र सुधारनेके लिये सब कुछ उपाय किये गये, परन्तु सब विफल हुए। अन्तमें आप सहारनपुर पहुँच गये और वहाँ रहनेका जो महल था उसे छोड़कर एक स्वतन्त्र भवनमें रहने लगे।

जब एक बार मैं सहारनपुर लाला जम्बूप्रसादजीके यहाँ गया था, तब अचानक आपसे भेंट हो गई। आप बलात्कार मुझे अपने भवनमें ले गये और नाना प्रकारके उपालम्भ देने लगे—'तुम्हें उचित था कि हमें सुमार्ग पर लानेका प्रयत्न करते, परन्तु तुमने हमारी उपेक्षा की। आज हमारी यह दशा हो गई कि हमारा १०००) मासिक व्यय है फिर भी त्रुटि रहती है। ये व्यसन ऐसे हैं कि इनमें अरबोंकी सम्पत्ति बिला जाती है।' मैंने कहा-'मैंने तो

काशीमें आपको बहुत ही समझाया था कि लालाजी ! इस कुकृत्यमें न पड़ो, परन्तु आपने एक न मानी और मुझे ही डाटा कि तुम लोग दरिद्र हो, तुम्हें इन नाटकादि रसोंका क्या स्वाद ? मैं चुप रह गया, भवितव्य दुर्निवार है ।'

मेरी बात पूरी न हो पाई थी कि लालाजीने झट बोतलोंमेंसे कुछ लाल लाल पानी निकाला और एक ग्लास जो छोटा-सा था पी गये तथा मुझसे भी बलात्कार पीनेका आग्रह करने लगे। मैंने कहा—'भाई साहब ! मुझे दीर्घशङ्का जाना है, जाकर आता हूँ ।' उन्होंने कहा—'अच्छा यहीं चले जाओ ।' मैं लोटा लेकर मय कपड़ोंके शौचगृहकी ओर जाने लगा। देखते ही आपने टोका 'भले मानुष ! कपड़ा तो उतार दे ।' मैंने कहा—'जल्दी जाना है।' इत्यादि कहकर मैंने जोड़ा तो वहीं छोड़ा और शीघ्र शीघ्र चलकर दरवाजे तक आया वहाँ लोटा छोड़ा और श्रीलाला जम्बूप्रसादजी रईसके घर सकुशल पहुँच गया ।

लालाजीने हांफते देखकर कहा—'भयभीत क्यों हो ?' मैंने आद्योपान्त सब समाचार सुना दिया। लालाजीने उसी समय बादामका रोगन शिरमें मलवाया और कहा—कि 'अब आइन्दह भूलकर भी उस ओर न जाना ।' मैंने कहा—'श्री जिनेन्द्रदेवके धर्मका प्रसाद था जो आज बच गया। अब कदापि उस मार्गसे न निकलूँगा ।' मनमें आया कि 'हे भगवान् ! तुम्हारी महिमा अपार है। यद्यपि आप तटस्थ हैं तथापि आपके नामके प्रसादसे ही मैं आज पापपङ्कसे लिप्त नहीं हुआ ।' कहनेका तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य बालकपनसे अपनी प्रवृत्तिको सुमार्ग पर नहीं लाते उनकी यही गति होती है जो कि हमारे अभिन्न मित्रकी हुई। मां बाप सहस्रों-लाखों रुपया बालक-बालिकाओंके विवाह आदि कार्योंमें पानीकी तरह बहा देते हैं, परन्तु जिसमें उनका जीवन सुखमय बीते ऐसी शिक्षामें पैसा व्यय करनेके लिये कृपण ही रहते हैं। यही

कारण है कि भारतके बालक प्रायः बालकपनसे ही कुसंगतिमें पड़कर अपना सर्वस्व नष्ट कर कर लेते हैं। इस विषयमें विशेष लिखकर पाठकोंका समय नहीं लेना चाहता।

अन्तमें लाला प्रकाशचन्द्रजीका जीवन राग-रङ्गमें गया। आपके कोई पुत्र नहीं हुआ। इस प्रकार संसारकी दशा देखकर उत्तम पुरुषोंको उचित है कि अपने बालकोंको सुमार्ग पर लानेके लिये स्कूली शिक्षाके पहले धार्मिक शिक्षा दें और उनकी कुत्सित प्रवृत्ति पर प्रारंभसे ही नियन्त्रण रखें। अस्तु,

हिन्दू यूनिवरसिटीमें जैन कोर्स

मैं श्री शास्त्रीजीसे न्यायशास्त्रका अध्ययन करने लगा। अष्ट-सहस्री ग्रन्थ, जो कि देवागम स्तोत्रपर श्री अकलङ्क स्वामी विर-चित आठ सौ (अष्टशती) भाष्यके ऊपर श्री विद्यानन्दि स्वामी कृत आठ हजार श्लोकोंमें गम्भीर विशद विवेचनके साथ आप्त भगवान्के स्वरूपका निर्णय है, पढ़ने लगा। मेरी इस ग्रन्थके ऊपर महती रुचि थी। उसके ऊपर लिखा है—

'श्रोतव्याष्टसहस्री श्रुतै: किमन्यैः सहस्रसंख्यानैः।
विज्ञायेत ययैव स्वसमयपरसमयसद्भावः॥'

जिसके ऊपर श्री यशोविजय उपाध्यायने लिखा है कि—

'विषमा अष्टसहस्री अष्टसहस्रैर्विवेच्यते।'

श्रीशास्त्रीजीके अनुग्रहसे मेरा यह ग्रन्थ एक वर्षमें पूर्ण हो गया। जिस दिन मेरा यह महान् ग्रन्थ पूर्ण हुआ उसी दिन मैंने श्रीशास्त्रीजीके चरण-कमलोंमें ५००) की एक हीराकी अंगूठी भेंट कर दी। श्रीयुत पूज्य शास्त्रीजीने बहुत ही आग्रह किया कि यह क्या करता है? तू मामूली छात्र है, इतनी शक्ति तुम्हारी नहीं जो

इतना दान कर सको, हमारी अवस्था अंगूठी पहिननेकी नहीं- इत्यादि बहुत कुछ उन्होंने कहा, परन्तु मैं उनके चरणोंमें लोट गया, मैंने नम्र शब्दोंमें कहा कि 'महाराज ! आज मुझे इतना हर्ष है कि मेरे पास राज्य होता तो मैं उसे भी आपके चरणोंमें समर्पित कर तृप्त नहीं होता, अतः आशा करता हूँ कि आप मेरी इस तुच्छ भेंटको अवश्य ही स्वीकृत कर लें, अन्यथा मुझे अत्यन्त संक्लेश होगा।' मेरा आग्रह देखकर श्रीमान् शास्त्रीजीने यद्यपि अंगूठी ले ली, परन्तु उनका अन्तरङ्ग यही रहा कि यह किसी तरह वापिस ले लेता तो अच्छा होता।

इन्हीं दिनों भारतके नररत्न श्रीमालवीयजी द्वारा हिन्दू यूनिवरसिटीकी स्थापना हुई। उसमें सर्व दर्शनोंके शास्त्रोंके पठन-पाठनके लिये बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् रक्खे गये। शास्त्रीजी महाराज संस्कृत विभागके प्रिन्सिपल हुए। उन्होंने श्रीमालवीयजी से कहा कि 'जब इस यूनिवरसिटीमें सब मतोंके शास्त्रोंके अध्ययनका प्रबन्ध है तब एक चेयर जैनागमके प्रचारके लिये भी होना चाहिये।' श्रीमालवीयजीने कहा—'अच्छा सीनेटमें यह प्रस्ताव रखिये, जो निर्णय होगा वह किया जावेगा।' सीनेटकी जिस दिन बैठक थी उस दिन शास्त्रीजीने कहा—'पुस्तकें लेकर तुम भी देखने चलो।' मैं पुस्तकें लेकर शास्त्रीजी महाराजके पीछे-पीछे चलने लगा। बीचमें एक महाशयने, जो बहुत ही बृहत्काय एवं सुन्दर शरीर थे तथा सीनेटके भवनकी ओर जा रहे थे, मुझसे पूछा 'कहाँ जा रहे हो ?' मैंने कहा—'महानुभाव ! मैं श्रीशास्त्री-जीकी आज्ञासे जैनन्यायकी पुस्तकें लेकर कमेटीमें जा रहा हूँ। आज वहाँ इस विषयपर ऊहापोह होगा।' आप बोले—'यद्यपि जैनधर्मके अनुकूल प्रायः बहुत मेम्बर नहीं है फिर भी मैं कोशिश करूँगा कि जैनागमको पठन-पाठनमें आना चाहिये, क्योंकि यह मत अनादि है तथा इस मतके अनुयायी बहुत ही सच्चरित्र होते

हैं ।....इस मतके माननेवालोंकी संख्या चूँकि अल्प रह गई है, इसीलिये यह सर्व-कल्याणप्रद होता हुआ भी प्रसारमें नहीं आ रहा है'....इत्यादि कहनेके बाद मुझसे कहा—'चलो ।'

मैं भवनके अन्दर पहुँच गया, पुस्तकें मेज पर रख दीं और मैं शास्त्रीजीकी आज्ञानुसार एक बेंच पर बैठ गया। मीटिंगकी कार्रवाई प्रारम्भ हुई। महाराज मालवीयजी भी उस सभामें विराजमान थे। डाक्टर गङ्गानाथ झा, डाक्टर भगवानदासजी साहब तथा अन्य बड़े-बड़े विद्वान् भी उस समितिमें उपस्थित थे। जो महाशय मुझे मार्गमें मिले थे वे भी पहुँच गये। पहुँचते ही उन्होंने सभापति महोदयसे कहा कि 'आजकी सभामें अनेक विषयों पर विचार होना है, एक विषय जैनशास्त्रोंका भी है,'सूची-कटाहन्यायेन' सर्व प्रथम इसी विषय पर विचार हो जाना अच्छा है, क्योंकि यह विषय शीघ्र ही हो जावेगा और यह छात्र जो कि पुस्तकें लेकर आया है चला जावेगा। चूँकि यह जैन छात्र है, अतः रात्रिको नहीं खाता। दिनको ही चले जानेमें इसका भोजन नहीं चूकेगा।' पश्चात् श्रीअम्बादासजी शास्त्रीसे आपने कहा 'अच्छा, शास्त्रीजी! आप बताइये कि प्रवेशिकामें पहले कौन-सी पुस्तक रक्खी जावे?' शास्त्रीजीने न्यायदीपिका पुस्तक लेकर आपको दी। आपने उस समितिमें जो विद्वान थे उन्हें देते हुए कहा—'देखिये यह पुस्तक कैसी है? क्या इसके पढ़नेसे छात्र मध्यमाके विषयोंमें प्रवेश कर सकेगा?' पण्डित महाशयने पुस्तकको सरसरी दृष्टिसे आद्योपान्त देखा और ५ मिनटके बाद मेजपर रखते हुए कुछ अरुचि-सी प्रकट की। आपने उपस्थित महाशयोंसे पूछा—'क्या बात है? क्या पुस्तक ठीक नहीं है?' पण्डितजी बोले—'पुस्तक तो उत्तम है, इसका विषय भी प्रथमाके योग्य है और इसे पढ़नेके अनन्तर छात्र मध्यमामें अच्छी तरह प्रवेश भी कर सकेगा, परन्तु इसमें ग्रन्थकारने जो कुछ लिखा है वह अत्यन्त सरल भाषामें लिखा

है, अतः इससे छात्रको ग्रन्थ लगानेकी व्युत्पत्ति देरसे होगी।' इसके बाद जो महाशय मुझे लाये थे वे हँसते हुए बोले 'पण्डितजी ! आप जानते हैं, आजकल उसी पुस्तकका महान् आदर होता है जिसमें विषय अत्यन्त सरल भाषामें समझाया जाता है। आपके कहनेसे विदित हुआ कि यह पुस्तक सरल भाषामें लिखी गई है, अतः अवश्य ही आदरणीय है। कहिये मालवीयजी ! प्रारम्भमें तो छात्रोंको ऐसी ही पुस्तकोंका अध्ययन कराना चाहिये, क्योंकि प्रथम अवस्थामें छात्रोंकी बुद्धि सुकुमार होती है। पुस्तक जितनी सरल भाषामें होगी, छात्र उतने ही जल्दी व्युत्पन्न हो सकेगा। अपदार्थ नहीं होना चाहिये।'....इस प्रकार ५ मिनटकी बहसके बाद प्रथम परीक्षामें वह पुस्तक रखी गई। इसके बाद १५ मिनट और बहस हुई होगी कि उतनेमें ही शास्त्री परीक्षा तकका कोर्स निश्चित हो गया।

पाठकोंको यह उत्कण्ठा होगी कि वे महाशय कौन थे जिन्होंने कि जैन ग्रन्थोंके विषयमें इतनी दिलचस्पी ली। वे महाशय थे श्रीमान् स्वर्गीय मोतीलालजी नेहरु, जिनके कि सुपुत्र जगत्प्रख्यात श्रीजवाहरलालजी नेहरू आज भारतके सिरताज हैं।

सहस्रनामका अद्भुत प्रभाव

संवत् १९७७ की बात है। मैं श्रीशास्त्रीजी महोदयसे न्यायशास्त्रका अध्ययन विश्वविद्यालयमें करने लगा और वहाँकी शास्त्रीय परीक्षाका छात्र हो गया। दो वर्षके अध्ययनके बाद शास्त्री-परीक्षाका फार्म भर दिया।

उन्हीं दिनों हमारे प्रान्तके ललितपुर नगरमें गजरथ महोत्सव था, अतः फार्म भरनेके बाद वहाँ चला गया। बादमें दो स्थानोंमें और भी गजरथ थे। इस तरह दो माससे अधिक समय लग गया।

यही दिन अभ्यासके थे, शास्त्रीजी महाराज बहुत ही नाराज हुए। बोले—'यह तुमने क्या किया ?' मैंने कहा—'महाराज ! अपराध तो महान् हुआ इसमें सन्देह नहीं। यदि आज्ञा हो तो परीक्षामें न बैठूँ।' शास्त्रीजी बोले—'कितने परिश्रमसे तो जैन शास्त्रके न्याय-ग्रन्थोंका यूनिवरसिटीमें प्रवेश कराया और फिर कहता है—परीक्षामें न बैठूँगा।' मैंने कहा—'जो आज्ञा।' उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा कि 'अच्छा परिश्रम करो, विश्वनाथ भला करेगा।'

बीस दिन परीक्षाके रह गये थे, कई ग्रन्थ तो ज्यों-के-त्यों सन्दूकमें रखे रहे जैसे सन्मतितर्क आदि। फिर भी परीक्षाका साहस किया। मेरा यह काम रह गया कि प्रातःकाल गङ्गास्नान करना, वहाँसे आकर श्रीपार्श्वप्रभुके दर्शन करना, इसके बाद महामन्त्रकी एक माला जपना, इसके अनन्तर सहस्रनामका पाठ करना, फिर पुस्तकोंका अवलोकन करना, इसके बाद भोजन करना और फिर सहस्रनामका पाठ करना। इसी प्रकार सायंकालको भोजन करना, पश्चात् गङ्गा तटपर भ्रमण करना और वहींपर महा-मंत्रकी माला करनेके बाद सहस्रनामका पाठ करना। इस तरह पन्द्रह दिन पूर्ण किये।

सम्वत् १९८० की बात है कि जिस दिन परीक्षा थी उस दिन प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर श्री मन्दिरजी गये और श्री पार्श्वप्रभुके दर्शन कर सहस्रनामका पाठ किया। पश्चात् पुस्तक लेकर परीक्षा देनेके लिये विश्वविद्यालय चले गये। मार्गमें पुस्तकके ५-६ स्थल देख लिये। आठ बजे परीक्षा प्रारम्भ हो गई, परचा हाथमें आया, श्रीमहामन्त्रके प्रसादसे पुस्तकके जो स्थल मार्गमें देखे थे वे ही प्रश्नपत्रमें आ गये। फिर क्या था ? आनन्दकी सीमा न रही। तीन घण्टा तक प्रश्नोंका अच्छे प्रकार उत्तर लिखते रहे। अनन्तर पाठशालामें आ गये। इसी प्रकार आठ दिनके परचे आनन्दसे किये और परीक्षाफलकी बाट जोहने लगे।

सात सप्ताह बाद परीक्षाफल निकला। मैंने बड़ी उत्सुकताके साथ शास्त्रीजीके पास जाकर पूछा—'महाराज! क्या मैं पास हो गया?' महाराजने बड़ी प्रसन्नतासे उत्तर दिया—'अरे बेटा! तेरा भाग्य जबर्दस्त निकला, तू फर्स्ट डिवीजनमें उत्तीर्ण हुआ। अरे, इतना ही नहीं फर्स्ट पास हुआ। तेरे ८०० नम्बरोंमें ६४० नम्बर आये। अब तू शास्त्राचार्य परीक्षा पास कर। तुझे २५) मासिक छात्रवृत्ति मिलेगी। मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ कि मेरे द्वारा एक वैश्य छात्रको यह सम्मान मिला। अब बेटा एक बात मेरी मानना, शास्त्राचार्य परीक्षाका अभ्यास करना, इतनेमें ही सन्तोष मत कर लेना। तेरी बुद्धि क्षणिक है। क्षणिक ही नहीं कोमल भी है। तू प्रत्येकके प्रभावमें आ जाता है, अतः मेरी यह आज्ञा है कि अब तुम बालक नहीं। कुछ दिनके बाद कार्यक्षेत्रमें आओगे, इससे चित्तको स्थिर कर कार्य करो।' मैं प्रणाम कर स्थानपर आ गया। क्वीन्स कालेज बनारसकी न्यायमध्यमामें तो मैं पहले ही संवत् १९६४ में उत्तीर्ण हो चुका था, अतः आचार्य प्रथम खण्डके पढ़नेकी कोशिश करने लगा।

बाईजीके शिरश्शूल

मुझे कोई व्यग्रता न हो, आनन्दसे पठन-पाठन हो....इस अभिप्रायसे बाईजी भी बनारसके भेलूपुरमें रहा करती थीं। उनकी कृपासे मुझे आर्थिक व्यग्रता नहीं रहती थी तथा भोजनादिक व्यवस्थाकी भी आकुलता नहीं करनी पड़ती थी। यह सब सुभीता होनेपर भी ऐसा कठिन संकट उपस्थित हुआ कि बाईजीके मस्तकमें शूलवेदना हो गई और इसी वेदना से उनकी आँखमें मोतियाबिन्द भी हो गया। इन कारणोंसे चित्तमें निरन्तर व्यग्रता रहने लगी।

बाईजी बोलीं—'भैया ! व्यग्र मत हो, कर्मका विपाक है, जो किया है, उसे भोगना ही पड़ेगा।' मैंने कहा—'बाईजी ! यहाँ पर एक डाक्टर आँखके इलाजमें बहुत ही निपुण हैं, वे महाराज काशीके डाक्टर हैं, उनके मकान पर लिखा है कि जो घर पर आँख दिखावेगा उससे फीस न ली जावेगी।' बाईजीने कहा—'भैया ! यह सब व्यापारकी नीति है, केवल अपनी प्रतिष्ठाके लिये उन्होंने वह लिख रक्खा है, मेरा विश्वास है कि उनसे कुछ भी लाभ न होगा।' मैंने बाईजीकी बात न मानी और ताँगा कर उन्हें डाक्टर साहबके घर ले गया। डाक्टर साहबने ५ मिनट देखकर एक परचा लिख दिया और कहा—'नीचे अस्पतालसे दवा ले लो। मैंने कहा—'चलो, दवाई तो मिल जावेगी।' नीचे आया, कम्पोटरको दवाका परचा दिया। उसने एक शीशी दी और कहा '१६) इसका मूल्य है लाओ।' मैंने कहा—'बाहर तो लिखा है कि डाक्टर साहब मुफ्तमें नेत्रोंका इलाज करते हैं। यह रुपया किस बातके लेते हो ?' कम्पोटर महोदय दृढ़ताके साथ बोले—'यही तो लिखा है कि डाक्टर साहब बिना फीसके इलाज करते हैं। यह तो नहीं लिखा कि बिना कीमत दवाई देते हैं। यदि तुम डाक्टर साहबको घर पर बुलाते तो १६) फीस, २) बग्घी भाड़ा तथा दवाईका दाम तुम्हें लगता। यहाँ आनेसे इतना लाभ तो तुम्हें हुआ कि १८) तुम्हारे बच गये और दवाई लानेके लिये बाजार जाना पड़ता, वह समय बच गया। अपना भाग्य समझो कि तुम्हें यह सुभीता नसीब हो गया। अब हमें बात करनेका समय नहीं, अन्य कार्य करना है। दवाई लेकर जाओ और १६) हमें दो।' मैंने चुपचाप उन्हें १६) दे दिये और बाईजीको लेकर भेलूपुर चला आया। दैवका विशेष कोप कि हमारा पढ़ना-लिखना छूट गया। हम संतोषके साथ बाईजीकी वैयावृत्त्य करनेमें समयका सदुपयोग करने लगे।

बाईजीकी धीरता सराहनीय थी, यही कारण था कि इस वेदनाकालमें भी सामायिक समय पर करना, नित्य-नियममें जितना काल स्वस्थ अवस्थामें लगाती थीं उससे न्यून एक मिनट भी न लगाना, किसीसे यह नहीं कहना कि हमको वेदना है और पूर्व तरह हँसमुख रहना आदि उनके कार्य ज्यों-के-त्यों चालू रहते थे ।

एक दिन बोली—'बेटा हमको शूलकी वेदना बहुत है, अतः यहाँसे देश चलो, वहाँ पर इसका प्रतिकार अनायास हो जायगा। हम श्री बाईजीको लेकर बरुआसागर आगये । यहाँ पर एक साधारण आदमीने किसी वनस्पतिकी जड़ लाकर दी और कहा इसे छेरीके दूधमें घिसकर लगाओ, शिरकी वेदना इससे चली जावेगी । ऐसा ही हुआ कि उस दवाईके प्रयोगसे शिरोवेदना तो चली गई परन्तु आँखका मोतियाबिन्द नहीं गया । अन्तमें सबकी यही सम्मति हुई कि झाँसी जाकर डाक्टरको आँख दिखा लाना चाहिए ।

बाईजीका स्वाभिमान

श्री सर्राफ मूलचन्द्रजीका जो कि एक असाधारण व्यक्ति थे हमारे साथ घनिष्ठ प्रेम हो गया । उनके संसर्गमें हमें कोई प्रकार का कष्ट न रहा । आप साहूकार थे, साहूकार ही नहीं जमींदार भी थे । आपकी रुचि धर्ममें सम्यक् प्रकारसे थी । प्रतिदिन प्रातः-काल श्री जिनेन्द्रकी पूजा करना अनन्तर एक घण्टा शास्त्रस्वा-ध्यायमें लगाना यह आपका नियमित कार्य था ।

बाईजीके दिन भी आनन्दसे जाने लगे। यहाँ पर नन्दकिशोर अलया एक विलक्षण बुद्धिका पुरुष था, बड़ा ही धर्मात्मा जीव

था। श्रीकामताप्रसादजी जो कि बाईजीके भाई थे बड़े ही सज्जन-धार्मिक व्यक्ति थे तथा श्री गुलाबचन्द्रजी जो बाईजीके सम्बन्धी थे बहुत ही योग्य थे। आपको पद्मपुराणके उपाख्यान प्रायः कण्ठस्थ थे। इन सबके संपर्कसे धर्मध्यानमें अच्छी तरह काल जाने लगा, परन्तु बाईजीकी आँखमें जो मोतियाबिन्द हो गया था वह ज्यों-का-त्यों था, अतः चिन्ता निरन्तर रहती थी। बाईजीका कहना था कि 'बेटा! चिन्ता मत करो, पुरुषार्थ करो, नेत्र अच्छा होना होगा हो जावेगा, चिन्तासे क्या लाभ? झाँसी चलो। निदान हम, सर्राफ तथा कामताप्रसादजी बाईजीको लेकर कर झाँसी गये और बड़ी अस्पतालमें पहुँचे। वहाँ पर एक बंगाली डाक्टर आँखके इलाजमें बहुत ही निपुण था उसे बाईजी की आँख दिखलाई, उसने १० मिनटमें परीक्षा कर कहा कि 'मोतियाबिन्द है, निकल सकता है, चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं, १५ दिनमें आराम हो जावेगा, हमारी ५०) फीस लगेगी, यदि यहाँ सरकारी वार्डमें न रहोगे तो ५) रोज किराये पर एक बँगला मिल जायगा, १५ दिनके ७५) लगेंगे तथा एक कम्पोटरको १५ दिनकी १५) फीस पृथक् देना पड़ेगी।' सर्राफने कहा—'कोई बात नहीं, कबसे आ जावें?' उसने कहा—'कलसे आ जाओ।'

यह सब तय होनेके बाद जब हमलोग चलनेको तैयार हुए तब डाक्टर साहब बोले—'हमारा भारतवर्ष बहुत चालाक हो गया है।' मैंने कहा—'डाक्टर साहब इस अनवसर कथाका यहाँ क्या अवसर था। यहाँ तो आँखके इलाजकी बात थी, यह कहाँ-की बलाय कि भारतवर्ष बड़ा चालाक है।' डाक्टर साहब बोले—'हम तुमको समझाते हैं, हमारा कहना अनवसर नहीं, तुम व सर्राफजी बाईजीका इलाज करानेके लिये आये, बाईजीके चिह्नसे यह प्रतीत होता है कि इनके पास अच्छी सम्पत्त होनी चाहिये, परन्तु वे इस प्रकार वस्त्र पहिन कर आईं कि जिससे दूसरेको

यह निश्चय हो सके कि इनके पास कुछ नहीं ऐसा असद्व्यवहार अच्छा नहीं।' बाईजी बोलीं—'भैया डाक्टर! क्या यह नियम है कि जो रूपवान् हो उसके पास धन भी हो, पर यह कोई सिद्धान्त नहीं है। धनाढ्य और रूपवत्ताकी कोई व्याप्ति भी नहीं है, अतः आपका ज्ञान दूषित है। अब हम आपसे ऑपरेशन नहीं करना चाहते। अन्धा रहना अच्छा परन्तु लोभी आदमीसे ऑपरेशन कराना अच्छा नहीं।

डाक्टर साहबने बहुत कुछ कहा, परन्तु बाईजीने ऑपरेशन कराना स्वीकार नहीं किया। श्रीमूलचन्द्रजी सर्राफने भी बहुत कुछ कहा, परन्तु एककी न चली और बाईजी वहाँसे क्षेत्रपाल ललितपुरको प्रस्थान कर गईं और नियम किया कि श्री अभिनन्दन स्वामीका दर्शन-पूजन कर ही अपना जन्म बितावेंगे। यदि कोई निमित्त मिला तो ऑपरेशन करा लेवेंगे, अन्यथा एक जन्म ऐसी ही अवस्थामें यापन करेंगे।

बाईजीका महान् तत्त्वज्ञान

क्षेत्रपाल पहुँचकर बाईजी आनन्दसे रहने लगीं। पासमें ननदकी लड़की थी जो उनकी वैयावृत्त्य करती थी। बाईजीकी दैनिक चर्या इस प्रकार थी—'प्रातःकाल सामायिक करना, उसके बाद शौचादिसे निवृत्त होकर श्री अभिनन्दनस्वामीके दर्शन करना और वहीं एक घण्टा पाठ करना, पश्चात् वन्दना करके १० बजे निवास स्थान पर आकर भोजनसे निवृत्त हो आराम करना, फिर सामायिकादि पाठ करके स्वाध्याय श्रवण करना, अनन्तर शान्तिरूपसे अपने समयकी उपयोगिता करनेमें तत्पर रहना, पश्चात् सायंकालकी सामायिक आदि क्रिया करना, यदि

शास्त्र श्रवणका निमित्त मिल जाय तब एक घण्टा उसमें लगाना, अनन्तर निद्रा लेना।'

उन्होंने कभी किसीसे यह नहीं कहा कि हमें बड़ा कष्ट है और न दैनिकचर्यामें कभी शिथिलता की। वे एक दिन मन्दिरजी आ रही थीं कि मार्गमें पत्थरकी ठोकर लगनेसे गिर पड़ीं। सेठ मथुरादासजी टड़ैया जो कि प्रतिदिन क्षेत्रपाल पर श्री अभिनन्दन स्वामीकी पूजा करनेके लिये आते थे, बाईजीको गिरा देख पश्चा-ताप करते हुए बोले—'क्यों बाईजी चोट लग गई ?' बाईजी हँसती हुई बोलीं—'भैया ? थोड़ी दिनकी अंधी हूँ। यदि बहुत दिनकी होती तब कुछ अन्दाज होता। कोई चिन्ताकी बात नहीं, जो अर्जन किया है वह भोगना ही पड़ेगा, इसमें खेद करना व्यर्थ है, आप तो विवेकी हैं—आगमके रसिक हैं। देखो श्री कार्तिकेय मुनिने श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

'जं जस्स जम्हि देसे जेण विहाणेण जम्हि कालम्हि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अह व मरणं वा॥
तं तस्स तम्हि देसे तेण विहाणेण तम्हि कालम्हि।
को सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा॥'

जिस जीवके जिस देश और कालमें जिस विधानकर जन्म तथा मरण उपलक्षणसे सुख, दुःख, रोग शोक, हर्ष विषाद आदि श्री जिनेन्द्र भगवान्ने देखा है वह सब उस क्षेत्र तथा उस काल में उसी विधानसे होवेगा—उसे मेटनेको अर्थात् अन्यथा करनेको कोई समर्थ नहीं, चाहे इन्द्र हो अथवा तीर्थंकर हो, कोई भी शक्ति संसारमें जन्म, मरण, सुख, दुःख आदि देनेमें समर्थ नहीं। इसीसे श्री कुन्दकुन्द स्वामीने समयसारके बन्धा-धिकारमें लिखा है—

'जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो॥'

जो यह मानता है कि मैं परकी हिंसा करता हूँ अथवा पर जीवोंके द्वारा मैं मारा जाता हूँ वह मूढ़ है, अज्ञानी है····ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेवका आगम है और ज्ञानी इसके विपरीत है। इसी प्रकार जो ऐसा मानता है कि मैं पर जीवोंको जिलाता हूँ तथा पर जीवोंके द्वारा मैं जिलाया जाता हूँ वह भी मूढ़ है, अज्ञानी है। परन्तु ज्ञानी जीवकी श्रद्धा इससे विपरीत है। भावार्थ यह है कि न कोई किसीका मारनेवाला है और न कोई किसीका जिलानेवाला है। अपने आयुकर्मके उदयसे ही प्राणियोंका जीवन रहना है और उसके क्षयसे ही मरण होता है। निमित्त कारणकी अपेक्षा यह सब व्यवहार है, तत्त्वदृष्टिसे देखा जावे तो न कोई मरता है न उत्पन्न होता है। यदि द्रव्यदृष्टिसे विचार करो तब सब द्रव्य स्थिर हैं पर्यायदृष्टिसे उदय भी होता है और विनाश भी। जैसा कि श्री समन्तभद्र स्वामीने कहा है—

> 'न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्।
> व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि मत् ॥'

जब कि इस प्रकार वस्तुकी परिस्थिति है तब दुःखके समय खेद करना व्यर्थ ही है। क्या आपने श्री समयसारके कलशामें नहीं पढ़ा ?

> 'सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय—
> कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
> अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
> कुर्यात्पुमान्मरणजीवितदु खसौख्यम् ॥'

सम्पूर्ण प्राणियोंके मरण, जीवन, दुःख और सुख जो कुछ भी होना है वह सब अपने कर्म विपाकसे होता है। जो मनुष्य ऐसा मानते हैं कि परसे परका मरण जीवन सुख और दुःख होता है वे सभी अज्ञानी हैं। भावार्थ यह है कि न तो कोई किसीका रक्षक है, न भक्षक है। तुम्हारी जो यह मान्यता है कि हम सब कुछ

कर सकते हैं यह सब अज्ञानकी महिमा है। यह जीव अनादि कालसे पर्यायको ही अपना मान रहा है। जो पर्याय पाता है उसीमें निजत्व कल्पना कर अहम्बुद्धिका पात्र होता है और उसी अहम्बुद्धिसे पर पदार्थमें ममता कर लेता है। जो पदार्थ अपने अनुकूल हुए उन्हें इष्ट और जो प्रतिकूल हुए उन्हें अनिष्ट मानकर इष्ट पदार्थकी रक्षा और अनिष्ट पदार्थकी अरक्षामें व्यग्र रहता है।'

बाईजीका तत्त्वज्ञानपूर्ण उत्तर सुनकर श्री सेठ मथुरादासजी दंग रह गये। सेठजीको उत्तर देनेके बाद बाईजी अपने स्थानपर आई और भोजनादिसे निवृत्त होकर मध्यान्हकी सामायिकके अनन्तर मुझसे बोलीं—'बेटा! अभी हमारा असाताका उदय है, अतः मोतियाबिन्दकी औषधि व ऑपरेशन न होगा, तुम मेरे पीछे अपना पढ़ना न छोड़ो और शीघ्र ही बनारस चले जाओ।' मैंने कहा—'बाईजी! मुझे धिक्कार है कि आपकी ऐसी अवस्थामें जब कि आँखोंसे दिखता नहीं मैं बनारस चला जाऊँ। यद्यपि मैं आपकी कुछ भी वैयावृत्त्य नहीं कर सकता पर कमसे कम स्वाध्याय तो आपके समक्ष कर देता हूँ।' उन्होंने उपेक्षाभावसे कहा—'यह सब ठीक है पर यह काम तो पुजारी कर देवेगा। तुम विलम्ब न करो और शीघ्र बनारस चले जाओ, परीक्षा देकर आ जाना।'

मैं बाईजीके विशेष आग्रहसे बनारस चला गया और श्री शास्त्रीजीसे पूर्ववत् अध्ययन करने लगा, परन्तु चित्त बाईजीकी बीमारीमें था, अतः अभ्यासकी शिथिलता रहती थी। फल यह हुआ कि परीक्षामें अनुत्तीर्ण हो गया। परीक्षा देनेके बाद शीघ्र ही मैं ललितपुर लौट आया।

डाक्टर या सहृदयताका अवतार

एक दिन बाईजी बगीचेमें सामायिकपाठ पढ़नेके अनन्तर—

'राजा राणा छत्रपति हाथिनके असवार ।
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार ॥'

आदि बारह भावना पढ़ रही थीं। अचानक एक अंग्रेज, जो उसी बागमें टहल रहा था, उनके पास आया और पूछने लगा—'तुम कौन हो' बाईजीने आगन्तुक महाशयसे कहा—'पहले आप बताइये कि आप कौन हैं ? जब मुझे निश्चय हो जावेगा कि आप अमुक व्यक्ति हैं तभी मैं अपना परिचय दे सकूँगी।' आगन्तुक महाशयने कहा—'हम झाँसीकी बड़ी अस्पतालके सिविलसर्जन हैं, आँखके डाक्टर हैं और लन्दनके निवासी अंग्रेज हैं।' बाईजीने कहा—'तब मेरे परिचयसे आपको क्या लाभ ?' उसने कहा कुछ लाभ नहीं, परन्तु तुम्हारे नेत्रमें मोतियाबिन्द हो गया है। एक आँखका निकालना तो अब व्यर्थ है, क्योंकि उसके देखनेकी शक्ति नष्ट हो चुकी है। पर दूसरे आँखमें देखनेकी शक्ति है। उसका मोतियाबिन्द दूर होनेसे तुम्हें दीखने लगेगा।'

अब बाईजीने उसे अपनी आत्मकथा सुनाई, अपनी द्रव्यकी व्यवस्था, धर्माचरणकी व्यवस्था आदि सब कुछ उसे सुना दिया और मेरी ओर इशारा कर यह भी कह दिया कि इस बालकको मैं पाल रही हूँ तथा इसे धर्मशास्त्र पढ़ानेके लिये बनारस रखती हूँ। मैं भी वहाँ रहती थी पर आँख खराब हो जानेसे यहाँ चली आई हूँ।

उसने पूछा—'तुम्हारा निर्वाह कैसे होता है ?' बाईजीने कहा—'मेरे पास १००००) रुपये हैं, उसका १००) मासिक सूद आता है, उसीमें मेरा, इस लड़कीका, इसकी माँका और इस बच्चेका निर्वाह होता है। आँखके जानेसे मेरा धर्म-कार्य

स्वतन्त्रतासे नहीं होता।' डाक्टर महोदयने कहा—'तुम चिन्ता मत करो, हम तुम्हारी आँख अच्छी कर देगा।' बाईजीने कहा-महाशय ! मैं आपका कहना सत्य मानती हूँ, परन्तु एक बात मेरी सुन लीजिये, वह यह कि मैं एकबार झाँसीकी बड़ी अस्पतालमें गई थी। वहाँ पर एक बंगाली महाशयने मेरी आँख देखी और ५०) फीस माँगी। मैंने देना स्वीकार किया, परन्तु उन्होंने यह कहा कि 'भारतवर्षके मनुष्य बड़े बेईमान होते हैं। तुम्हारे शरीरसे तो यह प्रत्यय होता है कि तुम धनशाली हो, परन्तु कपड़े दरिद्रों कैसे पहने हो।' मुझे उसके यह वचन तीरकी तरह चुभे। भला आप ही बतलाइये जो रोगीके साथ ऐसे अनर्थपूर्ण वाक्यों-का व्यवहार करे उसमें रोगीकी श्रद्धा कैसे हो? इसी कारण मैंने यह विचार कर लिया था कि अब परमात्माका स्मरण करके ही शेष आयु बिताऊँगी, व्यर्थ ही खेद क्यों करूँ? जो कमाया है उसे आनन्दसे भोगना ही उचित है। सुनकर डाक्टर साहब बहुत प्रसन्न हुए। बोले—'अच्छा हम अपना दौरा कैंसल करते हैं। सात बजे डाँकगाड़ीसे झाँसी जाते हैं। तुम पैंसिंजर गाड़ीसे झाँसी अस्पतालमें कल नौ बजे आओ, वहीं तुम्हारा इलाज होगा। बाई-जीने कहा-'मैं अस्पतालमें न रहूँगी, शहरकी परवार धर्मशालामें रहूँगी और नौ बजे श्रीभगवान्का दर्शन-पूजन कर आऊँगी। यदि आपकी मेरे ऊपर दया है तो मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये।' डाक्टर महोदय न जाने बाईजीसे कितने प्रसन्न थे। बोले—'तुम जहाँ-ठहरोगी, मैं वहीं आ जाऊँगा, परन्तु आज ही झाँसी जाओ, मैं जाता हूँ।'

डाक्टर साहब चले गये। हम, बाई जी और विनिया रात्रिके ११ बजेकी गाड़ीसे झाँसी पहुँच गये। प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर धर्मशालामें आ गये। इतनेमें ही डाक्टर साहब मय सामा-नके आ पहुँचे। आते ही साथ उन्होंने बाईजीको बैठाया और

आँखोंमें एक औजार लगाया जिससे वह खुली रहे। जब डाक्टर साहबने आँख खुली रखनेका यन्त्र लगाया तब बाईजीने कुछ शिर हिला दिया। डाक्टर साहबने एक हलकीसी थप्पड़ बाईजी-के शिरमें दे दी। न जाने बाईजी किस विचारमें निमग्न हो गईं। इतनेमें ही डाक्टर साहबने अस्त्रसे मोतियाबिन्द निकाल कर बाहर कर दिया और पाँचों अगुलियाँ उठाकर बाईजीके नेत्रके सामने की तथा पूछा कि बताओ कितनी अँगुलियाँ हैं? बाईजी-ने कहा—'पाँच।' इस तरह दो या तीन बार पूछकर आँखमें दवाई आदि लगाई। पश्चात् सीधा पड़े रहनेकी आज्ञा दी। इसके बाद डाक्टर साहब १६ दिन और आये। प्रति दिन दो बार आते थे। अर्थात् ३२ बार डाक्टर साहबका शुभागमन हुआ। साथमें एक कम्पोटर तथा डाक्टर साहबका एक बालक भी आता था। बालककी उमर १० वर्षके लगभग होगी। बहुत ही सुन्दर था वह।

जहाँ बाईजी लेटी थीं, उसीके सामने बाईजी तथा हम लोगों के लिये भोजन बनता था। पहले ही दिन बालककी दृष्टि सामने भोजनके ऊपर गई। उस दिन भोजनमें पापड़ तैयार किये गये थे। बालकने ललिताबाईसे कहा—'यह क्या है?' ललिताने बाल-कको पापड़ दे दिया। वह लेकर खाने लगा। ललिताने एक पूड़ी भी दे दी। उसने बड़ी प्रसन्नतासे उन दोनों वस्तुओंको खाया। उसे न जाने उनमें क्यों आनन्द आया? वह प्रतिदिन डाक्टर साहब के साथ आता और पूड़ी तथा पापड़ खाता। बाईजीके साथ उसकी अत्यन्त प्रीति हो गई। आते ही साथ कहने लगे—'पूड़ी-पापड़ मँगाओ।' अस्तु,

सोलहवें दिन डाक्टर साहबने बाईजीसे कहा कि आपकी आँख अच्छी हो गई। कल हम चश्मा और एक शीशीमें दवा देंगे। अब आप जहाँ जाना चाहें सानन्द जा सकती हैं। यह कह कर डाक्टर साहब चले गये। जो लोग बाईजीको देखनेके लिये

आते थे वे बोले 'बाईजी ! डाक्टर साहबकी एक बारकी फीस १६) है, अतः ३२ बारके ५१२) होंगे, जो आपको देना होंगे, अन्यथा वे अदालत द्वारा वसूल कर लेवेंगे।' बाईजी बोलीं— 'यह तो तब होगा जब हम न देवेंगे।'

उन्होंने गबदू पंसारीसे, जो कि बाईजीके भाई लगते थे, कहा कि ५१२) दूकानसे भेज दो। उन्होंने ५१२) भेज दिये। फिर बजारसे ४०)का मेवा फल आदि मंगाया और डाक्टर साहबके आनेके पहले ही सबको थालियोंमें सजाकर रख दिया। दूसरे दिन प्रातः काल डाक्टर साहबने आकर आँखमें दवा डाली और चश्मा देते हुए कहा—'अब तुम आज ही चली जा सकती हो।' जब बाईजीने नक़द रुपयों और मेवा आदिसे सजी हुई थालियोंकी ओर संकेत किया तब उन्होंने विस्मयके साथ पूछा–'यह सब किसलिये ? बाईजीने नम्रताके साथ कहा—'मैं आपके सदृश महापुरुषका क्या आदर कर सकती हूँ ? पर यह तुच्छ भेंट आपको समर्पित करती हूँ। आप इसे स्वीकार करेंगे। आपने मुझे आँख दी जिससे मेरे सम्पूर्ण कार्य निर्विघ्न समाप्त हो सकेंगे। नेत्रोंके बिना न तो मैं पठन-पाठन ही कर सकती थी और न इष्ट देवका दर्शन ही। यह आपकी अनुकम्पाका ही परिणाम है कि मैं नीरोग हो सकी। यदि आप जैसे महोपकारी महाशयका निमित्त न मिलता तो मैं आजन्म नेत्र विहीन रहती, क्योंकि मैंने नियम कर लिया था कि अब कहीं नहीं भटकना और क्षेत्रपालमें ही रहकर श्री अभिनन्दन स्वामीके स्मरण द्वारा शेष आयुको पूर्ण करना। परन्तु आपके निमित्तसे मैं पुनःधर्मध्यानके योग्य बन सकी। इसके लिये आपको जितना धन्यवाद दिया जावे उतना ही अल्प है। आप जैसे दयालु जीव विरले ही होते हैं। मैं आपको यही आशीर्वाद देती हूँ कि आपके परिणाम इसी प्रकार निर्मल और दयालु रहें जिससे संसारका उपकार हो। हमारे शास्त्रमें वैद्यके लक्षणमें एक लक्षण

यह भी कहा है कि 'पीयूषपाणि अर्थात् जिसके हाथका स्पर्श अमृतका कार्य करे। वह लक्षण आज मैंने प्रत्यक्ष देख लिया, क्योंकि आपके हाथके स्पर्शसे ही मेरा नेत्र देखनेमें समर्थ हो गया। मैं आपको क्या दे सकती हूँ ?'

इतना कहकर बाईजीकी आँखोंमें हर्षके अश्रु छलक पड़े और कण्ठ अवरुद्ध हो गया। डाक्टर साहब बाईजी की कथा श्रवण कर बोले 'बाईजी ! आपके पास जो कुछ है, मैं सुन चुका हूँ। यदि ये ५००) मैं ले जाऊँ तो तुम्हारे मूलधनमें ५००) कम जावेंगे और ५) मासिक आपकी आयमें न्यून हो जावेंगे। इसके फलस्वरूप आपके मासिक व्ययमें त्रुटि होने लगेगी। हमारा तो डाक्टरीका पेशा है, एक धनाढ्यसे हम एक दिनमें ५००)ले लेते हैं, अतः तुम व्यर्थकी चिन्ता मत करो। किसीके कहनेसे तुम्हें भय हो गया है, पर भयकी बात नहीं। हम तुम्हारे धार्मिक नियमोंसे बहुत खुश हैं और यह जो मेवा फलादि रखे हैं, इनमेंसे तुम्हारे आशीर्वाद रूप कुछ फल लिये लेता हूँ, शेष आपकी जो इच्छा हो सो करना तथा ११) कम्पोन्टरको दिये देते हैं। अब आप किसीको कुछ नहीं देना। अच्छा, अब हम जाते हैं। हाँ, यह बच्चा आप लोगोंसे बहुत हिल गया है। तुम लोगोंकी खानेकी प्रक्रिया बहुत ही निर्मल है। अल्प व्ययमें ही उत्तमोत्तम भोजन आपको मिल जाता है। हमारा बच्चा तो आपके पूड़ी-पापड़से इतना खुश है कि प्रतिदिन खानसामाको डांटता रहता है कि तू बाईजी के यहाँ जैसा स्वादिष्ट भोजन नहीं बनाता। हमारे भोजनमें ऊपरकी सफाई है परन्तु अभ्यन्तर कोई स्वच्छता नहीं। सबसे बड़ा तो यह अपराध है कि हमारे भोजनमें कई जीव मारे जाते हैं तथा जब मांस पकाया जाता है तब उसकी गन्ध आती है। परन्तु हम लोग वहाँ जाते नहीं, अतः पता नहीं लगता। तुम्हारे यहाँ जो दूध खानेकी पद्धति है वह अति उत्तम है। हम लोग मदिरापान करते हैं जो कि हमारी निरी

मूर्खता है। तुम्हारे यहाँ दो आनाके दूधमें जो स्वादिष्टता और पुष्टता प्राप्त हो जाती है वह हमें २०) का मदिरा पान करने पर भी नहीं प्राप्त हो पाती। परन्तु क्या किया जावे? हम लोगोंका देश शीत-प्रधान है, अतः बरंडी पीनेकी आदत हम लोगोंको हो गई। जो संस्कार आजन्मसे पड़े हुए हैं उनका दूर होना दुर्लभ है। अस्तु, आपकी चर्या देख मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आप एक दिनमें तीन बार परमात्माकी आराधना करती हैं। इतना ही नहीं भोजनकी प्रक्रिया भी आपकी निर्मल है, परन्तु एक त्रुटि हमें देखनेमें आई वह यह कि जिस कपड़ेसे आपका पानी छाना जाता है वह स्वच्छ नहीं रहता तथा भोजन बनानेवालीके वस्त्र प्रायः स्वच्छ नहीं रहते और न भोजनका स्थान रसोई बनानेके स्थानसे जुदा रहता है।' बाईजीने कहा—'मैं आपके द्वारा दिख-लाई हुई त्रुटिको दूर करनेका प्रयत्न करूँगी। मैं आपके व्यवहारसे बहुत ही प्रसन्न हूँ। आप मेरे पिता हैं, अतः एक बात मेरी भी स्वीकार करेंगे।' डाक्टर साहबने कहा—'कहो, हम उसे अवश्य पालन करेंगे।' बाईजी बोलीं—'मैं और कुछ नहीं चाहती। केवल यह भिक्षा मांगती हूँ कि रविवार आपके यहाँ परमात्माकी उपासनाका दिन माना गया है, अतः उस दिन आप न तो किसी जीवको मारें, न खानेके वास्ते खानसामासे मरवावें और न खानेवालेकी अनुमोदना करें.....। आशा है मेरी प्रार्थना आप स्वीकृत करेंगे।' डाक्टर साहबने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—हमें तुम्हारी बात मान्य है। न हम खावेंगे, न मेम साहबको खाने देवेंगे और यह बालक तो पहलेसे ही तुम्हारा हो रहा है। इसे भी हम इस नियमका पालन करावेंगे। आप निश्चिन्त रहिये। मैं आपको अपनी माताके समान मानता हूँ। अच्छा, अब फिर कभी आपके दर्शन करूँगा।'

इतना कहकर डाक्टर साहब चले गये। हम लोग आधा घंटा तक डाक्टर साहबके गुण-गान करते रहे। तथा अन्तमें पुण्यके

गुण गाने लगे कि अनायास ही बाईजीके नेत्र खुलनेका अवसर आगया। किसी कविने ठीक ही तो कहा है—

'वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये
महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि।'

कहनेका तात्पर्य यह है कि पुण्यके सद्भावमें, जिनकी सम्भावना नहीं, वे कार्य भी आनायास हो जाते हैं, अतः जिन जीवों को सुखकी कामना है उन्हें पुण्य-कार्योंमें सदा उपयोग लगाना चाहिए।

बुन्देलखण्डके दो महान् विद्वान्

बाईजीके स्वस्थ होनेके अनन्तर हम सब लोग बरुवासागर चले गये और आनन्दसे अपना समय व्यतीत करने लगे। इतने में ही क्या हुआ कि कामताप्रसाद, जो कि बाईजीका भाई था, मगरपुर चला गया। वहाँसे उसका पत्र आया कि हम बीमार हैं, आप लोग जल्दी आओ। हम वहाँ पहुँचे और उसकी वैयावृत्य करने लगे। उसका हमसे गाढ़ प्रेम था। एक दिन बोला कि हम ५००) आपके फल खानेके लिये देते हैं। मैंने कहा—'हम तो आप की समाधिमृत्युके लिये आये हैं। यदि इस तरह रुपये लेने लगें तो लोकमें अपवाद होगा। आप दान करें, हमसे मोह छोड़ें, मोह ही संसारमें दुःखका कारण है।' वह बोला—'जिस कार्यमें देवेंगे वहाँ मोहसे ही तो देवेंगे और जहाँ देवेंगे उसका उत्तर कालमें क्या उपयोग होगा? इसका निश्चय नहीं। यदि आपको देवेंगे तो यह निश्चित है कि विद्याध्ययनमें ही मेरी सम्पत्ति जावेगी। आप ही कहें, मैं कौनसा अन्याय कर रहा हूँ? आपको उचित है कि ५००)

लेना स्वीकार करें। यदि आप न लेंगे तो मुझे शल्य रहेगी, अतः यदि आप मेरे हितू हैं तो इस देय द्रव्यको स्वीकार करिये। मैं चोरीसे नहीं देता। आपको पात्र जानकर सबके सामने देता हूँ। जब मेरी बहिनने आपको पुत्रवत् पाल रक्खा है तब आप मेरे भानजे हुए। इस रिश्तेसे भी आपको लेना पड़ेगा। आशा है कि आप मेरी प्रार्थना विफल न करेंगे।'

मैं कामताप्रसादके वचन श्रवण कर चुप हो गया। उन्होंने सर्राफ मूलचन्द्रजीको पत्र लिख दिया कि आपके यहाँ जो मेरे ५१०) रुपये जमा हैं वे आप गणेशप्रसादको दे देना। इसके अनन्तर हम उन्हें समाधिमरण सुनाते रहे। पश्चात् कार्यवश मैं तो बरुआसागर चला आया पर बाईजी वहीं रहीं। तीन दिन बाद कामताप्रसादजीने सर्व परिग्रह त्याग दिया, सिर्फ एक वस्त्र न त्याग सके। अन्तमें नमस्कारमन्त्रका जाप करते-करते उनकी आयु पूर्ण हो गई।

बाईजी उनकी दाहादि क्रिया कराकर बरुआसागर आ गईं। कुछ दिन हम लोग कामताप्रसादजीके शोकमें मग्न रहे, पर अन्तमें फिर पूर्ववत् अपने कार्यमें लग गये।

बाईजीने कहा—'बेटा! तुम्हारा पढ़ना छूट गया, इसका रंज है, अतः फिर बनारस चलो और अध्ययन प्रारम्भ कर दो। बाईजीकी आज्ञा स्वीकार कर मैं बनारस चला गया और श्रीमान् शास्त्रीजीसे न्यायशास्त्रका अध्ययनकर ३ खण्ड न्यायाचार्यके पास हो गया। परन्तु सुपरिन्टेन्डेन्टसे मनोमालिन्य होनेके कारण मैं बनारस छोड़कर फिरसे टीकमगढ़ आगया और श्रीमान् दुलार झा जीसे पढ़ने लगा।

इसी समय उनके सुपुत्र श्रीशान्तिलाल झा, जो कि न्यायशास्त्र के प्रखर विद्वान् थे, अपने पिताके दर्शनार्थ आये। उनसे हमारा अधिक स्नेह हो गया। एक दिन वे हमसे बोले—कि 'यह तो वृद्ध

हैं। अब इनकी शक्ति अध्ययन करानेमें असमर्थ है। आप हमसे न्याय पढ़ो।' यह कथा श्रीशास्त्रीजीने सुन ली। अवसर पाकर मुझसे बोले—'शान्ति क्या कहै था।' मैंने कहा—'कुछ नहीं कहते थे।' पर शास्त्रीजी तो अपने कानसे सब सुन चुके थे, बोले-'उसे अभिमान है कि हम न्यायशास्त्रके विद्वान् हैं।' सामने बुलाकर बोले—'अच्छा शान्ति! यह तो बताओ कि न्याय किसे कहते हैं आध घण्टा पिता-पुत्रका शास्त्रार्थ हुआ पर पिताके समक्ष शान्तिलाल न्यायका लक्षण बतानेमें असमर्थ रहे।

पाठकगण! यहाँ यह नहीं समझना कि शान्तिलाल विद्वान् न थे, परन्तु वृद्ध पिताके समक्ष अवाक् रह गये। इसका यह तात्पर्य है कि दुलारझा ने ४० वर्षकी अवस्था तक नवद्वीपमें अध्ययन किया था। वृद्ध बाबा बड़े निर्भीक थे। उनका कहना था कि मैं न्यायशास्त्रमें बृहस्पतिसे भी नहीं डरता। अस्तु,

मैं शान्तिलालजीको लेकर बरुआसागर चला आया। श्री सर्राफ मूलचन्द्रजी उन्हें ३०) मासिक देने लगे। मैं उनसे पढ़ने लगा। मैं जब यहाँके मन्दिरमें जाता था तब श्रीदेवकीनन्दनजी भी दर्शनके लिये पहुँचते थे। इनके पिता बहुत बुद्धिमान् और जातिके पञ्च थे। बहुत ही सुयोग्य व्यक्ति थे। उनका कहना था कि यह बालक बुद्धिमान् तो है। परन्तु दिन भर उपद्रव करता है, अतः इसे आप बनारस ले जाइये। मैंने देवकीनन्दनसे कहा—'क्यों भाई! बनारस चलोगे?' बालकने कहा—'हाँ, चलेंगे।'

मैं जब उसे बनारस ले जानेके लिये राजी हो गया तब सर्राफजीने यह कहते हुए बहुत निषेध किया कि क्यों उपद्रवकी जड़ लिये जाते हो? परन्तु मैंने उनकी एक न सुनी। उन्होंने बाईजीसे भी कहा कि ये व्यर्थ ही उपद्रवकी जड़ साथ लिये जाते हैं। पर बाईजीने भी कह दिया कि 'भैया! तुम जिसे उपद्रवी

कहते हो उसके लिये पण्डितजी और महाराज कहते-कहते तुम्हारा गला न सूखे तो हमारा नाम न लेना।'

अन्तमें मैं उसे बनारस ले गया और विद्यालयमें प्रविष्ट करा दिया। बालक होनहार था, अतः बहुत ही शीघ्र कालमें व्युत्पन्न हो गया। इसकी बुद्धिकी प्रखरता देख श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित गोपालदासजी आगरावालोंने इसे मोरेनामें धर्मशास्त्रका अध्ययन कराया। कुछ दिन बाद ही यह धर्मशास्त्रमें विशिष्ट विद्वान् हो गया। और उसी विद्यालयमें अध्यापन कार्य करने लगा।

श्रीमान् स्वर्गीय पण्डितजी जहाँपर व्याख्यान देनेके लिये जाते थे वहाँ उन्हें भी साथ ले जाते थे। इनकी व्याख्यान कला देख पण्डितजी स्वयं न जाकर कहीं-कहीं इन्हींको भेज देते थे। यह व्याख्यान देनेमें इतने निपुण निकले कि समाजने इन्हें व्याख्यान-वाचस्पतिकी उपाधिसे विभूषित किया। कारंजा गुरुकुलकी उन्नति में आपका ही प्रमुख हाथ है और यह भी आपके ही पुरुषार्थका फल है कि खुरईमें श्री पार्श्वनाथ गुरुकुलकी स्थापना हो गई।

यद्यपि हमारे बुन्देलखण्ड प्रान्तमे धनाढ्योंकी कमी नहीं है पर यह सच है कि यहाँ धनाढ्य विद्वानोंको अपनाना नहीं जानते, अन्यथा क्या आप खुरईमें निवास कर इस प्रान्तका उपकार नहीं करते? वैसे तो आपने इस प्रान्तका बहुत कुछ उपकार किया ही है—देवगढ़ रथका निर्विघ्न होना आपके ही पुरुषार्थका फल है, परवारसभाका उत्थान आपके ही उपदेशोंके द्वारा हुआ है और अभी जबलपुरमें जिस गुरुकुलका कार्यक्रम चल रहा है उसके अधिष्ठाता भी आप ही हैं। आप अपने बालकोंके पठनादिकी व्यवस्थाके लिये इन्दौर रहते हैं और सर सेठ साहबके दरबार-की शोभा बढ़ा रहे हैं।

इसी प्रकार समाजके प्रमुख विद्वान् और धर्मशास्त्रके अद्वितीय धर्मज्ञ पं० वंशीधरजी न्यायालंकार भी, जो कि महरौनीके रहने

वाले हैं, सर सेठ साहबके दरबारकी शोभा बढ़ा रहे हैं। हमारे प्रान्तमें यदि कोई उदार प्रकृतिका धनाढ्य होता तो उक्त दोनों विद्वानोंको अपने प्रान्तसे बाहर नहीं जाने देता और ये इसी प्रान्तका गौरव बढ़ाते। चूँकि इस प्रान्तके ही अन्न-जलसे इन लोगोंका बाल्यकाल पल्लवित हुआ है, अतः इस प्रान्तके भाईयों-का भी आपके ऊपर अधिकार है और उसका उपकार करना इनका कर्त्तव्य है।

इनके यहाँ रहनेमें दो ही कारण हो सकते हैं या तो कोई सर सेठ साहबकी तरह उदार प्रकृतिका हो या ये निरपेक्ष वृत्ति धारण कर स्वयं उदार बन जावें। मेरी तो धारणा है कि 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' इस सिद्धान्तानुसार सम्भव है कि इन दोनों महानुभावोंके चित्तमें हमारे प्रान्तके प्रति करुणा भाव उत्पन्न हो जावे और उस दशामें हम तो स्वयं इन दोनों-को इस प्रान्तके श्रीमन्त समझने लगेंगे। विशेष क्या लिखूँ? यह प्रासङ्गिक बात आ गई।

चकौती में

संवत् १९८४ की बात है—बनारससे मैं श्रीशान्तिलाल नैयायिकके साथ चकौती जिला दरभंगा चला गया और वहीं पर पढ़ने लगा। जिस चकोतीमें मैं रहता था वह ब्राह्मणोंकी बस्ती थी, अन्य लोग कम थे, जो थे वे इन्हींके सेवक थे।

इस ग्राममें बड़े-बड़े नैयायिक विद्वान् हो गये हैं। उस समय भी वहाँ ४ नैयायिक, २ ज्योतिषी, २ वैयाकरण और २६ धर्मशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् थे। इन नैयायिकोंमें सहदेव झा भी एक ः वह बड़े बुद्धिमान् थे। इनके यहाँ कई छात्र बाहरसे आकर न्याय-

शास्त्रका अध्ययन करते थे। मेरा भी चित्त इन्हींके पास अध्ययन करनेका हो गया। यद्यपि यह बात श्री शान्तिलालजीको बहुत अनिष्टकारक हुई तो भी मैं उनके पास अध्ययन करने लगा।

यहाँ पर एक गिरिधर शर्मा भी रहते थे, जो बड़े चलते पुरजा थे। मेरा उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। मैं सामान्य-निरुक्तिकी विवेचना पढ़ता था। यहाँका समस्त वातावरण न्यायशास्त्रमय था। जहाँ देखो वहाँ 'अवच्छेदकावच्छेदेन' की ध्वनि सुनाई देती थी, परन्तु यहाँकी एक बात मुझे बहुत ही अनिष्टकर थी वह यह कि यहाँके सब मनुष्य मत्स्य-मांसभोजी थे। जहाँ पर मैं रहता था उस स्थानसे १५ कदमकी दूरी पर एक पीपलका वृक्ष था। उसके नीचे एक देवीकी मूर्ति थी। वहाँ पर प्रायः जब किसीका यज्ञोपवीत हुआ, विवाह-शादी हुई, श्राद्ध आदि हुए, दशहरा आया, या नवदुर्गा आई, तब बकरोंकी बलि होती थी। यह मुझसे न देखा गया तथा प्रतिदिन लोग मत्स्यमांस पकाते थे। उसकी दुर्गन्धके मारे मुझसे भोजन नहीं खाया जाता था। मैंने आटा खाना छोड़ दिया, केवल चावल और शाक खाकर दिन काटता था। कभी-कभी भुने चने खाकर ही दिन निकाल देता था।

एक दिन मोहल्लाके एक वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'बेटा! इतने दुर्बल क्यों होते जाते हो? क्या खानेके लिये नहीं मिलता? या तुम बनानेमें अपटु हो? हमसे कहो हम तुम्हारी सब तकलीफ दूर कर देवेंगे।' मैंने कहा—'बाबाजी! आपके प्रसादसे मेरे पास खानपानकी सब सामग्री है, परन्तु जब मैं खानेको बैठता हूँ तब मछलीकी गन्ध आती है, अतः ग्रास भीतर नहीं जाता। एक दिन की बात है कि मैं भोजन बनाकर खानेकी तैयारीमें था कि इतनेमें एक ब्राह्मणका लड़का आया, एक पोटली भी लिये था वह। मैंने उससे पूछा—क्या वनसे पकोरा लाये हो? वह बोला—

हाँ, लाया हूँ, क्या आप लोगे ? उत्तम तरकारी बनेगी। मैं भोला भाला, क्या जानूँ कि यह क्या लिये है ? मैंने कहा—दीजिये। उसने पोटली खोली उसमें केकड़ा और मछलियाँ थीं। मैं तो देखकर अन्धा हो गया और उस दिन जो भोजन बनाया था वह नहीं खाया गया—दिन रात उपवास करना पड़ा। उसके बाद दूसरे दिन जब भोजन बनानेकी चेष्टा करने लगा तब वही पोटलीका दृश्य आँखोंके सामने उपस्थित होने लगा। इस तरह कई दिन सूखे चने और चावल खा खाकर दिन काटे। जब उदराग्नि प्रज्वलित होती है और भूखकी वेदना नहीं सही जाती तब आँख बन्द कर खा लेता हूँ।'

मेरी कथाको श्रवणकर बुड्ढे ब्राह्मण महाराजको दया आ गई। उन्होंने मोहल्लाके सब ब्राह्मणोंको जमाकर यह प्रतिज्ञा करायी कि 'जब तक यह अपने ग्राममें छात्र रूपसे रहे तब तक आप लोग मत्स्य-मांस न बनावें और न देवी पर बलिप्रदान करें। यह भद्र प्रकृतिका बालक है। इसके ऊपर हमें दया करना चाहिये।' इस तरह मेरा वहाँ निर्वाह होने लगा। आटा आदि की भी व्यवस्था हो गई और आनन्दसे अध्ययन चलने लगा।

द्रौपदी

इस चकौतीमें एक ऐसी विलक्षण घटना हुई कि जिसे सुनकर पाठकगण आश्चर्यान्वित हो जावेंगे। इस घटनामें आप देखेंगे कि एक ही पर्यायमें जीव पापात्मासे पुण्यात्मा किस प्रकार होता है। घटना इस प्रकार है—

वहाँ पर एक ब्राह्मण था जो बहुत ही प्रतिष्ठित धनाढ्य, विद्वान् और राज्यमान था। उसकी एक पुत्री थी—द्रौपदी। जो अत्यन्त रूपवती थी। केश उसके इतने सुन्दर और लम्बे थे कि

एड़ीतक आते थे और मुखकी कान्ति इतनी सुन्दर थी कि उसे देखकर अच्छे अच्छे रूपवान् पुरुष और रूपवती स्त्रियाँ लज्जित हो जाती थीं। दुर्भाग्यवश वह बाल्यावस्थासे ही विधवा हो गई। उस कन्याके साथ उसके माता पिताका अत्यन्त गाढ़ प्रेम था, अतः उन्होंने उसे उसके श्वसुरगृह नहीं भेजा। अन्तमें उसका चरित्र भ्रष्ट हो गया। कई तो उसने गर्भपात किये, परन्तु पिताके स्नेहमें वह अन्यत्र नहीं भेजी गई। रुपयाके बलसे उसके सब पाप छिपा दिये जाते थे, परन्तु पाप भी कोई पदार्थ है जो छिपायेसे नहीं छिपता।

उसके नामका एक सरोवर था, उसका पानी अपेय हो गया। उसीका नामका एक बाग भी था, उसमें जो फल लगते थे उनमें पकने पर कीड़े पड़ने लगे। इससे उसके पापकी चर्चा प्रान्त भरमें फैल गई। पापके उदयमें जो न हो सो अल्प है।

कुछ कालके बाद द्रौपदीके चित्तमें अपने कुकृत्योंपर बड़ी घृणा हुई, उसने मन्दिरमें जाकर बहुत ही पश्चात्ताप किया और घर आकर अपने पितासे कहा—'पिताजी! मैंने यद्यपि बहुत ही भयंकर पाप किये हैं, परन्तु आज मैंने अन्तरङ्गसे इतनी निन्दा गर्हा की है कि अब मैं निष्पाप हूँ। अब मैं श्री जगन्नाथजीकी यात्राको जाती हूँ वहाँसे श्रीवैद्यनाथ जाऊँगी। वहाँ पर वैद्यनाथजीको जल चढ़ाऊँगी और जिस समय 'ओं शिवाय नमः' कहती हुई जल चढ़ाऊँगी उसी समय महादेवजीके कैलाशलोकको चली जाऊँगी।'

द्रौपदीकी यह बात सुनकर उसके पिता बहुत ही प्रसन्न हुए और गद्गद स्वरमें बोले-'बेटी मैं तुम्हारी कथा सुनकर अत्यन्त प्रमोदको प्राप्त हुआ हूँ। मैं आस्तिक हूँ, अतः यह मानता हूँ कि ऐसा होना असम्भव नहीं। ऐसे अनेक उपाख्यान शास्त्रोंमें आते हैं जिनमें भयङ्कर पाप करनेवालोंका भी उसी जन्ममें उद्धार होना

लिखा है। अच्छा, यह बताओ कि यात्रा कब करोगी?' पुत्रीने कहा–वैशाख सुदि पूर्णिमाके दिन यात्राके लिये जाऊँगी। अब क्या था, सम्पूर्ण नगरके लोग उस दिनकी प्रतीक्षा करने लगे। बहुतसे स्त्री पुरुष भक्तिसे प्रेरित हो यात्राकी तैयारी करने लगे और कितने ही कौतुक देखनेको उत्सुकतासे यात्राके लिये चेष्टा करने लगे। सभीके मनमें इस बातका कौतुक था कि जिसने आजन्म पाप किये हैं वह भला शिवलोकको सिधारे? बहुत कहनेसे क्या लाभ? अन्तमें वैशाखकी पूर्णिमा आ गई। प्रातः काल ९ बजे यात्राका मुहूर्त्त था। गाजे-बाजेके साथ द्रौपदी घरसे बाहर निकली। ग्राम भरके नर-नारी उसे पहुँचानेके लिये ग्रामके बाहर आध मील तक चले गये।

द्रौपदीने समस्त नर-नारियोंसे सम्बोधन कर प्रार्थना की और कहा कि 'मैंने गुरुतर पाप किये—कामके वशीभूत होकर यहाँ पर जो अनुग्रह झा खड़ा है इसके साथ गुप्त पाप किये, सहस्रों रुपये इसे खिलाये, ५ बार भ्रूणहत्यायें भी कीं। अपने द्वारा किये हुए पापोंकी याद आते ही मेरी आत्मा सिहर उठती है। परन्तु आज से २० दिन पहले मुझे अपनी आत्मामें बहुत ग्लानि हुई और यह विचार मनमें आया कि जो आत्मा पाप करनेमें समर्थ है वह उसे त्याग भी सकता है। यह कोई नियम नहीं कि जो आज पापी है वह सर्वदा पापी ही बना रहे। यदि ऐसा होता तो कभी किसीका उद्धार ही नहीं हो पाता। आत्मा निमित्त पाकर पापी हो जाता है और निमित्त पाकर पुण्यात्मा भी बन सकता है। हमारा आत्मा इन विषयोंके वशीभूत होकर निरन्तर अनर्थ करने में ही तत्पर रहा, अन्यथा यह इस प्रकार दुर्गतिका पात्र नहीं होता। मैं एक कुलीन कुलमें उत्पन्न हुई, मेरा बाल्यकाल बड़ी ही पवित्रतासे बीता, मैंने विष्णुसहस्रनाम आदि स्तोत्र पढ़े और उसका पाठ भी किया, मेरे पिताने मुझे गीताका भी अध्ययन

कराया था, मैं उसका भी पाठ करती थी, गीतापाठसे मेरी यह श्रद्धा हो गई थी कि आत्मा अजर अमर है, निर्दोष है, अनादि-अनन्त है। परन्तु यह सब होते हुए भी मैं इस मनुष्यके द्वारा पापपङ्कमें लिप्त हो गई। इस घटनासे मुझे यह निश्चय हुआ कि आत्मा सर्वथा निर्दोष नहीं। यदि सर्वत्र निर्दोष होता तो मैं इस तरह पापपङ्कमें अनुलिप्त क्यों होती? यद्यपि आत्मा न मरता है, न जीता है, यह गीतामें लिखा है पर वह ग्रन्थकारकी एक विवक्षा है। आत्मा जनमता भी है और मरता भी है, यदि ऐसा न होता तो कोई पशु है, कोई मनुष्य है और कोई देवता है यह सब क्यों होता? तथा पुराणोंमें जो लिखा है कि सच्चा काम करोगे शिवलोक जाओगे, बुरे काम करोगे पाताललोक जाओगे, यह सब गप्पाष्टक होता पर यह गप्पाष्टक नहीं है। आत्मा यदि दोषभाक् न होता तो ऋषियोंने प्रायश्चित्तशास्त्र व्यर्थ ही बनाया। इन सब बातोंको देखते हुए मेरे आत्मामें यह निश्चय हो गया कि आत्मा पापी भी होता है और उसका उदाहरण मैं ही हूँ। अब मेरी आप नर-नारियोंसे यह प्रार्थना है कि कभी भी पाप न करना। पापसे मेरा यह अभिप्राय है कि स्त्री लोगोंको यह नियम करना चाहिये कि अपने पतिको छोड़कर अन्य पुरुषोंको पिता, पुत्र और भाईके सदृश समझे और पुरुषवर्गको चाहिये कि वह स्वस्त्रीको छोड़कर अन्य स्त्रियोंको माता, भगिनी और पुत्रीके सदृश समझे। अन्यथा जो मेरी दुर्गति और निन्दा हुई वही आपकी होगी। देखो, श्रीरामचन्द्रजी महराजने जब बालीको मारा तब बाली कहता है—

मै बैरी सुग्रीव प्यारा। कारण कवन नाथ मोहि मारा।

उत्तरमें श्रीरामचन्द्रजी महाराज कहते हैं—

अनुज-बधू भगिनी सुत-नारी। सुनु शठ ये कन्या सम चारी।
इनहि कुदृष्ट करै जो कोई। ताहि बधे कछु दोष न होई।

यह कथा रामायणमें प्रसिद्ध है। इसलिये आजसे सब नर-नारी इस व्रतको लेकर घर जावें। इसे न लेनेसे आपका कल्याण नहीं। इसके सिवाय एक बात और कहना चाहती हूँ, वह यह कि भगवान् दीनदयालु हैं, उनकी दया प्राणीमात्रके ऊपर होनी चाहिये। पशु भी एक प्राणी है। उन्होंने ऐसा कौनसा अपराध किया कि उन निरपराधोंका दुर्गादेवीके सामने बलि चढ़ाया जाता है। जिसका नाम जगदम्बा है उसे उसीका पुत्र मारकर दिया जावे, यह घोर पाप है जो कि हम लोगोंमें आ गया है और इसीसे हमारी जातिमें प्रति दिन शान्तिका अभाव होता जाता है। देखो, इनकी विचार धारा कहाँ तक दूषित हो गई। एकने तो यहाँ तक अनर्थ किया कि जिसे कहती हुई मैं कम्पायमान हो जाती हूँ—

'केचिद्वदन्त्यमृतमस्ति सुरालयेषु
केचिद्वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु।
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षा
जम्बीरनीरपरिपूरितमांसखण्डे॥'

इस प्रकार मांसभक्षकोंने संसारसे नाना अनर्थ फैलाये हैं, जिनके मांसका भोजन है उनके दयाका लेश नहीं। देखो, जो पशु मांस खाते हैं वे महान् निर्दयी होते हैं। उनसे प्राणीगण सदा भयभीत रहते हैं। पर जो मांस नहीं खाते उनसे किसीको भय नहीं लगता। सिंहके सामने अच्छेसे अच्छे बलिष्ठ पेशाब कर देते हैं। इसका कारण यही तो है कि वह हमारा मांस-भक्षण करनेवाला हिंसक प्राणी है। हाथी, घोड़ा, गाय, ऊँट आदि वनस्पति खानेवाले जीव हैं, अतः इन्हें देखकर किसीको भय नहीं होता। अतः जिस मांसके खानेसे क्रूर परिणाम हों उसे त्याग देना ही उचित है। देखो, आपके सामने जो गणेशप्रसाद खड़े हैं यह जैनी हैं, इनका भोजन अन्न है, अपना ग्राम इतना बड़ा है, यहाँ पर १००० ब्राह्मणोंका निवास है, ब्राह्मणोंका ही नहीं पण्डितोंका

निवास है जो देखो वही इनकी प्रशंसा करता है, सब लोग यही कहते हैं कि यह बड़ा सौम्य छात्र है, इसका मूल कारण इसकी दयालुता है। मुझे जाना है अन्यथा इस विषय पर बड़ी मीमांसाकी आवश्यकता थी।'

द्रौपदीका व्याख्यान पूर्ण नहीं हुआ था कि बीचमें ही बहुतसे नर-नारी हँस पड़े और यह शब्द सुननेमें आने लगा कि 'नौसे मूसे विनाश कर बिल्ली हज्जको चली।' यह वाक्य सुनते ही द्रौपदीने कहा कि ठीक है, परन्तु अब मैं पापिनी नहीं। यदि तुम लोगोंको विश्वास न हो तो हमारे बागमें जो फल पक्व हों उन्हें चुन कर लाओ, सब ही अमृतोपम स्वादिष्ट होंगे तथा मेरी पुष्करिणीका जल गङ्गाजलके सदृश होगा।

कई मनुष्य एकदम बाग और पुष्करिणीकी ओर दौड़ पड़े। जो बाग गये थे वे वहाँसे बिल्वफल, लीची और आम लाये तथा जो पुष्करिणी गये थे वे चार घड़े जल लाये। सब समुदायने फलभक्षण किये। सभीके मुखसे ये शब्द निकल पड़े कि ऐसे स्वादिष्ट फल तो हमने जन्मसे लेकर आज तक नहीं खाये। पश्चात् पुष्करिणीका जल पिया गया और सर्वत्र यह ध्वनि होने लगी कि यह तो गङ्गाजलकी अपेक्षा भी मधुर है।

अनन्तर जनसमुदायने उसे मस्तक नवाकर प्रणाम किया और अपने अपराधकी क्षमा मांगी। द्रौपदीने आशीर्वाद देते हुए कहा कि यह सब हमारे परिणामोंकी स्वच्छताका फल है। इतनेमें अनुग्रह झाने, जिसने कि उसके साथ दुश्चरित्रका व्यवहार किया था, सबके समक्ष आत्मीय अपराधोंकी क्षमा मांगी और भविष्यमें इस पापके न करनेकी प्रतिज्ञा की।

इसके बाद द्रौपदीबाईने जगन्नाथ स्वामीकी यात्राके लिये जोगिया स्टेशन जिला दरभंगासे प्रस्थान किया। यहाँ तक तो हमारा देखा दृश्य है। इसके,बाद जो महाशय उसके साथ गये थे

उन्होंने यात्रासे वापिस आकर हमसे जो कहा वह पाठकोंके अव-लोकनार्थ ज्यों-का-त्यों यहाँ लिखते हैं—प्रथम तो द्रौपदीबाई कलकत्ता पहुँची और कालीके दर्शन करनेके लिये काली-मन्दिर गई, परन्तु वहाँका रक्तपात देख दर्शनोंके बिना ही वापिस लौट आई। पश्चात् श्रीजगन्नाथपुरीकी यात्राके लिये गई और उसके अनन्तर वैद्यनाथजी आ गई। जिस समय स्वच्छ वस्त्र पहिन कर तथा हाथमें जलपात्र लेकर श्रीवैद्यनाथजीके ऊपर जलधारा देनेका प्रयत्न करने लगी उस समय वहाँके पंडोंने कहा—'आप जल तो चढ़ाती हैं पर दान-दक्षिणा क्या देंगी ?' उसने कहा—'दानकी कथा छोड़ो, हम तो जल चढ़ाकर शिवलोक चले जावेंगे।' पण्डोंको आश्चर्य हुआ कि यह कहाँकी पगली आई ? बहुत कहाँ तक लिखें, जिस समय उसने 'ओं शिवाय नमः' कह महादेवके ऊपर जलधारा दी उसी समय उसके प्राण पखेरू उड़ गये और सहस्रों नर-नारियोंके गुणगानमें सारा मन्दिर गूँज उठा।

इस कथानकके लिखनेका तात्पर्य यह है कि अधमसे अधम प्राणी भी परिणामोंकी निर्मलतासे देवगति प्राप्त कर सकता है।

नीच जाति, पर उच्च विचार

अब मैं आपको यह दिखाना चाहता हूँ कि मणि, मन्त्र और औषधिमें अचिन्त्य शक्ति है। इसी चकौती ग्राममें मेरी पीठमें अदृष्ट फोड़ा हो गया, रात दिन दाह होने लगी, एक मिनटको भी चैन नहीं पड़ती थी, निद्रादेवी पलायमान हो गई, क्षुधा-तृषाकी वेदना चली गई, 'हे भगवन्' के सिवाय कुछ नहीं उच्चारण होता था। रात्रि-दिन वेदनामें ही समय जाता था। मोहल्ला भर मेरी वेदनासे दुःखी हो गया। कोई कहता कि दरभंगा अस्पतालमें ले चलो, कोई कहता कि औषधि तो खाता नहीं अस्पतालमें ले जाकर क्या करोगे ? कोई कहता कि दुर्गा सप्तसतीका पाठ

कराओ, कोई कहता कि विष्णु-सहस्रनामका पाठ कराओ और कोई कहता कि चिन्ता मत करो कर्मका विपाक है, अपने आप शान्त हो जावेगा। बहुत कुछ तर्क-वितर्क होने पर भी अन्तमें कुछ स्थिर न हो सका। इतनेमें बिहारी मुसहड़ वहाँसे जा रहा था। उसने मेरी वेदना देख कर कहा कि यह इतना बेचैन क्यों है? लोगोंने कहा कि इसकी पीठमें अदृष्ट फोड़ा हो गया है और वह बढ़ते-बढ़ते आंवला बराबर हो गया है, इसीसे रात्रि-दिन बेचैन रहता है। उसने कहा—आप लोग औषधि नहीं जानते?' लोगोंने कहा—'हमने तो बीसों दवाइयाँ कीं, पर किसीने आराम नहीं पहुँचाया।' तब बिहारी बोला—'अच्छा आप चिन्ता छोड़ देवें, यदि परमात्माकी अनुकम्पा हुई तब यह आज ही अच्छा हो जावेगा। अच्छा, मैं जाता हूँ और जड़ी लाता हूँ।' वह गया और १५ मिनटमें औषध लेकर आ गया। उसने दवाईको पीस कर कहा कि इसे बाँध दो। यदि इसका उदय अच्छा हुआ तो प्रातः काल तक फोड़ा बैठ जायगा या पक कर फूट जायगा। लोग हँसने लगे। तब बिहारी बोला कि हँसनेकी आवश्यकता नहीं, 'हाथके कंगनको आरसीको क्या आवश्यकता?'

सायंकालके ५ बजे थे। मुझसे उसने कहा कि कुछ खाना हो तो खा लो, पानी पीलो, फिर इस दवाईको बाँध कर सो जाओ, १२ घटे नींद आवेगी। मैं हँस पड़ा और कुछ मिष्टान्न खा कर दवाईके लगाते ही दाहकी वेदना शान्त हो गई और एकदम निद्रा आ गई। आठ दिनसे निद्रा न आई थी इससे एकदम सो गया और १२ घण्टेके बाद निद्रा भंग हुई। पीठ पर हाथ रक्खा तो फोड़ा नदारत। मैंने उसी समय पण्डितजीको बुलाया और उनसे कहा कि 'देखिये, मेरी पीठमें क्या फोड़ा है?' उन्होंने कहा—'नहीं है।' फिर मैं आनन्दसे शौचको गया। वहाँसे आकर स्नानादिसे निवृत्त हो नैयायिकजीसे पाठ पढ़ने

लगा। ग्रामके लोग आश्चर्यमें पड़कर कहने लगे कि देखो, भारतवर्षमें अब भी ऐसे-ऐसे जानकार हैं। इनका जो फोड़ा बड़े-बड़े वैद्योंके द्वारा भी असाध्य कह दिया गया था उसे बिहारी मुसहड़ने एक बारकी औषधमें ही निरोग कर दिया।

४ बजे बिहारी मुसहड़ फिर आया। मैंने उसे बहुत ही धन्यवाद दिया और १० का नोट देने लगा, परन्तु उसने नहीं लिया। मैंने उससे कहा कि यह औषधि हमें बता दो, उसने एकदम निषेध कर दिया और एक लम्बा भाषण दे डाला। उसने कहा कि बतानेमें कोई हानि नहीं, परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि आप इसे द्रव्योपार्जनका जरिया न बना लेवेंगे, क्योंकि आप लोगोंने अपनी आवश्यकताओंको इतना बढ़ा लिया है कि यद्वा तद्वा धन पैदा करनेसे आप लोग नहीं चूकते। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि इसी चकौती ग्राममें पहले कोई पण्डित नौकरी नहीं करता था। द्रव्य लेकर विद्या देना पाप समझते थे, ज्योतिषी लोग गरीबोंकी जन्मपत्रीका पैसा नहीं लेते थे, ग्राममें २० छात्र पढ़ते थे, उन्हें घर घर भोजन मिलता था। किसीके आमके बगीचामें चले जाइये। पेट भर आम खाइये और १० आम अलहदा घरके बालकोंको ले जाइये। किसीके ईखके खेत पर पन्थीगण बिना रस पिये नहीं जा सकता था। यदि कोई बाहरका आदमी सायंकाल घर पर ठहर गया तो भोजन कराये बिना उसे नहीं जाने देते थे। यदि कोई भोजन करनेसे इनकार करता था तो उसे ठहरने नहीं दिया जाता था...। यह व्यवस्था इस ग्रामकी थी, पर आज देखो तो यहाँके पण्डितगण बाहर जाकर विद्या पढ़ानेकी नौकरी करने लगे, चाहे ग्रामके बालक निरक्षर रहें। वैद्योंकी दशा देखिये—रोगीके घरमें चाहे खानेको न हो, परन्तु उन्हें फीसका रुपया होना ही चाहिये। यही हाल इन ज्योतिषी पण्डितोंका है। जमीदारोंको देखिये और मनुष्योंकी कथा छोड़िये। मनुष्य

की बात दूर रही। अब चिड़िया आदि पक्षी भी इनका आम नहीं खा सकते। यहाँकी ऐसी व्यवस्थाके कारण ही भारतवर्ष जैसा सुखी देश विपद्ग्रस्त हो रहा है। आज भारतवर्षकी जो दशा है वह किसीसे छिपी नहीं है, अतः माफ कीजिये, मैं आपको दवा नहीं बताऊँगा और न आपसे कुछ चाहता ही हूँ। हमारा काम मजदूरी करनेका है। उसमें जो कुछ मिल जाता है उसीसे संतोष कर लेता हूँ। सूखा दाल भात हमारा भोजन है। शाम तक परमात्मा दे ही देता है। आपसे दस रुपया लेकर मैं लालाजी नहीं बनना चाहता। आप जीते हैं और हम भी जीते हैं। ये जो आपके पास बैठे हैं सब अच्छे किसान हैं, परन्तु इन्हें दयाका लेश नहीं। जैसा फोड़ा आपको हुआ था वैसा यदि इन्हें या इनकी संतानको होता तो न जाने कितनी पशुहत्या हो जाती। इनका यही काम रह गया है कि जहाँ घरमें बीमारी हुई कि देवीको बकरा चढ़ानेका संकल्प कर लिया। मैं जातिका मुसहड़ हूँ और मेरे कुलमें निरन्तर हिंसा होती है। परन्तु मैंने ५ वर्षसे हिंसा त्याग दी है। इसका कारण यह हुआ कि मैं एक दिन शिकारके लिए धनुष बाण लेकर वनमें गया था। पहुँचते ही एक बाण हिरनीको मारा, वह गिर पड़ी। मैंने जाकर उसे जीवित ही पकड़ लिया। वह बाणसे मरी नहीं थी। घर जाकर मैंने विचार किया कि आज इसे मारकर सब कुटुम्ब पेटभर इसका मांस खावेंगे। हम लोग जब उसे मारने लगे तब उसके पेटसे बिलबिलाता हुआ बच्चा निकल पड़ा और थोड़ी देरके बाद छटपटा कर मर गया। उसकी वेदना देखकर मैं अत्यन्त दुखी हो गया और भगवान्से प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभो! मैं अधमसे अधम नर हूँ। मैंने जो पाप किये हैं हे परमात्मन्! अब उन्हें कौन क्षमा कर सकता है? जन्मान्तरमें भोगना ही पड़ेंगे, परन्तु अब आपके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजसे किसी प्राणीको न सताऊँगा। जो कुछ कर

चुका उसका पश्चात्ताप करता हूँ। उस दिनसे न तो मेरे घरमें मांस पकता है और न मेरे बाल-बच्चे ही मांस खाते हैं। मेरे जो खेत हैं उनमें इतना धान पैदा हो जाता है कि उससे मेरा वर्ष भरका खर्च आनन्दसे चल जाता है। मैं नीच जाति हूँ। आप लोग मेरा स्पर्श करनेसे डरते हैं। यदि कदाचित् स्पर्श हो भी जावे तब सचेल स्नान करते हैं, परन्तु बताओ तो सही, हमारे शरीरमें कौनसी अपवित्रताका वास है और आपके शरीरमें कौनसी पवित्रताका निवास है? सच पूछो तो आप लोगोंके पेटमें ३ सेर मछली जाती हैं जो हिंसासे मारी जाती हैं, पर मैं सात्त्विक भोजन करता हूँ जिसमें किसीको कुछ भी कष्ट नहीं होता। आपकी अपेक्षा मेरा शरीर अपवित्र नहीं, क्योंकि आपका शरीर मांससे पोषा जाता है और मेरा शरीर केवल चावल दालसे तुष्ट होता है। यदि इसमें आपको सन्देह हो तो किसी डाक्टर या वैद्यसे परीक्षा करा लीजिये। मैं जोर देकर कहता हूँ कि मेरा शरीर आप लोगोंके शरीरकी अपेक्षा उत्तम होगा। रही आत्माकी बात सो आपकी आत्मा दयासे शून्य है, हिंसासे भरी है, लोभादि पापोंकी खान है, विषयोंसे कलुषित है। इसके विपरीत हमारी आत्मा दयासे पुष्ट है, लोभादि पापोंसे सुरक्षित है और यथाशक्ति परमात्माके स्मरणमें भी उपयुक्त है। अब आप लोग ही निर्णय करके शुद्ध हृदयसे कहिये कि कौन तो अधम है और कौन उच्च? आप लोगोंने ज्ञानका अर्जन कर केवल संसारवर्द्धक विषयोंकी पुष्टि की है। यदि आप लोग संसारके दुःखोंसे भयभीत होते तो इतने अनर्थपूर्ण कार्योंकी पुष्टि न आप करते और न शास्त्रोंके प्रमाण ही देते—

'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या औषधार्थं सुरां पिबेत्।'

मैं पढ़ा लिखा नहीं, परन्तु यह वाक्य आपके ही द्वारा मुझे श्रवणमें आये हैं। कहाँ तक कहें कीदान तक आप लोगोंने शास्त्र-

अपनी पूर्वावस्थामें [पृ० १६६]

विहित मान लिया।'

इत्यादि कहते कहते अन्तमें उसने बड़े उच्च स्वरसे यहाँ तक कह दिया यद्यपि मैं आप लोगोंकी दृष्टिमें तुच्छ हूँ तो भी हिंसाके उक्त कार्योंको अच्छा नहीं समझता। अब मैं जाता हूँ। मैंने कहा—'अच्छा बाबा जाइये।' उसके चले जानेपर मैंने यह विचार किया कि यदि सत्य भावसे विचार किया जावे तो उसका कहना अक्षरशः सत्य है। जितने विद्वान् वहाँ उपस्थित थे सब निरुत्तर हो गये। परस्परमें एक दूसरेके मुख ताकने लगे। कई तो अपने कृत्य को निन्द्य मानने लगे और यहाँ तक कहने लगे कि जो शास्त्र हिंसादि कार्योंकी पुष्टि करता है वह शास्त्र नहीं, शस्त्र है। नहीं नहीं, शस्त्र तो एक ही का घात करता है पर ये शास्त्र तो असंख्य प्राणियोंका घात करते हैं। इन शास्त्रोंकी श्रद्धासे आज भारतवर्षमें जो अनर्थ हो रहे हैं वे अतिवाक् हैं—वचन अगोचर हैं। हमारे कार्य देखकर ही यवन लोगोंको यह कहनेका अवसर आता है कि 'आपके यहाँ बकरा आदिकी बलि होती है, हम लोग गाय आदिकी कुर्बानी करते हैं। धर्म दयामय है यह आप नहीं कह सकते, क्योंकि जिस शास्त्रमें यह लिखा है कि—'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' उसी शास्त्रमें देवता और अतिथिके लिये हिंसा करना धर्म बतलाया है....। ऐसे परस्पर विरोधी वाक्य जहाँ पाये जावें उसे आगम-शास्त्र मानना सर्वथा अनुचित है।'

यह सुनकर कितने ही उपस्थित विद्वानोंने कहनेवालेको खूब धिक्कारा और कहा कि तू शास्त्रके मर्मको नहीं जानता। मैंने सोचा कि यह संसार है, इसमें अपने अपने महोदयके अनुसार लोगोंके विचारोंमें तारतम्य होना स्वाभाविक ही है, अतः किससे क्या कहें? अस्तु, बात तो यहीं रही, यहाँ जो गिरिधर शर्मा रहते थे और जिनके साथ मेरा अत्यन्त प्रेम हो गया था, उन्होंने एक दिन कहा कि 'तुम यहाँ व्यर्थ ही क्यों समय यापन

करते हो ? नवद्वीपको चलो। वहाँ पर न्यायशास्त्रकी अपूर्व पठनशैली है। जो ज्ञान यहाँ एक वर्षमें होगा वह वहाँ सहवास में एक मासमें ही हो जायेगा।' मैं उनके वचनोंकी कुशलतासे चकौती ग्राम छोड़कर नवद्वीपको चला गया।

नवद्वीप, कलकत्ता फिर बनारस

जिस दिन नवद्वीप पहुँचा, उस दिन वहाँ पर छुट्टी थी। लोग अपने-अपने स्थानोंपर भोजन बना रहे थे। मुझे भी एक कोठरी दे दी गई और गिरिधर शर्माने एक कहारिनसे कहा कि 'इनका चौका लगा दे। तथा बनियेके यहाँसे दाल चावल आदि जो यह कहें सो ला दे।' मैं स्नान कर और णमोकारमंत्रकी माला फेर कर भोजनकी कोठरीमें गया। कहारिनने चूला सिलगा दिया था, मैंने पानी छानकर बटलोई चूल्हे पर चढ़ा दी, उसमें दाल डाल दी, एक बटलोईमें चावल चढ़ा दिया। कहारिन पूछती है—'महाशय शाक भी बनाओगे ? मैंने कहा—'अच्छा मटरकी फली लाओ।' वह बोली—'मछली भी लाऊँ ?' मैं तो सुनकर अवाक् रह गया। पश्चात् उसे डाँटा कि 'यह क्या कहती है ? हम लोग निरामिषभोजी हैं।' वह बोली 'यहाँ तो जितने छात्र हैं सब मांसभोजी हैं। यदि आपको परीक्षा करनी हो तो बगलकी कोठरीमें देख सकते हो। यहाँ पर उसके बिना गुजारा नहीं।' मैंने मन ही मन विचार किया कि हे भगवन् ! किस आपत्तिमें आ गये ?' दाल चावल बनाना भूल गया और यह विचार मनमें आया कि 'तेरा यहाँ गुजारा नहीं हो सकता, अतः यहाँसे कलकत्ता चलो। यहाँ पर श्रीमान् पण्डित ठाकुरप्रसादजी व्याकरणाचार्य हैं। उन्हींसे अध्ययन करना। उनसे तुम्हारा परिचय भी है।'

उस दिन भोजन नहीं किया गया। दो घंटा बाद गाड़ीमें बैठकर कलकत्ता चले गये। यहाँ पर पण्डित कलाधरजी पद्मावतीपुरवाल थे। उनके पास ठहर गये और फिर श्री पण्डित ठाकुरप्रसादजीसे मिले। उन्होंने संस्कृत कालेजमें नाम लिखा दिया तथा एक बंगाली विद्वान्से मिला दिया। मैं उनसे न्याय-शास्त्रका अध्ययन करने लगा।

यहाँ पर श्री सेठ पद्मराज जी राणीवाले थे। मन्दिरमें उनसे परिचय हुआ। वे हमारे पास न्यायदीपिका पढ़ने लगे और उन्होंने अपने रसोईघरमें मेरे भोजनका प्रबन्ध कर दिया। मैं निश्चिन्त हो कर पढ़ने लगा।

उन्हीं दिनों यहाँ पर बाबा अर्जुनदास जी पण्डित, जिनकी आयु ८० वर्षकी होगी, रहते थे। वे गोम्मटसार और समय-सारके अपूर्व विद्वान् थे। उस समय कलकत्तामें धर्मशास्त्रकी चर्चाका अतिशय प्रचार था। प० गुलझारीलालजी लमेचू तथा अन्य कई महाशय अच्छे-अच्छे तत्त्ववेत्ता थे। प्रातःकाल सभामें १०० महाशयसे ऊपर आते थे। यहाँ सुखपूर्वक काल जाने लगा। ६ मासके बाद चित्तमें उद्वेग हुआ, जिससे फिर बनारस चला आया। और श्री शास्त्रीजीसे अध्ययन करने लगा। इन्हींके द्वारा ३ खण्ड न्यायाचार्यके पास किये, परन्तु फिर उद्वेग हुआ और कार्यवश बाईजीके पास आ गया। बाईजीने कहा—बेटा! तुम्हें ६ खण्ड पास करने थे पर तुम्हारी इच्छा।'

बाबा शिवलालजी और बाबा दौलतरामजी

मैं कारणवश ललितपुर गया था, यहाँ पर रथयात्रा थी। उसमें श्री बालचन्द्रजी सवालनवीस सागरनिवासी आये थे। ये धर्मशास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे, संस्कृत भी कुछ जानते थे। ये उच्चकोटि के सवालनवीस थे। जिस अर्जीदावाको ये लिखते थे

उसे अच्छे-अच्छे वकील और वैरिष्टर भी मान लेते थे। इतना होने पर भी इनका नित्य प्रति दो घण्टा स्वाध्याय होता था। इनके व्याख्यानमें स्वर्गीय पं० मौजीलालजी, स्वर्गीय नाथूरामजी कठरया, स्वर्गीय पन्नालालजी बड़कुर, स्वर्गीय नन्हूमलजी सराफ, करोड़ीमलजी सर्राफ तथा लम्पूलालजी मोदी आदि अच्छे-अच्छे श्रोता उपस्थित होते थे। इनके साथ मुझे सागर जानेका अवसर मिला। इनका प्रवचन सुननेका भी मौका मिला, इनको मोक्षमार्ग कण्ठस्थ था और इनके तर्कसे अच्छे-अच्छे घबड़ा जाते थे। मेरा इनके साथ अतिस्नेह हो गया। सागरमें कुछ दिन ठहरकर मैं श्रीनैनागिर क्षेत्रकी वन्दनाके लिए चला गया। वहाँ पर श्रीवर्णी दौलतरामजीका स्वर्गवास हो गया था। इनके गुरु बाबा शिवलालजी थे जो सिरसीग्रामके रहनेवाले थे। ये बड़े तपस्वी थे। इनकी सामायिक ६ घड़ीकी होती थी।

एक बार सामयिक करते समय इनके ऊपर चींटीं चढ़ गईं, परन्तु ये अपने ध्यानसे चलायमान नहीं हुए। इनको निमित्तज्ञान भी अच्छा था। एक बार ये बमराना गये जो कि महरौनी तहसील और ललितपुर जिलेमें है। वहाँ ये श्रीब्रजलाल चन्द्रभानुजी सेठके यहाँ ठहरे थे। मैं भी उसी समय वहाँपर गया था। श्रीसेठजीके यहाँ जलविहार होना था। श्रीसवाई सिंघई धर्मदासजी साढ़ूमलवाले उसकी पत्रिका लिख रहे थे। पत्रिकाको देख कर बाबाजीने कहा—'ब्रजलाल! यह धर्मोत्सव इस मितिपर नहीं होगा। तुम्हें ४ दिनके बाद इष्ट वियोग होगा। बाबाजीकी बात सुनकर सब लोग दुखी हो गये। अन्तमें ४ दिनके बाद श्रीसेठ लक्ष्मीचन्द्रजीके पुत्रका स्वर्गवास हो गया। इसी प्रकार एक दिन श्रीब्रजलालका दामाद और उनके लड़केका साला मन्दिरकी दहलानमें लेटे हुए परस्पर बातचीत कर रहे थे। उन्हें देख

बाबाजीने ब्रजलाल सेठको बुलाकर कहा कि 'तुम्हारा दामाद ६ मासमेंऔर तुम्हारे लड़केका साला १ सालमें मृत्युका ग्रास होगा।' सो ऐसा ही हुआ।

उन्हीं बाबाजीने एक दिन मन्दिर जाते समय सेठ ब्रजलाल की माँ से पूछा कि चन्द्रभानु नहीं दिखता ? माँने कहा—'महाराज ! उसे तो पन्द्रहवाँ लँघन है।' महाराजने कहा—'हम देखने के लिये चलते हैं।' देखकर कहा—'यह तो नीरोग हो गया, इसका रोग पच गया, इसे आज ही पथ्य देना चाहिए और पथ्यमें आमको कढ़ी तथा पुराने चावलका भात देना चाहिये। जब इसे पथ्य हो जावेगा तभी मैं भोजन करूँगा।' फिर क्या था ? पथ्यकी तैयारी होने लगी। वैद्य लोगोंने कहा—'अच्छी बला आई, कढ़ीका पथ्य सन्निपातका कारण होगा और अभी तो २ लंघनकी कमी है, इत्यादि। परन्तु बाबाजीके तेजके सामने किसी के बोलनेकी सामर्थ्य न हुई। चन्द्रभानुको कढ़ीका पथ्य लेना ही पड़ा। पथ्य लेनेके बाद किसी तरहकी आपत्ति नहीं आई, प्रत्युत सायंकालको क्षुधाकी वेदना फिर भी हुई, हाँ, कुछ खाँसी अवश्य चलने लगी। प्रातःकाल बाबाजीसे कहा गया कि 'महाराज ! चन्द्रभानु अच्छा है, परन्तु कुछ कुछ खाँसी आने लगी है।' बाबाजी बोले—'यह तुम्हारी श्रद्धाकी दुर्बलता है। अच्छा प्रातः काल उसे कालीमिर्च और नमक डालकर नीबूको गर्मकर चुसा देना, खाँसी चली जावेगी।' ऐसा ही किया, खाँसीका पता नहीं कि कहाँ चली गई ?

बाबाजी बड़े दयालु भी थे। कोई भी त्यागी आ जावे, उसकी सब तरहकी वैयावृत्य श्रावकों द्वारा करवाते थे। सैकड़ों अजैनोंको जैनधर्मकी श्रद्धा आपने करवाई थी। आपका कहना था कि 'शरीर को सर्वथा निर्बल मत बनाओ। व्रत उपवास करो अवश्य,

परन्तु जिसमें विशेष आकुलता हो जावे ऐसा शक्तिको उल्लंघन कर व्रत मत करो। व्रतका तात्पर्य तो आकुलता दूर करना है।'

आप बाबा दौलतरामजीको बहुत डाँटते थे—कहा करते थे कि 'तेरे जो ज्ञानका विकास है उसके द्वारा परोपकार कर। यदि शक्तिहीन हो जायगा तो क्या करेगा?' बाबा दौलतरामजी भी बराबर उनका आदेश मानते रहे। आपका संवत् १९७९ में समाधिमरण हुआ। ये भी एक विशिष्ट ज्ञानी थे। उस समय जब कि पद्मपुराण तक ही शास्त्र बाँचनेवाले पण्डित कहलाते थे तब आपने बिना किसी की सहायता लिये गोम्मटसारका अध्ययन किया था। आपकी प्रतिभा यहाँ तक थी कि गोम्मसटारको छन्दोबद्ध बना दिया। आप कवि भी थे। आपकी बनाई हुई अनेक पूजाएँ और भजन यत्र तत्र प्रसिद्ध हैं। उनकी कविता सरस और मार्मिक है। सं० १९८१ में आपके द्वारा बण्डा (सागर) में एक पाठशाला और छात्रावासकी स्थापना हुई थी। यह आपके ही पुरुषार्थका फल था कि जो इस प्रान्तमें सर्व प्रथम छात्रावास और पाठशाला की स्थापना हो सकी थी। जहाँ आपका विहार होता था वहीं सैकड़ों श्रावक पहुँचते थे और एक धर्मका मेला अनायास लग जाता था। आपके द्वारा प्रान्तमें बहुत ही सुधार हुआ। पहले यहाँ रसोईमें घर-घर कण्डाका व्यवहार होता था, कच्चा दूध जमाया जाता था, रजस्वला स्त्री वर्तन माँजती थी और खटमलकी खटिया घाममें डाल दी जाती थी। इन सबका निषेध आपने बड़ी तत्परताके साथ किया और वे सब कार्य बन्द होगये। आपके उपदेशसे ग्रामनिवासी अपने बालकोंको जैनधर्म पढ़ाने लगे। आप बड़े ही जितेन्द्रिय थे। आपने अन्तमें अपने भोजनके लिए एक मूँग ही अनाज रख छोड़ा था और बाकी समस्त अनाजोंका त्यागकर दिया था। यद्यपि इससे आपके पैरोंमें भयंकर दर्द होगया, जो ६ मास तक रहा, परन्तु आप अपने नियमसे

विचलित नहीं हुए। आपमें यह गुण था कि आप जो प्रतिज्ञा लेते थे, प्राणान्त कष्ट होनेपर भी उसे नहीं छोड़ते थे। इन महोपकारी बाबाजीका अन्तमें नैनागिरजी सिद्धक्षेत्र पर स्वर्गवास हो गया। मेरे नैनागिर पहुँचनेके पहले ही आपका स्वर्गवास हो चुका था। वहाँ पहुँचने पर जब मैंने आपके समाधिमरणकी चर्चा सुनी तो मुझे भारी दुःख हुआ और मैंने यही निश्चय किया कि इस प्रान्तमें एक ऐसा छात्रावास अवश्य खुलवाना चाहिये जिसमें उत्तम पढ़ाई हो, परन्तु सामग्रीका होना अतिदुर्लभ था।

कोई उपदेष्टा न था

उस समय इस प्रान्तके लोगोंकी रुचि विद्याध्ययनमें प्रायः नहीं ही थी। यहाँ तो द्रव्योपार्जन करना ही मनुष्योंका उद्देश्य था। यदि किसीके धर्म करनेके भाव हुए भी तो श्रीजीके जल-विहारमें द्रव्य लगा दिया। किसीके अधिक भाव हुए तो मन्दिर बनवा दिया या पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा करा दी....। यही सब उस समयके लोगोंके धार्मिक कार्य थे। इनमें वे पैसा भी काफी खर्च करते थे। जिसके यहाँ पञ्चकल्याणक होते थे वे एक वर्षसे सामग्री संचित करते थे। पञ्चकल्याणकमें चालीस हजार आदमियोंका एकत्रित होना कोई बात न थी। इतनी भीड़ तो देहातमें हो जाती थी, पर बड़े-बड़े शहरोंमें एक लाख तक जैनी इकट्ठे हो जाते थे। उन सबका प्रबन्ध करना कोई सहज बात न थी। लकड़ी, घास, चना आदि सबको देना यह कुछ बात ही न थी, तीन दिन तक मिष्टान्न भोजन भी दिया जाता था। उस समय आटेकी चक्की न थी, अतः हाथकी चक्कियों द्वारा ही सब आटा तैयार होता था। इस महाभोज्यको देखकर अच्छे-अच्छे रईसोंकी बुद्धि भ्रममें पड़ जाती थी। एक बारमें ५०००० पचास हजार आदमियोंको भोजन कराना कितने चतुर परोसनेवालोंका

काम था। आज कल तो १० आदमियोंके भोजनकी व्यवस्था करना कठिन हो जाता है।

लोग इतना भारी खर्च बड़ी हँसी खुशीके साथ करते थे, पर विद्यादानकी ओर किसीकी दृष्टि न थी। पूजन पाठ भी शुद्ध रीतिसे नहीं जानते थे। भाद्रमासमें सूत्रपाठके लिये भायजी साहबको बुलाया जाता था। यहाँ भायजी शब्दका अर्थ पण्डितजी जानना और पण्डित शब्दका यह अर्थ जानना कि जो सूत्र बांचना जानते हों, जिन्हें भक्तामर कण्ठ हो, जो पद्मपुराण रत्नकरण्डश्रावकाचार सदासुखरायजीवाला, संस्कृतमें देव, शास्त्र और गुरुकी पूजा तथा दशलक्षण जयमाल मूलकी वचनिका करना जानते हों वे पण्डित कहलाते थे। यदि कोई गुणठाणाकी चर्चा जानता हो तब तो कहना ही क्या है? क्रियाकोषका जाननेवाला चरणानुयोगका पण्डित माना जाता था और प्रतिष्ठापाठ करानेवाले तो महान् पण्डित माने जाते थे।

लोग बहुत सरल थे। भायजी साहबकी आज्ञाको गुरुकी आज्ञा समझते थे। ज्ञानकी न्यूनता होनेपर भी लोगोंकी प्रवृत्ति धर्ममें बहुत रहती थी, पापसे बहुत डरते थे, यदि किसीसे धोखेमें अण्डा फूट गया तो उसको महान् प्रायश्चित्त करना पड़ता था, परस्त्रीसेवीको जातिसे च्युत कर दिया जाता था और जब तक उससे एक पक्का और एक कच्चा भोजन न ले लें तब तक उसका मन्दिर बन्द रहता था। जब तक दो पंक्ति भोजन और यथाशक्ति मन्दिरको दण्ड न देवे तब तक उसे मन्दिर नहीं जाने देते थे और न उसका कोई पानी ही पीता था। यही नहीं जब तक वह अपने घरसे विवाह न करले तब तक कोई उसे विवाहमें नहीं बुलाते थे। इस प्रकार कठिनसे कठिन दण्ड-विधान उस समय थे अतः उन दिनों आज जैसे पाप न थे।

इतना सब होनेपर भी लोगोंमें परस्पर बड़ा प्रेम रहता था।

यदि किसीके घर कोइ नवीन पदार्थ भोजनका कहींसे आया तो मोहल्ला भरमें वितरण किया जाता था। यदि किसीके घर गाय भैंसका बच्चा हुआ तो शुद्धताके बाद उसका दूध मोहल्ला भरके घरोंमें पहुँचानेकी पद्धति थी। इत्यादि उदारता होनेपर भी कोई विद्यादानकी तरफ दृष्टिपात नहीं करता था और इसका मूल कारण यह था कि कोई इस विषयका उपदेष्टा न था।

श्री स्व० बाबा दौलतरामजीके प्रति जो मेरी श्रद्धा हो गई थी। उसका मूल कारण यही था कि उन्होंने उस समय लोगोंका चित्त विद्यादानकी ओर आकर्षित किया था और बण्डामें एक छात्रावास तथा पाठशालाकी स्थापना करा दी थी। इस पाठशालाकी पढ़ाई प्रवेशिका तक ही सीमित थी और ३० छात्रोंके रहने तथा भोजनका उसमें प्रबन्ध था। इस पाठाशालाके मंत्री श्री दौलतरामजी चौधरी बण्डावाले, सभापति रायसाहब मोहनलालजी रोंडावाले, अधिष्ठाता धनप्रसादजी सेठ बण्डावाले और अध्यापक श्री पं० मूलचन्द्रजी विलौआ थे।

इस पाठशालाकी उन्नतिमें पं० मूलचन्द्रजीका विशेष परिश्रम था। आप बहुत ही सुयोग्य व्यक्ति हैं। आपके तत्कालीन प्रबन्धको देखकर अच्छे-अच्छे मनुष्योंकी विद्यादानमें रुचि हो जाती थी। आपकी वचनकला इतनी मधुर होती थी कि नहीं देनेवाला भी देकर जाता था।

यहां पर (बण्डा में) परवारोंके तीन खानदान प्रसिद्ध थे—साहु खानदान, चौधरी खानदान और भायजी खानदान गोलापूर्वोंमें सेठ धनप्रसादजी प्रसिद्ध व्यक्ति थे। इन सबके प्रयत्नसे पाठशाला प्रतिदिन उन्नति करती गई।

हम यह पहले लिख आये हैं कि इस पाठशालाकी पढ़ाई प्रवेशिका तक ही सीमित थी। उसमें संस्कृत विद्याके पढ़नेका

समुचित प्रबन्ध न था। पण्डित मूलचन्द्रजी कातन्त्र व्याकरण तक ही संस्कृत पढ़े थे, अतः उनसे संस्कृतकी पढ़ाई होना असंभव था। यह सब देखकर मेरे मनमें यह चिन्ता उठा करती थी कि जिस देशमें प्रतिवर्ष लाखों रुपये धर्म कार्यमें व्यय होते हों वहाँके आदमी यह भी न जानें कि देव, शास्त्र और गुरुका क्या स्वरूप है ? अष्ट मूलगुण क्या हैं ? यह सब अज्ञानका ही माहात्म्य है। मुझे इस प्रान्तमें एक विशाल विद्यालय और छात्रावासकी कमी निरन्तर खलती रहती थी।

सागरमें श्री सत्तर्कसुधातरङ्गिणी जैन पाठशालाकी स्थापना

ललितपुरमें विमानोत्सव था, मैं भी वहाँ पर गया, उसी समय सागरके बहुतसे महानुभाव भी वहाँ पधारे। उनमें श्री बालचन्द्रजी सवालनवीस, नन्दूमल्लजी कण्डया, कडोरीमल्लजी सर्राफ और प० मूलचन्द्रजी बिलौआ आदि थे। इन लोगोंसे हमारी बातचीत हुई और मैंने अपना अभिप्राय इनके समक्ष रख दिया। लोग सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु प्रसन्नतामात्र तो कार्यकी जननी नहीं। द्रव्यके बिना कार्य कैसे हो इत्यादि चिन्तामें सागरके महाशय व्यग्र हो गये।

श्रीयुत् बालचन्द्रजी सवालनवीसने कहा कि चिन्ता करनेकी बात नहीं, सागर जाकर हम उत्तर देवेंगे। लोग सागर गये वहाँ से उत्तर आया—'आप आइये, यहाँ पर पाठशालाकी व्यवस्था हो जावेगी।' मैंने ललितपुरसे उत्तर दिया—'आपका लिखना ठीक है परन्तु हमारे पास नैयायिक सहदेव झा हैं, उनको रखना पड़ेगा। हम उनसे विद्याध्ययन करते हैं।' पत्रके पहुँचते ही उत्तर आया 'आप उन्हें साथ लेते आइये जो वेतन उनका होगा हम देवेंगे।'

हम नैयायिकजीको लेकर सागर पहुँच गये। अक्षयतृतीया वीर निर्वाण सं० २४३५, वि सं० १९६५ को पाठशाला खोलनेका मुहूर्त्त निश्चय किया गया। इस पाठशालाका प्रारम्भिक विवरण इस प्रकार है—यहाँ पर एक छोटी पाठशाला थी, जिसमें पं० मूलचन्द्रजी अध्यापन कराते थे। उस पाठशालाके मन्त्री श्री पूर्णचन्द्रजी बजाज थे। आप बहुत ही उत्साही और उद्योगी पुरुष हैं। आपके ही प्रयत्नसे वह छोटी पाठशाला श्रीसत्तर्कसुधा-तरङ्गिणी नाममें परिवर्तित हो गई। आपके सहायक श्री पन्नालाल जी बड़कुर तथा श्री मोदी धर्मचन्द्रजीके लघुभ्राता कन्छेदीलालजी आदि थे। इन सबकी सम्मति इस कार्यमें थी, परन्तु मुख्य प्रश्न इस बातका था कि इतना द्रव्य कहाँसे आवे, जिससे कि छात्रावास सहित पाठशालाका कार्य अच्छी तरह चल सके। पर जो कार्य होनेवाला होता है उसे कौन रोक सकता है? सागरमें कण्डया-का वंश प्रसिद्ध है। इसमें एक हंसराज कण्डया थे। उनके पास अच्छी सम्पत्ति थी। अचानक आपका स्वर्गवास होगया। धनका अधिकार उनकी पुत्रीको मिला। उनके भतीजे श्री कण्डया नन्हू-मल्लजी, करोड़ीमल्लजीने कोई आपत्ति नहीं की, किन्तु उनके दामादसे कहा कि आप १००००) पाठशालाके लिए दे दो। ऐसा करनेसे उनकी कीर्ति रह सकेगी। दामादने सहर्ष १०००१) विद्या-दानमें दे दिया और साथ ही नन्हूमल्लजीने एक कोठी पाठशाला को लगा दी जिसका मासिक किराया १००) आता था। इस प्रकार द्रव्यकी पूर्ति हुई। तब अक्षयतृतीयाके दिन बड़े गाजे बाजेके साथ पाठशालाका शुभ मुहूर्त्त श्रीशिवप्रसादजीके गृहमें सानन्द होगया।

मुख्याध्यापक श्री सहदेवजी झा नैयायिक, श्री छिंगे शास्त्री वैयाकरण, श्री पं० मूलचन्द्रजी सुपरिन्टेन्डेन्ट, १ रसोइया, १ चपरासी और १ बर्तन मलनेवाला, इतना उस पाठशालाका परिकर था।

पाँच छात्रों द्वारा पाठशाला चलने लगी। कार्य उपयोगी था, अतः बाहरके लोगोंसे भी सहायता मिलने लगी।

पढ़ाई क्वीन्स कालेजके अनुसार होती थी। जब तक छात्र प्रवेशिकामें उत्तीर्ण नहीं होता था तब तक उसे धर्मशास्त्र नहीं पढ़ाया जाता था···इस पर समाजमें बड़ी टीका टिपण्णियाँ होने लगीं। कोई कहता—'आखिर गणेशप्रसाद वैष्णव ही तो हैं। उन्हें जैनधर्मका महत्त्व नहीं आता। उनके द्वारा जैनधर्मका उपकार कैसे हो सकता है?' कोई कहता—'जहाँ पर ब्राह्मण अध्यापक हैं और उन्हींकी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं वहाँके शिक्षित छात्र जैनधर्मकी श्रद्धा कर सकेंगे, यह संभव नहीं।' और कोई कहता—'अरे यहाँके छात्रोंसे तो णमोकारमन्त्र तकका शुद्ध उच्चारण नहीं होता।' कोई यह भी कह उठते कि यह बात छोड़ो, उन्हें तो देवदर्शन तक नहीं आता···ऐसी पाठशालाके रखनेसे क्या लाभ?'

इन सब व्यवहारोंसे मेरा चित्त खिन्न होने लगा और यह बात मनमें आने लगी कि सागर छोड़कर चला जाऊँ! परन्तु फिर मनमें सोचता कि 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' अच्छे कार्योंमें विघ्न आया ही करते हैं,मेरा अभिप्राय तो निर्मल है,मैं तो यही चाहता हूँ कि यहाँके छात्र प्रौढ़ विद्वान् बनें। जिन्हें षष्ठी पञ्चमीका विवेक नहीं, वे क्या रत्नकरण्डश्रावकाचार पढ़ेंगे। केवल तोता-रटन्तसे कोई लाभ नहीं हो पाता। भाषाका ज्ञान हो जानेपर उसमें वर्णित पदार्थका ज्ञान अनायास ही हो जाता है····अतः सागर छोड़ना उचित नहीं।

श्री पूर्णचन्द्रजी बड़े गम्भीर स्वभावके हैं। उन्होंने कहा कि 'काम करते जाइये, आपत्तियाँ आपसे आप दूर होती जावेंगी।' 'दैवेच्छा बलीयसी'। २ वर्ष के बाद पाठशालासे छात्र प्रवेशिकामें उत्तीर्ण होने लगे। तब लोगोंको कुछ संतोष हुआ और रत्नकरण्ड-

श्रावकाचार यदि संस्कृत ग्रन्थोंका अन्वय सहित अभ्यास करने लगे तब तो उनके हर्षका ठिकाना न रहा।

पाठशालाके सर्व प्रथम छात्र श्री मुन्नालालजी पाटनवाले थे। प्रवेशिकामें सर्व प्रथम आप ही उत्तीर्ण हुए थे। आप बड़े ही प्रतिभाशाली छात्र थे। आपने प्रारम्भसे लेकर न्यायतीर्थ तकका अध्ययन केवल ५ वर्षमें कर लिया था। आज आप उसी पाठशालाके प्रधानमंत्री हैं और हैं सागरके एक कुशल व्यापारी। कालक्रमसे इसी पाठशालामें पं० निद्धामल्लजी, पं० जीवन्धरजी शास्त्री इन्दौर, पं० दरबारीलालजी वर्धा, पं० दयाचन्द्रजी शास्त्री, पं० माणिकचन्द्रजी न्यायतीर्थ तथा पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य आदि अनेकों छात्र प्रविष्ट हुए, जो आज समाज के प्रख्यात विद्वान् माने जाते हैं।

अब जिस मकानमें पाठशाला थी, वह मकान छोटा पड़ने लगा। उस समय सागरमें ऐसा कोई मकान या धर्मशाला न थी जिसमें २० छात्रोंका निर्वाह हो सके, अतः निरन्तर चिन्ता रहने लगी, परन्तु यदि भवितव्यता अच्छी होती है तो सब निमित्त अनायास मिलते जाते हैं। श्री राईसे बजाजने, जो कि समैया-चैत्यालयके प्रबन्धक थे, चैत्यालयका एक बड़ा मकान, जो कि चमेली चौकमें था, पाठशालाके लिये दे दिया और पाठशाला उसमें चली गई। वहाँ दो अध्यापकोंके रहने योग्य स्थान भी था। उस समय वैसा मकान ४०) मासिक किराये पर भी नहीं मिलता। इस तरह मकानकी चिन्ता तो दूर हुई। पर व्यय स्थायी आमदनीसे अधिक होने लगा, अतः सब कार्यकर्ताओंको चिंता होने लगी। अन्तमें यह निर्णय किया कि कटरा चला जावे। यदि वहाँके थोक व्यापारी धर्मादाय लगा देवें तो सम्भव है उपयुक्त आमदनी होने लगे। इसके अनन्तर कई महाशयोंसे सम्मति ली। सभीने कहा बहुत उत्तम विचार है।

एक दिन कटराके सब पञ्चोंसे निवेदन किया कि आपके ग्राममें यह एक ही पाठशाला ऐसी है जिसके द्वारा प्रान्त भरका उपकार होनेकी संभावना है। यदि आप लोग धर्मादाय देनेकी अनुकम्पा करें तो पाठशालाकी स्थिरता अनायास ही हो जावे, क्योंकि उसमें आय कम है और व्यय बहुत है। श्रीयुत मलैया प्यारेलालजी, श्रीयुत मलैया शिवप्रसादजी, श्रीयुत सिंघई मौजीलालजी, श्रीयुत सिंघई होतीलालजी, श्रीयुत सिं० राजाराम मुन्नालालजी और श्रीयुत सिं०मनसुखलालजी दलाल आदिने बड़ी ही प्रसन्नताके साथ एक आना सैकड़ा धर्मादाय लगा दिया, इससे पाठशालाकी आर्थिक व्यवस्था कुछ-कुछ सँभल गई।

इसी समय श्री सिंघई कुन्दनलालजीसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। आप मुझे अपने भाईके समान मानने लगे। मासमें प्रायः १० दिन आपके घर भोजन करना पड़ता था। एक दिन मैंने आपसे पाठशालाकी आय सम्बन्धी चर्चा की तो आपने बड़ी सान्त्वना देते हुए कहा कि चिन्ता मत करो, हम कोशिश करेंगे। आप घी और गल्लेके बड़े भारी व्यापारी हैं। आपके और श्रीयुत माणिकचौकवाले कन्हैयालालजीके प्रभावसे एक पैसा प्रतिगाड़ी धर्मादाय गल्ले बजारसे होगया। इसी प्रकार आपने घीके व्यापारियोंसे भी कोशिश की, जिससे फी मन आध पाव पाठशालाको मिलने लगा। इस प्रकार हजारों रुपये पाठशालाकी आय होगई। यह तो स्थनीय सहायताकी बात रही। देहातमें भी जहाँ कहीं धार्मिक उत्सव होते, वहाँसे पाठशालाको सैकड़ों रुपये मिलते थे। इस तरह बुन्देलखण्डके केन्द्रस्थान सागरमें श्रीसत्तर्कसुधातरङ्गिणी जैन पाठशालाका पाया कुछ ही समयमें स्थिर होगया।

पाठशालाकी सहायताके लिए

संस्कृत पढ़नेकी ओर छात्रोंका आकर्षण बढ़ने लगा, इसलिए छात्रसंख्या प्रतिवर्ष अधिक होने लगी। छात्रों और अध्यापकोंका समूह ही तो शिक्षासंस्था है। इस संस्थामें विद्वान् अच्छे रक्खे जाते थे और उन्हें वेतन भी समयानुकूल अच्छा दिया जाता था, जिससे वे बड़ी तत्परताके साथ काम करते थे। यही कारण था कि इस संस्थाने थोड़े ही समयमें लोगोंके हृदयमें घर कर लिया।

मैं पाठशालाकी सहायताके लिए देहातमें जाने लगा। एक बार बरायठा ग्राम, जो कि बण्डा तहसीलमें है, पहुँचा। वहाँ श्रीजीका विमानोत्सव था। दो हजार मनुष्योंकी भीड़ थी। श्रीयुत कमलापतिजी सेठके आग्रहसे मुझे भी जानेका अवसर आया। वहाँ की सामाजिक व्यवस्था देखकर मैं आश्चर्यान्वित हो गया। यहाँ पर चालीस घर जैनियोंके हैं। सब गोलापूर्व वंशके हैं। सभीमें परस्पर प्रेम है। एक मन्दिर है जो जमीनसे पाँच हाथ की कुरसीपर बीस हाथकी ऊँचाई लेकर बनाया गया है। उसकी उन्नत शिखर दूरसे ही दृष्टिगत होने लगती है। मन्दिरके चारों तरफ एक कोट है, एक धर्मशाला भी है, जिसमें त्यागी आदि धर्मात्मा जन ठहराये जाते हैं। मैं सेठ कमलापतिजीके यहाँ ठहरा।

मैंने कहा—'भाई! दो हजार आदमियोंकी पंगतका प्रबन्ध कैसे होगा?' आपने कहा—'यहाँका यह नियम है कि पंगतमें जितना आटा या बेसन लगता है वह सब घरवाले पीसकर देते हैं। अभी जाड़ेके दिन हैं, अतः सात दिनके अन्दरका ही आटा है। पानी सब जैनियोंकी औरतें कुएसे लाती हैं। एक ही बारमें चालीस खेप पानी आ जाती है। पूड़ी बनानेके लिए प्रत्येक घरसे एक बेलनेवाली आती है। वह अपना बेलन और चरसा साथ

जाती है। मर्द बारी-बारीसे निकाल देते हैं, मिठाई बनानेवाले भी कई व्यक्ति हैं, वे बना देते हैं, इस प्रकार ताजा भोजन आगन्तुकोंको मिलता है। भोजन दो बार होता है। इसके सिवाय प्रातःकाल बालकोंको कलेवा (नास्ता) भी दिया जाता है। हमारे यहाँ ढीमरसे पानी नहीं भराते। यह तो धार्मिक कार्य है, विवाह कार्योंमें भी ढीमरसे पानी नहीं भराते। यह पंगतकी व्यवस्था है। ग्रामके लोगोंमें इतना प्रेम है कि जिसके यहाँ उत्सव होता है वह अव्यग्र रहता है। सब प्रकारका प्रबन्ध यहाँकी आम जनता करती है।'

मुझे सेठजीके मुखसे पंगतकी व्यवथा सुनकर बहुत ही आनन्द हुआ। प्रातःकाल गाजे-बाजेके साथ द्रव्य लाते थे। मंगल-पाठ पढ़ते हुए जल भरनेके लिये जाते थे। जब श्रीजीका अभिषेक होता था, तब सुमेरु पर्वतके ऊपर क्षीरसागरजलसे इन्द्र ही मानों अभिषेक कर रहे हों....यह दृश्य सामने आ जाता था। जिस समय गान-तानके साथ पूजन होती थी, सहस्रों नर-नारी प्रमोदसे गद्गद हो उठते थे। एक एक चौपाई पन्द्रह पन्द्रह मिनटमें पूरी होती थी। मैंने तो अपनी पर्यायमें ऐसी पूजन नहीं देखी। पूजनके बाद गानेवाला भैरवीमें श्रीजीका स्तवन करता था। यहाँ पर एक भायजी रामलालची जासोड़ावाले आये थे। आपका गला इतना सुन्दर और सुरीला था वि लोग उनका गान सुनकर घर जाना भूल जाते थे। पूजनके बाद लोग डेरापर जाते और वहाँसे सब एकत्र हो पंगतके लिये पहुँचते थे। दो हजार मनुष्यों-का एक साथ भोजन होता था! भोजनमें शाक, पूड़ी और मिठाई रहती थी। इस तरह भोजन कर लोग मध्याह्नका समय आमोद-प्रमोदमें व्यतीत करते और सायंकालका भोजन कर बाहर जाते थे। पश्चात् सन्ध्या वन्दना करनेको मन्दिर जाते थे।

उस समयका दृश्य भी अपूर्व होता था। एक घण्टा भगवान्

की गानतानके साथ आरती होती थी। कई तो ऐसा अद्भुत नृत्य करते थे कि जिसे देखकर ताण्डवनृत्यका स्मरण हो आता था। आरतीके पश्चात् दो घण्टा शास्त्रप्रवचनमें जाते थे। शास्त्रमें रत्नकरण्डश्रावकाचार और पद्मपुराणकी वचनिका होती थी। शास्त्र बाँचनेके बाद यह उपदेश होता था कि भाई! रत्नद्वीपमें आये हो, कुछ तो लेकर जाओ। उपदेशसे प्रभावित होकर कोई कन्दमूल त्यागता था, कोई बेंगन त्यागता था, कोई रात्रिजलका त्याग करता था, कोई बाजारकी मिठाई छोड़ता था और कोई रात्रिके बने हुए भोजनका त्याग करता था।

इस प्रकार तीन दिन बड़े आनन्दके साथ बीते। तीसरे दिन जल विहार हुआ—श्रीजीका अभिषेक होकर पूजन हुआ। अनन्तर फूलमाला हुई। फूलमाला बड़े गानेके साथ होती थी। उसमें मंदिरकी प्रायः अच्छी आय हुई थी। अन्तमें पाठशालाकी अपील की गई। उसमें करीब ५००) आ गये। उस समयके ५००) आजके ५०००) के बराबर हैं। जब यह सब कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया और मैं सागर जाने लगा तब सेठ कमलापतिजीने मुझे अपने घर रोक लिया।

हम दोनों प्रातःकाल गिरारके मन्दिरके दर्शनार्थ गये। यह स्थान बरायठासे तीन मीलकी दूरी पर है। मन्दिरके नीचे ही अथाह जलसे भरी हुई नदी बहती है और सब तरफ अटवी है। अत्यंत रमणीय भूमि है। वह तप करनेके योग्य स्थान है। परन्तु पञ्चमकालमें तप करनेवाले दुर्लभ हैं। बरायठा ग्राममें ३०० जैनी होंगे जो सब तरहसे सम्पन्न हैं, कुटुम्बवाले भी हैं, परन्तु इतने मोही हैं कि पुत्र-पौत्रादिके रहते हुए भी घर छोड़नेमें असमर्थ हैं।

यहाँसे एक कोश भीकमपुर है। वहाँ भी दस घर जैनियोंके हैं जो उत्तम हैं। एक भाई तो बहुत ही ज्ञाता हैं, परन्तु ममतावश घर नहीं छोड़ सकते। इस प्रकार हम दोनों दो स्थानोंके दर्शन

कर बरायठा आगये। पश्चात् दो दिन ठहर कर हम दोनों तत्त्व-चर्चा करते हुए सागरके लिए रवाना हो गये।

वहाँसे चलकर दलपतपुर आये। रात्रिको मन्दिर गये। यहाँ पर मन्दिरमें अच्छी जनता उपस्थित हो गई। मैंने शास्त्रप्रवचन किया। पश्चात् पाठशालाके लिए अनाजकी प्रार्थना की तो बीस बोरा अर्थात् पचास मन गेहूँ हो गया। वहाँ पर सिंघई जवाहरलाल बहुत ही प्रतापी आदमी थे तथा भूरेलालजी शाह भी धनाढ्य व्यक्ति थे। आपने बड़े स्नेहसे रक्खा। यहाँसे चलकर बण्डा आये। पचास घर जैनियोंके हैं जो प्रायः सभी सम्पन्न हैं। यहीं पर श्री वर्णी दौलतरामजीके सत्प्रयत्नसे बोर्डिंग और पाठशालाकी इस देशमें सर्वप्रथम स्थापना हुई थी। यहाँसे भी पाठशालाको पर्याप्त सहायता मिली। यहाँसे चलकर हम लोग करापुर आये। यहाँ भूरे डेवड़िया बहुत ही सज्जन व्यक्ति थे। उन्होंने भी पाठशालाको अच्छी सहायता दी। आप एक धार्मिक व्यक्ति थे। आपके समाधिमरणकी चर्चा सुनकर आप लोगोंको श्रद्धा धर्ममें दृढ़ हो जावेगी।

जिस दिन आपका समाधिमरण था उस दिन करापुरका बाजार था। आपने दिनभर बाजार किया। शामको आपके पुत्रने कहा—'पिताजी! अन्थऊ कर लीजिये।' आपने कहा—'आज कुछ इच्छा नहीं।' बालकने कहा—'अब तो बिलकुल शाम हो गई, अतः घर चलिये।' उन्होंने कहा—'आज यहीं शयन करेंगे।' बेटाने कहा—'अच्छा।' पुत्र घर चला गया और आप दुकानमें ही एक कोठरी थी, जिसमें सदा स्वाध्याय और सामायिक किया करते थे, रात्रि होते ही उसीमें चले गये और सामायिक करने लगे। सामायिकके बाद आपने कोठरीके किवाड़ बन्द कर लिये। इसी बीच पुत्रने आकर कहा—'पिताजी किवाड़ खोलिये, नाई पैर दाबने आया है।' आप बोले—'बेटा आज पैर नहीं दबावेंगे,

प्रातःकाल देखा जावेगा।' लड़का चला गया। उसे कुछ पता नहीं कि आप सो गये या स्वाध्याय करते हैं या क्या करते है ? किन्तु जब प्रातःकाल हुआ और पिताजीकी कोठरी नहीं खुली तब वह बड़े जोरसे बोलने लगा—'पिताजी ! किवाड़ खोलो, पूजनका समय हो गया।' पिताजी हों तब तो खोलें। वह तो न जाने कब स्वर्गवासको चले गये। जब किसी तरह किवाड़ खोले गये तब लड़का क्या देखता है कि पिताजी दिगम्बर वेषमें भीतके सहारे पद्मासनसे टिके बैठे हुए हैं, उनका शरीर निश्चेष्ट है, सामने एक चौकी पड़ी है, उसपर एक शास्त्र विराजमान है, पास ही एक समाई रक्खी है, चौकी पर एक कागज रक्खा है और उसीके पास २००) रक्खे हैं।

कागजमें लिखा है—'बेटा ! आजतक हमारा तुम्हारा पिता पुत्रका सम्बन्ध था। हमने तुम्हारे लिए बहुत यत्नसे धनार्जन किया, परन्तु अन्यायसे नहीं कमाया। इतनी बड़ी पर्यायमें हमने कभी परदारको कुदृष्टिसे नहीं देखा, कोई भी त्यागी हमारे यहाँ आया, हमने यथाशक्ति उसे भोजन कराया और यदि उसने तीर्थ-यात्रादिके लिये कुछ मांगा तो यथाशक्ति द्रव्य भी उसे दिया। यद्यपि इस समय विद्यादानकी सबसे अधिक आवश्यकता है, परन्तु हमारे पास पुष्कल द्रव्य नहीं कि उसकी पूर्ति कर सकें। धनार्जन तो बहुत लोग करते हैं, परन्तु उसका सदुपयोग बहुत कम करते हैं। तुम हमारी एक बात मानना—हमने आजन्म सादे वस्त्रोंसे अपना जीवन बिताया, अतः तुम भी कदापि अनुपसेव्य वस्त्रोंका व्यवहार न करना। और जो यह २००) रक्खे हैं उन्हें विद्यादानमें लगा देना। अथवा तुम्हारी जहाँ इच्छा हो सो लगाना। अपने प्रान्तमें जो तेरईकी चाल है वह देखादेखी चल पड़ी है। इसे विशेष रूप देना अच्छा नहीं, अतः सामान्यरूपसे करना। यदि लोग तुम्हारे साथ जबर्दस्ती करें तो रस्म न मेंटना, कर देना

परन्तु विवाहकी तरह नाना पक्वान्न न बनाना। साथ ही अपनी जातिवालोंको खिलाकर दीन-दुखी जीवोंको भी खिला देना।'

दूसरे परचामें लिखा था कि आत्माकी अचिन्त्य शक्ति है। कर्मने उसे संकुचित कर रक्खा है, अतः जो उसे विकसित करना चाहते हैं वे कर्मका मूल कारण जो मोह है उसे अवश्य त्यागें। मैंने जो वस्त्रोंका त्याग किया है सो बुद्धिपूर्वक किया है। वस्त्रकी तरह मैंने सब परिग्रहका त्याग किया है। परिग्रहका त्याग करते समय मेरे अन्तरङ्गमें यह भाव नहीं हुए कि इसकी कुछ व्यवस्था कर जाऊँ, क्योंकि जो वस्तु ही हमारी नहीं है उसकी व्यवस्था करना कहाँ तक न्यायोचित है। २००) जो रख दिये हैं सो केवल लोकपद्धतिकी रक्षाके लिये। वास्तवमें जो वस्तु हमारी नहीं है उसके वितरणका हमें क्या अधिकार है? बहुत कुछ लिखनेका भाव था, परन्तु अब मेरे हाथमें शक्ति नहीं।

यह बात उनके पुत्रके मुखसे सुनी। रात्रिको उसी ग्राममें रहे। प्रातःकाल भोजन कर हम दोनोंने सागरके लिये प्रस्थान किया। वहाँसे चलकर बहेरिया ग्रामके कुआपर पानी पीने लगे। इतनेमें ही क्या देखते हैं कि सामने एक बालक और उसकी माता खड़ी है। बालककी अवस्था पाँच वर्षकी होगी। उसे देखकर ऐसा मालूम होता था कि वह प्यासा है। मैंने उसे पानी पिला दिया और हमारे पास खानेके लिये जो कुछ मेवा थे, उस बालकको भी थोड़ेसे दे दिये। पश्चात् मैंने और कमलापतिजी सेठने पानी पिया और थोड़ा-थोड़ा मेवा खाया। खाकर निश्चिन्त हुए और चलनेके लिये ज्यों ही उद्यमी हुए त्यों ही वह सामने खड़ी हुई औरत रोने लगी। हमने उससे पूछा—'क्यों रोती है?' उसने हितैषी जान अपनी कथा कहना प्रारम्भ किया—'मेरे पतिको गुजरे हुए आठ मास हुए हैं, हमारा जो देवर है वह बराबर लड़ता है और मेरे खानेमें भी त्रुटि करता है। यद्यपि मेरे यहाँ बीस बीघा जमीन

है, पर्याप्त अन्न भी होता है, परन्तु हमारी सहायता नहीं करता, मैं मारी-मारी फिरती हूँ। आज यह विचार किया कि पिताके घर चली जाऊँ। वहीं अपना निर्वाह करूँगी। यद्यपि मैं शूद्र कुलमें जन्मी हूँ और मेरे यहाँ दूसरा पति रखनेका रिवाज है, परन्तु मैंने देखा कि दूसरा पति रखनेवाली औरतको बड़े २ कष्ट सहना पड़ते हैं, अतः पतिके रखनेका विचार छोड़कर पिताके घर जा रही हूँ। यही मेरी राम-कहानी है।'

हमारे पास कुछ था नहीं, केवल धोती और दुपट्टा था तथा धोतीमें कुछ रुपये थ। मैंने वह धोती, दुपट्टा तथा रुपये सब उसे दे दिया। केवल नीचे लंगोट रह गया। सेठजी बोले—'इस वेषमें सागर कैसे जाओगे?' मैंने कहा—'चिन्ताकी कोई बात नहीं। यहाँ से चलकर तीन मीलपर सामायिक करेंगे। पश्चात् रात्रिके सात बजे ग्राममें चले जावेंगे। वहाँ पर धोती आदि सब वस्त्र रखे ही हैं।'

इस प्रकार हम और कमलापतिजी वहाँ से चले। बीचमें नित्य नियमकी विधि कर सागर पहुँच गये। चोरकी तरह घर पहुँचे। उस समय बाईजी मन्दिरको जा रही थीं। मुझे देखकर बोलीं—'भैया वस्त्र कहाँ हैं?' मैं चुप रह गया। कमलापतिजीने जो कुछ कथा थी,कह दी। बाईजी हँसती हुई मन्दिर चली गईं। आधा घंटा बाद हम दोनों भी शास्त्रप्रवचनमें पहुँच गये। पश्चात् कमलापति सेठ बरायठा चले गये और उनके साथ हमारा गाढ़ा स्नेह हो गया।

मड़ावरामें विमानोत्सव

मड़ावरासे, जहाँ पर कि मेरा बाल्यकाल बीता था, एक पत्र इस आशयका आया कि 'आप पत्रके देखते ही चले आइये। यहाँ

पर श्री जिनेन्द्र भगवान्‌के विमान निकालनेका महोत्सव है। उसमें दो हजारके लगभग भीड़ होगी।' मैं वहाँ के लिये प्रस्थान कर महरौनी पहुँचा। वहाँसे पण्डित मोतीलालजी वर्णीको साथमें लिया। उस समय आप महरौनीमें अध्यापकी करते थे। बरायठासे सेठ कमलापतिजीको बुलाया और सानन्द मड़ावरा पहुँच गये। उस समय वहाँ समाजमें परस्पर अत्यन्त प्रेम था। तीन दिनका उत्सव था। दो पगत श्री दामोदर सिंघईकी ओरसे थीं और एक पंचायती थी। तीनों दिन पूजापाठ और शास्त्रप्रवचनका अच्छा आनन्द रहा। अन्तमें मैंने कहा—'भाई एक प्रस्ताव परवार सभामें पास हो चुका है कि जो ५०००) विद्यादानमें देवे उसे सिंघई पद दिया जावे। इस ग्राममें सौ घरसे ऊपर हैं, परन्तु बालकोंको जैनधर्मका ज्ञान करानेके लिये कुछ भी साधन नहीं है। जहाँ पर १० मन्दिर हों, बड़े बड़े बिम्ब, सुन्दर सुन्दर वेदिकाएँ और अच्छे अच्छे गान-विद्याके जाननेवाले हों वहाँ धर्मके जाननेका कुछ भी साधन न हो, यह यहाँ इस समाजको भारी कलंककी बात है, अतः मुझे आशा है कि सोंरया वंशके महानुभाव इस त्रुटिकी पूर्ति करेंगे।'

मेरे बाल्यकालके मित्र श्री सोंरया हरीसिंहजी हँस गये। उनका हँसना क्या था, सिंघई पद प्राप्तिकी सूचना थी। उनके हास्यसे मैंने आगत जनसमुदायके बीच घोषणा कर दी कि बड़ी खुशीकी बात है कि हमारे बाल्यकालीन मित्रने सिंघई पदके लिए ५०००) का दान दिया। उससे एक जैन पाठशाला खोली जावे। मित्रने कहा—'हमको १० मिनटका अवकाश मिले। हम अपने बन्धुवर्गसे सम्मति ले लेवें। समाजने कहा—'कोई क्षति नहीं।' पश्चात् उन्होंने अपने भाईयोंसे तथा श्री बहोरेलालजी सोंरया, रामलाल आदिसे सम्मति माँगी। सबने ५०००) का दान सहज स्वीकार किया, परन्तु पञ्चोंसे यह भिक्षा माँगी कि कल हमारे

यहाँ पंक्ति-भोजन होना चाहिये। सभीने सहज स्वीकृति दे दी। इसीके बीच एक अवतार-कथा हुई, जिसे लिख देना समुचित समझता हूँ।

जिस समय हमारे मित्र अपने बन्धुवर्गसे सम्मति कर रहे थे, उस समय मैंने श्री दामोदर सिंघईसे कहा कि 'भैया! आप तो जानते हैं कि ५०००) में क्या पाठशाला चल सकेगी? २५) ही सूदके आवेंगे। इतनेमें तो एक अध्यापक ही न मिल सकेगा। आशा है आप भी ५०००) का दान देकर ग्रामकी कीर्तिको अजर-अमर कर देवेंगे। ५०) मासिकमें जैन पाठशाला सदैव चलती रहेगी। आपके पूर्वजोंने तो गगनचुम्बी मन्दिर बनाकर रथ चलाये और अनुपम पुण्यबन्धका लाभ लिया, आप विद्यारथ चलाकर बालकोंके लिए ज्ञानदानका लाभ दीजिए।' प्रथम तो आप बोले कि 'हमारे बड़े भाईकी औरत, जो घरकी मालकिन है तथा मेरे दो पुत्र हैं, उनसे सम्मति लिए बिना कुछ नहीं कर सकता।' मैंने कहा—'आप स्वयं मालिक हैं, सब कुछ कर सकते हैं तथा आपकी भौजीकी इसमें पूर्ण सम्मति है। मैं उनसे पूछ चुका हूँ।' दैवयोगसे वे शास्त्रसभामें आई थीं। मैंने उनसे कहा कि 'सिं० दामोदरजीजो कि आपके देवर हैं, ५०००) विद्यादान-में देना चाहते हैं, इस में आपकी क्या सम्मति है?' उन्होंने कहा—'इससे उत्तम क्या होगा कि हमारे द्वारा बालकोंको ज्ञानदान मिले।' लोगोंने सुनकर हर्षध्वनि की और उसी समय केशर तथा पगड़ी बुलाई गई। पञ्चोंने सोंरया वंशके प्रमुख व्यक्तियोंको पगड़ी बाँधी और केशरका तिलक लगाकर 'सिंघईजी जुहार' का दस्तूर अदा किया। पश्चात् श्री सिं० दामोदरदासजीको भी केशरका तिलक लगाकर पगड़ी बाँधी और 'सवाई सिंघई' पदसे सुशोभित किया। इस तरह जैन पाठशालाके लिए १००००) दश हजारका मूलधन अनायास हो गया।

पतित पावन जैनधर्म

मड़ावरासे चलकर हम लोग श्री पं० मोतीलालजी वर्णीके साथ उनके ग्राम जतारा पहुँचे। वहाँ पर आनन्दसे भोजन और पण्डितजीके साथ धर्मचर्चा करना यही काम था। यहाँ पर एक जैनी ऐसे थे, जो २५ वर्षसे जैन समाजके द्वारा बहिष्कृत थे। उन्होंने एक गहोईकी औरत रख ली थी। उसके एक कन्या हुई। उसका विवाह उन्होंने विनैकावालके यहाँ कर दिया था। कुछ दिनके बाद वह औरत मर गई और लड़की अपनी ससुरालमें रहने लगी। जातिसे बहिष्कृत होनेके कारण लोग उन्हें मन्दिरमें दर्शन करनेके लिये भी नहीं आने देते थे और जन्मसे ही जैनधर्मके संस्कार होनेसे अन्य धर्ममें उनका उपयोग लगता नहीं था। एक दिन हम और पं० मोतीलालजी तालाबमें स्नान करनेके लिये जा रहे थे। मार्गमें वह भी मिल गये। श्री वर्णी मोतीलालजीसे उन्होंने कहा कि 'क्या कोई ऐसा उपाय है कि जिससे मुझे जिनेन्द्र भगवान्‌के दर्शनोंकी आज्ञा मिल जावे?' मोतीलालजी बोले-'भाई! यह कठिन है। तुम्हें जातिसे खारिज हुए २५ वर्ष हो गये तथा तुमने उसके हाथका भोजन भी खाया है, अतः यह बात बहुत कठिन है।' हमारे पं० मोतीलालजी वर्णी अत्यन्त सरल थे। उन्होंने ज्यों-की-त्यों बात कह दी। पर मैंने वर्णीजीसे निवेदन किया कि 'क्या मैं इनसे कुछ पूछ सकता हूँ?' आप बोले—'हाँ, जो चाहो सो पूछ सकते हो।' मैंने उह आगन्तुक महाशयसे कहा—'अच्छा यह बताओ कि इतना भारी पाप करने पर भी तुम्हारी जिनेन्द्र-देवके दर्शनकी रुचि कैसे बनी रही?' वह बोले—'पण्डितजी! पाप और वस्तु है तथा धर्ममें रुचि होना और वस्तु है। जिस समय मैंने उस औरतको रक्खा था उस समय मेरी उमर तीस वर्षकी थी, मैं युवा था, मेरी स्त्रीका देहान्त हो गया, मैंने बहुत

प्रयत्न किया कि दूसरी शादी हो जावे। मैं यद्यपि शरीरसे निरोग था और द्रव्य भी मेरे पास २००००) से कम नहीं था फिर भी सुयोग नहीं हुआ। मनमें विचार आया कि गुप्त पाप करना महान पाप है। इसकी अपेक्षा तो किसी औरतको रख लेना ही अच्छा है। अन्तमें मैंने उस औरतको रख लिया। इतना सब होने पर भी मेरी धर्मसे रुचि नहीं घटी। मैंने पंचोंसे बहुत ही अनुनय विनय किया कि महाराज ! दूरसे दर्शन कर लेने दो। परंतु यही उत्तर मिला कि मार्ग विपरीत हो जावेगा।' मैंने कहा कि मन्दिरमें मुसलमान कारीगर तथा मोची आदि तो काम करने के लिए चले जावें, जिन्हें जैनधर्मकी रंचमात्र भी श्रद्धा नहीं, परन्तु हमको जिनेन्द्र भगवान्के दर्शन दूरसे ही प्राप्त न हो सकें····बलिहारी है आपकी बुद्धिको। कामवासनाके वशीभूत होकर मेरी प्रवृत्ति उस ओर हो गई। इसका यह अर्थ नहीं कि जैनधर्मसे मेरी रुचि घट गई। कदाचित् आप यह कहें कि मनकी शुद्धि रक्खो, दर्शनसे क्या होगा। तो आपका यह कोई उचित उत्तर नहीं है। यदि केवल मनकी शुद्धिपर ही आप लोगोंका विश्वास है तो श्री जैन मन्दिरके दर्शनोंके लिए आप स्वयं क्यों जाते हैं? तीर्थयात्राके लिए व्यर्थ भ्रमण क्यों करते हैं? और पञ्चकल्याणकप्रतिष्ठा आदि क्यों करवाते हैं? मनकी शुद्धि ही सब कुछ है, ऐसा एकान्त उपदेश मत करो। हम भी जैनधर्म मानते हैं। हमने औरत रख ली, इसका यह अर्थ नहीं होता कि हम जैनी ही नहीं रहे। हम अभी तक अष्ट मूलगुण पालते हैं, हमने आज तक अस्पतालकी दवाईका प्रयोग नहीं किया, किसी कुदेवको नहीं माना, अनछना पानी नहीं पिया, रात्रि-भोजन नहीं किया, प्रतिदिन णमोकारमन्त्रकी जाप करते हैं, यथाशक्ति दान देते हैं तथा सिद्धक्षेत्र श्री शिखरजीकी यात्रा भी कर आये हैं···· इत्यादि पञ्चोंसे निवेदन किया, परन्तु उन्होंने एक नहीं सुनी। यही

उत्तर मिला कि पंचायती सत्ताका लोप हो जावेगा। मैंने कहा–'मैं तो अकेला हूँ, वह रखेली औरत मर चुकी है, लड़की पराये घरकी है, आप सहभोजन मत कराइये, परंतु दर्शन तो करने दीजिये।' मेरा कहना अरण्यरोदन हुआ—किसीने कुछ न सुना। वही चिरपरिचित रूखा उत्तर मिला कि पंचायती प्रतिबन्ध शिथिल हो जावेगा···यह मेरी आत्मकहानी है।'

मैंने कहा–'आपके भाव सचमुच दर्शन करनेके हैं?' उसने कहा–हाँ। मैं अवाक् रह गया। पश्चात् उससे कहा–'भाई साहब! कुछ दान कर सकते हो?' वह बोला 'जो आपकी आज्ञा होगी शिरोधार्य करूँगा। यदि आप कहेंगे तो एक लंगोटी लगाकर घरसे निकल जाऊँगा। परंतु जिनेन्द्रदेवके दर्शन मिलना चाहिए, क्योंकि यह पञ्चम काल है। इसमें बिना अवलम्बनके परिणामोंकी स्वच्छता नहीं होती। आज कलके लोगोंकी प्रवृति विषयोंमें लीन हो रही है। यदि मैं स्वयं विषयमें लीन न हुआ होता तो इनके तिरस्कार का पात्र क्यों होता? आशा है आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान देने का प्रयत्न करेंगे। पञ्च लोगोंके जालमें आकर उन कैसी मत बोलना।' मैंने कहा—'क्या आप बिना किसी शर्तके सङ्गमर्मरकी वेदी मन्दिरमें पधरा दोगे?' उन्होंने कहा—'हाँ, इसमें कोई शंका न करिये। मैं १०००) की वेदी श्रीजीके लिये मन्दिरमें जड़वा दूँगा और यदि पंच लो दर्शनकी आज्ञा न देंगे तो भी कोई आपत्ति न करूँगा। यही भाग्य समझूँगा कि मेरा कुछ तो पैसा धर्ममें गया।' मैंने कहा—'विश्वास रखिये, आपका अभीष्ट अवश्य सिद्ध होगा।'

इसके अनन्तर मैंने घर जाकर सम्पूर्ण पञ्च महाशयोंको बुलाया और कहा कि 'यदि कोई जैनी जातिसे च्युत होनेके अनन्तर बिना किसी शर्तके दान करना चाहे तो आप लोग क्या उसे ले सकते हैं?' प्रायः सबने स्वीकार किया। यहाँ प्रायः से मतलब यह है कि

जो एक दो सज्जन विरुद्ध थे वे रुष्ट होकर चले गये। मैंने कहा-'अमुक व्यक्ति १०००) की संगमर्मरकी वेदिका मन्दिरमें जड़वाना चाहता है, आपको स्वीकार है?' उनका नाम सुनते ही बहुत लोग बोले—'वह तो २५ वर्षसे जातिच्युत है, अनर्थ होगा। आपने कहाँ की आपत्ति हम लोगों पर ढा दी।' मैंने कहा—'कुछ नहीं गया, मैंने तो सहज ही में कहा था। पर जरा विचार करो—मन्दिरकी शोभा हो जावेगी तथा एकका उद्धार हो जावेगा। क्या आप लोगोंने धर्मका ठेका ले रक्खा है कि आपके सिवाय मंदिर में कोई दान न दे सके। यदि कोई अन्य मतवाला दान देना चाहे तो आप न लेवेंगे! बलिहारी है आपकी बुद्धिको? अरे! शास्त्र में तो यहाँ तक कथा है कि शूकर, सिंह, नकुल और वानरसे हिंसक जीव भी मुनिदानकी अनुमोदनासे भोगभूमि गये, व्याघ्रीका जीव स्वर्ग गया, जटायु पक्षी स्वर्ग गया, बकरेका जीव स्वर्ग गया, चाण्डालका जीव स्वर्ग गया, चारों गतिके जीव सम्यग्दृष्टि हो सकते हैं, तिर्यञ्चोंके पञ्चम गुणस्थान तक हो जाता है। धर्मका सम्बन्ध आत्मासे है, न कि शरीरसे। शरीर तो सहकारी कारण है। जहाँ आत्माकी परिणति मोहादि पापोंसे मुक्त हो जाती है वहीं धर्मका उदय हो जाता है। आप इसे वेदिका न जड़वाने देवेंगे, परन्तु यह यदि पपौरा विद्यालयमें देना चाहेंगे तो क्या आपके वर्णीजी उस द्रव्यको न लेवेंगे और वही द्रव्य क्या आपके बालकोंके भोजनमें न आवेगा? उस द्रव्यसे अध्यापकोंको वेतन दिया जावेगा तो क्या वे इंकार कर देवेंगे? अतः हठको छोड़िये और दयाकर आज्ञा दीजिये कि एक हजार रुपया लेकर जयपुरसे वेदी मँगाई जावे।'

सबने सहर्ष स्वीकार किया और वेदिका लाने तथा जड़वाने का भार श्रीमान् मोतीलालजी वर्णीके अधिकारमें सौंपा गया। फिर क्या था, उन जातिच्युत महाशयके हर्षका ठिकाना न रहा।

श्री वर्णीजी जयपुर जाकर वेदी लाये। मन्दिरमें विधिपूर्वक वेदी-प्रतिष्ठा हुई और उसपर श्री पार्श्वप्रभुकी प्रतिमा विराजमान हुई। मैंने पञ्च महाशयोंसे कहा—'देखो, मन्दिरमें, जब शूद्र तक आ सकते हैं और माली रात्रि दिन रह सकता है तब जिसने १०००) दिये और जिसके द्रव्यसे यह वेदीप्रतिष्ठा हुई उसीको दर्शन न करने दिये जावें यह न्यायविरुद्ध है। आशा है हमारी प्रार्थना पर आप लोग दया करेंगे।'

सब लोगोंके परिणामोंमें न जाने कहाँसे निर्मलता आगई कि सबने उसे श्री जिनेन्द्रदेवके दर्शनकी आज्ञा प्रदान कर दी। इस आज्ञाको सुनकर वह तो आनन्द-समुद्रमें डूब गया। आनन्दसे दर्शन कर पञ्चोंसे विनयपूर्वक बोला—'उत्तराधिकारी न होनेसे मेरे पासकी सम्पत्ति राज्यमें चली जावेगी, अतः मुझे जातिमें मिला लिया जाय। ऐसा होनेसे मेरी सम्पत्तिका कुछ सदुपयोग हो जायगा।'

यह सुनकर लोग आगबबूला हो गये और झुँझलाते हुए बोले—'कहाँ तो मन्दिर नहीं आ सकते थे, अब जातिमें मिलनेका हौंसला करने लगे। अंगुली पकड़कर पोंचा पकड़ना चाहते हो?' वह हाथ जोड़कर बोला—'आखिर आपकी जातिका जन्मा हूँ। क्या जो वस्त्र मलिन हो जाता है उसे भट्टीमें देकर उज्वल नहीं किया जाता? यदि आप लोग पतितको पवित्र करनेका मार्ग रोक लेवेंगे तो आपकी जाति कैसे सुरक्षित रह सकेगी? मैं तो वृद्ध हूँ, मृत्युके गालमें बैठा हूँ। परन्तु यदि आप लोगोंकी यही नीति रही तो कालांतरमें आपकी जातिका अवश्यंभावी ह्रास होगा। जहाँ आय न हो केवल व्यय ही हो वहाँ भारी खजानेका अस्तित्व नहीं रह सकता। आप लोग इस बातपर विचार कीजिए, केवल हटवादिताको छोड़िये।'

मैंने भी उसकी बातमें बात मिला दी। पञ्च लोगोंने मेरे

ऊपर बहुत प्रकोप प्रकट किया। कहने लगे कि 'यह इन्हींका कर्तव्य है जो आज इस आदमीको इतना बोलनेका साहस हो-गया।' मैंने कहा—'भाई साहब! इतने क्रोधकी आवश्यकता नहीं। धोतीके नीचे सब नँगे हैं। आप लोग अपने कृत्योंपर विचार कीजिये और फिर स्थिर चित्तसे यह सोचिये कि आप लोगोंकी नियमहीन पञ्चायतने ही आज जैनजातिको इस दशामें ला दिया है। बेचारे जैनी लोग दर्शन तकके लिए लालायित रहते हैं। कल्पना करो, किसीने दस्साके साथ संबंध कर लिया तो इसका क्या यह अर्थ हुआ कि वह जैनधर्मकी श्रद्धासे भी च्युत हो गया। श्रद्धा वह वस्तु है जो सहसा नहीं जाती। शास्त्रोंमें इसके बड़े-बड़े उपाख्यान हैं—बड़े बड़े पातकी भी श्रद्धाके बलसे संसारसे पार होगये। श्री कुन्दकुन्द भगवान्‌ने लिखा है कि—

दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठाण णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चारियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति।'

अर्थात् जो दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं। जो दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे निर्वाणके पात्र नहीं। चरित्रसे जो भ्रष्ट हैं उनका निर्वाण (मोक्ष) हो सकता है, परन्तु जो दर्शनभ्रष्ट हैं वे निर्वाण लाभसे वञ्चित रहते हैं।

प्रथमानुयोगमें ऐसी बहुतसी कथाएँ आती हैं जिनमें यह बात सिद्ध की गई है कि जो चारित्रसे गिरने पर भी सम्यग्दर्शनसे सहित हैं वे कालान्तरमें चारित्रके पात्र हो सकते हैं। जैसे माघ-नन्दी मुनिने कुम्भकारकी बालिकाके साथ विवाह कर लिया तथा उसके सहवासमें बहुत काल बिताया, बर्तन आदिका अवा लगा-कर घोर हिंसा भी की। एक दिन मुनि-सभामें किसी पदार्थके विचारमें संदेह हुआ तब आचार्यने कहा इसका यथार्थ उत्तर माघ-नन्दी, जो कि कुम्भारकी बालिकाके साथ आमोद-प्रमोदमें अपनी आयु बिता रहा है, दे सकेगा। एक मुनि वहाँ पहुँचा, जहाँ कि माघ-

नन्दी मुनि कुम्भकारके वेषमें घटनिर्माण कर रहे थे और पहुँचते ही कहा कि 'मुनिसंघमें जब इस विषयपर शङ्का उठी तब आचार्य महाराजने यह कहकर मुझे आपके पास भेजा है कि इसका यथार्थ उत्तर माघनन्दी ही दे सकते हैं। कृपाकर आप इसका उत्तर दीजिए।'

इन वाक्योंको सुनते ही उनके मनमें एकदम विशुद्धताकी उत्पत्ति हो गई और मनमें यह विचार आया कि यद्यपि मैंने अधमसे अधम कार्य किया है फिर भी आचार्य महाराज मुझे मुनि शब्दसे संबोधित करते हैं और मेरे ज्ञानका मान करते हैं। कहाँ है मेरा पीछी-कमण्डलु ? यह विचार आते ही उन्होंने आगन्तुक मुनिसे कहा कि मैं इस शङ्काका उत्तर वहीं चलकर दूँगा और पीछी-कमण्डलु लेकर वनका मार्ग लिया। वहाँ प्रायश्चित्त विधिसे शुद्ध होकर पुनः मुनिधर्ममें दीक्षित हो गये।

बन्धुवर। इतनी कठोरताका व्यवहार छोड़िये। गृहस्थ-अवस्थामें परिग्रहके संबंधसे अनेक प्रकारके पाप होते हैं। सबसे महान् पाप तो परिग्रह ही है फिर भी श्रद्धाकी इतनी प्रबल शक्ति है कि समन्तभद्र स्वामीने लिखा है—

'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः॥'

अर्थात् निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गमें स्थित है और मोही मुनि मोक्षमार्गमें स्थित नहीं है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मोही मुनिकी अपेक्षा मोह रहित गृहस्थ उत्तम है। यहाँ पर मोह शब्दका अर्थ मिथ्यादर्शन जानना, इसीलिए आचार्योंने सब पापोंसे महान् पाप मिथ्यात्वको ही माना है। समन्तभद्र स्वामीने और भी लिखा है कि—

'न हि सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम्॥'

इसका भाव यह है कि सम्यग्दर्शनके सदृश तीन काल और तीन जगत्‌में कोई भी कल्याण नहीं और मिथ्यात्वके सदृश कोई अकल्याण नहीं, अर्थात् सम्यक्त्व आत्माका वह पवित्र भाव है जिसके होते ही अनन्त संसारका अभाव हो जाता है और मिथ्यात्व वह वस्तु है जो अनन्त संसारका कारण होता है, अतः महानुभावो ! मेरे पर नहीं अपने पर दया करो और इसे जातिमें मिलानेकी आज्ञा दीजिये।'

इन पञ्च महाशयोंमें स्वरूपचन्द्रजी बनपुरया बहुत ही चतुर पुरुष थे। वे मुझसे बोले—'आपने कहा सो आगम प्रमाण तो वैसा ही है, परन्तु यह जो शुद्धिकी प्रथा चली आ रही है उसका भी संरक्षण होना चाहिये। यदि यह प्रथा मिट जावेगी तो महान् अनर्थ होने लगेंगे। अतः आप उतावली न कीजिये। शनैः शनैः ही कार्य होता है।

'कारज धीरे होत है काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै केतिक सीचो नीर॥'

इसलिये मेरी सम्मति तो यह है कि यह प्रान्त भरके जैनियों को सम्मिलित करें। उस समय इनका उद्धार हो जावेगा।'

प्रान्तका नाम सुनकर मैं तो भयभीत हो गया, क्योंकि प्रान्तमें अभी हठवादी बहुत हैं। परन्तु लाचार था, अतः चुप रह गया। आठ दिन बाद प्रान्तके दो सौ आदमी सम्मिलित हुए। भाग्यसे हठवादी महानुभाव नहीं आये, अतः पञ्चायत होनेमें कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई। अन्तमें यह निर्णय हुआ कि यदि यह दो पंगत पक्की और एक पंगत कच्ची रसोईकी देवें तथा २५०) पपौरा विद्यालयको और २५०) जताराके मन्दिरको प्रदान करें तो जाति में मिला लिये जावें। मैंने कहा—'अब विलम्ब मत कीजिये, कल ही इनको पंगत ले लीजिये।' सबने स्वीकार किया। दूसरे दिनसे

सानन्द पंक्ति भोजन हुआ और ५००) दण्डके दिये गये। उसने यह सब करके पञ्चोंकी चरणरज शिर पर लगाई और सहस्रों धन्यवाद दिये। तथा बीस हजारकी सम्पत्ति जो उसके पास थी, एक जैनीका बालक गोद लेकर उसके सुपुर्द कर दी।...इस प्रकार एक जैनका उद्धार हो गया और उसकी सम्पत्ति राज्यमें जानेसे बच गई। कहनेका तात्पर्य यह है कि शुद्धिके मार्गका लोप नहीं करना चाहिये तथा इतना कठोर दण्ड भी नहीं देना चाहिये कि जिससे भयभीत हो कोई अपने पापोंको व्यक्त ही न कर सके।

इस प्रकार उसकी शुद्धि कर मैं श्रीयुक्त वर्णीजीके साथ देहात में चला गया। और यथाशक्ति हम दोनोंने बहुत स्थानों पर धर्म प्रचार किया।

दूरदर्शी मूलचन्द्रजी सर्राफ

कई स्थानोंमें घूमनेके बाद मैं श्रीयुत सर्राफ मूलचन्द्रजी बरुआसागरवालोंके यहाँ चला गया। आप हमसे अधिक अवस्थावाले थे, अतः मुझसे अनुजकी तरह स्नेह करते थे। आपके विचार निरन्तर प्रशस्त रहते थे। आप बरुआसागरके जमींदार थे और निरन्तर सुधारके पक्षपाती रहते थे। आपके ग्राममें नन्दकिशोर अलया एक विलक्षण प्रतिभाशाली मुनीम थे। आपका मूलचन्द्र जी सर्राफके साथ सदा वैमनस्य रहता था। आप निरन्तर मूलचन्द्रजीको फँसानेकी ताकमें थे, परन्तु श्री सर्राफ इतने चतुर थे कि बड़े-बड़े दरोगाओंकी चुंगलमें नहीं आये। नन्दकिशोर तो कोई गिनतीमें न थे।

एक बार नन्दकिशोरकी औरत कूपमें गिरकर मर गयी। आप दौड़कर सर्राफजीके पास आये और बोले 'भैया! गृहिणी मर गई क्या करूँ?' ग्रामके बाहर कूप था, अतः बस्तीमें होहल्ला मचनेके पहले ही आप एकदम जैनियोंको लेकर कुआ पर पहुँचे और

उसे निकालकर श्मसानमें जला दिया। बादमें दरोगा आया, परन्तु तब तक लाश जल चुकी थी। क्या होगा ? यह सोचकर सब डर गये, परन्तु सर्राफने सब मामला शान्त कर दिया।

यहाँ एक बात और लिखने की है वह यह कि बरुआसागर-में काछियोंकी जमीदारी है, बड़े बड़े धनाढय हैं। एक काछी नम्बरदारके यहाँ एक मुसलमान नौकर रहता था। काछीकी-औरतसे काछी जमींदारकी कुछ लड़ाई हुई। उसने औरतको बहुत डांटा और क्रोधमें आकर कहा—'रांड मुसलमानके यहाँ चली जा।' वह सचमुच चली गई और दो दिन तक उसके सहवासमें रही आई।

इस घटनाके समय मूलचन्द्रजी झाँसी गये थे। वहाँ से आकर जब उन्होंने यह सुना कि एक काछीकी औरत मुसलमान-के घर चली गई तब बड़े दुःखी हुए। अपने अङ्गरक्षकोंको लेकर उस मोहल्लेमें गये और ग्राम्य-पंचायत कर उसमें उस औरत तथा मुसलमानको बुलाया। आनेपर औरतसे कहा—'अपने घर आ जाओ।' उसने कहा—'हम तो मुसलमानिनी हो गये, क्योंकि उसका भोजन कर लिया।'

सब पञ्च सुनकर कहने लगे कि अब तो यह जातिमें नहीं मिलाई जा सकती। मूलचन्द्रजी ने गंभीर भावसे कहा कि 'आपत्ति काल है अतः इसे मिलानेमें आपत्ति नहीं होना चाहिये।' लोगोंने कहा—'पहले गङ्गास्नान कराना चाहिये और पश्चात् तीर्थयात्रा कराना चाहिये, अन्यथा सब व्यवहारका लोप हो जावेगा।' मूलचन्द्रजीने कहा—'जब सब लोग क्रमशः अधःपत-नको प्राप्त हो चुकेंगे तब व्यवहारका लोप न होगा। अतः मेरी तो यह सम्मति है कि इसे गङ्गा न भेजकर वेत्रवती भेज दिया जावे, क्योंकि वह यहाँ से तोन मील है। वहाँ से स्नान करके आ जावे और इसी ग्राममें जो ठाकुरजीका मन्दिर है उसका

दर्शन करे। पश्चात् तुलसीदल और चरणामृत देकर इसे जातिमें मिला लिया जावे।' सब लोगोंने सराफजीका यह निर्णय अंगीकृत किया। परन्तु वह औरत बोली—'मैं नहीं आना चाहती।' मूलचन्द्रजीने कहा—'तुझे आनेमें क्या आपत्ति है?' वह बोली —'मुझसे सब लोग घृणा करेंगे, मेरे हाथकी रोटी न खावेंगे तथा मुझे दासीकी तरह रक्खेंगे और उस हालतमें मेरा जीवन आजन्म दुखी रहेगा, अतः मेरे साथ यदि पूर्ववत् व्यवहार किया जावे तब मैं आनेको सहर्ष प्रस्तुत हूँ। आशा है मेरी नम्र प्रार्थनापर आप लोग सम्यक् परामर्श कर यहाँ से उठेंगे।'

श्री मूलचन्द्रजीने उसके वाक्य श्रवण कर एक सार गर्भित भाषण दिया। पहले तो यह दोहा पढ़ा—

'सकल भूमि गोपालकी यामे अटक कहा।
जाके मनमे अटक है सो ही अटक रहा॥'

फिर कहा—'बन्धुओ! आज एक हिन्दू स्त्री यदि मुसलमानके घर चली गई तो सर्व प्रथम यही शत्रु होगी, अनेक ललनाओंको फुसलावेगी और उनकी निरन्तर यही भावना रहेगी कि जिस पतिने मुझे इस अवस्था तक पहुँचाया है उसका सर्वनाशका यत्न करनेमें मैं सफल होऊँ। उपपतिकी यह भावना रहेगी कि हिन्दू लोग कुछ करते तो हैं ही नहीं, अतः उनकी औरतोंको इसी तरह फुसलाना चाहिए। जो इसके बालक होगा उसे वह यही पाठ पढ़ावेगी कि बेटा! मैं जातिकी हिन्दू हूँ, तुम्हारे अमुक पिताने जो अभी तक जीवित हैं, मेरे साथ ऐसी निन्द्य क्रिया की कि जिससे आज मैं इस अवस्थामें हूँ। जिस मांससे मुझे स्वाभाविक घृणा थी वह आज मेरा खाद्य हो गया। जीवदया जो मेरा प्राण थी वह नष्ट हो गई। आज जीवोंका घात करना ही मेरा जीवन हो गया। मैं चींटी मारनेसे काँपती थी, पर आज मुरगी, मुरगा, बकरी, बकरा मारना खेल समझती हूँ। ऐसा भाव अपने पुत्रा-

दिकको मनमें उत्पन्न कर अपनेको धन्य समझेगी। अतः इस विषयमें मैं आप लोगोंसे विशेष न कह कर यही प्रार्थना करता हूँ कि इसे अविलम्ब जातिमें मिला लिया जाय।'

श्रीयुत सर्राफजीका व्याख्यान समाप्त हुआ। बहुत महाशयोंने उसका समर्थन किया, बहुतोंने अनुमोदन किया। मैंने भी श्रीमूलचन्द्रजीकी बातको पुष्ट करते हुए कहा कि 'भाई! यह संसार है, इसमें पाप होना कठिन नहीं, क्योंकि यह संसार राग, द्वेष, मोह का तो घर ही है। काल पाकर जीवोंकी मति भ्रष्ट हो जाती है और सुधर भी जाती है। यदि इस संसारमें सुधारका मार्ग न होता तो किसी जीवको मुक्ति ही न होती, अतः पापको बुरा जान उससे घृणा कीजिये और यदि कोई पापसे अपनी रक्षा करना चाहे तो उसकी सहायता कीजिये। आप लोगोंका निमित्त पाकर यदि एक अबलाका सुधार होता है तो उसमें आप लोगोंको आपत्ति करना उचित नहीं, अतः श्रीमूलचन्द्रजीके प्रस्ताव को सर्वानुमतिसे पास कीजिये और अभी उसे वेत्रवतीमें स्नान करानेके लिए भेजिये।'

इसके बाद और भी बहुतसे लोगोंके सारगर्भित भाषण हुए। इस प्रकार मूलचन्द्रजीका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। प्रस्तावका रूप यह था—'जो औरत अपने घरसे पतिके कटु शब्दोंको सहन न कर मुसलमानके घर चली गई थी वह आज आ गई। उसे हम लोग उसी जातिमें मिलाते हैं। यदि कोई मनुष्य या स्त्री उसके साथ जाति विरुद्ध व्यवहार करेगा तो उसे १००) दण्ड तथा एक ब्राह्मण-भोजन देना होगा।'

द० सकल पञ्चान बरुआसागर,

इसके बाद उसे स्नानके लिए वेत्रवती भेजा गया। वहाँसे आई तब ठाकुरजीके मन्दिरमें दर्शनके लिए भेजा गया। वहाँ पर भगवान्का चरणामृत और तुलसीदल दिया गया। इस प्रकार

वह शुद्ध हुई। पश्चात् उसके द्वारा एक घड़ा छना पानी मँगाया गया। लोग पीनेसे इंकार करने लगे। मूलचन्द्रजीने कहा—'जो पानी न पीवेगा वह दण्डका पात्र होगा।' अतः पहले मूलचन्द्र जीने एक ग्लास पानी उसके हाथका पिया। इसके बाद फिर क्या था ? सब पञ्च लोगोंने उसके हाथका पानी पिया। पश्चात् बाजारसे पेड़ा लाये गये और सब पञ्चोंने उसके हाथके पेड़ा खाये···इस प्रकार एक औरतका उद्धार हुआ।

इतना सब हो चुकनेके बाद वह औरत बोली—'मुझे विश्वास न था कि मेरे ऊपर आप लोगोंकी इतनी दया होगी। मैं तो पतित हो ही चुकी थी। आजके दिन श्री सराफके प्राणपन प्रयत्न और आप लोगोंकी निर्मल भावनासे मेरा उद्धार होगया। भला ऐसा कौन कर सकता था ? यदि यही न्याय कहीं पढ़े लिखे महानुभावोंके हाथमें होता तो मेरा उद्धार होना असम्भव था। पहले भारतवर्षमें जहाँ दूधकी नदियाँ बहती थीं वहाँ आज खूनकी नदियाँ बहने लगीं। इसका मूल कारण यही तो हुआ कि हमने पतित लोगोंको अपनाया नहीं। किंतु उनको जबरदस्ती भ्रष्ट किया। क्या भारतवर्षमें इतने मुसलमान थे ? नहीं, केवल बलात्कारसे बनाये गये। जो बन गये, हमने उन्हें शुद्ध करनेसे इंकार कर दिया। किसी मुसलमानने किसी औरतके साथ हँसी मजाक किया, हमने उसका प्रतिक्रम नहीं किया। परस्परमें संघटित नहीं रहे। यही कारण है कि आज हमारी यह दशा हो रही है। यदि आप मेरा उद्धार न करते तो मैं वह प्रयत्न करती जिससे कि मेरे पतिका अस्तित्व एक आपत्तिमें पड़ जाता। मैं जिसके यहाँ चली गई थी उससे मेरा असत् संबंध न था, किन्तु वह हमारे घर पर नौकर था। मेरे पति जब बाहर जाते थे तब मैं उससे बाजारसे जिस वस्तुकी आवश्यकता होती बुला लेती थी और आप जानते हैं जहाँ परस्परमें संभाषण होता है वहाँ हास्यरसकी बात आजाने

पर हँसी भी आजाती। ऐसी स्वाभाविक प्रवृत्ति मनुष्य और स्त्रियोंको होती है। क्या इसका अर्थ यह है कि हास्य करनेवाले असदाचारी हो गये। माँ अपने जवान बालकके साथ हँसती है, पुत्री बापके साथ हँसती है, बहिन भाईके साथ हँसती है। पर इसका यह अर्थ कोई नहीं लेता कि वे असदाचारी हैं। मैं सत्य कहती हूँ कि मैंने उसके साथ कोई भी असदाचार न पहिले किया था और न अब उसके घर रहते हुए भी किया है। फिर भी मेरे पतिको सन्देह होगया कि यह दुराचारिणी है और एकदम मुझे आज्ञा दी कि तू उसीके साथ चली जा। मैं भी क्रोधके आवेशमें अपनेको नहीं सँभाल सकी और उसके साथ चली गई। किन्तु निष्पाप थी, अतः आपके द्वारा मेरा उद्धार हो गया। मैं आपके उपकारको आजीवन न भूलूँगी। संसारमें पापोदयके समय अनेक आपत्तियाँ आती हैं, पर उनका निवारण करनेमें महापुरुष ही समर्थ होते हैं।'

उसके इस कथनके अनन्तर जितने पञ्च वहाँ उपस्थित थे सबने उसे निष्पाप जानकर एक स्वरसे धन्यवाद दिया और उस मुसलमानको डाँटा कि तुम्हें ऐसी हरकत करना उचित न था। यदि तुम्हारा हम लोगोंके साथ ऐसा व्यवहार रहा तो हम लोग भी सिक्ख नीतिका अवलम्बन करनेमें आगा पीछा न करेंगे।

इस प्रकारके सुधारक थे श्री सर्राफजी। आपसे मेरा हार्दिक स्नेह था। आपने मेरे ५०००) जमा कर लिए, जब कि मैंने एक पैसा भी नहीं दिया था और न मेरे पास था ही। रुपया कैसे अर्जन किया जाता है इस विषयमें प्रारम्भसे ही मूर्ख था।

एक दिनकी बात है कि मूलचन्द्रजीकी औरतके गर्भ था। सब लोग वहाँ पर गप्पाष्टक कर रहे थे। किसीने कहा—'अच्छा, बतलाओ गर्भमें क्या है?' किसीने कहा—'बालक है।' किसीने कहा 'बालिका है।' मुझसे भी पूछा गया। मैंने कहा—'मैं नहीं जानता

क्या है ? क्योंकि निमित्तज्ञानसे शून्य हूँ। अथवा उसके गर्भमें नहीं बैठा हूँ कि आँखसे देखकर बता दूँ।' इतना कह चुकने पर भी लोग आग्रह करते रहे। अन्ततोगत्वा मैंने भी अन्य लोगोंकी तरह उत्तर दे दिया कि बालक है और और जब पैदा होगा उसका श्रेयांसकुमार नाम होगा। यह सुनकर लोग बहुत ही प्रसन्न हो गये और उस दिनकी प्रतीक्षा करने लगे।

इस बरुआसागरमें एक दिन एक विलक्षण घटना और हो गई जो कि इस प्रकार है—दिनके चार बजे मैं जलका पात्र (लोटा) लेकर शौच क्रियाके लिये ग्रामके बाहर जा रहा था। मार्गमें बालक गेंद खेद रहे थे। उन्हें देखकर मेरे मनमें भी गेंद खेलनेका भाव हो गया। एक लड़केसे मैंने कहा—'भाई ! हमको भी दण्डा और गेंद दो, हम भी खेलेंगे।' बालकने दण्डा और गेंद दे दी। मैंने दण्डा गेंदमें मारा, पर वह गेंदमें न लगकर पास ही खड़े हुए ब्राह्मणके बालकके नेत्रमें बड़े वेगसे जा लगा और उसकी आँखसे रुधिरकी धारा बहने लगी। यह देखकर मेरी अवस्था इतनी शोकातुर हो गई कि मैं सब कुछ भूल गया और लोटा लेकर बाई-जीके पास आ गया। बाईजी कहती हैं—'बेटा ! क्या हुआ ?' मैं कुछ भी न बोल सका, किन्तु रोने लगा। इतनेमें एक बालक आया उसने सब वृत्तान्त सुना दिया। बाईजीने कहा—'अब क्यों रोते हो ? जो भवितव्य था वह हुआ। अनधिकार कार्य करनेपर यही होना है। अब उठो और सांयकालका भोजन करो।' मैंने कहा—'आज भोजन न करूँगा।' बाईजी बोलीं—'क्या इससे उस अपराधका प्रतीकार हो जावेगा ?' मैं कुछ उत्तर न दे सका। केवल अपनी भूलपर पश्चात्ताप करता रहा। जिस बालकी आँखमें चोट लगी थी उसकी माँ बहुत ही उग्र प्रकृतिकी थी, अतः निरन्तर यह भय रहने लगा कि जब वह मिलेगी तब पचासों गालियाँ देगी। इसी भयसे मैं घरसे बाहर नहीं निकलता था। सूर्योदयके पहले

ही श्री मन्दिरजीमें जाता था और दर्शनादि कर शीघ्र ही वापिस आ जाता था।

एक दिन कुछ विलम्बसे मन्दिर जा रहा था, अतः बालककी माँ मार्गमें मिल गई और उसने मेरे पैर पड़े। मैं उसे देखकर ही डर गया था और मनमें सोचने लगा था कि हे भगवन्! अब क्या होगा? इतनेमें वह बोली कि आपने मेरे बालकका महोपकार किया। मैंने कहा—'सत्य कहिये, बालककी आँख तो नहीं फूट गई?' उसने कहा—आँख तो नहीं फूटी, परन्तु उसका अंखसूर, जो कि अनेक औषधियाँ करने पर भी अच्छा न होता था, खून निकल जानेसे एकदम अच्छा हो गया। आप निश्चिन्त रहिये, भय न करिये आपको गालीके बदले धन्यवाद देती हूँ। परन्तु एक बात कहती हूँ वह यह कि आपका दण्डाघात घुणाक्षरन्यायसे औषधिका काम कर गया सो ठीक है, परन्तु आइन्दह ऐसी क्रिया न करना।'

मैं मन ही मन विचारने लगा कि उदय बड़ी वस्तु है, अन्यथा ऐसी घटना कैसे हो सकती है।

शङ्कित संसार

कुछ दिन बरूआसागर रह कर हम और बाईजी सागर चले गये और सागर विद्यालयके लिये द्रव्य संग्रहका यत्न करने लगे। भाग्यवश यहाँपर भी एक दुर्घटना हो गई।

मेरे खानेमें जो शाक व फल आते थे, मैं स्वयं जाकर उन्हें चुन चुनकर लाता था। एक दिनकी बात है कि नसीबन कुंजड़ीकी दुकानपर एक महाशय छीताफल (शरीफा) खरीद रहे थे। शरीफा दो इतने बड़े थे कि उनका वजन एक सेर होगा। उनकी कीमत कुंजड़ी एक रुपया मांगती थी। उन्होंने बारह आना तक कहा। मेरा मन भी उन शरीफोंके लिये ललचाया, परन्तु जब

एक महाशय ले रहे थे तब मेरा कुछ बोलना सभ्यताके विरुद्ध होता। अन्तमें उन्होंने चौदह आना तक मूल्य देना कहा, परन्तु कूंजड़ीने कहा कि एक रुपयेसे कम न लूँगी, आप व्यर्थ समय मत खोइये। आखिर जब वे निराश होकर जाने लगे तब मैंने शीघ्र ही एक रुपया कूंजड़ीके हाथ दे दिया और वह शरीफा मेरे झोलेमें डालनेको उद्यत हुई कि वही महाशय पुनः लौटकर कहने लगे–'अच्छा, पाँच रुपया ले लो।' उसने कहा–'नहीं अब तो वे बिक गये, लेनेवालेसे आप बात करिये।' उन महाशयने दसका नोट कूंजड़ीको बतलाया। वह बोली—'महाशय! आप महाजन हैं, क्या व्यापारकी यही नीति है?' अन्तमें उन्होंने कहा—'अच्छा सौ रुपये ले लो, परन्तु शरीफा हम ही को दो।' कूंजड़ी बोली–'आप महाजन होकर इस तरहकी बात करते हो। क्या इसी तरह की धोखेबाजीसे पैसा पैदा करते हो? भडुवेका भडुआ! उस समय यह मुँह कहाँ चला गया था। उस समय तो एक रुपया देनेको बन्द था, अब सौ रुपया दिखलाता है। लानत है तेरे रुपयोंको, तू मनुष्य नहीं, हट मेरी दुकानसे।'

मैंने कहा—'इतनी वेइज्जती करना अच्छा नहीं। आखिर ये महाजन हैं और तुम शाक बेचनेवाली ही हो।' वह बोली–यह शिष्टताका व्यवहार जाने दीजिये। न्यायसे बात करिये। हम भी मनुष्य हैं, पशु नहीं। कौनसी वेइज्जती इसकी हुई। बल्कि इसको शरम आनी चाहिये। यदि मैं इस क्षुद्र मनुष्यके लोभमें आ जाती तो आप ही कहते कि ये शाक वेचनेवाले बड़े वेईमान होते हैं, क्योंकि ये लोभमें आकर जबान पलट जाते हैं। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि इस कालमें छोटी जातिवाले और छोटे धन्धेवाले पापके कार्योंसे भयभीत रहते हैं, परन्तु ये बड़े लोग पापोंसे नहीं डरते। ये लोग जो दान करते हैं वह पापोंको छिपाने के लिये ही करते हैं। मैं इन लोगोंके लोभकी कहानी सुनाऊँ तो

आपको शर्मिन्दा होना पड़ेगा। आपने स्वयं इज्जत बचानेके ख्याल से एक औरतके दोषको छिपाया। समझे या नहीं? अन्यथा सुनो, कल हीकी तो बात है—मेरी दूकानसे जो तीसरे नम्बरकी दूकान है वहाँ पर एक स्त्री नींबू खरीद रही थी। सौ तोला सोना उसके बदन पर था। दो पैसाके नींबू उसने खरीदे—पाँच आये। उन्हें छांटने लगी और छांटते छांटते उसने पाँच नीबू बगलमें चोली-के दामनमें छिपा लिये। आपने यह किस्सा देखा तो आपने उस कूंजड़ीको चार आना देकर उसके बाकी नीबू एकदम अपने झोलेमें डाल लिये। यहाँ आपका यही अभिप्राय रहा होगा कि यदि कूंजड़ीने चोरीका मामला जान लिया तो इस बड़े घरकी औरतकी इज्जतमें बट्टा लगेगा। मैं अपनी दुकानसे यह सब देख रही थी। मेरे मनमें आया कि इस गुप्त रहस्यको प्रकट कर दूँ, परन्तु फिर मनमें रहम आगया कि जाने दो। परन्तु आप हृदय-से कहिये कि यदि कोई अनाथ या दरिद्र औरत होती तो क्या आप यह दया दिखाते? नहीं, जरा विचारसे काम लीजिये, पाप चाहे बड़ा मनुष्य करे, चाहे छोटा। पाप तो पाप ही रहेगा, उसका दण्ड उन दोनोंको समान ही मिलना चाहिये। ऐसा न होनेसे ही संसारमें आज पंचायती सत्ताका लोप हो गया है। बड़े आदमी चाहे जो करें, उनके दोषको छिपानेकी चेष्टा की जाती है और गरीबोंको पूरा दण्ड दिया जाता है........यह क्या न्याय है? देखो, बड़ा वही कहलाता है जो समदर्शी हो। सूर्यकी रोशनी चाहे दरिद्र हो, चाहे अमीर दोनोंके घरोंपर समान रूपसे पड़ती है, अतः आप इसकी प्रतिष्ठा नहीं रख सकते। यह अपने लोभसे स्वयं पतित है।'

वह महाशय लज्जासे नम्रीभूत हो गये। मैंने उनसे कहा कि 'यह सरीफा लेते जाइये, परन्तु वह नीचे नेत्र करके कुछ न बोले और अपने घर चले गये। अन्तमें कूंजड़ी बोली—'देखो, मनुष्य वही है जो अच्छा व्यवहार करे। हमारा पेशा शाक बेचनेका है,

हम बात-बातमें गाली देती हैं। यदि आठ आना वस्तुका भाव हो और कोई चार आनेमें मांगे तो भी हम वह वस्तु दे देती हैं, परन्तु देती हैं आधा सेर। तराजू पर बाँट एक सेरका डालती हैं, परन्तु चालाकीसे माल आधा सेर ही चढ़ाती हैं। यदि वह देख लेता है और कुछ कहता है कम क्यों तोलती है? तो पचीसों गालियाँ सुनाती हैं और यह उत्तर देती हैं कि भडुवेका भडुवा! रुपयेका माल आठ आनेमें लेना चाहता है। खैर, परन्तु जो अच्छे आदमी होते हैं उनके साथ हमारा भला व्यवहार होता है। आपके व्यवहारसे मैं खुश हूँ। आपकी दुकान है। आपको उत्तमसे उत्तम शाक दूँगी। आप अब अन्य दुकानपर मत जाना।'

मैं प्रतिदिन उसीकी दुकानसे शाक लेने लगा, परन्तु संसार सबको पापमय देखता है। वह मेरे इस कार्यमें नाना प्रकारके संदेह करने लगा। पर मैं अन्तरङ्गसे वैसा नहीं था। मानसिक परिणामोंकी गति तो अत्यन्त सूक्ष्म है, किन्तु काय और वचनसे कभी भी मैंने उसके साथ अन्यथा भाव नहीं किया और न बुद्धि पूर्वक मनमें उसके प्रति मेरे विकृत परिणाम हुए। परन्तु ऐसा नियम है कि यदि कलारकी दुकानपर कोई पैसा भंजानेके लिये भी जावे तो लोग ऐसा सन्देह करने लगते हैं कि इसने मद्य पिया होगा। ठीक यही गति हमारी हुई। उस समय मैं उत्तम वस्त्र रखता था। बड़े बड़े बाल थे, बालोंमें आठ रुपये सेरवाला चमेलीका तेल डालता था, एक वर्षमें १२ धोती जोड़े बदलता था। इस तरह जहाँ तक बनता शरीरकी सँभालनेमें कसर नहीं रखता था। परन्तु यह सब होनेपर भी मेरी पापमय प्रवृत्ति स्वप्नमें भी नहीं होती थी।

अधिकांश लोगोंके कान होते हैं, आँख नहीं होती। अतः उसके यहाँ शाक लेनेसे मैं लोगोंकी दृष्टिमें आने लगा। इसका मेरी आत्मापर गहरा प्रभाव पड़ा। एक दिन छेदीलालजीके बागमें सब
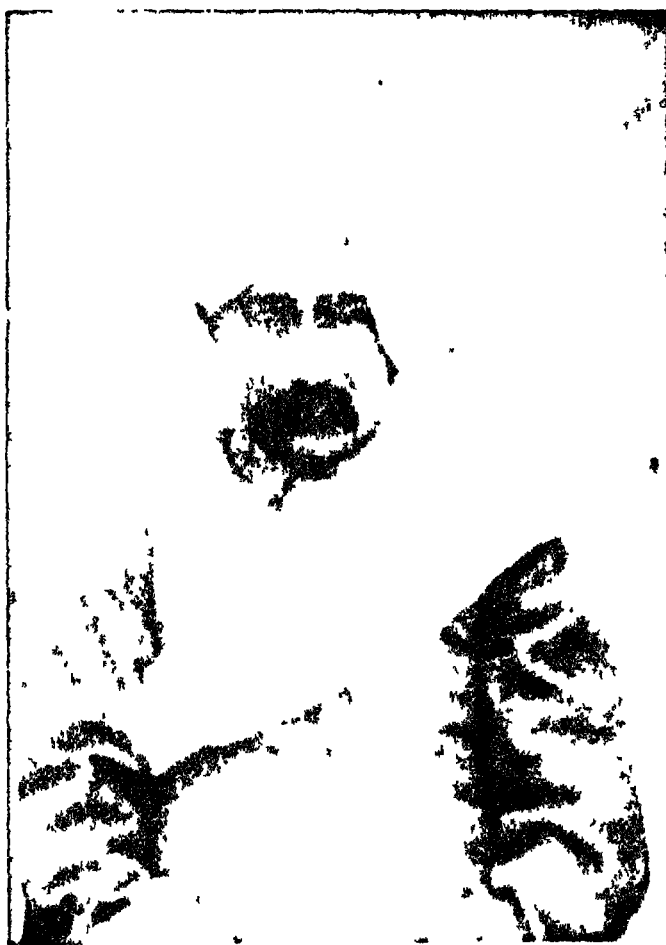
इस तरह जहाँ तक बनता शरीरको सम्हालनेमे कसर नहीं
रखता था परन्तु यह सब होने पर भी मेरी पापमय
प्रवृत्ति स्वप्नमें भी नहीं होती थी।

[पृ० २०८]

जैनियोंका भोजन था। मैंने वहीं सबके समक्ष इस बातका स्पष्टीकरण कर यह निश्चय किया कि मैं आजसे ही ब्रह्मचर्य प्रतिमाका पालन करूँगा। हमारे परम स्नेही श्री बालचन्द्रजी सवालनवीस भी वहीं बैठे थे। उन्होंने बहुत समझाया और कहा कि 'तुम व्रत तो पालते ही हो, अतः कुछ समय और ठहरो। चरणानुयोगकी पद्धतिसे व्रतका पालन करना कठिन है। अभी चरणानुयोगका अभ्यास करो और यदि प्रतिमा लेनेकी ही अभिलाषा है तो पहले व्रतप्रतिमाका अभ्यास करो। उसमें पाँच अणुव्रत और सात शील व्रत हैं। जब यह बारह व्रत निर्विघ्न यथायोग्य पलने लगें तब सप्तमी—ब्रह्मचर्य प्रतिमा ले लेना। आवेगमें आकर शीघ्रतासे कार्य करना उत्तर कालमें दुःखका कारण हो जाता है। हम अच्छी तरह जानते हैं कि आप निष्कलंक हैं, किन्तु लोकके भयसे आपकी प्रवृत्ति व्रत लेनेमें हो गई। अभी आपकी प्रवृत्ति एकदम स्वच्छन्द रही। इस व्रतके लेते ही यह सब आडम्बर छूट जावेगा। आपका जो भोजन है वह सामान्य नहीं, वह भी छूट जावेगा। धोबीसे वस्त्र नहीं धुला सकोगे, यह चमेलीका तेल और ये बड़े-बड़े बाल आदि सब उपद्रव छोड़ने पड़ेंगे।' परन्तु मैंने एक न सुनी और वहाँसे आकर मेरे पास जो भी बाह्य सामग्री थी सब वितरण कर दी और यह नियम किया कि किसी त्यागी महाशयके समीप इस व्रतको नियमपूर्वक अंगीकार करूँगा। परन्तु अभ्यास अभीसे करता हूँ।

निवृत्तिकी ओर

वीरनिर्वाण २४३९ और वि० सं० १९६९ की बात है, रात्रिको जब सोने लगा तब श्रीबालचन्द्रजीने कहा—'यह निवारका पलंग अब मत बिछाओ, अब तो काठके तख्तापर सोना पड़ेगा।' मैंने

कहा—'इसको मैंने बड़े स्नेहसे बनवाया था। पचीस रुपया तो इसके बनवानेमें लगे थे। क्या इसे भी त्यागना होगा?' उन्होंने दृढ़ताके साथ कहा—'हाँ, त्यागना होगा।' मैंने उत्साहके साथ कहा—'अच्छा त्यागता हूँ।' जमीनपर सोनेकी आदत न थी, परन्तु जब पलंगकी आशा जाती रही तब अनायास भूशय्या होनेपर भी निद्रा सुखपूर्वक आ गई।

प्रातःकाल श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शन कर श्रीबालचन्द्रजीसे प्रतिमाके स्वरूपका निर्णय करने लगा। बाईजी भी वहीं बैठी थीं, कहने लगीं—'प्रतिमाके स्वरूपका निर्णय तो हो जावेगा। चरणानुयोगके प्रत्येक ग्रन्थमें लिखा है। रत्नकरण्डश्रावकाचारमें देख लो, किन्तु साथ ही अपनी शक्तिको भी देख लो। तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको देखो। सर्वप्रथम अपने परिमाणोंकी जातिको पहिचानो। जो व्रत लो उसे मरण पर्यन्त पालन करो। अनेक संकट आने पर भी उसका निर्वाह करो। जैनधर्मकी यह मर्यादा है कि व्रत लेना, परन्तु उसे भंग न करना। व्रत न लेना पाप नहीं, परन्तु लेकर भंग करना महापाप है।

जैनदर्शनमें तो सर्व प्रथम स्थान श्रद्धाको प्राप्त है। इसीका नाम सम्यग्दर्शन है। यदि यह नहीं हुआ तो व्रत लेना नीवके विना महल बनानेके सदृश है। इसके होते ही सब व्रतोंकी शोभा है। सम्यग्दर्शन आत्माका वह गुण है जिसका कि विकास होते ही अनन्त संसारका बन्धन छूट जाता है। आठों कर्मोंसे सबकी रक्षा करनेवाला यही है। यह एक ऐसा शूर है कि अपनी रक्षा करता है और शेष गुणोंकी कर्मोंसे भी। सम्यग्दर्शनका लक्षण आचार्यों ने तत्त्वार्थश्रद्धान लिखा है। जैसा कि दशाध्याय तत्त्वार्थसूत्रके प्रथम आध्यायमें आचार्य उमास्वामीने लिखा है कि—'तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।' श्री नेमिचन्द्र स्वामीने द्रव्यसंग्रहमें लिखा है कि—'जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं।' यही समयसारमें

लिखा है। सथा ऐसा ही लक्षण प्रत्येक ग्रन्थमें मिलता है। परन्तु पञ्चाध्यायीकर्त्ताने एक विलक्षण बात लिखी है। वह लिखते हैं कि यह सब तो ज्ञानकी पर्याय है। सम्यग्दर्शन आत्माका अनिर्वचनीय गुण है। जिसके होनेपर जीवोंके तत्त्वार्थका परिज्ञान अपने आप होजाता है वह आत्माका परिणाम सम्यग्दर्शन कहलाता है।

ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम आत्मामें सदा विद्यमान रहता है। संज्ञी जीवके और भी विशिष्ट क्षयोपशम रहता है। सम्यग्दर्शन के होते ही वही ज्ञान सम्यग्व्यपदेशको पा जाता है। पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें श्रीअमृतचन्द्राचार्यने भी लिखा है कि—

'जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत्॥'

अर्थात् जीवाजीवादि सप्त पदार्थोंका विपरीत अभिप्रायसे रहित सदैव श्रद्धान करना चाहिये·······इसीका नाम सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन ही आत्माका पारमार्थिक रूप है। इसका तात्पर्य यह है कि इसके विना आत्मा अनन्त संसारका पात्र रहता है।

यह गुण अतिसूक्ष्म है। केवल उसके कार्यसे ही हम उसका अनुमान करते हैं। जैसे अग्निकी दाहकत्व शक्तिका हमें प्रत्यक्ष नहीं होता। केवल उसके ज्वलन कार्यसे ही उसका अनुमान करते हैं। अथवा जैसे मदिरा पान करनेवाला उन्मत्त होकर नाना कुचेष्टाएँ करता है, पर जब मदिराका नशा उतर जाता है तब उसकी दशा शान्त हो जाती है। उसको वह दशा उसीके अनुभवगम्य होती है। दर्शक केवल अनुमानसे जान सकते हैं कि इसका नशा उतर गया। मदिरामें उन्मत्त करनेकी शक्ति है, पर हमें उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। वह अपने कार्यसे ही अनुमित होती है। अथवा जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर सब दिशाएँ निर्मल हो

जाती है उसी प्रकार मिथ्यादर्शनके जानेसे आत्माका अभिप्राय सब प्रकारसे निर्मल हो जाता है। उसका प्रत्यक्ष मति-श्रुत तथा देशावधि-ज्ञानियोंके नहीं होता, किन्तु परमावधि, सर्वावधि, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानसे युक्त जीवोंके ही होता है। उनकी कथा करना ही हमें आता है, क्योंकि उनकी महिमाका यथार्थ आभास होना कठिन है। बात हम अपने ज्ञानकी करते हैं। यही ज्ञान हमें कल्याणके मार्गमें ले जाता है।

वस्तुतः आत्मामें अचिन्त्य शक्ति है और उसका पता हमें स्वयमेव होता है। सम्यग्दर्शन गुणका प्रत्यक्ष हमें न हो, परन्तु उसके होते ही हमारी आत्मामें जो विशदताका उदय होता है वह तो हमारे प्रत्यक्षका विषय है। यह सम्यग्दर्शनकी ही अद्भुत महिमा है कि हम लोग विना किसी शिक्षक व उपदेशकके उदासीन हो जाते हैं। जिन विषयोंमें इतने अधिक तल्लीन थे कि जिनके विना हमें चैन हो नहीं पड़ता था, सम्यग्दर्शनके होनेपर उनकी एकदम उपेक्षा कर देते हैं।

इस सम्यग्दर्शनके होते ही हमारी प्रवृत्ति एकदम पूर्वसे पश्चिम हो जाती है। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यका आविर्भाव हो जाता है। श्रीपञ्चाध्यायीकारने प्रशम गुणका यह लक्षण माना है—

> 'प्रशमो विषयेषूच्चैर्भावक्रोधादिकेषु च।
> लोकासंख्यातमात्रेषु स्वरूपाच्छिथिलं मनः॥'

अर्थात् असंख्यात लोकप्रमाण जो कषाय और विषय हैं उनमें स्वभावसे ही मनका शिथिल हो जाना प्रशम है। इसका यह तात्पर्य है कि आत्मा अनादि कालसे अज्ञानके वशीभूत हो रहा है और अज्ञानमें आत्मा तथा परका भेदज्ञान न होनेसे पर्यायमें निजत्वकी कल्पना कर उसीकी रक्षाके प्रयत्नमें सदा तल्लीन रहता

है। पर उसकी रक्षाका कुछ भी अन्य उपाय इसके ज्ञानमें नहीं आता। केवल पञ्चेन्द्रियोंके द्वारा स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण एवं शब्द को ग्रहण करना ही इसे सूझता है। प्राणीमात्र ही इसी उपायका अवलम्बन कर जगत्में अपनी आयु पूर्ण कर रहे हैं।

जब बच्चा पैदा होता है तब माँके स्तनको चूसने लगता है। इसका मूल कारण यह है कि अनादि कालसे इस जीवके चार संज्ञाएँ लग रही हैं। उनमें एक आहार संज्ञा भी है। उसके बिना इसका जीवन रहना असंभव है। केवल विग्रहगतिके ३ समय छोड़कर सर्वदा आहारवर्गणाके परमाणुओंको ग्रहण करता रहता है। अन्य कथा कहाँ तक कहें? इस आहारकी पीड़ा जब असह्य हो उठती है तब सर्पिणी अपने बच्चोंको आप ही खा जाती है। पशुओंकी कथा छोड़िये जब दुर्भिक्ष पड़ता है तब माता अपने बालकोंको बेचकर खा जाती है। यहाँ तक देखा गया है कि कूड़ाघरमें पड़ा हुआ दाना चुन-चुन कर मनुष्य खा जाते हैं। यह एक ऐसी संज्ञा है कि जिससे प्रेरित होकर मनुष्य अनर्थसे अनर्थ कार्य करनेको प्रवृत्त हो जाता है। इस क्षुधाके समान अन्य दोष संसारमें नहीं। कहा भी है—'सब दोषन माँही या सम नाहीं।' इसकी पूर्तिके लिये लाखों मनुष्य सैनिक हो जाते हैं। जो भी पाप हो इस आहारके लिये मनुष्य कर लेता है। इसका मूल कारण अज्ञान ही है। शरीरमें निजत्व बुद्धि ही इन उपद्रवोंकी जड़ है। जब शरीरको निज मान लिया तब उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य हो जाता है और जब तक यह अज्ञान है तभी तक हम संसारके पात्र हैं? यह अज्ञान कब तक रहेगा इस पर श्रीकुन्दकुन्द महाराजने अच्छा प्रभाव डाला है—

'कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव॥'

भावार्थ—जब तक ज्ञानावरणादि कर्मों और औदारिकादि

शरीरमें आत्मीय बुद्धि होती है और आत्मामें ज्ञानावरणादिक कर्म तथा शरीरकी बुद्धि होती है अर्थात् जब तक जीव ऐसा मानता है कि मेरे ज्ञानावरणादिक कर्म और शरीर हैं तथा मैं इनका स्वामी हूँ तब तक यह जीव अज्ञानी है और तभी तक अप्रतिबुद्ध है। यदि शरीरमें अहम्बुद्धि मिट जावे तो आहारकी आवश्यकता न रहे। जब शरीरकी शक्ति निर्बल होती है तभी आत्मामें आहार ग्रहण करनेकी इच्छा होती है। यद्यपि शरीर पुद्गलपिण्ड है तथापि उसका आत्माके साथ सम्पर्क है और इसीलिए उसकी उत्पत्ति दो विजातीय द्रव्योंके सम्पर्कसे होती है। पर यह निश्चय है कि शरीरका उपादान कारण पुद्गल द्रव्य ही है, आत्मा नहीं। इन दोनोंका यह सम्बन्ध अनादि कालसे चला आता है। इसीसे अज्ञानी जीव दोनोंको एक मान बैठता है। शरीरको निज मानने लगता है।

उस शरीरको स्थिर रखनेके लिए जीवके आहार ग्रहणकी इच्छा होती है और उससे आहार ग्रहण करनेके लिए रसना इन्द्रियके द्वारा रसको ग्रहण करता है। ग्रहण करनेमें प्रवेश-प्रकम्पन होता है। उससे हस्तके द्वारा ग्रास ग्रहण करता है। जब ग्रासके रसका रसना इन्द्रियके साथ सम्बन्ध होता है तब उसे स्वाद आता है। यदि अनुकूल हुआ तो प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करता जाता है। ग्रहणका अर्थ यह है कि रसना इन्द्रियके द्वारा रसका ज्ञान होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि ज्ञान रसमय हो जाता हो। यदि रसरूप हो जाता तो आत्मा जड़ ही बन जाता। इस विषयक ज्ञान होते ही जो रसग्रहणकी इच्छा उठी थी वह शान्त हो जाती है और इच्छाके शान्त होनेसे आत्मा सुखी हो जाता है। सुखका बाधक है दुःख, और दुःख है आकुलतामय। आकुलताकी जननी इच्छा है, अतः जब इच्छाके अनुकूल विषयकी पूर्ति हो जाती है तब इच्छा स्वयमेव शान्त हो जाती है। इसी प्रकार सब व्यवस्था

जानना चाहिए। जब-जब शरीर निःशक्ति होता है तब-तब आहारादिकी इच्छा उत्पन्न होती है। इच्छाके उदयमें आहार ग्रहण करता है और आहार ग्रहण करनेके अनन्तर आकुलता शान्त हो जाती है....इस प्रकार यह चक्र बराबर चला जाता है और तब तक शान्त नहीं होता जब तक कि भेदज्ञानके द्वारा निजका परिचय नहीं हो जाता।

इसी प्रकार इसके भय होता है। यथार्थमें आत्मा तो अजर अमर है, ज्ञान गुणका धारी है, और इस शरीरसे भिन्न है। फिर भयका क्या कारण है? यहाँ भी वही बात है। अर्थात् मिथ्यात्वके उदयसे यह जीव शरीरको अपना मानता है, अतएव उसके विनाशके जहाँ कारणकूट इकट्ठे हुए वहीं भयभीत हो जाता है। यदि शरीरमें अभेदबुद्धि न होती तो भयके लिए स्थान ही न मिलता। यही कारण है कि शरीरनाशके कारणोंका समागम होने पर यह जीव निरन्तर दुःखी रहता है।

वह भय सात प्रकारका है—१ इहलोक भय, २ परलोक भय, ३ वेदना भय, ४ असुरक्षा भय, ५ अगुप्ति भय, ६ आकस्मिक भय और ७ मरण भय। इनका संक्षिप्त स्वरूप यह है—इस लोकका भय तो सर्वानुभवगम्य है, अतः उसके कहनेकी आवश्यकता नहीं। परलोकका भय यह है कि जब यह पर्याय छूटती है तब यही कल्पना होती है कि स्वर्गलोकमें जन्म हो तो भद्र—भला है। दुर्गतिमें जन्म न हो, अन्यथा नाना दुःखोंका पात्र होना पड़ेगा। इसी प्रकार मेरा कोई त्राता नहीं, असाताके उदयमें नाना प्रकारकी वेदनाएँ होती हैं, यह वेदना भय है। कोई त्राता नहीं, किसकी शरणमें जाऊँ, यह अशरण-असुरक्षाका भय है। कोई गोप्ता नहीं, यही अगुप्ति भय है। आकस्मिक वज्रपातादिक न हो जावे, यह आकस्मिक भय है और मरण न हो जावे, यह मृत्युका भय है।....इन सप्त भयोंसे यह जीव निरन्तर दुखी रहता

है। भयके होने पर उससे बचनेकी इच्छा होती है और उससे जीवन निरन्तर आकुलित रहता है। इस तरह यह भय संज्ञा अनादिकालसे जीवोंके साथ चली आ रही है।

इसी प्रकार जब वेदका उदय होता है तब मैथुन संज्ञाके वशीभूत होकर यह जीव अत्यन्त दुखी होता है। पुरुषवेदके उदयमें स्त्री-रमणकी वाञ्छा होती है। स्त्रीवेदके उदयमें पुरुषके साथ रमणकी इच्छा होती है। इस प्रकार इस संज्ञासे संसारी जीव निरन्तर बेचैन रहता है।

यद्यपि आत्माका स्वभाव इन विकारोंसे अलिप्त है तथापि अनादि कालसे मिथ्याज्ञानके वशीभूत होकर इन्हींमें चैन मान रहा है। इसके वैभवके सामने बड़े-बड़े पदवीधर नत मस्तक हो गये। रावण कितना विवेकी जीव था, परन्तु इसके चक्रमें पड़कर असह्य वेदनाओंका पात्र हुआ। भर्तृहरिने ठीक ही कहा है—

'मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः॥'

इसका अर्थ यह है कि इस पृथ्वीपर कितने ही ऐसे मनुष्य हैं जो मदोन्मत्त हाथियोंके गण्डस्थल विदारनेमें शूरवीर हैं और कितने ही बलवान् सिंहके मारनेमें भी समर्थ हैं। किन्तु मैं बड़े बड़े बलशाली मनुष्योंके सामने जोर देकर कहता हूँ कि कामदेवके दर्पको दलनेमें—खण्डित करनेमें विरले ही मनुष्य समर्थ हैं।

इस कामदेवकी विडम्बनाके विषयमें उन्हीं भर्तृहरिने एक जगह कितना सुन्दर कहा है—

'यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।

अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक्तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥'

इसका स्पष्ट अर्थ यह है—एक समय एक वनपालने अमृत-फल लाकर महाराज भर्तृहरिको भेंट किया। महाराज उन वन-पालसे पूछते हैं कि 'इस फलमें क्या गुण हैं ?' वनपाल उत्तर देता है—'महाराज! इसे खानेवाला सदा तरुण अवस्थासे सम्पन्न रहेगा।' राजाने अपने मनसे परामर्श किया कि यह फल किस उपयोगमें लाना चाहिए ? मन उत्तर देता है कि आपको सबसे प्रिय धर्मपत्नी है, उसे देना अच्छा होगा, क्योंकि उसके तरुण रहनेसे आपकी विषय-पिपासा निरन्तर पूर्ण होती रहेगी। संसारमें इससे उत्कृष्ट सुख नहीं। मोक्ष-सुख आगम-प्रतिपाद्य कल्पना है, पर विषयसुख तो प्रत्येककी अनुभूतिका विषय है। राजाने मनकी सम्मत्यनुसार महारानीको बुलाकर वह फल दे दिया। रानीने कहा—'महाराज हम तो आपकी दासी हैं और आप करुणानिधान जगत्के स्वामी हैं, अतः यह फल आपके ही योग्य है। हम सब आपकी सुन्दरताके भिखारी हैं, अतः इसका उपयोग आप ही कीजिए और मेरी नम्र प्रार्थनाकी अवहेलना न कीजिये।' राजा इन वाक्योंको श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। परन्तु इस गुप्त रहस्यको अणुमात्र भी नहीं समझे, क्योंकि कामी मनुष्य हेयाहेयके विवेकसे शून्य रहते ही हैं। रानीके मनमें कुछ और था और वचनोंसे कुछ और ही कह रही थी। किसीने ठीक कहा है कि 'मायावी मनुष्योंके भावको जानना सरल बात नहीं।'

राजाने बड़े आग्रहके साथ वह फल रानीको दे दिया। रानी उसे पाकर मनमें बहुत प्रसन्न हुई। रानीका कोटपालके साथ गुप्त सम्बन्ध होनेके कारण अधिक प्रेम था, इसलिए उसने वह फल कोटपालको दे दिया। कोटपालने कहा—'महारानी हम तो आपके

भृत्य हैं, अतः आप ही उपयोगमें लावें।' पर रानीने एक न सुनी और वह फल उसे दे दिया।

कोटपालका अत्यन्त स्नेह एक वेश्याके साथ था, अतः उसने वह फल वेश्याको दे दिया। उस वेश्याका अत्यन्त स्नेह राजासे था, अतः उसने वह फल राजाको दे दिया। फल हाथमें आते ही महाराजाकी आँखें खुली। उन्होंने वेश्यासे पूछा कि सत्य कहो यह फल कहाँसे आया ? अन्यथा शूलीका दण्ड दिया जायेगा। वेश्या कम्पित स्वरसे बोली—'महाराज। अपराध क्षमा किया जावे। आपका जो नगरकोटपाल है उसका मेरे साथ अत्यन्त स्नेह है, उसीने मुझे यह फल दिया है। उसके पास कहाँसे आया, यह वह जाने।' उसी समय कोटपाल बुलाया गया। राजाने उससे कहा कि यह फल तुमने वेश्याको दिया है ?' कोटपाल बोला—'हाँ, महाराज ! दिया है।' राजाने फिर पूछा—'तुमने कहाँसे पाया ? सच-सच कहो, अन्यथा देशनिष्कासन दण्डके पात्र होगे।' कोटपालने कम्पित स्वरमें कहा—'अन्नदाता ! अपराध क्षमा किया जाय, आपकी महारानीका मेरे साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। उन्होंने मुझे यह फल दिया है। उनके पास कहाँसे आया, यह मैं नहीं जानता।' दासीको आज्ञा हुई कि इसी समय महारानीको लाओ। दासी जाती है और महाराजका संदेश सुनाती है। रानी एकदम भयभीत हो जाती है, परन्तु महाराजकी आज्ञा थी, अतः शीघ्रता से दरबारमें जाती है।

महाराजने प्रश्न किया कि 'यह फल तुमने कोटपालको दिया है ? रानी बोली—'हाँ, महाराज दिया है, क्योंकि आपकी अपेक्षा मेरा कोटपालसे अधिक स्नेह है, यह भी दबी जबानसे कहती हूँ सच पूछिये तो आपसे मेरा अणुमात्र भी स्नेह नहीं है। मेरा सोलह आना स्नेह कोटपालसे है। आपको तो मैं बाधक ही समझती हूँ। अब आपकी जो इच्छा हो, सो कीजिये। तथ्य बात जो थी वह

आपके समक्ष रख दो। यह क्यों? इसका मेरे पास कोई उत्तर नहीं। अग्नि गर्म होती है, जल ठण्डा होता है, नीम कड़ुवा होता है और साँटा मीठा होता है, इसमें कोई प्रश्न करे तो उसका उत्तर यही है कि प्रकृतिका ऐसा ही परिणमन है। हम संसारी आत्मा हैं, रागादिसे लिप्त हैं। जो हमारी रुचिके अनुकूल हुआ उसीको इष्ट मानते हैं।' राजा सुनकर खामोश रहे और बोले-'बहुत ठीक।' उसी समयका यह श्लोक है—'यां चिन्तयामि सततं'—

अर्थात् जिस रानीकी मैं रात्रिदिन चिन्तना करता हूँ वह रानी मुझसे विरक्त होकर अन्यमें आसक्त है और वह पुरुष भी अन्य वेश्यामें आसक्त है एवं वह वेश्या भी मुझमें आसक्त है, अतः उस वेश्याको धिक्कार हो, उस कोटपालको धिक्कार हो, मदनको धिक्कार हो, इस मेरी रानीको धिक्कार हो और मुझको धिक्कार हो। जिसने ऐसा मनुष्य जन्म पाकर यों ही विषयोंमें गमा दिया····इत्यादि विचार कर राजाने राज्य छोड़ साधु वेष धारण कर लिया। इसी विषयका एक और भी उपाख्यान प्रसिद्ध है। एक लेखकने एक पुस्तक रचकर उसके ऊपर यह वाक्य लिखा—

'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वान्समपकर्षति'

अर्थात् इन्द्रियोंका समूह इतना बलवान् है कि वह बड़े-बड़े विद्वानोंको भी आकर्षित कर लेता है—उनके चित्तको विह्वल बना देता है।

एक बार वह लेखक ग्रामान्तर जा रहा था। अरण्यमें एक साधु मिला। लेखकने साधुको प्रणाम कर अपनी पुस्तक दिखलाई। ज्यों ही साधुकी दृष्टि पुस्तकके ऊपर लिखे हुए 'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वान्समपकर्षति' वाक्य पर पड़ी, त्यों ही वह चौंककर बोले—'बेटा! यह क्या लिखा है? कहीं विद्वान् भी इन्द्रियोंके वशीभूत होते हैं, अतः विद्वान्‌को काटकर उसके स्थान पर मूर्ख लिख दो।' लेखक बोला—'बाबा जी! मेरा अनुभव तो ठीक है। यदि

आपको इष्ट नहीं हो तो मिटा दीजिये।' बाबाजीने उसे पानीसे धो दिया। लेखकके मनमें बहुत दुःख हुआ। यद्यपि उसने अपनी बात सिद्ध करनेके लिए बहुतसे दृष्टान्त दिये तो भी साधुके मनमें एक भी नहीं आया।

लेखक वहाँसे चला और भ्रमण करता हुआ बनारस पहुँचा। वहाँ पर उसने बहुरूप बनानेमें निष्णात मनुष्यके पास रहकर एक वर्षके अन्दर स्त्री वेष रखनेकी कला सीखी और एक वर्ष तक वेश्याओंके पास रहकर गान-विद्यामें निपुणता प्राप्त की। अब वह स्त्री जैसा रूप रखने और वेश्या जैसा गानेमें पटु हो गया। उसके मनमें साधुके समक्ष अपनी पुस्तकके पूर्व वाक्यकी यथार्थता सिद्ध करनेकी चिन्ता लगी हुई थी, अतः वह उसी रास्तासे लौटा। बाबाजीकी कुटिया आनेके पहले ही उसने एक सुन्दर युवतीका रूप धारण कर लिया, अतः यहाँसे अब उसके लिए स्त्रीलिङ्गका ही प्रयोग किया जायगा।

वह युवती गाना गाती हुई बाबाजीकी कुटीके पास जब पहुँची, तब दिन बहुत ही थोड़ा रह गया था। वह आश्रय पानेकी इच्छासे कुटियाके पास बैठनेको हुई कि बाबाजीने तिरस्कारके साथ कहा—'यहाँसे चली जाओ, यहाँ स्त्रीसमाजको आनेका अधिकार नहीं।' स्त्री युवतीने बड़ी दीनतासे कहा—'महाराज! मैं अबला हूँ, युवती हूँ, रूपवती हूँ, दिन थोड़ा रह गया है, अँधेरी रात आनेवाली है और सघन वन है। आगे जाने पर न जाने कौन मुझे हरण कर लेगा? यदि मनुष्यसे बच भी गई तो भी कोई हिंसक जन्तु खा जावेगा। आप अनाथोंके नाथ साधु हैं, अतः मेरे ऊपर दया कीजिये। कोई श्राप देनेवाला नहीं। मैं इसी वृक्षके नीचे आपकी छत्रछायामें पड़ी रहूँगी। आपके भजनमें मेरे द्वारा कोई बाधा न होगी।' महाराज बोले—'हम यहाँ मनुष्य तकको नहीं रहने देते फिर तुम तो स्त्री हो। स्त्री ही नहीं, युवती

हो, युवती ही नहीं, रूपवती भी हो, अतः इस स्थान पर नहीं रह सकती। आगे जाओ, अभी काफी दिन है।' स्त्री बोली—महाराज! निष्ठुर न बनो। आप तो साधु हैं, समदर्शी हैं। हम लोग तो आपको पिता तुल्य मानते हैं। सुमेरु भले ही चलायमान हो जावे और सूर्योदय पूर्वसे न होकर भले ही पश्चिमसे होने लग जाय। पर साधु महानुभावोंका मन कदापि विचलित नहीं होता, अतः महाराज! उचित तो यह था कि मैं दिन भरकी थकी आपके आश्रममें आई, इसलिए आप मेरे खाने-पीनेकी व्यवस्था करते परन्तु वह दूर रहा, आप तो रात्रिभर ठहरनेकी भी आज्ञा नहीं देते। सत्य है—विपत्ति कालमें कोई भी सहायक नहीं होता। आपकी जो इच्छा हो, सो कहिये, परन्तु मैं तो इस वृक्ष तलसे आगे एक कदम भी नहीं जाऊँगी, भूखी प्यासी यहीं पड़ी रहूँगी।

जब साधु महाराजने देखा कि यह बला टलनेवाली नहीं, तब चुपचाप कुटियाका दरवाजा बन्द कर सो गये। जब १० बज गये, जंगलमें सुनसान हो गया और पशु-पक्षीगण अपने-अपने नीड़ों पर नीरव शयन करने लगे तब वह शृङ्गार रसमय गाना गाने लगी। वह गाना इतना आकर्षक और इतना सुन्दर था कि जिसे श्रवण कर अच्छे-अच्छे पुरुषोंके चित्त चञ्चल हो जाते।

साधु महाराजने ज्यों ही गाना सुना, त्यों ही कामवेदनासे पीड़ित हो उठे—अपने आपको भूल गये। वे रूप तो दिनमें देख ही चुके थे। उतने पर रजनीकी नीरव बेला थी। किसीका भय था नहीं, अतः कुटीके कपाट खोल कर ज्यों ही बाहर आनेकी चेष्टा करने लगे त्यों ही उसने बाहरकी साँकल बन्द कर दी। बाबाजीने आवाज लगाई—'बेटी! कपाट किसने लगा दिया? मुझे पेशाबकी बाधा है।' स्त्री बोली—'पिताजी! मैंने।' साधु महाराजने कहा—'बेटी! क्यों लगादी' उसने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया—'महाराज आखिर आप पुरुष ही तो हैं। पुरुषोंका क्या भरोसा? रात्रिका

मध्य है, सुनसान एकान्त है। यदि आपके चित्तमें कुछ विकार हो जावे तो इस भयानक वनमें मेरी रक्षा कौन करेगा।' साधु बोले—'बेटी! ऐसा दुष्ट विकल्प क्यों करती हो?' स्त्री बोली—'यह तो आप ही जानते हैं। आप ही अपने मनसे पूछिये कि मेरे ऐसा विकल्प क्यों हो रहा है? आपके हृदयमें कलङ्कमय भाव उत्पन्न हुए बिना मेरा ऐसा भाव नहीं हो सकता।' साधु बोले—'बेटी! मैं शपथपूर्वक कहता हूँ और परमात्मा इसका साक्षी है कि मैं कदापि तेरे साथ दुर्व्यवहार न करूँगा।' स्त्री बोली—आप सत्य ही कहते हैं, परन्तु मेरा चित्त इस विषयमें आज्ञा नहीं देता। क्या आपने रामायणमें नहीं पढ़ा कि सीताहरणके लिए रावणने कितना मायाचार किया? यह मनोज अत्यन्त निर्दय है। यह इतना भयानक पाप है कि इसके वशीभूत होकर मनुष्य अन्धा हो जाता है। माता, पुत्री, भगिनी आदि किसीको नहीं गिनता। इसीलिये तो ऋषियोंने यहाँ तक आज्ञा दी है कि एकान्तमें अपनी माँ तथा सहोदरी आदिसे भी सम्भाषण न करो। अतः आप कुटीके भीतर ही पेशाब कर लीजिये। मैं प्रातः कालके पहले कपाट न खोलूँगी।'

साधु महाराज उसके निराशापूर्ण उत्तरसे खिन्न होकर बोले—'हम तुझे शाप दे देंगे। तुझे कष्ट हो जावेगा।' स्त्री बोली—'इन भर्त्सनाओंको छोड़ो। यदि इतनी तपस्या होती तो कपाट न खोल लेते। केवल गप्पोंसे कुछ नहीं होगा।'

जब साधु महाराजको कुछ उपाय नहीं सूझ पड़ा तब वे कुटीका छप्पर काटकर काम-वेदना शान्त करनेके लिये बाहर आये और इतनेमें ही क्या देखते हैं कि वहाँ पर स्त्री नहीं है। वही पण्डित (लेखक) जो दो वर्ष पहले आया था पुस्तक खोले खड़ा है और कह रहा है कि 'महाराज! इस पुस्तक पर लिखा हुआ यह श्लोक 'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपकर्षति' लिखा रहने दें

था पुनः लिख लेवें।' साधुने लज्जित भावसे उत्तर दिया—'बेटा! यह श्लोक तो स्वर्णाक्षरमें लिखने योग्य है।'

यदि परमार्थदृष्टिसे देखा जावे तो विकार कोई वस्तु नहीं, क्योंकि औपाधिक पर्याय है। परन्तु जब तक आत्माकी इनमें निजत्व बुद्धि रहती है तब तक यह संसारका ही पात्र रहता है। इस प्रकार मैथुनसंज्ञासे संसारके सब जीवोंकी दुर्दशा हो रही है।

इसी तरह परिग्रहसंज्ञासे संसारमें नाना अनर्थ होते हैं। इसका लक्षण श्रीउमास्वामीने तत्त्वार्थसूत्रमें 'मूर्च्छा परिग्रहः' कहा है। 'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा' इस सूत्रसे प्रमत्तयोगकी अनुवृत्ति आती है और तब 'प्रमत्तयोगात् मूर्च्छा परिग्रहः' इतना लक्षण हो जाता है। वस्तुतः अनुवृत्ति लानेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मूर्च्छाके लक्षणमें ही 'प्रमत्तयोग' शब्द पड़ा हुआ है। 'ममेदं' बुद्धि लक्षण ही परिग्रह है अर्थात् पर पदार्थमें 'यह मेरा है' ऐसा जो अभिप्राय है वही मूर्च्छा है। यह भाव विना मिथ्यात्वके होता नहीं। पर पदार्थको आत्मीय मानना ही मिथ्यात्व है। यद्यपि पर पदार्थ आत्मा नहीं हो जाता तथापि मिथ्यात्वके प्रभावसे हमारी कल्पनामें वह आत्मा ही दीखता है। जैसे मनुष्य रज्जुमें सर्प भ्रान्ति हो जानेके कारण भयसे पलायमान होने लगता है। परन्तु रज्जु रज्जु ही है और सर्प-सर्प ही है। ज्ञानमें जो सर्प आ रहा है वह ज्ञानका दोष है, ज्ञेयका नहीं, इसीको अन्तर्ज्ञेय कहते हैं। इस अन्तर्ज्ञेयकी अपेक्षा वह ज्ञान अप्रमाण नहीं, क्योंकि यदि अन्तर्ज्ञेय सर्प न होता तो वह पलायमान नहीं होता। उस ज्ञानको जो मिथ्या कहते हैं वह बाह्य प्रमेयकी अपेक्षा ही कहते हैं। इसीलिये श्री समन्तभद्र स्वामीने देवागमस्तोत्रमें लिखा है—

'भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिन्हवः।
बहिःप्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभञ्च ते॥'

अर्थात् यदि अन्तर्ज्ञेयकी अपेक्षा वस्तु स्वरूपका विचार किया जावे तो कोई भी ज्ञान अप्रमाण नहीं, क्योंकि जिस ज्ञानमें प्रतिभासित विषयका व्यभिचार न हो वही ज्ञान प्रमाण है। जब हम मिथ्याज्ञानके ऊपर विचार करते हैं तब उसमें जो अन्तर्ज्ञेय भासमान हो रहा है वह तो ज्ञानमें है ही। यदि ज्ञानमें सर्प न होता तो पलायमान होनेकी क्या आवश्यकता थी ? फिर उस ज्ञानको जो मिथ्या कहते हैं वह केवल बाह्य प्रमेयकी अपेक्षा ही कहते हैं, क्योंकि बाह्यमें सर्प नहीं है, रज्जु है। अतएव स्वामीने यही सिद्धान्त निश्चित किया कि बाह्य प्रमेयकी अपेक्षा ही ज्ञानमें प्रमाण और प्रमाणाभासकी व्यवस्था है, अन्तरङ्ग प्रमेयकी अपेक्षा सब ज्ञान प्रमाण ही हैं।

यही कारण है कि जब हम ज्ञानमें शरीरको आत्मा देखते है तब उसीमें निजत्वकी कल्पना करने लगते है। उस समय हमें कितने ही प्रकारसे समझानेका प्रयत्न क्यों न किया जावे सब विफल होता है, क्योंकि अन्तरङ्गमें मिथ्यादर्शनकी पुट विद्यमान रहती है। जैसे कामला रोगीको शङ्ख पीला ही दीखता है। उसे कितना ही क्यों न समझाया जावे कि शङ्ख तो शुक्ल ही होता है, आप बलात्कार पीत क्यों कह रहे हैं। परवह यही उत्तर देता है कि आपकी दृष्टि विभ्रमात्मक है जिससे पीले शङ्खको शुक्ल कहते हो। इससे यह सिद्ध हुआ कि जब तक मिथ्यादर्शनका सद्भाव है तबतक पर पदार्थसे आत्मीय बुद्धि नहीं जा सकती। जिन्हें सम्यग्ज्ञान अभीष्ट है उन्हें सबसे पहले अभिप्रायको निर्मल करनेका प्रयत्न करना चाहिये। जिनका अभिप्राय मलिन है वे सम्यग्ज्ञानके पात्र नहीं, अतः सब परिग्रहोंमें महान् पाप मिथ्यात्व परिग्रह है। जबतक इसका अभाव नहीं तब तक आप कितने ही व्रत, तप, संयमादि ग्रहण क्यों न करें, मोक्षमार्गके साधक नहीं। इस मिथ्यात्वके सद्भावमें ग्यारह अङ्ग और नौ पूर्वका तथा बाह्य

में मुनिधर्मका पालन करनेवाला भी नव ग्रैवेयकसे ऊपर नहीं जा सकता। अनन्तबार मुनिलिङ्ग धारण करके भी इसी संसार में रुलता रहता है।

मिथ्यात्वका निर्वचन भी सम्यक्त्वकी तरह ही दुर्लभ है,क्यों कि ज्ञानगुणके बिना जितने अन्य गुण हैं वे सब निर्विकल्पक हैं। ज्ञान ही एक ऐसी शक्ति आत्मामें है कि जो सबकी व्यवस्था बनाये है। यही एक ऐसा गुण है जो परकी भी व्यवस्था करता है और अपनी भी। मिथ्यात्वके कार्य जो अतत्त्वश्रद्धानादिक हैं वे सब ज्ञानकी पर्याय हैं। वास्तवमें मिथ्यात्व क्या है यह मति-श्रुतज्ञानके गम्य नहीं। उसके कार्यसे ही उसका अनुमान किया जाता है। जैसे वातरोगसे शरीरकी सन्धि सन्धिमें वेदना होती है। उस वेदनासे हम अनुमान करते हैं कि हमारे वातरोग है। वातरोगका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता। ऐसे ही कुगुरु और कुधर्मके माननेका जो हमारा परिणाम होता है उससे मिथ्यात्वका अनुमान होता है। वास्तवमें उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। अथवा शरीरमें जो अहम्बुद्धि होती है वह मिथ्यात्वके उदयमें होती है, अतः उस अहम्बुद्धिसे मिथ्यात्वका अनुभव होता है। वस्तुतः उसका प्रत्यक्ष नहीं होता, क्योंकि वह गुण निर्वि-कल्पक है। इस तरह यह परिग्रह आत्माके सम्पूर्ण परिग्रहोंका मूल है। जब तक इसका त्याग नहीं तब तक आत्मा संसारका ही पात्र रहता है। इसके जानेसे ही आत्मा मोक्षमार्गके पथपर चलनेका अधिकारी हो सकता है। जबतक सम्यग्दर्शन न हो तब तक यह जीव न तो गृहस्थ धर्मका अधिकारी हो सकता है और न ऋषिधर्मका। ऊपरसे चाहे गृहस्थ रहे, चाहे मुनिवेष धारण कर ले, कौन रोक सकता है?

जन्मसे शरीर नग्न ही होता है। अनन्तर जिस वातावरणमें इसका पालन होता है, तद्रूप इसका परिणमन हो जाता है। देखा

गया है कि राजाओंके यहाँ जो बालक होते हैं उनको घाम और शीतसे बचानेके लिये बड़े-बड़े उपाय किये जाते हैं। उनके भोजनादिकी व्यवस्थाके लिये हजारों रुपये व्यय किये जाते हैं। उनको जरा-सी शीत बाधा हो जाने पर बड़े-बड़े वैद्यों व डाक्टरोंकी आपत्ति आ जाती है। वही बालक यदि गरीबके गृहमें जन्म लेता है तो दिन-दिन भर सरदी और गरमीमें पड़ा रहता है। फिर भी राजा बालककी अपेक्षा कहीं अधिक हृष्ट पुष्ट रहता है। प्राकृतिक शीत और उष्ण उसके शरीरकी वृद्धिमें सहायक होते हैं। यदि कभी उसे जूड़ी-सरदी सताता है तो लोंग घिस कर पिला देना ही नीरोगताका साधक हो जाता है। जो-जो वस्तुजात धनाढ्योंके बालकोंको अपकारक समझे जाते हैं वही-वही वस्तुजात निर्धनोंके बालकोंके सहायक देखे जाते हैं। जगत्‌की रीति ऐसी विलक्षण है कि जिसके पास कुछ पैसा हुआ, लोग उसे पुण्यशाली पुरुष कहने लगते हैं। क्योंकि उनके द्वारा सामान्य मनुष्योंको कुछ सहायता मिलती है और वह इसलिये मिलती है कि सामान्य मनुष्य उन धनाढ्योंकी असत् प्रशंसा करें। यह लोक जो कि धनाढ्यों द्वारा द्रव्यादि पाकर तुष्ट होते हैं, चारण लोगोंका कार्य करते हैं। यदि यह न हो तो उनकी पोल खुल जावे। बड़े-बड़े प्रतिभाशाली कविराज जरासी द्रव्य पानेके लिये ऐसे-ऐसे वर्णन करते हैं कि साधारणसे साधारण धनाढ्यको इन्द्र,धनकुबेर तथा दानवीर, कर्ण आदि कहनेमें भी नहीं चूकते। यद्यपि यह धनाढ्यलोग उन्हें धन नहीं देना चाहते तथापि अपने ऐबों-दोषोंको छिपानेके लिये लाखों रुपये दे डालते हैं। उत्तम तो यह था कि कवियोंकी प्रतिभाका सदुपयोग कर स्वात्माकी परणतिको निर्म्मल बनानेकी चेष्टा करते। परन्तु चन्द चाँदीके टुकड़ोंके लोभसे लालायित होकर अपनी अलौकिक प्रतिभा विक्रय कर देते हैं। ज्ञान प्राप्तिका फल तो यह होना उचित था कि संसारके कार्योंसे विरक्त होते, पर वह

तो दूर रहा, केवल लोभके वशीभूत होकर आत्माको बाह्य पदार्थोंका अनुरागी बना लेते हैं। अस्तु,

मिथ्यात्व परिग्रहका अभाव हो जाने पर भी यद्यपि परिग्रहका सद्भाव रहता है तथापि उसमें इसकी निजत्व कल्पना मिट जाती है, अतः सब परिग्रहोंका मूल मिथ्यात्व ही है। जिन्हें संसार-बन्धनसे छूटनेकी अभिलाषा है उन्हें सर्व प्रथम इसीका त्याग करना चाहिये, क्योंकि, इसका त्याग करनेसे सब पदार्थोंका त्याग सुलभ हो जाता है।'.......इस प्रकार बाईजीने अपनी सरल, सौम्य एवं गम्भीर मुद्रामें जो लम्बा तत्त्वोपदेश दिया था उसे मैंने अपनी भाषामें यहाँ परिव्यक्त करनेका प्रयत्न किया है।

मैंने कहा—'बाईजी! आखिर हम भी तो मनुष्य हैं। मनुष्य ही तो महाव्रत धारण करते हैं और अनेक उपसर्ग—उपद्रव आने पर भी अपने कर्तव्यसे विचलित नहीं होते। उनका भी तो मेरे ही जैसा औदारिक शरीर होता है। फिर मैं इस जरासे व्रतको धारण न कर सकूँगा?'

बाईजी चुप हो रहीं, पर श्रीबालचन्द्रजी सवालनवीस बोले—'जो आपकी इच्छा हो, सो करो। परन्तु व्रतको लेकर उसका निर्वाह करना परमावश्यक है। शीघ्रता करना अच्छा नहीं। हमने अनादि कालसे यथार्थ व्रत नहीं पाला। यों तो द्रव्यलिङ्ग धारण कर अनन्तबार यह जीव ग्रैवेयक तक पहुँच गया, परन्तु सम्यग्ज्ञान पूर्वक चारित्रके अभावमें संसारबंधनका नाश नहीं कर सका। आपने जैनागमका अभ्यास किया है और प्रायः आपकी प्रवृत्ति भी उत्तम रही है। परन्तु आपके व्यवहारसे हम आपकी अन्तरङ्ग परिणतिको जानते हैं और उसके आधार पर कह सकते हैं कि आप अभी व्रत लेनेके पात्र नहीं। यह हम अच्छी तरह जानते हैं कि आपकी प्रवृत्ति इतनी सरल है कि मनुष्य उससे अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं; अतः आप इन्हीं अनुचित कार्योंसे खिन्न

होकर व्रत लेनेके सम्मुख हुए हैं। आशा है आप हमारी बातपर पूर्ण रीतिसे विचार करेंगे।'

मैंने कहा—'आपका कहना अक्षरशः सत्य है। परन्तु मेरी आत्मा यदि व्रत न लेवेगी तो बहुत खिन्न रहेगी, अतः अब मैं किसी विशेष त्यागीके पास व्रत ले लूँगा। कुछ नहीं होगा तो न सही, पर मेरी जो यह बाह्य प्रवृत्ति है वह तो छूट जावेगी और जो व्यर्थ व्यय होता है उससे बच जाऊँगा। मेरा विश्वास है कि मेरी यह प्रवृत्ति बाईजी को भी अच्छी लगेगी। अभी तक मैंने जो पाया सो व्यय किया। अब परिमित व्यय होने लगेगा तथा जहाँ तक मुझसे बनेगा व्रतमें शिथिलता न करूँगा।'

श्री बालचन्द्रजी साहबने कहा—'कहने और करनेमें महान् अनन्तर होता है। कौन मनुष्य नहीं चाहता कि मैं सुमार्गमें न लगूँ। जिस समय शास्त्र प्रवचन होता है और वक्ताके मुखसे संसारकी असारताको सुनते हैं उस समय प्रत्येकके मनमें यह आ जाता है कि संसार असार है, कोई किसीका नहीं, सब जीव अपने-अपने कर्मोंके आधीन हैं, व्यर्थ ही हम कलत्रपुत्रादिके स्नेहमें अपनी मनुष्य पर्यायकी योग्यताको गमा रहे हैं, अतएव सबसे ममता त्यागकर दैगम्बरी दीक्षाका अवलम्बन कर लें। परन्तु जहाँ शास्त्र प्रवचन पूर्ण हुआ कि आठ आना भर भाव रह गये, भजन होनेके बाद चार आना भाव रह गये, विनती होने तक दो आना और शास्त्र विराजमान होते-होते वह भी भाव चला गया...यह आजके लोगोंकी परिणति है। अभी तुम्हें जो उत्साह है, व्रत लेनेके बाद उससे आधा रह जावेगा। और चार या छः मासके बाद चौथाई रह जावेगा। हाँ, यह अवश्य है कि लोकभयसे व्रतका पालन करोगे, परन्तु जो परिणाम आज हैं वे फिर न रहेंगे। भले ही आज आपके परिणाम अत्यन्त स्वच्छ क्यों न हों, परन्तु यह निश्चय है कि कालान्तरमें उनका इसी प्रकार स्वच्छ

रहा आना कठिन है। ऐसा एकान्त भी नहीं कि सभीके परिणाम गिर जाते हैं, परन्तु आधिक्य ऐसा देखा जाता है। श्री भरतके सदृश सभी जीव अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान उपार्जन कर लें, यह कठिन है। प्रथमबार सप्तम गुणस्थान होनेमें जो परिणाम होते हैं वे छठवेंसे सप्तम गुणस्थान होनेमें नहीं होते, अतः विचार कर कार्य करना चाहिये। मैं आपको इसलिये नहीं रोकता कि आप संयम अंगीकृत न करें। संयम धारण करनेमें जो शान्ति मिलती है वह इन पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंमें नहीं, अतः संयम धारण करना आवश्यक है। परन्तु संयम होना चाहिये। नाममात्रके संयमसे आत्माका सुधार नहीं होता। अभी हम लोग संयमको खेल समझते हैं, पर संयमकी उत्पत्ति सरल नहीं। उसके लिये तो हमें सर्व प्रथम अनादिकालसे जो पर पदार्थोंमें आत्मबुद्धि हो रही है उसे छोड़ना होगा। कहनेको तो प्रत्येक कह देता है कि शरीर जड़ है, हम चेतन हैं। परन्तु जब शरीरमें कोई व्याधि आती है तब हे माँ! हे दादा! हे भगवन्! हमारी रक्षा करो। हे वैद्यराज! ऐसी औषधिका प्रयोग करो कि जो शीघ्र ही रोगसे मुक्त कर दे····आदि दीनतापरक शब्दोंकी झड़ी लगा देते हैं। यदि यथार्थमें शरीरको पर समझते हो तब इतनी आकुलता क्यों? बस, छलसे यही उत्तर दिया जाता है कि क्या करें? चारित्रमोहकी प्रबलता है, हम तो श्रद्धामें पर ही मानते हैं। कुछ शास्त्रका बोध हुआ तो बलभद्र और नारायणके मोहकी कथा सुना दी। यहाँ मेरा यह तात्पर्य नहीं कि सम्यग्दृष्टि वेदना आदिका इलाज नहीं करता। परन्तु बहुतसे मनुष्य छलसे ही वाक्यपटुता द्वारा सम्यग्ज्ञानी बननेकी चेष्टा करते हैं। अतः सबसे पहले तो अभिप्राय निर्मल होनेकी आवश्यकता है। अनन्तर पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंमें स्वेच्छाचरिता न होनी चाहिये। फिर वचन-कायकी चेष्टा योग्य होनी चाहिये और मनमें निरन्तर उत्तम विचारोंका प्रचार होना

चाहिये। इन सब योग्यताओंके अनन्तर द्रव्यादि चतुष्टयकी योग्यताका विचारकर संयम धारण करना चाहिये तथा चित्तमें कोई शल्य भी न हो तभी संयम ग्रहण करना लाभदायक होगा।

आप जानते हैं कि वर्तमानमें न तो लोगोंके शुद्ध भोजनकी प्रवृत्ति रह गई है और न अष्ट मूलगुण धारण करनेकी प्रवृत्ति ही रही है। इनके बलपर ही तो आपका देशसंयम सुरक्षित रह सकेगा। यद्यपि बाईजीकी पूर्ण योग्यता है। परन्तु अब उनका जीवन बहुत थोड़ा है, अतः उनके पश्चात् तुम्हें पराधीन होना पड़ेगा। तुम्हारा ख्याल है कि मैं अपना ही क्या, दो अन्य त्यागियोंका भी बाईजीके द्रव्यसे निर्वाह कर सकता हूँ। परन्तु बहुत अंशोंमें तो तुमने उसे पहले ही व्यय कर दिया। यह मैं मानता हूँ कि अब भी जो अवशिष्ट है वह तुम्हारे लिये पर्याप्त है। परन्तु मैं हृदयसे कहता हूँ कि बाईजीके स्वर्गवासके बाद तुम उसमेंका एक पैसा भी न रक्खोगे और उस हालतमें तुम्हें पराधीन ही रहना पड़ेगा। उस समय यह नहीं कह सकोगे कि हम अष्ट मूलगुण धारण करनेवालेके ही यहाँ भोजन करेंगे। यदि अधिक आग्रह करोगे तो लोग तुम्हारे समक्ष प्रतिज्ञा भी धारण कर लेवेंगे। परन्तु वह नाममात्रकी प्रतिज्ञा होगी। जैसे वर्तमानमें मनुष्य मुनिराजके समक्ष भी प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि मेरे आजन्म शूद्र जलका त्याग है, अन्न जल ग्रहण कीजिये। पश्चात् उन्हें इस प्रतिज्ञाके तोड़नेमें कोई प्रकारका भय नहीं रहता। यही हाल आपके अष्टमूल गुणोंका होगा।

आप जानते हैं—१०० में ९० अस्पतालकी दवा सेवन करते हैं। उनके अष्ट मूलगुण कहाँ हो सकते हैं? इसके सिवाय इस कालमें न्यायोपार्जित धनके द्वारा निष्पन्न आहारका मिलना प्रायः दुर्लभ है, क्योंकि गरीबोंको जाने दीजिये, बड़े-बड़े रईस लोग भी आज जिस छल और क्षुद्रतासे द्रव्यका संचय करने लगे

हैं उनका विचार करो तो शरीर रोमाञ्चित हो जाय। जब अन्न जलादिकी व्यवस्थामें इतनी कठिनाई है तब विना विचारे व्रत लेना मैं तो योग्य नहीं समझता। व्रत उत्तम है, परन्तु यथार्थ रीतिसे पालन किया जाना चाहिये। केवल लौकिक मनुष्योंमें यह प्रसिद्ध हो जावे कि अमुक मनुष्य व्रती है""इसी दृष्टिसे व्रती होना कहाँ तक योग्य है? मैं यह भी मानता हूँ कि आप साक्षर हैं तथा आपका पुण्य भी विशिष्ट है, अतः आपकी व्रत-शिथिलता भी आपकी प्रतिष्ठामें बाधक न होगी। मैं किसीकी परीक्षा लेनेमें संकोच नहीं करता, परन्तु आपके साथ कुछ ऐसा स्नेह हो गया है कि आपके दोष देख कर भी नहीं कह सकता। इसीसे कहता हूँ कि यदि आप सदोष भी व्रत पालेंगे तो प्रशंसाके पात्र होंगे। परन्तु परमार्थसे आप उस व्रतके पात्र नहीं।

प्रथम तो आपमें इतनी अधिक सरलता है कि प्रत्येक मनुष्य आपके प्रभावमें आजाता है। फिर आपको प्रतिभा और आगमका ज्ञान इतना अधिक है कि लोग आपके समक्ष मुँह भी खोलनेमें संकोच करते हैं, परन्तु इससे क्या व्रतमें यथार्थता आ सकेगी? आप यह स्वयं जानते हैं कि व्रत तो वह वस्तु है कि जिसकी यथार्थता होनेपर संसार-बन्धन स्वयमेव खुल जाता है, अतः मेरी यही सम्मति है कि ज्ञानको पाकर उसका दुरुपयोग न करो। मुझे श्री कुन्दकुन्द महाराजके इन वचनोंकी स्मृति आती है कि 'हे प्रभो! मेरे शत्रुको भी द्रव्यलिङ्ग न हो।' इसलिये आप कुछ दिन तक अभ्यास रूपसे व्रतोंका पालन करो। पश्चात् जब सम्यग् अभ्यास हो जावे तब व्रत ग्रहण कर लेना। बस, अब आपकी जो इच्छा हो, सो करो।'

इसके अनन्तर बाईजी बोलीं—'भैया बालचन्द्र जी! आपके शब्दोंको सुनकर मुझे बहुत हर्ष हुआ। परन्तु मैं इसकी प्रकृतिको जानती हूँ। इसके स्वभावका वह महान् दोष है कि यह पूर्वापर

आलोचना किये बिना ही कार्यको प्रारम्भ कर देता है, चाहे उसमें उत्तीर्ण हो या अनुत्तीर्ण। इसकी प्रकृति सरल है परन्तु उग्र है—क्रोधी है। यह ठीक है कि स्थायी क्रोधी नहीं। मायाचारी नहीं। दानी भी है, परन्तु कहाँ देना चाहिये, इसका विवेक नहीं। भोजन इसके विरुद्ध कुछ भी हुआ कि उसका क्रोध १०० डिग्री हो जाता है। थाली फोड़ दे, लोटा फोड़ दे, स्वयं भूखा मरे। मैं ही इसके इस अनर्गल क्रोधको सहती हूँ और सहनेका कारण यह है कि इसे प्रारम्भसे पुत्रवत् पाला ह। अब इसकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। इन सब बातोंके होते हुए भी इसकी प्रवृत्ति धर्ममें दृढ़ है। परन्तु यह भूल करता है। इसका परिणाम व्रत पालनेके योग्य नहीं। फिर बात यह है कि मनुष्य जो प्रतिज्ञा लेता है उसका किसी तरह निर्वाह कर्ता ही है। यह भी करेगा, पर उचित यही था कि अभी कुछ दिन तक अभ्यास करता।'

मैं कुछ कहना चाहता था, पर बाईजी मेरी मुद्राको देखकर आगे कहती गईं कि 'यह अब किसीकी सुननेवाला नहीं, अतः अब इस विषयकी कथा छोड़िये। जो इसके मनमें आवे सो करे, परन्तु चरणानुयोगका मननकर त्याग करे तो अच्छा है। आज-कल प्रत्येक बातमें विवाद चलता है। मैं क्यों विकल्पमें पड़ूँ। जो भवितव्य होगा वही होगा।'

इतना कहकर बाईजी तटस्थ रह गईं। मैं व्रत पालनेकी चेष्टा करने लगा। अभ्यास तो पहले था ही नहीं, अतः धीरे-धीरे व्रत पालने लगा। उपवास जैसा आगममें लिखा है वैसा नहीं होता था, अर्थात् त्रयोदशी या सप्तमीके दिन पारणाके बाद फिर दूसरी बार भोजनका त्याग होना चाहिये। पश्चात् चतुर्दशी या अष्टमीको दोनों बार भोजनका त्याग और अमावस्या या नवमी को पारणाके बाद सायंकालके भोजनका त्याग···इस तरह चार भुक्तियोंका त्याग एक उपवासमें होना चाहिये और वह काल

धर्मध्यानमें बिताना चाहिये—संसारके प्रपञ्चोंसे बचना चाहिये, शान्तिपूर्वक काल यापन करना चाहिये। पर हमारी यह प्रवृत्ति थी कि त्रयोदशी और सप्तमीके दिन सायंकालको भोजन करते थे, केवल चतुर्दशी अष्टमीके दिन दोनों समय भोजन नहीं करते थे, अमावस्या और नवमीको भी दोनों बार भोजन करते थे.... यही हमारा उपवास था। किन्तु स्वाध्यायमें काल यापन अवश्य करते थे। सामायिक तीनों काल करते थे। परन्तु समय पर नहीं करते थे। मध्याह्न काल प्रायः चूक जाते थे। पर श्रद्धा ज्यों-की-त्यों थी। सबसे महती त्रुटि यह थी कि अष्टमी और चतुर्दशीको भी शिरमें तेल डालते थे। कच्चे जलसे स्नान करते थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि मेरे व्रतमें चरणानुयोगकी बहुतसी गलतियाँ रहती थीं और उन्हें जानता भी था। परन्तु शक्तिकी हीनता जनित परिणामोंकी दृढ़ता न होनेसे यथायोग्य व्रत नहीं पाल सकता था, अतः धीरे-धीरे उनमें सुधार करने लगा। यह सब होनेपर भी मनमें निरन्तर यथार्थ व्रत पालनेकी ही चेष्टा रहती थी और यह भी निरन्तर विचारमें आता रहता कि तुमने बालचन्द्रजी तथा बाईजीका कहना नहीं माना। उसीका यह फल है पर अब क्या होता है ?

पञ्चोंकी अदालत

एक बार हम और कमलापति सेठ बरायठामें परस्पर बात-चीत कर रहे थे। सेठजीने कुछ गम्भीर भावसे कहा कि 'क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे हमारे यहाँ विवाहमें स्त्रियोंका जाना बन्द हो जावे, क्योंकि जहाँ स्त्री समाजकी प्रमुखता होती है वहाँ अनेक प्रकारकी अनर्थोंकी सम्भावना सहज ही हो जाती है। प्रथम तो नाना प्रकारके भण्ड वचन उनके श्रीमुखसे निकलते हैं।

द्वितीय इतर समाजके सम्मुख नीचा देखना पड़ता है। अन्य समाजके लोग बड़े गर्वके साथ कहते हैं कि तुम्हारी समाजकी यही सभ्यता है कि स्त्री समाज निर्लज्ज होकर भण्ड गीतोंका आलाप करती हैं।' मैंने कहा—'उपाय क्यों नहीं है? केवल प्रयोगमें लानेकी कमी है। आज शामको इस विषयकी चर्चा करेंगे।'

निदान हम दोनोंने रात्रिको शास्त्र प्रवचनके बाद इसकी चर्चा छेड़ी और फलस्वरूप बहुत कुछ विवादके बाद सबने विवाहमें स्त्री समाजका न जाना स्वीकार कर लिया। इसके बाद दूसरे दिन हम दोनों नीमटोरिया आये। यहाँपर बरायठा ग्रामसे एक बरात आई थी। यहाँ पर जो लड़कीका मामा था उससे मामूली अपराध बन गया था, अतः लोगोंने उसका विवाहमें आना-जाना बन्द कर दिया था। उसकी पञ्चायत हुई और किसी तरह उसे विवाहमें बुलाना मंजूर हो गया।

नीमटोरियासे तीन मील हलवानी ग्राम, यहाँ पर एक प्रतिष्ठित जैनी रहता था, उसे भी लोग विवाहमें नहीं बुलाते थे। उसकी भी पञ्चायत की गई। मैंने पञ्चोंसे पूछा—भाई! इनका क्या दोष है।' पञ्चोंने कहा-'कोई दोष नहीं।' मैंने कहा—'फिर क्यों नहीं बुलाते?' अमुक पटवारी जाने, अमुक सिंघईजी जाने या सेठजी जाने, यही कहते रहे, निर्णय कुछ भी नहीं हुआ। अन्तमें एकने कहा- 'आप एकान्तमें आइये, इसका रहस्य आपके ज्ञानमें आ जावेगा।' मैं बड़ी उत्सुकतासे उनके साथ एकान्तमें चला गया। वहाँ आप कहते हैं—'क्या आप इनको जानते हैं?' मैंने कहा—'अच्छी तरह जानता हूँ।' 'इनके एक लड़का है और इसका विवाह दलपतपुर हुआ '····उन्होंने कहा। 'अच्छा, इससे क्या हुआ? सबका विवाह होता है, जो बात मर्मकी हो उसे कहो'····मैंने कहा। 'उस लड़केकी औरत अत्यन्त सुन्दरी है। बस,

यही अपराधका कारण है'···उन्होंने कहा। 'स्त्रीका सुन्दर होना इसमें क्या अपराध है'····मैंने कहा। 'यही तो बात है, क्या कहूँ? आप तो लौकिक तत्त्वकी कुछ भी मीमांसा नहीं जानते। संसारमें पापकी जड़ तो यही है। यदि यह बात उसमें न होती तो कोई अपराध उसका न था। उस औरतकी सुन्दरताने ही इन लोगोंका विवाहमें आना-जाना बन्द करवाया है'····उन्होंने बड़ी गम्भीर मुद्रासे कहा? 'फिर भी आपके कहनेसे कुछ भी बोध नहीं हुआ'····मैंने कहा? 'बोध कहाँसे हो? केवल पुस्तकें ही तो आपने पढ़ी हैं। अभी लौकिक शास्त्रसे अनभिज्ञ हो। अभी आप बुन्देलखण्डके पञ्चोंके जालमें नहीं आये। इसीसे यह सब परोपकार सूझ रहा है'···झुंझला कर उसने कहा? 'भाई साहब मैं आपके कहनेका कुछ भी रहस्य नहीं समझा। कृपया शीघ्र समझा दीजिये। बहुत विलम्ब हुआ।'····मैंने जिज्ञासा भावसे कहा? 'जल्दीसे काम नहीं चलेगा। यहाँ तो अपराधीको महीनों पञ्चोंकी खुशामद करनी पड़ती है तब कहीं उसकी बातपर विचार होता है, यह तो पञ्चोंकी अदालत है। वर्षोंमें जाकर मामला तय होता है।'···बड़े गर्वके साथ उसने कहा। 'महाशय! इन व्यर्थकी बातोंमें कुछ नहीं। उसकी औरत बहुत सुन्दर है। इसके बाद कहिये।'···मैंने झुँझला कर कहा। 'जब वह मन्दिरमें, कुए पर या अन्य कहीं जाती है उसके पैरकी आहट सुनकर लोग उसके मुखकी ओर ताकने लगते हैं और जब वह अपने साथकी औरतोंके साथ वचनालाप करती है तब लोग कान लगाकर सुनने लगते हैं। मैं कहाँ तक कहूँ? उसके यहाँ निमन्त्रण होता है तो लोग उसका हाथ देखकर मोहित हो जाते हैं। अन्यकी क्या कहूँ? मैं स्वयं एक बार उसके घर भोजनके लिए गया तो उसके पग देखकर मोहित हो गया। यही कारण है कि जिससे पञ्चोंने उसे विवाहमें बन्द कर दिया।'····उसने कहा। 'महाशय! क्या कभी उसने पर पुरुषके

साथ अनाचार भी किया ?'...मैंने पूछा। 'सो तोसुननेमें नहीं आया।'.... उन्होंने कहा। 'और कुछ बोलना चाहते हो।'...मैंने कहा। 'नहीं'...उन्होंने कहा। बस, मुझे एकदम क्रोध आ गया। मैंने बाहर आकर पञ्चोंके समक्ष सब रहस्य खोल दिया और उनकी अविवेकतापर आध घण्टा व्याख्यान दिया। जिसने मुझे एकान्तमें यह रहस्य बतलाया था उसका पाँच रुपया दण्ड किया तथा सेठजीसे कहा कि हम ऐसे पञ्चोंके साथ सम्भाषण करना महान् पाप समझते हैं। इस ग्राममें मैं पानी न पीऊँगा तथा ऐसे विवाहादि कार्योंमें जो भोजन करेगा वह महान् पातकी होगा। सुनते ही जितने नवयुवक थे सबने विवाहकी पंगतमें जानेसे इन्कार कर दिया और जो पंगतमें पहुँच चुके थे वे सब पतरीसे उठने लगे।

बातकी बातमें सनसनी फैल गई। लड़कीवाला दौड़ा आया और बड़ी नम्रतासे कहने लगा—'मैंने कौनसा अपराध किया है ? मैं उसे बुलानेको तैयार हूँ।' पञ्च लोगोंने अपने अपराधका प्रायश्चित किया और जो महाशय सुन्दर—रूपवती स्त्रीके कारण विवाहमें नहीं बुलाये जाते थे वे पंक्ति भोजनमें सम्मिलित हुए। इस प्रकार यह अनर्थ दूर हुआ।

इसी ग्राममें यह भी निश्चय हो गया कि हम लोग विवाहमें स्त्री समुदाय न ले जावेंगे और एक प्रस्ताव यह भी पास हो गया कि जो आदमी दोषका प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जावेगा उसे विवाह आदि कार्योंके समय बुलानेमें बाधा न होगी। एक सुधार यह भी हो गया कि मन्दिरका द्रव्य जिनके पास है उनसे आज वापिस ले लिया जावे तथा भविष्यमें बिना गहनेके किसीको मन्दिरसे रुपया न दिया जावे। यह भी निश्चय हुआ कि आरम्भी, उद्यमी एवं विरोधी हिंसाके कारण किसीको जातिसे बहिष्कृत न किया जावे। यह भी नियम पास हो गया कि पंगतमें आलू बैंगन आदि

अभक्ष्य पदार्थ न बनाये जावें तथा रात्रिके समय मन्दिरमें शास्त्र प्रवचन हो और उसमें सब सम्मिलित हों।

यहाँ पर एक दरिद्र आदमी था। उसके निर्वाहके लिए चन्दा इकट्ठा करनेकी बात जब कही तब एक महाशयने बड़े उत्साहके साथ कहा कि चन्दाकी क्या आवश्यकता है? वर्षमें दो मास भोजन मैं करा दूँगा। उनकी बात सुनकर पाँच अन्य महाशयों ने भी दो दो मास भोजन कराना स्वीकार कर लिया। इस तरह हम दोनोंका यहाँ आना सार्थक हुआ।

उस समय हमारे मनमें विचार आया कि ग्रामीण जनता बहुत ही सरल और भोली होती है। उन्हें उपदेश देनेवाला नहीं, अतः उनके मनमें जो आता है वही कर बैठते हैं। यदि कोई निष्कपट भावसे उन्हें उपदेश देवे तो उस उपदेशका महान् आदर करते हैं और उपदेशदाताको परमात्मातुल्य मानते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि विद्वान् ग्रामोंमें जाकर वहाँके निवासियोंको प्रवृत्तिको निर्मल बनानेकी चेष्टा करें।

जातिका संवर

एक बार हम लोग सागरसे हरदीके पञ्चकल्याणकमें गये। वहाँ जाकर पण्डित मोतीलालजी वर्णीके डेरापर ठहर गये। आप ही प्रतिष्ठाचार्य थे। यहाँ पर एक बड़ी दुर्घटना हो गई, जो इस प्रकार है—मन्दिरके द्वारपर मधुमक्खियोंका एक छत्ता लगा था। उसे लोगोंने धुवाँ देकर हटा दिया। रात्रिको शास्त्र प्रवचनके समय उस विषयपर बड़ा वाद-विवाद हुआ। बहुत लोगोंने कहा कि जहाँ पर भगवान्के पंच कल्याणक हों वहाँ ऐसा अनर्थ क्यों हुआ? अन्तमें यह निर्णय हुआ कि जो हुआ सो हो चुका। वह सिंघईजीकी गलती नहीं थी, सेवक लोगोंने यह अनर्थ किया।

परन्तु मालिकने विशेष ध्यान नहीं दिया, अतः कलके दिन १००० दरिद्रोंको मिष्टान्न भोजन करावें....यही उसका प्रायश्चित्त है। सिंघईजीने उक्त निर्णयके अनुसार दूसरे दिन १००० दरिद्रोंको भोजन कराकर पंचायतके आदेशका पालन किया।

यहाँ पर रथमें श्रीरघुनाथजी मोदी बड़गाँववाले आये थे। ये जातिके गोलालारे थे और जहाँ इनका घर था वहाँ २०० गोलालारे और थे। इन लोगोंका गोलालारोंसे ५० वर्षसे सम्पर्क छूटा हुआ था। गोलालारे न तो इन्हें अपनी कन्या देते थे और न ही इनकी कन्या लेते थे। यह लोग परस्परमें ही अपना निर्वाह करते थे। इन्होंने पण्डित मूलचन्दजीसे जो कि सागर पाठशालाके सुपरिन्टेन्डेन्ट थे, कहा—'हमको जातिमें मिला लिया जावे।'

पण्डित मूलचन्द्रजी बहुत चतुर मनुष्य हैं। उन्होंने उत्तर दिया—कि 'भाई साहब ! यदि आप मिलना चाहते हैं तो आप जनतामें अपना विषय रखो। देखें, क्या उत्तर मिलता है ?' श्रीरघुनाथ मोदीने रात्रिको शास्त्र प्रवचनके बाद सागर, दमोह, शाहपुर आदि प्रान्तभरके समग्र पंचोंके समक्ष अपनी दुर्दशाका चित्र रक्खा, जो बहुत ही करुणोत्पादक था। उन्होंने कहा—'हम लोग पचास वर्षसे जातिबाह्य हैं। हम लोगोंका तो कोई अपराध जो भी कुछ हो पूर्वजोंका है। हमने जबसे अपना कार्य संभाला है तबसे न तो कोई पाप किया है और न किसी दस्साके साथ सम्बन्ध ही किया है। बराबर देवदर्शन, पूजा तथा स्वाध्यायकी परिपाटीका नियमपूर्वक पालन करते हैं तथा श्री गिरिराज, गिरिनार आदि तीर्थोंकी यात्रा भी करते हैं, भोजनादिकी प्रक्रिया भी शुद्ध है, हम लोग कभी रात्रिभोजन नहीं करते और न कभी अनछना पानी पीते हैं। हाँ, इतना अपराध अवश्य हुआ कि एक लड़केकी शादी पचबिसे गोलापूर्वकी कन्यासे हो गई और एक लड़की परवारको दे दी। सो यह भी कार्य हम लोगोंकी संख्या बहुत

अल्प रह जानेसे करना पड़ा है। हम लोगोंके घर मुश्किलसे पच्चीस या तीस होंगे। यदि हमारे साथ ऐसा ही व्यवहार रहा तो कुछ कालमें हमारा अस्तित्व ही लुप्त हो जावेगा। आप यह जानते हैं कि जहाँ पर आय नहीं केवल व्यय ही हो वहाँ मूल-धनका नाश ही ध्रुव है। आप लोग अपनाते नहीं, अतः हम कहाँ जावें ? या तो निर्णय कर हमें जातिमें सम्मिलित कीजिये या आज्ञा दीजिये कि हम स्वेच्छाचारी होकर जहाँ-तहाँ विचरें बहुत कष्ट सहे, अब नहीं सहे जाते। अन्तमें आपकी ही क्षति होगी। पहले चौरासी जातिके वैश्य जैन थे, पर अब आधे भी देखनेमें नहीं आते। आशा है कि हमारी रामकहानीपर आपकी स्वभावसिद्ध एवं कुलपरंपरागत दया उमड़ पड़ेगी, अन्यथा अब हमारा निर्वाह होना असम्भव है। विशेष अब कुछ नहीं कहना चाहते। जो कुछ वक्तव्य था सब ही आपके पुनीत चरणमें रख दिया। साथ ही यह निवेदन कर देना भी समुचित समझते हैं कि आप लोग शारीरिक अथवा आर्थिक जो कुछ भी दण्ड देवेंगे उसे हम सहन करेंगे। प्रायश्चित्त विधिमें यदि उप-वास आदि देवेंगे तो उन्हें भी सहर्ष स्वीकृत करेंगे।' ....इतना कहते-कहते उनका गला रुँध गया और आँखोंसे अश्रु छलक पड़े। दस हजार जनता सुनकर आवाक् रह गई। सबने एक स्वरसे कहा कि 'यदि ये शुद्ध हैं और दस्साके वंशज नहीं हैं तो इन्हें जातिमें मिला लेना ही श्रेयस्कर है' यह फैसला अविलम्ब हो जाना चाहिये।

थोड़ी देरके बाद मुख्य-मुख्य पञ्चोंने एकान्तमें परामर्श किया। बहुतोंने विरोध और बहुतोंने अविरोध रूपमें अपने-अपने विचार व्यक्त किये। अन्तमें यह निर्णय हुआ कि इनकी शुद्धि कर लेना चाहिये। परन्तु शुद्धिके पहले अपराधका निर्णय हो जाना आवश्यक है। पश्चात् इन्हें शुद्ध कर लेना चाहिये। इनसे दस हजार

कुण्डलपुर क्षेत्रको और तीन पंगत प्रान्त भरके पञ्चोंको लेना चाहिये। यह निर्णयकर पञ्च लोगोंने आम जनताके समक्ष अपना मन्तव्य प्रकाशित कर दिया।

इस आज्ञाके सुनते ही रघुनाथदास नारायणदास मोदीने कहा—'हमें स्वीकार है, किन्तु हमारी यह नम्र प्रार्थना है कि हमें आज्ञा दी जावे कि हम निर्णय करनेके लिए पञ्चोंको कब एकत्रित करें। इतनेमें एक वृद्ध पञ्चने अन्य पञ्च महाशयोंसे कहा—'आपने जो निर्णय किया है वह ठीक है। परन्तु यह पञ्चायत गोलालारे पञ्चोंके समक्ष होना चाहिये, अन्यथा उनके दस हजार रुपये भी जावेंगे और जातिमें भी नहीं मिल सकेंगे। आपमें इतनी उदारता नहीं कि जिससे उनके बालबच्चोंके विवाह आदिकी सुविधा हो सके। आपलोगोंके हृदय अत्यन्त संकीर्ण हो चुके हैं। आपने जातिके लिये मोक्षमार्गका अवलम्बन कर रक्खा है। आप संवर जानते हैं, अतः आस्रवको रोक दिया है। जो हैं उनकी काल पाकर निर्जरा अवश्यंभावी है, अतः कुछ कालमें जातिका मोक्ष होना अनिवार्य है। विशेष कहनेसे आप लोग कुपित हो जावेंगे। बस, उन्हें आज्ञा दीजिये कि शुद्धिके लिये अपनी जातिके पञ्चोंको बुलावें। जो निर्णय पञ्च लोग देवेंगे, हमें अर्थात् परवार और गोलापूर्वोंको मान्य होगा। यह सुनकर रघुनाथदास नारायणदास मोदीको बहुत खेद हुआ, क्योंकि वह जिस कार्यके लिये आये थे वह नहीं हुआ।

मैं भी वहीं पर बैठा था। मैंने कहा—'उदास मत होओ, प्रयत्न करो, अवश्य ही सफल होगे।' पण्डित मूलचन्द्रजी बिलौआ, जो कि जातिके गोलालारे हैं, को भी हार्दिक वेदना हुई; क्योंकि उनकी भी यही इच्छा थी कि इतने बन्धुगण अकारण ही जातिसे च्युत क्यों रहें? मैंने उन सबको समझाया कि 'बुड्ढे पञ्चने जो कहा है वह बिलकुल ठीक कहा है। मान लो परवारों या गोलापूर्वोंने

तुम्हें शुद्ध कर भी लिया तो भी जातिके विना तुम्हारा निर्वाह न होगा। विवाह आदि तो तुम्हारी जातिवालोंके ही साथ हो सकेंगे, अतः तुम घर जाओ। आठ दिन बाद हम तुम्हारे ग्राम में आकर इस बातकी मीमांसा करेंगे। चिन्ता करनेकी बात नहीं। वीर प्रभुकी कृपासे सब अच्छा ही होगा।' पञ्चकल्याणक देखकर वे अपने घर चले गये और मैं श्रीमान् बाबा गोकुलचन्द्र-जी के साथ कुण्डलपुर चला गया।

श्रीमान् बाबा गोकुलचन्द्रजी

बाबा गोकुलचन्द्रजी एक अद्वितीय त्यागी थे। आप ही के उद्योगसे इन्दौरमें उदासीनाश्रमकी स्थापना हुई थी। जब आप इन्दौर गये और जनताके समक्ष त्यागियोंकी वर्तमान दशाका चित्र खींचा तब श्रीमान् सर सेठ हुकमचन्द्रजी साहब एकदम प्रभावित हो गये और आप तीनों भाइयोंने दस-दस हजार रुपये देकर तीस हजारकी रकमसे इन्दौरमें एक उदासीनाश्रम स्थापित कर दिया। परन्तु आपकी भावना यह थी कि श्रीकुण्डलपुर क्षेत्र पर श्रीमहावीर स्वामीके पादमूलमें आश्रमकी स्थापना होना चाहिये, अतः आप सिवनी, नागपुर, छिंदवाड़ा, जबलपुर, कटनी, दमोह आदि स्थानोंपर गये और अपना मन्तव्य प्रकट किया। जनता आपके मन्तव्यसे सहमत हुई और उसने बारह हजारकी आयसे कुण्डलपुरमें एक उदासीनाश्रमकी स्थापना कर दी।

आप बहुत ही असाधारण व्यक्ति थे। आपके एक सुपुत्र भी था जो कि आज प्रसिद्ध विद्वानोंकी गणनामें है। उसका नाम श्री पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री है। इनके द्वारा कटनी पाठशाला सानन्द चल रही है तथा खुरई गुरुकुल और वर्णीगुरुकुल जबल-पुरके ये अधिष्ठाता हैं।

इनके लिये श्रीसिंघई गिरधारीलालजी अपनी दुकानपर कुछ द्रव्य जमा कर गये हैं। उसीके व्याजसे ये अपना निर्वाह करते हैं। ये बहुत ही सन्तोषी और प्रतिभाशाली विद्वान् हैं। व्रती, दयालु और विवेकी भी हैं। यद्यपि सिं० कन्हैयालालजीका स्वर्गवास हो गया है फिर भी उनकी दुकानके मालिक चि० स० सिं० धन्यकुमार जयकुमार हैं। वे उन्हें अच्छी तरह मानते हैं और उनके पूर्वज पण्डितजीके विषयमें जो निर्णय कर गये थे, उसका पूर्णरूपसे पालन करते हैं। विद्वानोंका स्थितीकरण कैसा करना चाहिये, यह इनके परिवारसे सीखा जा सकता है। चि० धन्यकुमार विद्याका प्रेमी ही नहीं, विद्याका व्यसनी भी है। यह आनुषङ्गिक बात आगई।

मैंने कुण्डलपुरमें श्रीबाबा गोकुलचन्द्रजीसे प्रार्थना की कि 'महाराज! मुझे सप्तमी प्रतिमाका व्रत दीजिये। मैंने बहुत दिन से नियम कर लिया था कि मैं सप्तमी प्रतिमाका पालन करूँगा और यद्यपि अपने नियमके अनुसार दो वर्षसे उसका पालन भी कर रहा हूँ तो भी गुरुसाक्षीपूर्वक व्रत लेना उचित है। मैं जब बनारस था, उस समय भी यही विचार आया कि किसीकी साक्षी पूर्वक व्रत लेना अच्छा है, अतः मैंने श्री ब्र० शीतलप्रसादजी लखनऊको इस आशयका तार दिया कि आप शीघ्र आवें, मैं सप्तमी प्रतिमा आपकी साक्षीमें लेना चाहता हूँ। आप आगये और बोले—'देखो, हमारा तुम्हारा कई बातोंमें मतभेद है। यदि कभी विवाद हो गया तो अच्छा नहीं।' हम चुप रह गये। हमारा एक मित्र मोतीलाल ब्रह्मचारी था जो कुछ दिन बाद ईडरका भट्टारक हो गया था। उसने भी कहा—'ठीक है, तुम यहाँ पर यह प्रतिमा न लो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है।' हमने मित्रकी बात स्वीकार कर उनसे व्रत नहीं लिया। अब आप हमारे पूज्य हैं तथा आपमें मेरी भक्ति है, अतः व्रत दीजिये।' बाबाजीने कहा—'अच्छा

मैंने कुण्डलपुरमें श्री बाबा गोकुलचन्द्रजीसे प्रार्थना की कि
महाराज ! मुझे सप्तमी प्रतिमाका व्रत दीजिए।.......
आप हमारे पूज्य हैं तथा आपमें हमारी भक्ति है,
अतः व्रत दीजिए।'.......बाबाजीने विधिपूर्वक
मुझे सप्तमी प्रतिमाके व्रत दिये।

[पृ० २५२]

आज ही व्रत ले लो। प्रथम तो श्री वीरप्रभुकी पूजा करो। पश्चात् आओ, व्रत दिया जावेगा।'

मैंने आनन्दसे श्रीवीरप्रभुकी पूजा की। अनन्तर बाबाजीने विधिपूर्वक मुझे सप्तमी प्रतिमाके व्रत दिये। मैंने अखिल ब्रह्मचारियोंसे इच्छाकार किया और यह निवेदन किया कि 'मैं अल्प-शक्तिवाला क्षुद्र जीव हूँ। आप लोगोंके सहवासमें इस व्रतका अभ्यास करना चाहता हूँ। आशा है मेरी नम्र प्रार्थनापर आप लोगोंकी अनुकम्पा होगी। मैं यथाशक्ति आप लोगोंकी सेवा करनेमें सन्नद्ध रहूँगा।' सबने हर्ष प्रकट किया और उनके सम्पर्कमें आनन्दसे काल जाने लगा।

पञ्चोंका दरबार

एक दिन मैंने बाबा गोकुलचन्द्रजीसे कहा—'महाराज! बड़गाँवके आस-पास बहुतसे गोलालारोंके घर अपनी जातिसे बाह्य है। यदि आपका विहार उस क्षेत्रमें हो जाय तो उनका उद्धार सहज ही हो जाय। मैं आपकी सेवा करनेके लिये साथ चलूँगा।' बाबाजीने स्वीकार किया। हम लोग बांदकपुर स्टेशनसे रेलमें बैठकर सलेया आगये और वहाँसे ३ घण्टेमें बड़गाँव पहुँच गये। सागरसे पं० मूलचन्द्रजी, कटनीसे पं० बाबूलालजी, रीठीसे श्री सिं० लक्ष्मणदासजी तथा रैपुरासे लश्करिया आदि बहुतसे सज्जन गण भी आ पहुँचे। सिंघई प्यारेलाल कुन्दीलालजी वहाँ पर थे ही। रघुनाथ नारायणदास मोदीसे हम लोगोंने कहा कि 'सायंकाल पञ्चायत बुलानेका अयोजन करो।' उन्होंने वैसा ही किया। हम लोगोंने बाबाजीकी छत्रछायामें सामायिक की। रात्रिके ८ बजे सब महाशय एकत्र हो गये। मैंने कहा—'इस

ग्राममें जो सबसे वृद्ध हो उसे भी बुलाओ।' रघुनाथ मोदी स्वयं गये और एक लोधीको जिसकी अवस्था ८० वर्षके लगभग होगी, साथ ले आये। ग्रामके और लोग भी पञ्चायत देखनेके लिये आये। श्री बाबा गोकुलचन्द्रजी सर्वसम्मतिसे सभापति चुने गये। यहाँ सभापतिसे तात्पर्य सरपञ्चका है। मैंने ग्रामके पञ्च सरदारोंसे नम्र शब्दोंमें निवेदन किया कि— यह दुःखमय संसार है। इसमे जीव नाना दु:खोंके पात्र होते हुए चतुर्गतिमे भ्रमण करते-करते बड़े पुण्यसे मनुष्य जन्म पाते हैं। मनुष्यमे उत्पन्न होकर भी जैनकुलमे जन्म पाना चतुष्पथके रत्नकी तरह परम दुर्लभ है। आज रघुनाथ मोदी आपके जैनकुलमें जन्म लेकर भी ५० वर्षसे जातिबाह्य हैं और जातिबाह्य होनेके कारण सब धर्मकार्योंसे वञ्चित रहते हैं, अतः इन सबका उद्धार कर आप लोग यशोभागी हूजिये। मेरे कहनेका यह तात्पर्य नहीं कि इन्हें निर्णयके बिना ही जातिमें मिला लिया जावे। किन्तु निर्णयकी कसौटीमें यदि वे उत्तीर्ण हो जावें तो मिलानेमें क्या क्षति है....?' इतना कहकर मैं चुप हो गया। अनन्तर श्रीमान् प्यारेलालजी सिंघई, जो इस प्रान्तके मुख्य पञ्च थे और पञ्च ही नहीं, सम्पन्न तथा बहुकुटुम्बी थे, बोले—'आप लोग हमको भ्रष्ट करनेके लिये आये हैं। जिन कुटुम्बोंको आप मिलाना चाहते हैं उनकी जातिका पता नहीं। इन लोगोंने जो गोलालारोंके गोत्रोंके नाम बताकर अपनेको गोलालारे वंशका सिद्ध किया है वह सब कल्पित चरित्र है। आप लोग त्यागी हैं। कुछ लौकिक मर्यादा तो जानते नहीं। केवल शास्त्रको पढ़कर परोपकारकी कथा जानते हैं। यदि लौकिक बातोंका परिचय आप लोगोंको होता तो हमें भ्रष्ट करनेकी चेष्टा न करते। तथा आपने जो कहा कि कसौटीकी कसमें यदि उत्तीर्ण हो जावें तो इनको शुद्धि कर लो, ठीक कहा। परन्तु यह तो जानते हैं कि कसौटी पर सोना कसा जाता है, पीतल नहीं कसा जाता। इसप्रकार यदि वे गोलालारे होते

तो शुद्ध किये जाते। इनके कल्पित चरित्रसे हम लोग इन्हें शुद्ध करनेकी चेष्टामें कदापि शामिल नहीं हो सकते।'

इसके अनन्तर सब पञ्चोंमें कानाफूँसी होने लगी तथा कई पञ्च उठने लगे। मैंने कहा—'महानुभावो! ऐसी उतावली करना उत्तम नहीं, निर्णय कीजिये। यदि ये गोलालारे न निकलें तो इनकी शुद्धि तो दूर रही, अदालतमें नालिश कीजिये। इन्होंने हम लोगोंको धोखा दिया है।' इसके अनन्तर बाकलवाले तथा रीठीवाले सिंघई बोले—'ठीक है, मैं तो यह जानता हूँ कि जब ये हमारे यहाँ जाते हैं तब जैनमन्दिरके दर्शन करते हैं और निरन्तर हमसे यही कहते हैं कि हमारे पूर्वजोंने ऐसा कौनसा गुरुतर अपराध किया कि जिससे हम सैकड़ों नर-नारी धर्मसे वञ्चित रहते हैं। बाकलवालोंने भी इसीका समर्थन किया तथा रैपुरावाले लश्करिया भी इसी पक्षमें रहे। इसके बाद मैंने उस ८० वर्षके वृद्धसे कहा कि बाबा आपकी आयु तो ८० वर्षकी है और यह घटना पचास वर्षकी ही है, अतः आपको तो सब कुछ पता होगा। कृपाकर कहिये कि क्या बात है?

वृद्ध बोला—'मैं कहता हूँ, परन्तु आप लोग परस्परके वैमनस्यमें उस तत्त्वका अनादर न कर देना। पंच वही है जो सत्य न्याय करे। पक्षपातसे ग्रसित है उससे यथार्थ निर्णय नहीं होता तथा पंच वही है जो स्वयं निर्दोष हो, अन्यथा वह दोषको छिपानेकी चेष्टा करेगा। साथ ही रिश्वत न लेता हो और हृदयका विशाल हो। जो स्वयं ही इन दोषोंसे लिप्त होगा वह अन्यको शुद्ध करनेमें समर्थ न होगा। अस्तु, आप लोगोंकी जो इच्छा हो—जैसा आपके मस्तिष्कमें आवे वैसी पञ्चायत करना। मैं तो जो जानता हूँ वह आपके समक्ष निवेदन करता हूँ।

पचास वर्ष पहलेकी बात है। रघुनाथ मोदीके पिताने एक बार जाति भोज्य किया था। उसमें कई ग्रामके लोग एकत्र हुए थे।

पंगतके बाद इनके पिताने पञ्च लोगोंसे यह भावना प्रकट की कि यहाँ यदि मन्दिर बन जावे तो अच्छा हो। सबने स्वीकार किया। दवात कलम कागज मँगाया गया। चन्दा लिखना प्रारम्भ हुआ। सबसे अच्छी रकम रघुनाथ मोदीके पिताने लिखायी। एक ग्रामीण मनुष्यने चन्दा नहीं लिखाया। उसपर इनके पिता बोले—'खानेको तो शूर हैं पर चन्दा देनेमें आनाकानी।' इस पर पञ्च लोग कुपित होकर उठने लगे। जैसे-तैसे अन्तमें यह पञ्चायत हुई कि चूँकि रघुनाथके पिताने एक गरीबकी तौहीनी की, अतः दो सौ रुपया मन्दिरको और एक पक्का भोजन पञ्चोंको देवें, नहीं तो जातिमें इन्हें न बुलाया जावे। बहुत कहाँ तक कहें ? यह अपनी अकड़में आ गये और न दण्ड दिया न पंगत ही। यह विचार करते रहे कि हम धनाढ्य हैं, हमारा कोई क्या कर सकता है ? अन्तमें फल यह हुआ कि चार वर्ष बीत गये, उन्हें कोई भी बिरादरी नहीं बुलाता था और न कोई उनके यहाँ आता था। जब लड़के लड़की शादीके योग्य हुए तब चिन्तामें पड़ गये। जिससे कहें वही उत्तर देवे कि जब पहिले अपने प्रान्तके साथ व्यवहार हो जावे तभी हम आपके साथ विवाह सम्बन्ध कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। वह यहाँसे चलकर पनागर, जो कि जबलपुरके पास है, पहुँचे। वहाँ पर प्रतिष्ठा थी। वहाँ भी इन्होंने पञ्चोंसे कहा। उन्होंने यही कहा कि 'चूँकि तुमने पञ्चोंकी तौहीनी की है, अतः यह पचायत आज्ञा देती है कि २००) के स्थानमें ५००) दण्ड और १ पगतके स्थानमें २ पंगत पक्की हों....यही तुम्हारा दण्ड है।' इन्होंने स्वीकार किया कि हम जाकर शीघ्र ही पंचोंकी आज्ञाके अनुकूल दण्ड देकर जातिमें मिल जावेंगे। वहाँ तो कह आये पर आकर धनके नशामें मस्त हो गये और पंगत तथा दण्ड कुछ भी नहीं दिया। अब यह चिन्ता हुई कि लड़के लड़कियोंका विवाह किस प्रकार किया

जावे ? तब यह उपाय किया कि जो गरीब जैनी थे उन्हें पूँजी देकर अपने अनुकूल बना लिया और उनके साथ विवाह कर चिन्तासे मुक्त हो गये। मन्दिर जानेका कोई प्रतिबन्ध था नहीं, इससे इन्होंने उस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। इस तरह यह अपनी संख्या घटाते गये जो कि आज ५० घरके ही अन्दाज रहे होंगे। यह तो इनके पिताकी बात रही, पर इनमें जो रघुनाथदास नारायणदास मोदी हैं वह भद्र प्रकृति है। इसको यह भावना हुई कि मैं तो अपराधी हूँ नहीं, अतः जातिबाह्य रहकर धर्म-कार्योंसे वञ्चित रहना अच्छा नहीं। इसीलिए यह कई ग्रामका जमींदार होकर भी दौड़-धूप द्वारा जातिमें मिलनेकी चेष्टा कर रहा है। यह भी इसका भाव है कि मैं एक मन्दिर बनवाकर पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराऊँ तथा ऐसा शुभ अवसर मुझे कब प्राप्त हो कि मेरे घरपर विरादरीके मनुष्योंका भोजन हो और पात्रादिकोंको आहारदान देकर निज जीवन सफल करूँ...। यह इनकी कथा है। आशा है आप पञ्च लोग इसका गम्भीर दृष्टिसे न्याय करेंगे। श्री सिं० प्यारेलालजीने जो कहा है वह ठीक नहीं है, क्योंकि उनकी आयु ४० वर्षकी ही है और मैं जो कह रहा हूँ उसे ५० वर्ष हो गये। मुझे रघुनाथसे कुछ द्रव्य तो लेना नहीं और न मुझे इनके यहाँ भोजन करना है, अतः मिथ्या भाषण कर पातकी नहीं बनना चाहता।'

सबके लिये वृद्ध बाबाकी कथामें सत्यताका परिचय हुआ। परन्तु प्यारेलाल सिंघई टससे मस नहीं हुए। अन्तमें पञ्च लोग उठने लगे, तो मैंने कहा कि यह ठीक नहीं, कुछ निर्णय किये बिना उठ जाना न्यायके विरुद्ध है।

वहाँपर एक गोलालारे बैठे थे। उन्होंने कहा कि 'मैं जल विहार करता हूँ, उसमें प्रान्त भरके सब गोलालारे बुलाये जावें तथा परवार और गोलापूर्व भी बुलाये जावें। चिट्ठीमें यह भी

लिखाया जावे कि इस उत्सवमें रघुनाथ मोदीको शुद्ध करनेका विचार होगा, अतः सब भाइयोंको अवश्य आना चाहिए और इनके विषयमें जिसे जो भी ज्ञात हो वह सामग्री साथ लाना चाहिये।' यह बात सबको पसन्द आई। परन्तु जिसके यहाँ जल-विहार होना था वह बहुत गरीब था। उसने केवल दयाके वेगमें जलयात्रा स्वीकार कर ली थी, अतः मैंने रघुनाथ मोदीसे कहा कि 'आप इसे तीन सौ रुपया दे देवें।' उन्होंने ननु नच किये बिना तीन सौ रुपये दे दिये। इसके बाद मैंने कहा कि 'तुम भी दो पंगतोंका कच्चा सामान तैयार रखना। सम्भव है तुम्हारी कामना सफल हो जाय।' यह कहकर हम लोग कटनी चले गये।

कटनी में पण्डित बाबूलालजी प्रयत्नशील व्यक्ति थे। उनके साथ परस्पर विचार किया कि चाहे कुछ भी हो, परन्तु इन लोगोंको जातिमें मिला लेनेका पूर्ण प्रयत्न करना है। यदि ये लोग कुछ दिन और न मिलाये गये तो जातिच्युत हो जावेंगे।

विचार तो किया पर जब कुछ उपाय न सूझा तो अन्तमें यह निर्णय किया कि इनकी जातिका पटिया—गोत्रकी परम्परा जानने वाला बुलाया जावे। बरुआसागरके पास मड़िया गाँव है। वहाँसे पटिया बुलाया गया और उससे इनकी वंशावली पूछी गई। उसने कण्ठस्थकी तरह इनकी वंशावली बता दी। एक आदि गोत्रका अन्तर पड़ा वह सुधार दिया गया।

चार दिन बाद चिट्ठी आ गई कि अमुक दिन बड़गाँवमें जल-विहार है। दो पंगतें होंगीं। आप लोग गोट सहित पधारें। इसमें रघुनाथ मोदीकी पञ्चायत भी होगी। हमने सागरसे प्यारेलाल मलैया, प० मुन्नालालजी तथा पं० मूलचन्द्रजी सुपरिण्टेण्डेण्टको भी बुला लिया। कटनीसे पण्डित बाबूलालजी, श्री खुशालचन्द्र जी गोलालारे, श्रीमान् बाबा गोकुलचन्द्रजी, श्री अमरचन्द तथा अन्य त्यागीगण, रीठीसे लक्ष्मण सिंघई और बाकलके कई भाई

इस प्रकार हम लोग बड़गाँव पहुँच गये। खेदके साथ लिखना पड़ता है कि हमें जो चिट्ठी दी गई थी वह एक दिन विलम्बसे दी गई थी, अतः हम दूसरे दिन तब पहुँच सके जब कि जल-विहार समाप्त हो चुका था, विमान मण्डपमें जा रहा था और वहाँ पहुँचनेके बाद ही लोग अपने-अपने घर जानेके उद्यममें लग जाते। केवल मण्डप और जिनेन्द्रदेव ही वहाँ रह जाते।

उस समय मेरे मनमें एक अनोखी सूझ उठी। मैंने गानेवाले से कहा कि 'तू पेट के दर्दका बहाना कर डेरा पर चला जा। तेरा जो ठहरा होगा वह मैं दूँगा।' वह चला गया, अतः विमान पन्द्रह मिनटमें ही मण्डपमें पहुँच गया। मैंने झट शास्त्रप्रवचनका प्रबन्ध कर पं० मूलचन्द्रजीको बैठा दिया और धीरेसे कह दिया कि आध घण्टामें ही पूर्ण कर देना तथा रघुनाथ मोदीसे कहा कि यदि आप जातिमें मिलना चाहते हैं तो कुटुम्ब सहित मण्डप के सामने खड़े हो जाओ और आप तथा नारायण दोनों ही पंचोंके समक्ष हाथ जोड़कर कहो कि या तो हमें जातिमें मिलाओ या एक दम पृथक् कर जाओ। हम बहुत दुखी हैं। हमारी व्यथा पर आप एक रात्रिका समय देनेका कष्ट करें। रघुनाथ मोदीने हमारी बात स्वीकार कर ली और शास्त्र प्रवचनके बाद जब पञ्च लोग जानेको प्रस्तुत हुए तब रघुनाथ मोदीने बड़ी विनयके साथ प्रार्थना की, जिससे सब लोग रुक गये और सबने यह प्रतिज्ञा की कि रघुनाथ मोदीका निर्णय करके ही आज मण्डप त्यागेंगे।

पञ्चायत प्रारम्भ हो गई। ग्रामके अन्य बिरादरीके लोग भी बुलाये गये। प्रथम ही श्रीमूलचन्द्रजी बिलौआने प्रस्ताव किया कि 'आज जीवनमरणका प्रश्न है, अतः सब भाइयोंको परस्परका वैमनस्य भूल जाना चाहिए। अपराध सबसे होता है। उसकी क्षमा ही करना पड़ती है। अपराधियोंकी कोई पृथक् नगरी नहीं। वैसे तो संसार ही अपराधियोंका घर है। अपराधसे जो शून्य हो

जाता है वह यहाँ रहता ही नहीं, मुक्ति नगरीको चला जाता है।' इसके अनन्तर श्रीमान् मलैयाजी बोले कि 'बात तो ठीक है, परन्तु निर्णय छानबीन कर ही होना चाहिए। अतः मेरी नम्र प्रार्थना है कि जो महाशय इस विषयको जानते हों वे शुद्ध हृदयसे इस विषयको स्पष्ट करें।' इसके बाद प्यारेलाल सिंघई बोले कि 'बहुत ठीक है, परन्तु जिनका पचास वर्षसे गोलालारोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं उनके विषयमें पंचायत करना कहाँतक संगत है? सो आप ही जानें।' इनके भतीजे भी इन्हींके पक्षमें बोले। मैंने कहा—'आपका कहना न्यायसङ्गत है, किन्तु कोई मनुष्य अस्सी वर्षका इस विषयको जानता हो और निष्पक्ष भावसे कहता हो तो निर्णय होनेमें क्या आपत्ति है?' श्री सिंघईजी बोले—'वह अस्सी वर्षका वृद्ध गोलालारे जातिका होना चाहिए।' यह सुनकर उपस्थित महानुभावोंमें बहुत क्षोभ हुआ। सब महाशय एक स्वरसे बोल उठे—'सिंघईजीका बोलना अन्याय-पूर्ण है। कोई जातिका हो, इस विषयमें जो निष्पक्ष भावसे कहेगा वह हम लोगोंको मान्य होगा। हम न्याय करनेके लिए आये हैं। आज न्याय करके ही आसन छोड़ेंगे।' इतनेमें वह वृद्ध, जो कि पहली पंचायतमें आया था, बोलनेको उद्यमी हुआ। वह बोला—'पञ्च लोगो! मैंने पहली ही सभामें कह दिया था कि रघुनाथ मोदीके पूर्वजोंने हठ की और पञ्चोंके फैसलेको नहीं माना। उसीके फलस्वरूप आज उसकी सन्तानकी यह दुर्दशा हो रही है। यह सन्तान निर्दोष है तथा इसके पूर्वज भी निर्दोष थे। यदि आप लोग इन्हें न मिलावेंगे तो ये केवल जातिसे ही च्युत न होंगे, वरन धर्म भी परिवर्तन कर लेंगे। संसार अपार है। इसमें नाना प्रकृतिके मनुष्य रहते हैं। बिना संघटनके संसारमें किसी भी व्यक्तिका निर्वाह नहीं होता, अतः इन्हें आप लोग अपनावें। जब कि पंचोंने इनकी पंगत लेना स्वीकार की थी तब यह बिनैका नहीं

यह तो अपने आप सिद्ध हो जाता है। बस, अधिक बोलना अच्छा नहीं समझता।'

पञ्चोंने वृद्ध बाबाकी कथाका विश्वास किया। केवल प्यारेलाल सिंघईको वृद्धका कहना रुचिकर नहीं हुआ, उठकर घर चले गये। मैंने बहुत रोका, पर एक न सुनी। मनमें खुशी हुई कि अच्छा हुआ विघ्न तो टला। परन्तु फिर विचार आया कि रघुनाथ मोदीका निर्वाह तो इन्हींमें होगा, अन्य लोगोंके मिला लेनेसे क्या होता है? पर किया क्या जावे?....इसी विचारमें कुछ निद्रा आ गई। इतनेमें ही एक महाशय बोले—'क्या यह समय सोनेका है?' निद्रा भंग हो गई। पञ्च लोग परस्पर विचारमें निमग्न थे ही। अन्तमें यह तय किया कि रघुनाथ मोदीको मिला लिया जावे। इसीके बीच पं० बाबूलालजी कटनी बोल उठे कि 'पहले पटिया बुलाया जाय और उसके द्वारा इनके गोत्रोंकी परीक्षा की जावे। यदि गोत्र ठीक निकलें तो मिलानेमें कौन-सी आपत्ति है?'

इनकी बात सकल पञ्चोंने स्वीकृत की। एक महाशय बोले कि 'सिंघई प्यारेलालको बुलाया जावे।' मैं बड़ा चिन्तित हुआ कि हे भगवन्! क्या होने वाला है? अन्तमें जो व्यक्ति बुलानेके लिए भेजा गया, मेरे साथ उसका परिचय था। मैं पेशाबके बहाने बाहर गया और उससे कह आया कि 'तू सिंघईके घर न जाना बीचसे ही लौट आना और पञ्चोंको यह उत्तर देना कि सिंघई प्यारेलालजीने कहा है कि हम ऐसे अन्याय करने वाले पञ्चोंमें नहीं आना चाहते।' इतना कहकर वह तो सिंघईजीके घरकी ओर गया और मैं पञ्च लोगोंमें शामिल हो गया।

इतनेमें श्री प्यारेलालजी मलैया बोले कि—'महानुभाव! आज हमारी जातिकी संख्या चौदह लाख मात्र रह गई। यदि इसी तरहकी पद्धति आप लोगोंकी रही तो क्या होगा? सो कुछ

समझमें नहीं आता, अतः इसमें बिलम्ब करनेकी कोई बात नहीं। रघुनाथ मोदीको जातिमें मिलाया जावे और दण्डके एवजमें इनसे २ पगतें ली जावें तथा जातिके बालकोंके पढ़नेके लिये एक विद्यालय स्थापित कराया जावे।' इस पर बहुतसे महानुभावोंने सम्मति दी और पं० मूलचन्द्रजीको भी अत्यन्त हर्ष हुआ। वह बोले—'केवल विद्यालयसे कुछ न होगा, साथमें एक छात्रावास भी होना आवश्यक है। यह प्रान्त विद्यासे पिछड़ा है। यद्यपि कटनीमें विद्यालय है। फिर भी जो अत्यन्त गरीब हैं उनका बाहर जाना अतिकठिन है। उनके माँ बाप उन्हें कटनी तक भेजनेमें भी असमर्थ हैं।'

मूलचन्द्रजीकी बात सबने स्वीकार की। अनन्तर रघुनाथ मोदीसे पूछा गया कि क्या आपको स्वीकार है? उन्होंने कहा—'मैं स्वीकार आदि बात तो नहीं जानता, दस हजार रुपया दे सकता हूँ। उनसे चाहे आप विद्यालय बनवावें, चाहे छात्रावास बनवावें।

सब लोग यह बात कर ही रहे थे कि इतनेमें जो आदमी प्यारेलाल सिंघईको बुलानेके लिये गया था वह आकर पञ्च लोगोंसे कहने लगा कि प्यारेलाल सिंघईने कहा है—'हम ऐसी अन्यायकी पंचायतमें शामिल नहीं होना चाहते।'...यह सुनकर पंच लोगोंकी तेवरी बदल गई और सब एक मुखसे कहने लगे कि 'प्यारेलालके साथ व्यवहार करना उचित नहीं।' मैंने कहा—'आवेगमें आकर उसने कह दिया होगा, माफ किया जावे। अथवा एक बार फिरसे बुलाया जावे। यदि इस बार न आवे तो जो आपको उचित मालूम हो, करना।'

फिर आदमी भेजा गया। मैंने बाहर जाकर उससे कह दिया कि जाकर सिंघईजीसे बोलो—'यदि पंचोंमें शामिल न होओगे तो जातिच्युत कर दिये जाओगे। वह आदमी प्यारेलालजीके घर गया और जगाकर उनसे बोला कि पञ्च लोग आपसे सख्त

नाराज हैं, आपको बुलाया, आप नहीं पहुँचे, इसकी कोई बात नहीं। परन्तु यह कहना कि अन्यायकी पञ्चायत है, क्या तुम्हें उचित था? प्यारेलाल शपथ खाने लगे कि मेरे घर तो कोई आया ही नहीं। यह बात किसने पैदा की? अस्तु, जो हुआ सो ठीक है, शीघ्र चलो। इसके बाद प्यारेलालजी वहाँ पहुँच गये, पञ्चोंने खूब डाटा। वह कुछ कहनेको हुए कि इतनेमें वह आदमी, जो कि बुलानेके लिये गया था, बोल उठा—'अच्छा आपने नहीं कहा था कि हम पञ्चायतमें नहीं जाते। वहाँ गुटबन्दी करके अन्यायपूर्ण पञ्चायत कर रहे हैं?' प्यारेलालजीको बहुत ही शर्मिन्दा होना पड़ा। पञ्चोंने कहा—'रघुनाथ मोदीके विषयमें आपकी क्या सम्मति है?' उन्होंने कहा—'पञ्च लोग जो फैसला देवेंगे वह हमें शिरसा मान्य है। यदि पञ्च महाशय उनके यहाँ कल ही भोजन करनेके लिये प्रस्तुत हों तो मैं भी आप लोगोंमें सम्मिलित रहूँगा, परन्तु अब महीनों टालना उचित नहीं।'

हम मनमें बहुत हर्षित हुए। अब पञ्चोंने मिलकर यह फैसला कर दिया कि 'दो सौ पचास परवार सभाको, दो सौ पचास गोलापूर्व सभाको, दो सौ पचास गोलालारे सभाको, दो सौ पचास नैनागिर क्षेत्रको, दस हजार विद्यालयको तथा दो पंगत यदि रघुनाथ मोदी सहर्ष स्वीकार करें तो कल ही पंगत लेकर जातिमें मिला लिया जावे और दण्डका रुपया नक़द लिया जावे एवं प्रातःकाल ही पगत हो जावे, फिर कभी पञ्च जुड़नेकी आवश्यकता नहीं।'

इस फैसलेको सुनकर रघुनाथ मोदी और उनके भाई नारायणदासजी मोदी पुलकितवदन हो गये। उन्होंने उसी समय ग्यारह हजार लाकर पञ्चोंके समक्ष रख दिये। पञ्चोंने मिलकर रघुनाथ मोदीको मय कुटुम्बके गले लगाया और आज्ञा दी कि प्रातःकाल ही सहभोज हो। इस पञ्चायतमें प्रातःकाल हो गया। पञ्चा-

यतसे उठकर हम, बाबा गोकुचन्द्रजी तथा अन्य त्यागीवर्ग सामायिक करनेके लिये चले गये और अन्य पञ्च लोग शौचादि क्रियाके लिये बाहर गये।

दो घण्टाके बाद मन्दिरमें श्रीमान् बाबाजीका प्रभावशाली प्रवचन हुआ। अनन्तर सब लोग अपने-अपने स्थानों पर चले गये। जहाँ हम ठहरे थे वहीं पर रघुनाथकी बहिनने भोजन बनाया। दस बजेके बाद भोजन हो गया। पंगतका बुलौआ हुआ। पञ्च लोग आ गये। सानन्द पक्का भोजन परोसा गया, पर भोजन करनेमें एक दूसरेका मुख ताकने लगे। यह देख बाबाजीने कहा कि 'मुख ताकनेकी क्या बात है? पहले तो हम लोग उनकी बहिन, स्त्री आदिके द्वारा बनाया भोजन करके यहाँ आये हैं। इस बातको पं० मुन्नालालजी अच्छी तरह जानते हैं।' पं० मुन्नालालजीने भी कहा कि 'मैं भी उस भोजनमें शामिल था, अतः आप निःसंकोच भोजन कीजिये।' सब लोग फिर भी हिचकिचाते रहे। इतनेमें श्रीयुत मलैया प्यारेलालजी सागरने ग्रास उठाया और जिनेन्द्रदेवकी जय कहते हुए भोजन शुरू कर दिया! फिर क्या था आनन्दसे सब भोजन करने लगे। बीचमें रघुनाथदासको भी शामिल कर लिया। दूसरे दिन दाल, भात, कढ़ी और साग पूड़ीका भोजन हुआ। इस तरह पञ्च लोगोंने ५० वर्षसे च्युत एक कुटुम्बका उद्धार कर दिया। एकका ही नहीं, उनके आश्रित अनेक कुटुम्बोंका उद्धार हो गया।

यह सब काण्ड समाप्त होनेके बाद मैं श्रीयुत बाबाजीके साथ कुण्डलपुर चला गया। बाबाजीकी मेरे ऊपर निरन्तर अनुकम्पा रहती थी। उनका आदेश था कि—जैनधर्म आत्माका कल्याण करनेमें एक ही है, अतः जहाँ तक तुमसे बन सके, निष्कपट भावसे इसका पालन करना और यथाशक्ति इसका प्रचार करना। हमारी अवस्था तो वृद्ध हो गई। हमारे बाद यह आश्रम चलना कठिन है, क्योंकि इसमें

जितने त्यागी हैं उनमें संचालनकी शक्ति नहीं। तुम इस योग्य कुछ हो, परन्तु तुम इतने स्थिर नहीं कि एक स्थानपर रह सको। कहीं रहो, परन्तु आत्मकल्याणसे वञ्चित न रहना। तुम्हारे साथ जो बाबा भागीरथजी है वह एक रत्न हैं। निरपेक्ष, निर्लोभ व सत्यवक्ता है। उनका साथ न छोड़ना तथा जिस चिरोंजाबाईने तुम्हे पुत्रवत् पाला है उसकी अन्त समय तक सेवा करना। कृतज्ञता ही मनुष्यता की जननी है। हम यही आशीर्वाद देते है कि तुम सुमार्गके भागी होओ। कल्याणका मूल कारण निरीहवृत्ति है। 'निवृत्तिरूपं यतस्तत्त्वम्।' विशेष क्या कहे? जहाँ इच्छा हो, जाओ।' मैं प्रणामकर सागर चला गया और आनन्दसे जीवन बिताने लगा।

धर्मका ठेकेदार कोई नहीं

बरुआसागरसे तार आया कि आप बाईजीको लेकर शीघ्र ही आवें। यहाँ सर्राफ मूलचन्द्रजीके पुत्ररत्न हुआ है। तार ही नहीं, लेनेके लिये एक मुनीम भी आ पहुँचा। हम और बाईजी मुनीमके साथ बरुआसागर पहुँच गये।

मूलचन्द्रजी सर्राफके कोई उत्तराधिकारी नहीं था, अतः सदा चिन्तित रहते थे, पर अब साठ वर्षकी अवस्थामें पुत्ररत्नके उत्पन्न होनेसे उनकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा।

बाईजीने कहा—'भैया! कुछ दान करो। उसी समय पचास मन गेहूँ गरीबोंको बाँट दिया गया तथा मन्दिरमें श्रीजीका विधान कराया। ग्यारह दिनके बाद नामसंस्कार किया गया। पूजन विधान सम्पन्न हो जानेके बाद सौ नाम कागजके टुकड़ोंमें लिखकर एक थालीमें रख दिये। अनन्तर पाँच वर्षकी एक कन्यासे कहा कि इनमेंसे एक कागजकी पुड़िया निकालो। वह

निकाले और उसीमें डाल देवे। चतुर्थ बार उससे कहा कि पुड़िया थालीके बाहर डाल दो। उसने एक पुड़िया बाहर डाल दी। जब उसे खोला तो उसमें श्रेयान्सकुमार नाम निकला। अब क्या था? सब लोग कहने लगे कि 'देखो, वर्णीजीको पहलेसे ही ज्ञान था, अन्यथा आपने नौ मास पहले जो कहा था कि सर्राफ मूलचन्द्रजीके बालक होगा और उसका नाम श्रेयान्सकुमार होगा ...सच कैसे निकलता? इत्यादि शब्दों द्वारा बहुत प्रशंसा करने लगे। पर मैंने कहा—'भाई लोगो! मैं तो कुछ नहीं जानता था। यह तो घुणाक्षरन्यायसे सत्य निकल आया। आप लोगोंकी जो इच्छा हो, सो कहें?'

यहाँ एक बात विलक्षण हुई जो इस प्रकार है—हम लोग स्टेशन पर मूलचन्द्रजीके मकानमें रहते थे। पासमें कहार लोगों का मोहल्ला था। एक दिन रात्रिको ओलोंकी वर्षा हुई। इतनी विकट कि मकानोंके खप्पर फूट गये। हम लोग रजाई आदिको ओढ़कर किसी तरह ओलोंके कष्टसे बचे। पड़ोसमें जो कहार थे वे सब राम राम कहकर अपनी प्रार्थना कर रहे थे। वे कह रहे थे कि—हे भगवन्! इस कष्टसे रक्षा कीजिये। आपत्ति-काल में आपके सिवाय ऐसी कोई शक्ति नहीं जो हमें कष्टसे बचा सके। उनमें एक नव दस वर्षकी लड़की भी थी। वह अपने माता पितासे कहती है कि 'तुम लोग व्यर्थ ही राम राम रट रहे हो। यदि कोई राम होता तो इस आपत्ति-कालमें हमारी रक्षा न करता। हमने उनका कौन-सा अपराध किया है जो इतनी निर्दयतासे ओले बरसा रहे हैं। निर्दयताका भी कुछ ठिकाना है? देखो, हमारे घरके खपरा चूर-चूर हो गये हैं, शिर पर खटाखट ओलों-की वर्षा पड़ रही है, वस्त्र तक हमारे घरमें पर्याप्त नहीं। कहाँ तक कहा जावे? न माँ के पास दो धोतियाँ हैं और न पिताजी के पास। आप लोग एक ही धोतीसे अपना निर्वाह करते

हैं। जब दिन भर मेहनत करते हैं तब कहीं जाकर शामको अन्न मिलता है। वह भी पेट भर नहीं मिलता। पिताजी! आपने राम राम जपते अपना जन्म तो बिता दिया पर रामने एक भी दिन संकटमें सहायता न दी। यदि कोई राम होते तो क्या सहायता न करते। बगलमें देखो सर्राफजीका मकान है, उनके हजारों मन गल्ला है, अनेक प्रकारके वस्त्रादि हैं, नाना प्रकारके भूषण हैं, दूध आदिकी कमी नहीं है, पास ही में उनका बाग है, जिसमें आम, अमरूद, केला आदिके पुष्कल वृक्ष हैं, जिनसे उन्हें ऋतु ऋतुके फल मिलते रहते हैं, चार मास तक ईखका रस मिलता है, जिससे खीर आदिकी सुलभता रहती है। यहाँ तो हमारे घरमें अन्नका दाना भी नहीं। दूधकी बात छोड़ो, छाँछ भी माँगेसे नहीं मिलती। यदि मिले भी तो लोग उसके एवजमें घास मांग लेते है। इस विपत्तिमय जीवनकी कहानी कहाँ तक कहूँ? अतः पिताजी! न कोई राम है और न रहीम है। यदि कोई राम-रहीम होता तो उसके दया होती और वह ऐसे अवसरमें हमारा रक्षा करता। यह कहाँका न्याय है कि पड़ोस-वालेको लाखोंकी सम्पत्ति और हम लोगोंको उदर भर भोजनके भी लाले। यद्यपि मैं बालिका हूँ। पढ़ी लिखी नहीं कि किसी आधा-रसे बात कर सकूँ। परन्तु आपकी इस विपत्तिसे इतना अवश्य जानती हूँ कि जो नीम बोवेगा उसके नीमका ही पेड़ होगा और जब वह फलेगा तब उसमें निबोरी ही होगी। जो आमका बीज बोवेगा उसके आम ही का फल लगेगा। जैसा बीज पृथ्वी मातामें डाला जावेगा वैसा ही माता फल देवेगी। पिताजी! आपने जन्मान्तरमें कोई अच्छा कार्य नहीं किया, जिससे कि तुम्हें सुखकी सामग्री मिलती और न मेरी माताने कोई सुकृत किया, अन्यथा ऐसे दरिद्रके घर इनका विवाह नहीं होता। यह देखनेमें सुन्दर हैं, इसलिये कमसे कम अच्छे घरानेकी बहू बेटियाँ इन्हें घृणाकी

दृष्टिसे नहीं देखतीं....यह इनके कुछ सुकृतका ही फल है। मैं भी अभागिनी हूँ, जिससे कि आपके यहाँ जन्मी। न तो मुझे पेट भर दाना मिलता है और न तन ढकनेको वस्त्र ही। जब मैं माँ के साथ अच्छे घरोंमें जाती हूँ तब लोग दयाकर रोटीका टुकड़ा दे देते हैं। बहुत दया हुई तो एक आधा फटा-पुराना बेकाम वस्त्र दे देते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकला कि तुमने उस जन्ममें बहुत पाप किये, अतः अब ओलोंकी वर्षासे मत डरो और न राम-राम चिल्लाओ। राम हो या न हो, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। परन्तु हमारी रक्षा हमारे भाग्यके ही द्वारा होगी। न कोई रक्षक है और न कोई भक्षक है। इस समय मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ। वह यह कि—यदि तुम इन सब आपत्तियोंसे बचना चाहते हो तो एक काम करो। देखो, तुम प्रति दिन सैकड़ों मछलियोंको मारकर अपनी आजीविका करते हो। जैसी हमारी जान है वैसी ही अन्यकी भी है। यदि तुम्हें कोई सुई चुभा देता है तो कितना दुःख होता है। जब तुम मछलीकी जान लेते हो तब उसे जो दुःख होता है उसे वही जानती होगी। मछली ही नहीं जो भी जीव आपको मिलता है उसे आप निःशङ्क मार डालते हैं। अभी परसोंकी ही बात है, आपने एक सर्पको लाठीसे मार डाला। पड़ोसमें बाईजीने बहुत मना किया, पर तुमने यही उत्तर दिया कि काल है इसे मारना ही उत्कृष्ट है। अतः मैं यही भिक्षा माँगती हूँ कि चाहे भिक्षा माँगकर पेट भर लो, परन्तु मछली मारकर पेट मत भरो। संसारमें करोड़ों मनुष्य हैं, क्या सब हिंसा करके ही अपना पालन पोषण करते हैं?

लड़कीकी ज्ञानभरी बातें सुनकर पिता एकदम चुप रह गया और कुछ देर बाद उससे पूछता है कि बेटी! तुझे इतना ज्ञान कहाँसे आया? वह बोली कि 'मैं पढ़ी लिखी तो हूँ नहीं, परन्तु बाईजीके पास जो पण्डितजी हैं वे प्रति दिन शास्त्र बाँचते हैं। एक

दिन बाँचते समय उन्होंने बहुतसी बातें कहीं जो मेरी समझमें नहीं आईं, पर एक बात मैं अच्छी तरह समझ गई। वह यह कि इस अनादिनिधन संसारका कोई न तो कर्ता है, न धर्ता है और न विनाशकर्ता है। अपने-अपने पुण्य-पापके आधीन सब प्राणी हैं। यह बात आज मुझे और भी अधिक जँच गई कि यदि कोई बचानेवाला होता तो इस आपत्तिसे न बचाता। इसके सिवाय एक दिन बाईजीने भी कहा था कि परको सताना हिंसा है और हिंसासे पाप होता है। फिर आप तो हजारों मछलियोंकी हिंसा करते हैं, अतः सबसे बड़े पापी हुए। कसाईके तो गिनती रहती है पर तुम्हारे वह भी नहीं।'

पिताने पुत्रीकी बातोंका बहुत आदर किया और कहा कि 'बेटी! हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं और जो यह मछलियोंके पकड़नेका जाल है उसे अभी तुम्हारे ही सामने ध्वस्त करता हूँ।' इतना कहकर उसने गुरसीमें आग जलाई और उसपर वह जाल रखने लगा। इतनेमें उसकी स्त्री बोली कि 'व्यर्थ ही क्यों जलाते हो। इसको बेचनेसे दो रुपये आजावेंगे और उनमें एक धोती जोड़ी लिया जा सकेगा।' पुरुष बोला कि 'यह हिंसाका आयतन है। जहाँ जावेगा वहीं हिंसामें सहकारी होगा, अतः नंगा रहना अच्छा परन्तु जालको बेचना अच्छा नहीं।' इस तरह उसने बातचीतके बाद उस जालको जला दिया और स्त्री पुरुषने प्रतिज्ञा की कि अब आजन्म हिंसा न करेंगे।

यह कथा हम और बाईजी सुन रहे थे, बहुत ही प्रसन्नता हुई और मनमें विचार आया कि देखो समय पाकर दुष्टसे दुष्ट भी सुमार्ग पर आजाते हैं। जातिके कहार अपने आप अहिंसक हो गये। बालिका यद्यपि अबोध थी, पर उसने किस प्रकार समझाया कि अच्छेसे अच्छे पण्डित भी सहसा न समझ सकते।

इसके अनन्तर ओला पड़ना बन्द हुआ। प्रातःकाल नित्य-

क्रियासे निवृत्त होकर जब हम मन्दिरजी पहुँचे तब ८ बजे वे तीनों जीव आये और उत्साहसे कहने लगे कि हम आजसे हिंसा न करेंगे। मैंने प्रश्न किया—क्यों? उत्तरमें उसने रात्रिकी राम-कहानी आनुपूर्वी सुना दी। जिसे सुनकर चित्तमें अत्यन्त हर्ष हुआ और श्री समन्तभद्र स्वामीका यह श्लोक स्मरण द्वारा सामने आगया कि—

'सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्॥'

हम लोगोंकी यह महती अज्ञानता है कि किसीको सर्वथा तुच्छ, नीच या अधम मान बैठते हैं। न जाने कब किसके काल-लब्धि आ जावे? जातिके कहार महाहिंसक, कौन उन्हें उपदेश देने गया कि आप लोग हिंसा छोड़ दो? जिस लड़कीके उपदेशसे माता पिता एकदम सरल परिणामी हो गये उस लड़कीने कौनसी पाठशालामें शिक्षा पाई थी? दस वर्षकी अबोध बालिकामें इतनी विज्ञता कहाँसे आ गई? इतनी छोटी उमरमें तो कपड़ा पहिरना ही नहीं आता, परन्तु जन्मान्तरका संस्कार था, जो समय पाकर उदयमें आगया, अतः हमें उचित है कि अपने संस्कारोंको अति निर्मल बनानेका सतत प्रयत्न करें। इस अभिमानको त्याग देवें कि हम तो उत्तम जाति हैं, सहज ही कल्याणके पात्र हो जावेंगे। यह कोई नियम नहीं कि उत्तम कुलमें जन्ममात्रसे ही मनुष्य उत्तम गतिका पात्र हो और जघन्य कुलमें जन्म लेनेसे अधम गतिका पात्र हो। यह सब तो परिणामोंकी निर्मलता और कलुषतापर निर्भर है।...इस प्रकार हम, बाई जी और मूलचन्द्रजी परस्पर कथा करने लगे। इतनेमें वह लड़की बोली—'वर्णीजी! हम तीनोंको क्या आज्ञा है?' मैंने कहा—'बेटी तुमको धन्यवाद देता हूँ। आज तूने यह उत्कृष्ट कार्य किया जो महापुरुषों द्वारा साध्य होता है। तुम्हारे माता पिताने जो हिंसाका त्याग किया

हैं श्लाघनीय है, तुमसे सर्राफ बहुत प्रसन्न हैं और तुम लोगोंको जिसकी आवश्यकता पड़े सर्राफसे ले सकते हो।' उस लड़कीका पिता बोला—'मैंने हिंसाका त्याग किया है। उसका यह तात्पर्य नहीं कि आप लोगोंसे कुछ याचना करनेके लिए आया हूँ। मैं तो केवल आप लोगोंको अहिंसक जानकर आपके सामने उस पापको छोड़नेके लिये आया हूँ। आपसे क्या माँगू? हमारा भाग्य ही ऐसा है कि मजदूरी करना और जो मिले सन्तोषसे खाना। आज तक मछलियाँ मारकर उदर भरते थे, अब मजदूरी करके उदर पोषण करेंगे। अभी तो हमने केवल हिंसा करना ही छोड़ा था, पर अब यह भी नियम करते हैं कि आजसे मांस भी नहीं खावेंगे तथा हमारे यहाँ जो देवीका बलिदान होता था वह भी नहीं करेंगे। कोई कोई वैष्णव लोग बकराके स्थानमें भूरा कुम्हड़ा चढ़ाते हैं, हम वह भी नहीं चढ़ावेंगे। केवल नारियल चढ़ावेंगे। बस, अब हम लोग जाते हैं, क्योंकि खेत नींदना है।........'

इतना कहकर वे तीनों चले गये और हम लोग भी उन्हींकी चर्चा करते हुए अपने स्थान पर चले आये। इतनेमें बाईजी बोलीं—'बेटा! तुम भूल गये। ऐसे भद्र जीवोंको मदिरा और मधु भी छुड़ा देना था।' मैंने कहा—'अभी क्या बिगड़ा है? उन्हें बुलाता हूँ, पास ही तो उनका घर है?' मैंने उन्हें पुकारा। वे तीनों आ गये। मैंने उनसे कहा—'भाई! हम एक बात भूल गये। वह यह कि आपने मांस खाना तो छोड़ दिया पर मेंपर और मदिरा नहीं छोड़ी, अतः उन्हें भी छोड़ दीजिये।' लड़की बोली—'हाँ, पिता जी! वहीं मेंपर न जो दवाईमें कभी कभी काम आती है। वह तो बड़ी बुरी चीज है। हजारों मक्खियाँ मारकर निचोड़ी जाती हैं। छोड़ दीजिये और मदिरा तो हम तथा माँ पीती ही नहीं हैं। तुम्हीं कभी कभी पीते हो और उस समय तुम पागलसे हो जाते हो। तुम्हारा मुँह बसाने लगता है।' बाप बोला—'बेटी!

ठीक है जब मांस ही जिससे कि पेट भरता था छोड़ दिया तब अब न मदिरा पीवेंगे और न मधु ही खावेंगे। हम जो प्रतिज्ञा करते हैं उसका निर्वाह भी करेंगे। हम वर्णीजी और बाईजीकी बात तो नहीं कहते, क्योंकि वह साधु लोग हैं। परन्तु बड़े बड़े जैनी व ब्राह्मण लोग अस्पतालकी दवा खाते हैं, जहाँ भंगी और मुसलमानोंके द्वारा दवा दी जाती है। उस दवामें मांस,मदिरा और मेंपरका संयोग अवश्य रहता है। बड़े आदमियोंकी बात करो तो यह लोग न जाने हम लोगोंकी क्या दशा करेंगे? अतः इनकी बात न करना ही अच्छा है। अपनेको क्या करना है? 'जो करेगा सो भोगेगा ?' परन्तु बात तो यह है कि जो बड़े पुरुष आचरण करते हैं वही नीच श्रेणीके करने लग जाते हैं। जो भी हो, हमको क्या करना है ?' वह फिर कहने लगा कि 'वर्णीजी! कुछ चिन्ता न करना, हमने जो व्रत लिया है, मरण पर्यन्त कष्ट सह लेने पर भी उसका भंग न करेंगे। अच्छा, अब जाते हैं।'...यह कहकर वे चले गये और हम लोग आनन्द सागरमें निमग्न होगये। मुझे ऐसा लगा कि धर्मका कोई ठेकेदार नही है।

रसखीर

भोजन करके बैठे ही थे कि वर्णी मोतीलालजी आ गये। उनके साथ भी वही कहारवाली बातचीत होती रही। दूसरे दिन विचार हुआ कि आज रसखीर खाना चाहिये। श्री सर्राफ मूलचन्द्रजीसे रस मँगवाया। हम और वर्णी मोतीलालजी उसके सिद्ध करनेमें लग गये। बाईजीने कहा—'भैया ११ बज गये, अब भोजन कर लो।' हमने एक न सुनी और खीरके बनानेमें ११॥ बजा दिये। सामायिकका समय हो गया, अतः निश्चय किया कि पहले सामायिक किया जाय और बादमें निश्चिन्तताके साथ भोजन।

सामायिकके बाद १२॥ बजे हम दोनों भोजनके लिये बैठे। बाईजीने कहा—'अच्छी खीर बनायी।' मैंने उत्तर दिया—'उत्तम पदार्थका मिलना कठिनतासे होता है।' बाईजी ठीक कहकर रोटी परोसने लगीं। मैंने कहा—'पहले खीर परोसिये।' उन्होंने कहा—'भोजनके पश्चात् खाना।' हमने कहा—'जब पेट भर जावेगा तब क्या खावेंगे?' उन्होंने कहा—'अभी खीर गरम है।' हमने कहा—'थालमें ठण्डी हो जावेगी।' उन्होंने खीर परोस दी। हमने फैलाकर ग्रास हाथ में लिया। एक ग्रास मोतीलालजीने भी हाथ में लिया। एक-एक ग्रास मुँहमें जानेके बाद ज्यों ही दूसरा ग्रास उठाने लगे त्यों ही दो मक्खियाँ परस्पर लड़ती हुई आईं और एक हमारी तथा दूसरी मोतीलालजीकी थालीमें गिर गईं। खीर गरम थी, अतः गिरते ही दोनोंका प्रणान्त हो गया। अन्तराय आ जानेसे हम दोनों उस दिन भोजनसे वञ्चित रहे। बाईजी बोलीं—'भैया! लोलुपता अच्छी नहीं।' मै सुनकर चुप रह गया।

इस प्रकरणके लिखनेका अर्थ यह है कि जो वस्तु भाग्यमें नहीं होती वह थालीमें आने पर भी चली जाती है और जो भाग्यमें होती है वह द्वीपान्तरसे भी आ जाती है। अतः मनुष्य को उचित है कि सुख दुखमें समता भाव धारण करे।

असफल चोर

हम, बाईजी और वर्णी मोतीलालजी तीनों श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिरिकी वन्दनाके लिये गये। वहीं बाईजीकी सास और ननद भी आ गईं। आनन्दसे यात्रा हुई। श्री चन्द्रप्रभ भगवान्‌के दर्शन कर सब लोग प्रमोदभावको प्राप्त हुए। यहाँ पर भट्टारकजीकी गद्दी है और प्राचीन शास्त्रोंका भण्डार भी। परन्तु वर्तमानमें जो भट्टारक हैं उन्हें ज्ञानवृद्धिका लक्ष्य नहीं। यन्त्र-मन्त्रमें ही अपना

काल लगाते हैं। इनका मन्दिर बहुत उत्तम है। उसमें ये प्रतिदिन भक्तिभावसे पूजन पाठ करते हैं। स्वभावके सरल तथा दयालु हैं। इनकी धर्मशालामें निवास करनेवाले यात्रियोंको सब प्रकारकी सुविधा रहती है। दो दिन आनन्दसे यात्रा हुई। तीसरे दिन सिमरासे आदमी आया और उसने समाचार दिया कि बाईजी आपके घरमें चोरी हो गई। सुनकर बाईजीकी सास और ननद रोने लगीं, पर बाईजीके चेहरे पर शोकका एक भी चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हुआ। उन्होंने समझाया कि अब रोनेसे क्या लाभ ? जो होना था सो हो गया। अब तो पाँच दिन बाद ही घर जावेंगे।

आदमीने बहुत कुछ चलनेका आग्रह किया और कहा कि दरोगा साहबने कहा है कि बाईजीको शीघ्र लाना। हम प्रयत्नपूर्वक चोरीका पता लगानेको तैयार हैं, परन्तु हमें मालूम पड़ना चाहिये कि क्या-क्या सामान चोरी गया है ? बाईजीने आदमीसे कहा–तुम जाओ और दरोगा साहबसे कहो कि—चोरी तो हो ही गई। अब तीर्थयात्रासे क्यों वञ्चित रहें ? धर्मसे संसारका बन्धन छूट जाता है, फिर यह धन तो पर पदार्थ है। इसकी मूर्छासे ही तो हमारी यह गति हो रही है। यदि आज हमारे परिग्रह न होता तो चोर क्या चुरा ले जाते ? यह इतनी बला है कि बेचारे चोर यदि पकड़े गये तो कारागारकी यातनाएँ भोगेंगे और नहीं पकड़े गये तो सुखसे नहीं खा सकेंगे। प्रथम तो निरन्तर शङ्कित रहेंगे कि कोई जान न जावे। बेचने जावेंगे तो लेनेवाला आधे दाममें लेवेगा। जितने चोर होवेंगे वे बाँटते समय आपसमें लड़ेंगे। लेनेवाला निरन्तर भयभीत रहेगा कि कोई यह न जान लेवे कि यह चोरीका माल लेता है। यदि दैवयोगसे पकड़ा गया तो कारागारकी हवा खावेगा और जुर्माना भुगतना पड़ेगा तथा जब आप तलाशी लेवेंगे तब निरपराध व्यक्तियोंको भी सन्देहमें

पकड़कर पिटवावेंगे और इस तरह कितने ही निरपराध दण्ड पावेंगे तथा दरोगा साहब जितने दिन चोरीका पता लगानेमें रहेंगे उतने दिन हलुआ, पुड़ी और रबड़ी खानेके लिये देनी पड़ेगी। दैवयोगसे पता भी लग गया, परन्तु यदि दरोगा साहब-को लालचने धर दबाया तो चोरसे आधा माल लेकर उसे भगा देंगे और आप पुलिस स्थानपर चले जावेंगे। अन्तमें जिसकी चोरी हुई वह हाथ मलते रह जावेगा। उनका कोई दोष नहीं। परिग्रहका स्वरूप ही यह है। इसके वशीभूत होकर अच्छे-अच्छे महानुभाव चक्करमें आ जाते हैं। संसारमें सबसे प्रबल पाप परि-ग्रह है। किसी कविने ठीक ही तो कहा है—

'कनक कनक तैं सौगुनी मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है यह पाये बौराय॥'

विशेष क्या कहूँ ? बाईजी ५ दिन रहकर जो आदमी आया था उसके साथ सिमरा चलीं गईं और मैं सागर चला आया।

कुछ दिनके बाद बाईजीका पत्र आया—'भैया ! आशीर्वाद। मैं सोनागिरिसे सिमरा आई। चोरी कुछ नहीं हुई। चोर आये और जिस भण्डरियामें सोना रक्खा था, उसीमें १०) के गजाशाही पैसा रक्खे थे। उन्होंने पैसाकी जगह खोदी। सोना छोड़ गये और पैसा कोठरीमें बिखेर गये तथा दाल चावल भी बिखेर गये। क्यों ऐसा किया सो वे जानें। कहनेका तात्पर्य यह है कि पाव आना भी नहीं गया। तुम कोई चिन्ता न करना।'

मुझे हर्ष हुआ और मनमें आया कि सुकृतका पैसा जल्दी नष्ट नहीं होता।

आज यहाँ कल वहाँ

सागरमें श्री रज्जीलालजी कमरया रहते थे। मेरा उनसे विशेष परिचय नहीं था। शास्त्र प्रवचनके समय आप आते थे। उसी

समय उन्हें देखता था। उन्हें किसी कार्यवश राहतगढ़ जाना था। मुझसे बोले कि आप भी राहतगढ़ चलिये। मैंने कहा—'अच्छा चलिये।' मार्गमें अनेक चर्चायें होती रहीं। अन्तमें उन्होंने कहा कि 'कुछ हमारे लिये भी उपदेश दीजिये।' मैंने कहा—'आप श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा तो करते ही है और स्वाध्याय भी। यदि आप मुझसे पूछते हैं तो मेरी सम्मत्यनुसार आप समयसारका स्वाध्याय कीजिये। उसमें अन्तस्तत्त्वके विषयमें बहुत ही स्पष्ट और सरल रीतिसे व्याख्यान है तथा उसके रचयिता श्री कुन्दकुन्द भगवान हैं। उनके विषयमें हम क्या कहें? उनकी प्रत्येक गाथामें अध्यात्म-रस टपकता है।'

उन्होने सहर्ष स्वीकार किया। इसके बाद हम दोनों राहतगढ़ पहुँचे। यहाँ पर एक नदी ग्रामके पास बहती है, एक छोटा-सा दुर्ग है जो कि समभागसे सौ फुटकी ऊँचाई पर है, उसके मध्य में एक बड़ा भारी पानीका कुण्ड है जो बहुत गहरा है और जिसे देखनेसे भय मालूम होता है। नदीके तट पर ग्रामसे दो मील दूर कई प्राचीन जिनमन्दिर भग्न पड़े हुए है। उनमें बहुत विशालकाय प्रतिमाएँ विराजमान है। पूजन-पाठका कोई प्रबन्ध नही। वहाँकी व्यवस्था देखकर मार्मिक वेदना हुई, परन्तु कर क्या सकते थे? अन्तमें यह अच्छा हुआ कि वे सभी प्रतिमाएँ सागर ले आई गईं और श्री चौधरन बाईके मन्दिरमें विराजमान कर दी गईं। यहाँ मन्दिरके प्रबन्धक अच्छी तरहसे उनकी पूजादिका प्रबन्ध करते हैं और यथावसर कलशाभिषेक आदि उत्सव करते रहते हैं। हमारा और रज्जीलालजीका यहाँसे विशेष परिचय हो गया। यहाँसे हम दोनों सागर वापिस आ गये।

श्री समैया जवाहरलालजी जो कि चैत्यालयके प्रबन्धक थे और जिनकी कृपासे सत्तर्कसुधातरङ्गिणी पाठशालाको चमेली चौकमें विशाल भवन मिला था। न जाने उनके मनमें क्या

विचार आया। मुझे बुलाकर कहने लगे कि यदि आप चमेली चौकमें पाठशाला रखना चाहते हैं तो बकायदा किरायानामा लिख दीजिये, क्योंकि आपकी पाठशालाको यहाँ रहते हुए दस वर्ष हो गये। कुछ दिन और रहने पर आपके अधिकारी वर्ग सर्वथा कब्जा कर लेंगे, हम लोग ताकते ही रह जावेंगे। मैंने बहुत कुछ कहा कि आप निश्चिन्त रहिये, कुछ न होगा। अन्तमें वह बोले—'हम कुछ नहीं जानते। या तो पन्द्रह दिनमें मकान खाली करो या किरायानामा लिख दो।'

क्या किया जावे ? बड़ी असमंजसमें पड़ गये, क्योंकि तीस लड़के अध्ययन करते थे, उनके योग्य मकान मिलना कठिन था। इतनेमें ही श्री विहारी मोदी और श्री रज्जीलाल सिंघई बोले कि आप चिन्ता मत करें। श्री स्वर्गीय ढाकनलालजीका मकान जो कि घटियाके मन्दिरसे लगा हुआ है, उसमें पाठशाला ले चलो और अभी-अभी चलो, उसे देख लो। हम सब मकान देखनेके लिए गये और देखकर निश्चय किया कि इसे झाड़ बुहारकर स्वच्छ किया जावे। अनन्तर पाठशाला इसीमें लाई जावे। इतने अनादरके साथ चैत्यालयके मकानमें रहना उचित नहीं।

चार दिनमें मकान दुरुस्त हो गया और पाठशाला उसमें आ भी गई, परन्तु उसमें कई कष्ट थे। यदि एक हजार रुपया मरम्मतमें लगा दिये जावें तो सब कष्ट दूर हो जावें, पर रुपये कहाँसे आवें ? पाठशालामें विशेष धन न था। माँग चूँगकर काम चलता था। पर दैव बलवान् था। श्री बट्टे दाऊ, जो कि रेली ब्रदर्सके दलाल थे, मुझे चिन्तित देखकर बोले कि इतने चिन्तित क्यों हो ? मैंने कहा कि 'जो पाठशाला चमेली चौकमें थी वह श्री ढाकनलाल सिंघईके मकानमें आ गई। परन्तु वहाँ अनेक कष्ट हैं। मकान स्वच्छ नहीं। वह अभी एक हजार रुपया मरम्मतके लिये चाहता है। पाठशालाके पास द्रव्य नहीं

कैसे काम चले ?'

आप उसी वक्त हमारे साथ पाठशालामें आये और जहाँ श्री ढाकनलाल सिंघईके बैठनेका स्थान था, एक कुदारी मँगाकर वहाँ आपने खोदा तो तीन सौ रुपये मिल गये। दूसरे दिनसे ही मरम्मतका काम चालू कर दिया। अब एक कच्ची अटारी थी, हमने दाऊसे कहा कि इसे गिरवा कर छत बनवा दी जावे। दाऊने कहा कि ठीक है—वहीं पर उन्होंने एक भीत खोदी, जिससे सात सौ रुपये मिल गये। इस तरह एक हजार रुपयेमें अनायास ही पाठशालाके योग्य मकान बन गया और आनन्द पूर्वक बालक पढ़ने लगे।

मेरे हृदयमें यह बात सदा शल्यकी तरह चुभती रहती थी कि इस प्रान्तमें यह एक ही तो पाठशाला है, पर उसके पास निजका मकान तक नहीं। वह अपने थोड़े ही कालमें तीन मकानोंमें रह चुकी—'आज यहाँ कल वहाँ।' इस दरिद्रों जैसी दशामें यह पाठशाला किस प्रकार चल सकेगी ?

मोराजीके विशाल प्राङ्गणमें

श्री ढाकनलाल सिंघईके मकानमें भी विद्यालयके उपयुक्त स्थान नहीं था, किसी तरह गुजर ही होती थी। गृहस्थीके रहने लायक मकान और विद्यालयके उपयुक्त मकानमें बड़ा अन्तर होता है।

श्री बिहारीलालजी मोदी और सिंघई रज्जीलालजी मन्दिरके मुंतजिम थे। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा—कि 'यदि विद्यालयको पुष्कल जमीन चाहते हो तो श्री मोराजीकी जगह, जिसमें कि एक अपूर्व दरवाजा है, जो आज पच्चीस हजारमें न बनेगा तथा मधुर जलसे भरे हुए दो कूप हैं, पाठशालाके संचालकोंको दे सकते हैं। किन्तु पाठशालावाले यह प्रतिज्ञापत्र लिख देवें कि

जबतक पाठशाला चले तबतक हम उसपर काबिज रहें और यदि दैव प्रकोपसे पाठशाला न चले तो मकानवालोंको सौंप देवेंगे।' इसपर पाठशालाके कुछ अधिकारियोंने पहले तो सम्मति न दी। परन्तु समझाने पर सब सम्मत हो गये। अब चिन्ता इस बातकी हुई कि मकान कैसे बने? पाठशालाके अधिकारियोंने कमेटी कर यह निश्चय किया कि फिलहाल पाँच हजार रुपया लगाकर एक मंजला कच्चा मकान बना लिया जावे और इसका भार श्रीमान् करोड़ीमल्लजीको सौंपा जावे। श्रीमान् करोड़ीमल्लजीने इस भारको सहर्ष स्वीकार किया। आप पाठशालाके मन्त्री भी थे। तीन मासमें आपने मकान तय्यार कर दिया और पाठशाला श्री ढाकनलालजीके मकानसे मोराजी भवनमें आगई। यहाँ आने पर सब व्यवस्था ठीक हो गई। यह बात आश्विन सुदी ९ सं० १९८० की है।

कई कारणोंसे श्री करोड़ीमल्लजीने पाठशालाके मन्त्री पदसे स्तीफा दे दिया। आपके स्थानमें श्री पूर्णचन्द्रजी बजाज मन्त्री हुए। आप बहुत ही योग्य और विशालहृदयके मनुष्य हैं, बड़े गम्भीर हैं, गुस्सा तो आप जानते ही नहीं हैं। आपकी दुकानमें श्री पन्नालालजी बड़कुर संजाती थे, जिनकी बुद्धि बहुत ही विशाल और सूक्ष्म थी। आपके विचार कभी संकुचित नहीं रहे। आप सदा ही पाठशालाकी उन्नतिमें परामर्श देते रहते थे और समय समय पर स्वयं भी सहायता देते थे।

पाठशाला कोष बहुत ही कम है और व्यय ५००) मासिक है....यह देखकर अधिकारी वर्ग सदा सचिन्त रहते थे।

एक बार सिंघईजीके मन्दिरमें शास्त्र प्रवचन हुआ। उस समय मैंने पाठशालाकी व्यवस्था समाजके सामने रख दी। फल स्वरूप श्री मोदी धर्मचन्द्रजीने कहा कि यदि वर्णीजी देहातमें

जैनधर्मका प्रचार करें तो मैं सौ रुपया मासिक पाठशालाको देने लगूँ। मैंने भ्रमण स्वीकार किया और सौ रुपया मासिक मिलने लगा। इसी प्रकार श्रीयुक्त कमरयाजीने कहा कि यदि पण्डित दयाचन्द्रजी हमको दोपहर बाद एक घण्टा स्वाध्यायके लिये देवें तो सौ रुपया मासिक हम देवेंगे।....इस प्रकार किसी तरह पाठशालाकी आर्थिक व्यवस्था सुधरी। परन्तु स्थायी आमदनीके बिना मेरी चिन्ता कम नहीं हुई।

कुछ दिनके बाद श्री मोदीजीने सहायता देना बन्द कर दिया पर कमरयाजी बराबर देते रहे। पाठशालामें क्वीन्स कालेजके अनुसार पठनक्रम था, इससे बड़े बड़े आक्षेप आने लगे। परन्तु भावी अच्छा था, इससे सब विघ्न दूर होते गये। पढ़ाईके लिये अध्यापक उच्च श्रेणीके थे, अतः उस ओरसे मैं निश्चिन्त रहता था। परन्तु धनकी चिन्ता निरन्तर रहा करती थी। यद्यपि पाठशालाके सभापति श्री सिंघई कुन्दनलालजी और उपसभापति श्री चौधरी कन्हैयालाल हुकमचन्द्रजी मानिकचौकवाले हमको निरन्तर साहस और उपदेश दिया करते थे कि आप चिन्ता मत करो, अनायास ही कोष हो जावेगा तथापि मेरी चिन्ता कम न होती थी। सिंघईजी तथा चौ० हुकमचन्द्रजीके द्वारा गल्ले बाजार से अच्छी आमदनी हो जाती थी। घीके दलाल श्री मनसुखलाल हजारीलाल, गिरीधारीलाल पल्टूराम, गुँचेलाल खूबचन्द्र तथा अनन्तरामजी आदिकी पूरी सहायता थी और किरानाके व्यापारी श्री प्यारेलाल किशोरीलाल मलैया, हीरालाल टीकाराम मलैया, सिंघई राजाराम मुन्नालालजी और सिं० मौजीलाल लखमीचन्द्र जी पूर्ण सहायता देते थे... पर यह सब चालू सहायता थी। इनकी सहायतासे जो आता था वह खर्च होता जाता था, अतः मूलधन की व्यग्रता निरन्तर रहा करती थी। कुछ भी रहो, परन्तु जब मै मोराजीके विशाल प्राङ्गणमे बहुतसे छात्रोको आनन्दसे एक साथ खेलते

कूदते और विद्याध्ययन करते देखता था तब मेरा हृदय हर्षातिरेकसे भर जाता था।

कलशोत्सवमें श्री पं० अम्बादासजी शास्त्रीका भाषण

संवत् १९७२ की बात है। सागरमें श्री टीकाराम प्यारेलालजी मलैयाके यहाँ कलशोत्सवका आयोजन हुआ। उसमें पण्डितोंके बुलानेका भार मेरे ऊपर छोड़ा गया। मैंने भी सब पण्डितोंके बुलानेकी व्यवस्था की, जिसके फलस्वरूप श्रीमान् पण्डित माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य, श्रीमान् पं० वंशीधरजी सिद्धान्तशास्त्री, श्रीमान् व्याख्यानवाचस्पति पं० देवकीनन्दनजी, श्रीमान् वाणीभूषण पं० तुलसीरामजी काव्यतीर्थ तथा श्रीमान् निखिल विद्यावारिधि पण्डित अम्बादासजी शास्त्री जो कि हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसमें संस्कृतके प्रिन्सिपल थे, इस उत्सवमें सम्मिलित हुए। आपका शानदार स्वागत हुआ। उसी समय आयोजित आमसभामें जैनधर्मके अनेकान्तवादपर आपका मार्मिक भाषण हुआ, जिसे श्रवण कर अच्छे-अच्छे विद्वान् लोग मुग्ध हो गये। आपने सिद्ध किया कि—'पदार्थ नित्यानित्यात्मक है, अन्यथा संसार और मोक्षकी व्यवस्था नहीं बन सकती, क्योंकि सर्वथा नित्य माननेमें परिणाम नहीं बनेगा। यदि परिणाम मानोगे तो नित्य माननेमें विरोध आवेगा। श्री समन्तभद्र स्वामीने लिखा है—

> 'नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
> प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम् ॥'

यह सिद्धान्त निर्विवाद है कि पदार्थ चाहे नित्य मानो चाहे अनित्य किसी न किसी रूपसे रहेगा ही। यदि नित्य है तो

किस अवस्थामें है ? यहाँ दो ही विकल्प हो सकते हैं। या तो शुद्ध स्वरूप होगा या अशुद्ध स्वरूप होगा। यदि शुद्ध है तो सर्वदा शुद्ध ही रहेगा, क्योंकि सर्वथा नित्य ही माना है और इस दशामें संसार प्रक्रिया न बनेगी। यदि अशुद्ध है तो सर्वथा संसार ही रहेगा और ऐसा माननेसे संसार एवं मोक्षकी जो प्रक्रिया मानी है उसका लोप हो जावेगा, अतः सर्वथा नित्य मानना अनुभवके प्रतिकूल है।

यदि सर्वथा अनित्य है ऐसा माना जाय तो जो प्रथम समयमें है वह दूसरेमें न रहेगा और तब पुण्य-पाप तथा उसके फलका सर्वथा लोप हो जावेगा। कल्पना कीजिये किसी आत्माने किसीके मारनेका अभिप्राय किया। वह क्षणिक होनेसे नष्ट हो गया। अन्यने हिंसा की। क्षणिक होनेके कारण हिंसा करनेवाला भी नष्ट हो गया। बन्ध अन्यको होगा। क्षणिक होनेसे बन्धक आत्मा नष्ट हो गया। फलका भोक्ता अन्य ही हुआ। इस प्रकार यह क्षणिकत्वकी कल्पना श्रेष्ठ नहीं। प्रत्यक्ष विरोध आता है, अतः केवल अनित्यकी कल्पना सत्य नहीं। जैसा कि कहा भी है—

'परिणामिनोऽप्यभावात्क्षणिकं परिणाममात्रमिति वस्तु।
तस्यामिह परलोको न स्यात्कारणमथापि कार्यं वा॥'

बहुतोंकी यह मान्यता है कि कारणसे कार्य सर्वथा भिन्न है। कारण वह कहलाता है जो पूर्वक्षणवर्ती हो और कार्य वह है जो उत्तरक्षणवर्ती हो। परन्तु ऐसा माननेमें सर्वथा कार्यकारणभाव नहीं बनता। जब कि कारणका सर्वथा नाश हो जाता है तब कार्यकी उत्पत्तिमें उसका ऐसा कौनसा अंश शेष रह जाता है जो कि कार्यरूप परिणमन करेगा ? कुछ ज्ञानमें नहीं आता। जैसे, दो परमाणुओंसे द्व्यणुक होता है। यदि वे दोनों सर्वथा नष्ट हो गये तो द्व्यणुक किससे हुआ ? समझमें नहीं आता। यदि सर्वथा असत्से कार्य होने लगे तो मृतपिण्डके अभावमें

भी घटकी उत्पत्ति होने लगेगी। पर ऐसा देखा नहीं जाता। इससे सिद्ध होता है कि परमाणुका सर्वथा नाश नहीं होता, किन्तु जब वह दूसरे परमाणुके साथ मिलनेके सम्मुख होता है तब उसका सूक्ष्म परिणमन बदलकर कुछ वृद्धिरूप हो जाता है और जिस परमाणुके साथ मिलता है उसका भी सूक्ष्म परिणमन बदलकर वृद्धिरूप हो जाता है।....इसी प्रकार जब बहुतसे परमाणुओंका सम्बन्ध हो जाता है तब स्कन्ध बन जाता है। स्कन्ध दशामें उन सब परमाणुओंका स्थूलरूप परिणमन हो जाता है। और ऐसा होनेसे वह चक्षुरिन्द्रियके विषय हो जाते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि वे सब परमाणु जितने थे उतने ही स्कन्ध दशामें हैं। केवल उनकी जो सूक्ष्म पर्याय थी वह स्थूल भावको प्राप्त हो गई। एवं यदि कारणसे कार्य सर्वथा भिन्न हो तो कार्य होना असम्भव हो जावे, क्योंकि संसारमें जितने कार्य हैं वे निमित्त और उपादान कारणसे उत्पन्न होते हैं। उनमें निमित्त तो सहकारीमात्र है पर उपादान कारण कार्यरूप परिणमनको प्राप्त होता है। जिस प्रकार सहकारी कारण भिन्न है उस प्रकार उपादान कारण कार्यसे सर्वथा भिन्न नहीं है। किन्तु उपादान अपनी पूर्वपर्यायको त्याग कर ही उत्तर अवस्थाको प्राप्त होता है। इसी उत्तर अवस्थाका नाम कार्य है। यह नियम सर्वत्र लागू होता है। आत्मामें भी यह नियम लागू होता है। आत्मा भी स्वंथा भिन्न कार्यको उत्पन्न नहीं करती। जैसे, सब आस्तिक महाशयोंने आत्माकी संसार और मुक्ति दो दशाएँ मानी हैं। यहाँ पर यह प्रश्न स्वाभाविक है कि यदि कारणसे कार्य सर्वथा भिन्न है तो संसार और मुक्ति ये दोनों कार्य किस द्रव्यके अस्तित्वमें हैं? सिद्ध करना चाहिये। यदि पुद्गल द्रव्यके अस्तित्वमें हैं तो आत्माको भक्ति, प्रव्रज्या, संन्यास, यम, नियम, व्रत, तप आदिका उपदेश देना निरर्थक है, क्योंकि आत्मा तो सर्वथा निर्लेप है, अतः अगत्या मानना पड़ेगा कि आत्माकी ही अशुद्ध

'न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात् ।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत् ॥'

जैसे, पदार्थ नित्यानित्यात्मक है वैसे ही तत्-अतत्, सत्-असत् और एकानेकरूप भी है। जैसे एक आत्मा द्रव्य लीजिये, वह तत् भी है अतत् भी है, एक भी है, अनेक भी है, सत् भी है असत् भी है तथा नित्य भी है अनित्य भी है। यहाँ पर आपाततः प्रत्येक मनुष्यको यह शङ्का हो सकती है कि इसप्रकार परस्पर विरोधी धर्म एक स्थान पर कैसे रह सकते हैं और इसीसे वेदान्त सूत्रमें व्यासजीने एक स्थान पर लिखा है—'नैकस्मिनसंभवात्' अर्थात् एक पदार्थमें परस्पर विरुद्ध नित्यत्वानित्यत्वादि नहीं रह सकते। परन्तु जैनाचार्योंने स्याद्वाद सिद्धान्तसे इन परस्पर विरोधी धर्मोंका एक स्थानमें भी रहना सिद्ध किया है और वह युक्तियुक्त भी है, क्योंकि वह विरोधी धर्म विभिन्न अपेक्षाओंसे एक वस्तुमें रहते हैं, न कि एक ही अपेक्षासे। देवदत्त पिता है और पुत्र भी है। परन्तु एककी ही अपेक्षा उक्त दोनों रूप देवदत्तमें सिद्ध नहीं हो सकते। वह अपने पुत्रकी अपेक्षा पिता है और अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र भी है। इसी प्रकार सामान्यकी अपेक्षा पदार्थ नित्य है—उत्पाद और विनाशसे रहित है तथा विशेषकी अपेक्षा अनित्य है—उत्पाद और विनाशसे युक्त है। सामान्यकी अपेक्षा पदार्थ एक है, परन्तु अपनी पर्यायोंकी अपेक्षा वही पदार्थ अनेक हो जाता है। जैसे सामान्य जलत्वकी अपेक्षासे जल एक है, परन्तु तत्तत्पर्यायोंकी अपेक्षा वही जल तरङ्ग, बबूला, हिम आदि अनेक रूप होता देखा जाता है। जैनाचार्योंने स्याद्वाद सिद्धान्तसे उक्त धर्मोंका अच्छा समन्वय किया है देखिये—

'स्याद्वादो हि सकलवस्तुतत्त्वसाधकमेकमस्खलितं साधनमर्हद्देवस्य। स तु सर्वमनेकान्तमनुशास्ति, सर्वस्य वस्तुनोऽनेकान्तात्मकत्वात्। अत्र त्वात्मवस्तुनो ज्ञानमात्रतयानुशास्यमानोऽपि न तत्परिदोषः, ज्ञानमात्रस्यात्म-

वस्तुनः स्वयमेवानेकान्तात्मकत्वात् । तत्र यदेव तत् तदेवातत्, यदेवैकं तदेवानेकम्, यदेव सत् तदेवासत्, यदेव नित्यं तदेवानित्यमित्येकवस्तु-वस्तुत्वनिष्पादकपरस्परविरुद्धशक्तिद्वयप्रकाशनमनेकान्तः । तत्स्वात्मकवस्तुनो ज्ञानमात्रत्वेऽप्यन्तश्चकचकायमानरूपेण तत्त्वात् बहिरुन्मिषदनन्तज्ञेयतापन्न-स्वरूपतातिरिक्तपररूपेणातत्त्वात्, सहक्रमप्रवृत्तानन्तचिदंशसमुदयरूपाविभा-गैकद्रव्येणैकत्वात् अविभागैकद्रव्यव्याप्तसहक्रमप्रवृत्तानन्तचिदंशरूपपर्यायै-रनेकत्वात्, स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावभवनशक्तिस्वभाववत्त्वेन सत्त्वात्, परद्रव्य-क्षेत्रकालभावभवनशक्तिस्वभाववत्त्वेनासत्त्वात्, अनादिनिधनाविभागैक-वृत्तिपरिणतत्वेन नित्यत्वात् क्रमप्रवृत्तैकसमयावच्छिन्नानेकवृत्त्यंशपरिणत-त्वेनानित्यत्वात्, तदतत्त्वमेकानेकत्वं सदसत्त्वं नित्यानित्यत्वञ्च प्रकाशत एव ।

ननु यदि ज्ञानमात्रत्वेऽप्यात्मवस्तुनः स्वयमेवानेकान्तः प्रकाशते तर्हि किमर्थमर्हद्भिस्तत्साधनत्वेनानुशास्यतेऽनेकान्तः ? अज्ञानिनां ज्ञानमात्रात्म-वस्तुप्रसिद्ध्यर्थमिति ब्रूमः । न खल्वनेकान्तमन्तरेण ज्ञानमात्रमात्म-वस्त्वेव प्रसिद्ध्यति । तथाहि—इह हि स्वभावत एव बहुभावनिर्भरविश्वे सर्वभावानां स्वभावेनाद्वैतेऽपि द्वैतस्य निषेद्धुमशक्यत्वात् समस्तमेव वस्तु स्वपररूपप्रवृत्तिव्यावृत्तिभ्यामुभयभावाध्यवसितमेव । तत्र यदायं ज्ञानमात्रो भावः शेषभावैः सह स्वरसभरप्रवृत्तज्ञातृज्ञेयसम्बन्धतयाऽनादिज्ञेयपरिणमनात् ज्ञानतत्त्वं पररूपेण प्रतिपद्याज्ञानी भूत्वा तमुपैति तदा स्वरूपेण तत्त्वं द्योतयित्वा ज्ञातृत्वेन परिणमनात् ज्ञानी कुर्वन्ननेकान्त एव तमुद्गमयति । १. यदा तु सर्वं वै खल्विदमात्मेति अज्ञानत्वं ज्ञानरूपेण प्रतिपद्य विश्वोपादा-नेनात्मानं नाशयति तदा पररूपेणातत्त्वं द्योतयित्वा विश्वाद् भिन्नं ज्ञानं दर्शयन् अनेकान्त एव नाशयितुं न ददाति । २. यदानेकज्ञेयाकारैः खण्डित-सकलैकज्ञानाकारो नाशमुपैति तदा द्रव्येणैकत्वं द्योतयन् अनेकान्त एव तमुज्जीवयति । ३. यदा त्वेकज्ञानाकारोपादानायानेकज्ञेयाकारत्यागेनात्मानं नाशयति तदा पर्यायैरनेकत्वं द्योतयन् अनेकान्त एव नाशयितुं न ददाति । ४. यदा ज्ञायमानपरद्रव्यपरिणमनात् ज्ञातृद्रव्यं परद्रव्यत्वेन प्रतिपद्य नाश-मुपैति तदा स्वद्रव्येण सत्त्वं द्योतयन् अनेकान्त एव तमुज्जीवयति । ५. यदा

तु सर्वद्रव्याण्यहमेवेति परद्रव्यं ज्ञातृद्रव्यत्वेन प्रतिपद्यात्मानं नाशयति तदा परद्रव्येणासत्त्वं द्योतयन् अनेकान्त एव नाशयितुं न ददाति। ६. यदा परक्षेत्रगतज्ञेयार्थपरिणमनात् परक्षेत्रेण ज्ञानं सत् प्रतिपद्य नाशमुपैति तदा स्वक्षेत्रेणास्तित्वं द्योतयन्ननेकान्त एव तमुज्जीवयति। ७. यदा तु स्वक्षेत्रे भवनाय परक्षेत्रे ज्ञेयाकारत्यागेन ज्ञानं तुच्छीकुर्वन्नात्मानं नाशयति तदा स्वक्षेत्र एक ज्ञानस्य परक्षेत्रगतज्ञेयाकारपरिणमनस्वभावत्वात् परक्षेत्रेण नास्तित्वं द्योतयन्ननेकान्त एव नाशयितुं न ददाति। ८. यदा पूर्वालम्बितार्थविनाशकाले ज्ञानस्यासत्त्वं प्रतिपद्य नाशमुपैति तदा स्वकाले न सत्त्वं द्योतयन्ननेकान्त एव तमुज्जीवयति। ९. यदा स्वर्थालम्बनकाल एव ज्ञानस्य सत्त्वं प्रतिपद्यात्मानं नाशयति तदा परकालेनासत्त्वं द्योतयन्ननेकान्त एव नाशयितुं न ददाति। १०. यदा ज्ञायमानपरभावपरिणमनात् ज्ञायकभावं परभावत्वेन प्रतिपद्य नाशमुपैति तदा स्वभावेन सत्त्वं द्योतयन्ननेकान्त एव तमुज्जीवयति। ११. यदा तु सर्वे भावा अहमेवेति परभावं ज्ञायकभावत्वेन प्रतिपद्यात्मानं नाशयति तदा परमविनाशत्वं द्योतयन्ननेकान्त एव नाशयितुं न ददाति। १२. यदा नित्यज्ञानविशेषैः खण्डितनित्यज्ञानसामान्यो नाशमुपैति तदा ज्ञानसामान्यरूपेण नित्यत्वं द्योतयन् अनेकान्त एव नाशयितुं न ददाति। १३. यदा तु नित्यज्ञानसामान्योपादानायानित्यज्ञानविशेषत्यागेनात्मानं नाशयति तदा ज्ञानविशेषरूपेणानेकत्वं द्योतयन्ननेकान्त एव तं नाशयितुं न ददाति। १४………।'

यह गद्य श्री अमृतचन्द्र स्वामीने समयसारके अन्तमें जो स्याद्वादाधिकार है उसमें लिखी है। इसका भाव यह है कि—स्याद्वाद ही एक समस्त वस्तुका साधनेवाला निर्बाध अर्हन्त भगवान्‌का शासन है और वह समस्त पदार्थोंको अनेकान्तात्मक अनुशासन करता है, क्योंकि सकल पदार्थ अनेक धर्मस्वरूप हैं। इस अनेकान्तके द्वारा जो पदार्थ अनेक धर्मस्वरूप कहे जाते हैं वह असत्य कल्पना नहीं है, बल्कि वस्तुस्वरूप ही ऐसा है।

यहाँ पर जो आत्मा नामक वस्तुको ज्ञानमात्र कहा है उसमें स्याद्वादका विरोध नहीं है। ज्ञानमात्र जो आत्मवस्तु है वह स्वयमेव अनेकान्तात्मक है। यही दिखलाते हैं—अनेकान्तका ऐसा स्वरूप है कि जो वस्तु तत्स्वरूप है वही वस्तु अतत्स्वरूप भी है, जो वस्तु एक है वही अनेक भी है, जो पदार्थ सत्स्वरूप है वही पदार्थ असत्स्वरूप भी है तथा जो पदार्थ नित्य है वही अनित्य भी है। इस प्रकार एक ही वस्तुमें वस्तुत्वको प्रतिपादन करनेवाला एवं परस्पर विरुद्ध शक्तिद्वयको ही प्रकाशित करनेवाला अनेकान्त है। इसीको स्पष्ट करते हैं—

जैसे आत्माको ज्ञानमात्र कहा है। यहाँ यद्यपि आत्मा अन्तरङ्गमें देदीप्यमान ज्ञानस्वरूपकी अपेक्षा तत्स्वरूप है तथापि बाह्यमें प्रकटरूप जो अनन्त ज्ञेय हैं, वह जब ज्ञानमें प्रतिभासित होते हैं तब ज्ञानमें उनका विकल्प होता है। इस प्रकार ज्ञेयतापन्न जो ज्ञानका रूप है जो ज्ञानस्वरूपसे भिन्न पररूप है उसकी अपेक्षा अतत्स्वरूप भी है अर्थात् ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं होता। सहप्रवृत्त और क्रमप्रवृत्त अनन्त चिदंशोंके समुदायरूप जो अविभागी एक द्रव्य है उसकी अपेक्षा एकस्वरूप है। अर्थात् द्रव्यमें जितने गुण हैं वे अन्वयरूपसे ही उसमें सदा रहते हैं, विशेष रूपसे नहीं। ऐसा नहीं है कि प्रथम समयमें जितने गुण हैं वे ही द्वितीय समयमें रहते हों और वे ही अनन्त कालतक रहे आते हों। चूँकि पर्याय समय समयमें बदलती रहती है और द्रव्यमें जितने गुण हैं वे सब पर्यायशून्य नहीं है, अतः गुणोंमें भी परिवर्तन होना अनिवार्य है। इससे सिद्ध यह हुआ कि गुण सामान्यतया ध्रौव्यरूप रहते हैं पर विशेषकी अपेक्षा वे भी उत्पादव्ययरूप होते हैं। इसका खुलासा यह है कि जो गुण पहले जिसरूप था वह दूसरे समयमें अन्यरूप हो जाता है। जैसे जो आम्र अपनी अपक्व अवस्थामें हरित होता है वही पक्व

अवस्थामें पीत हो जाता है। यहाँ हरितत्व और पीतत्वकी अपेक्षा रूपमें परिवर्तन हुआ है पर सामान्य रूपकी अपेक्षा क्या हुआ ? दोनों ही दशाओंमें रूप तो रहता ही है। इसप्रकार एक ही अविभागी द्रव्य, अपने सहभावी गुणों और क्रमभावी पर्यायोंकी अपेक्षा अनेकरूपसे व्यवहृत होता है। अर्थात् सह-क्रम प्रवृत्त चिदंश समुदायरूप अविभागी द्रव्यकी अपेक्षा तो आत्मा एक स्वरूप है और चिदंशरूप पर्यायोंकी विवक्षासे अनेक स्वरूप है। एवं स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावरूप होनेके योग्य जो शक्ति है, अतः उसके स्वभावसे जब वस्तुका निरूपण करते हैं तब वस्तु सत्स्वरूप होती है और परद्रव्य क्षेत्र काल भावरूप होनेके योग्य जो शक्ति है, अतः उसके अभावरूपसे जब वस्तुका निरूपण करते हैं तब असत्स्वरूप होती है। श्री समन्तभद्रस्वामीने कहा है कि—

'सदेव सर्वं को नेच्छेत्स्वरूपादिचतुष्टयात् ।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥'

अर्थात् स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा सम्पूर्ण विश्व सत् ही है और परद्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा असत् ही है...इसे कौन नहीं स्वीकृत करेगा ? क्योंकि ऐसा माने बिना पदार्थकी व्यवस्था नहीं हो सकती······।'

शास्त्रीजीका व्याख्यान सुनकर सबने प्रशंसा की। इसी अवसर पर श्रीमान् न्यायाचार्य पं० माणिकचन्द्रजीका जैनधर्मके ऊपर बहुत ही प्रभावक व्याख्यान हुआ। व्याख्यानवाचस्पति पं० देवकीनन्दनजीने तो अपने व्याख्यानके द्वारा जनताको लोट-पोट कर दिया। व्याख्यानभूषण पं० तुलसीरामजी काव्यतीर्थका समाजसुधारपर मार्मिक भाषण हुआ और इसी समय सिद्धान्त-महोदधि पं० वंशीधरजीका जैन तत्त्वों पर तर्कपूर्ण व्याख्यान हुआ। इस प्रकार इन उद्भट विद्वानोंके समागमसे मलैयाजीका कलशोत्सव सार्थक हो गया।

तीसरे दिन जलविहार होनेके बाद जब सभा विसर्जित होने लगी तब श्रीमान् मानिक चौकवालोंने मुझसे कहा कि आप पाठशालाके लिये अपील कीजिये। मैंने उनके कहे अनुसार इष्ट देवताका स्मरण कर उपस्थित जनताके समक्ष पाठशालाका विवरण सुनाया और साथ ही उसके मूल संस्थापक हंसराजजी कण्डयाको धन्यवाद दिया। अनन्तर यह कहा कि धनके बिना पाठशालाकी बहुत ही अवनत अवस्था हो रही है। यदि आप लोगोंकी दृष्टि इस ओर न गई तो सम्भव है कि एक या दो वर्ष ही पाठशाला चल सकेगी। अन्तमें उसकी क्या दशा होगी, सो आप सब जानते हैं। आजका कार्य भिक्षा माँगनेका है। भिक्षान्नका उपयोग आप ही के बालक विद्यार्जन के लिये करेंगे। यह भिक्षाका माँगना यदि आप लोग करते तो बहुत ही उपयुक्त होता, क्योंकि इस विषयमें जितना आपका परिचय है उतना मेरा नहीं। मैं तो एक तरहसे तटस्थ हूँ। परन्तु आपको भीख माँगनेमें लज्जा आती है, अतः मुझसे मंगवा रहे हैं। कुछ हानि नहीं, परन्तु यदि अपील व्यर्थ गई तो आप ही की हानि है और सफल हुई तो आप ही का लाभ है। आपके द्रव्यका सहयोग पाकर जो विद्यार्थी विद्यार्जन करेंगे उनका कल्याण होगा और उनके द्वारा जैनधर्मका विकास होगा। हमारे कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलङ्क आदि बड़े-बड़े आचार्य जैनधर्मके महान् सिद्धान्तोंको जिन संस्कृत और प्राकृतके ग्रन्थोंमें अङ्कित कर गये हैं आज उन्हें पढ़नेवाले तो दूर रहो उनका नाम तक जाननेवाले इस प्रान्तमें नहीं हैं। क्या यही हमारी उनके प्रति कृतज्ञता है? सम्यक् पठन-पाठनके द्वारा ही उनके ग्रन्थोंका प्रचार हो सकता है और सम्यक्पठन-पाठनकी व्यवस्था बिना पाठशालाके नहीं हो सकती। आपके इतने बड़े प्रान्तमें यह एक ही पाठशाला है जिसमें बड़े-बड़े विद्वानोंके द्वारा विधिवत् अध्ययन कराया जाता है। परन्तु धन के बिना उसकी अवस्था अच्छी नहीं

है, अतः मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग उसे अपना पूरा पूरा सहयोग देवेंगे। आशा है मेरी प्रार्थना व्यर्थ न जावेगी।

उपस्थित जनताने दिल खोलकर चन्दा लिखवाया और १५ मिनटके अन्दर पन्द्रह हजार रुपयोंका चन्दा हो गया। सागरके प्रान्तभरने यथाशक्ति उसमें दान दिया। पश्चात् सभा विसर्जित हुई। बाहरसे जो विद्वान् व धनाढ्य आये थे वे सब अपने-अपने घर चले गये। मैं दूसरे ही दिनसे चन्दाकी वसूलीमें लग गया और यहाँका चन्दा वसूल कर देहातमें भ्रमणके लिये निकल पड़ा।

वैशाखिया श्री पन्नालालजी गढ़ाकोटा

एक मास तक देहातमें भ्रमण करता रहा। इसी भ्रमणमें गढ़ाकोटा पहुँचा जो विशेष उल्लेखनीय है। यहाँपर श्री पन्नालालजी वैशाखिया बड़े धार्मिक पुरुष थे। आपके १००००) का परिग्रह था। आप प्रातःकाल सामायिक करते थे, अनन्तर शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर मन्दिर जाते थे और तीन घंटा वहाँ रहकर पूजन पाठ तथा स्वाध्याय करते थे।

यहीं पर श्री फुन्दीलालजी थे। छहघरियाके साथ मेरा परिचय हो गया। आप गानविद्याके आचार्य थे। जिस समय आप भैरवीमें गाजे बाजेके साथ सिद्धपूजा करते थे उस समय श्रोतागण मुग्ध हो जाते थे। आपको समयसारका अच्छा ज्ञान था। आप भी मन्दिरमें बहुत काल लगाते थे। यहाँ पर श्री शोधिया दरयावसिंहजी भी कभी-कभी इन्दौरसे आ जाया करते थे। आप यद्यपि सर सेठ साहबके पास इन्दौरमें रहने लगे थे, पर आपका घर गढ़ाकोटा ही था। आप बड़े निर्भीक वक्ता थे। उन दिनों दैवयोगसे आपका भी समागम मिल गया। आपका शिक्षाके विषयमें यह सिद्धान्त था कि बालकोंको सबसे पहले धर्मकी

शिक्षा देना चाहिये जिससे कि वे धर्मसे च्युत न हो सकें। इसमें उनकी प्रबल युक्ति यह थी कि देखो, अंग्रेजीके विद्वान् प्रथम धर्मकी शिक्षा न पानेसे इस व्यवहार धर्मको दम्भ बताने लगते हैं, अतः पहले धर्म विद्या पढ़ाओ, पश्चात् संस्कृत। पर मेरा कहना यह था कि बालकोंको धर्ममें देवदर्शन तथा पूजनकी शिक्षा तो दी ही जाती है, अतः बनारसकी प्रथम परीक्षा दिलानेके बाद यदि धर्मशास्त्रका अध्ययन कराया जावे तो लड़के व्युत्पन्न होंगे। कहनेका तात्पर्य यह है कि यहाँपर आनन्दसे धर्म चर्चामें पन्द्रह दिन बीत गये।

पन्नालालजी वैशाखिया तीन घण्टा मन्दिरमें बिताते थे। पश्चात् भोजन करते थे, फिर सामायिकके बाद एक बजे दुकानपर जाते थे। आपके कपड़ेका व्यापार था। आपका नियम था कि एक दिनमें ५०) का ही कपड़ा बेंचना, अधिकका नहीं और एक रुपये पर एक आना मुनाफा लेना, अधिक नहीं। आपसे ग्राहक मोल तोल नहीं करता था। यहाँ तक देखा गया कि यदि कोई ग्राहक विवाहके लिए १००) का कपड़ा लेने आया तो आपने ५०), ५०) के हिसाबसे दो दिनमें दिया। आप चार बजे तक ही दुकानमें रहते थे। बादमें घर चले जाते थे। आपकी धर्मपत्नी मुलाबाई बड़ी सुशील थी। आपके तीन या चार किसान थे जो आपसे ३००) या ४००) कर्ज लिये थे, कुछ अनाज भी लिये थे। पर आपको कभी भी उनके घर नहीं जाना पड़ा। वह लोग घर पर आकर गल्ला व रुपया दे जाते तथा ले जाते थे। आपका भोजन ऐसा शुद्ध बनता था कि अतिथि—त्यागी ब्रह्मचारीके भी योग्य होता था।

अन्तमें आपका मरण समाधिपूर्वक हुआ। आपकी धर्मपत्नी मुलाबाई पतिशोकसे दुखी हुई। परन्तु सुबोध थी, अतः सागर आकर बाईजीके पास सुखपूर्वक रहने लगी तथा विद्याभ्यास

करने लगी। उसे नाटक समयसार कण्ठस्थ था। वह बाईजीको माता और मुझे भाई मानने लगी। इसप्रकार चन्दा वसूलकर मैं सागर आ गया।

चन्देकी धुनमें

एक मास बहुत परिश्रम करना पड़ा, इससे शरीर थक गया। एक दिन भोजन करनेके बाद मध्याह्नमें सामायिकके लिये बैठा। बीचमें निद्रा आने लगी। निद्रामें क्या देखता हूँ कि एक आदमी आया और कहता है कि 'वर्णीजी! हमारा भी चन्दा लिख लो।' मैंने कहा—'आप तो बड़े आदमी हैं। यदि कलशोत्सव पर आते तो १०००) से कम न लेते। परन्तु क्या कहें? वह तो समय गया अब पछतानेसे क्या लाभ? आप ही कहिये क्या देवेंगे? उन्होंने कहा—'तीन सौ रुपया देवेंगे? मैं बोला—'यह आपको शोभा नहीं देता। आप विवेकी हैं। विद्याके रसको जानते हैं, अतः ऐसा व्यवहार आपके योग्य नहीं।' वह बोले—'अच्छा चारसौ रुपया ले लो।' मैंने कहा—'फिर वही बात, ठीक ठीक कहिये।' वह बोले—'५००) ये हैं नक़द लीजिये।' मैंने दोनों हाथसे रुपया फेंक दिये और निद्रा भंग हो गई। जमीन पर गिर पड़ा। जमीनमें शिर लगनेसे आवाज हुई। बाईजी आ गईं। बोलीं 'भैया सामायिक करते हो या शिर फोड़ते हो।" मैंने कहा—'सामायिकमें स्वप्न आ गया।' कहनेका तात्पर्य यह है कि जो धारणा हृदयमें हो जाती है वही तो स्वप्नके समयमें आती है। इसप्रकार सागर पाठशालाके ध्रौव्यफण्डमें २६०००) के लगभग रुपया हो गया। श्री सिंघई कुन्दनलालजी के पिता कारेलालजीने भी अपने स्वर्गवासके समय ३०००) तीन हजार दिये।

श्री सिंघई रतनलालजी

इतनेमें ही श्री सिंघई रतनलालजी साहब, जो कि बहुत ही होनहार और प्रभावशाली व्यक्ति थे तथा पाठशालाके कोषाध्यक्ष थे, कोषाध्यक्ष ही नहीं पाठशालाकी पूरी सहायता करते थे और जिन्होंने सर्व प्रथम अच्छी रकम बोलकर कलशोत्सवके समय हुए पन्द्रह हजार रुपयोंके चन्देका श्रीगणेश कराया था, एकदम ज्वरसे पीड़ित हो गये। आपने बाईजीको बुलाया और कहा—'बाईजी! अब पर्यायका कोई विश्वास नहीं। डालचन्द्र अभी बालक है, परन्तु इसकी रक्षा इसका पुण्य करेगा। मैं कौन हूँ? मैं अब परलोककी यात्रा कर रहा हूँ। मेरी माँ व गृहिणी सावधान हैं। मेरी माताका आपसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः आप उन्हें शोक सागरमें निमग्न न होने देंगी। इनका आपमें अटल विश्वास है। डालचन्द्र मेरा छोटा भाई है। इसकी रुचि पूजन तथा स्वाध्यायमें निरन्तर रहती है तथा इसे कोई व्यसन नहीं, यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। मुझे किसी बातकी चिन्ता नहीं। यदि है तो केवल इस बातकी कि इस प्रांतमें कोई विद्यायतन नहीं है। दैवयोगसे यह एक विद्यालय हुआ है, परन्तु उसमें यथेष्ट द्रव्य नहीं। परन्तु अब क्या कर सकता हूँ? यदि मेरी आयु अवशेष रहती तो थोड़े ही कालमें एक लाख रुपयाका ध्रौव्यकोष कर देता पर अब व्यर्थकी चिन्तासे क्या लाभ? मैं दश हजार रुपए विद्यादानमें देता हूँ।' बाईजीने कहा—'भैया! यही मनुष्य पर्यायका सार है।'

सिं० रतनलालजीने उसी समय दस हजार रुपए पृथक् करा दिये और छोटे भाईसे कहा—'डालचन्द्र! संसार अनित्य है। इसमें कदापि ध्रौव्यकल्पना न करना। न्यायमार्गसे जीवन बिताना। जो तुम्हारी आय है उसमें सन्तोष रखना। जो अपने धर्मायतन हैं उनकी रक्षा करना तथा जो अपने यहाँ विद्यालय है उसको

निरन्तर चिन्ता रखना। पुण्योदयसे यह मानुष तन मिला है इसे व्यर्थ न खोना। अब हमारा जो सम्बन्ध था वह छूटता है। माँ को हमारे वियोगका दुःख न हो। यह जो तुम्हारी भौजाई और उसका बालक है वे दुःखी न होने पावें। हम तो निमित्तमात्र हैं। प्राणियोंके पुण्य पापके उदय ही उनके सुख दुःख दाता हैं। अब हम कुछ घन्टाके ही मेहमान हैं। कहाँ जावेंगे इसका पता नहीं। परन्तु हमें धर्म पर दृढ़ विश्वास है, इससे हमारी सद्गति ही होगी। बाई जी अब हमारी अन्तिम जयजिनेन्द्र है।'

रतनलालजीका ऐसा भाषण सुनकर सबकी धर्ममें दृढ़ श्रद्धा हो गई। बाईजी वहाँसे चलकर कटरा आई कि आध घंटा बाद सुननेमें आया कि रतनलालकीका स्वर्गवास हो गया। आपके शवके साथ हजारों आदमियोंका समारोह था। उनके समाधिमरण की चर्चा सुन कर सब मुग्ध हो जाते। आपकी दाह क्रिया कर लोग अपने अपने घर चले गये। आपके वियोगसे समाज बहुत खिन्न हुई, परन्तु कर क्या सकते थे?

आपके छोटे भाई सिं० डालचन्द्रजी भी बहुत योग्य व्यक्ति हैं। आपका शास्त्रमें बहुत अच्छा ज्ञान है। यद्यपि आप संस्कृत नहीं पढ़े हैं तथापि संस्कृतके धर्मशास्त्रमें आपकी अच्छी प्रवृत्ति है। आप प्रतिदिन पूजन करते हैं और एक घण्टा स्वाध्याय करते हैं। आपके यहाँ सदावर्त देनेकी जो पद्धति थी उसे आप बराबर चलाते हैं। आप तथा आपका घराना प्रारम्भसे ही पाठशालाका सहायक रहा है।

दानवीर श्री कमरया रज्जीलालजी

कमरया रज्जीलालजीके विषयमें पहले कुछ लिख आया हूँ। धीरे-धीरे उनके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। एक दिन

आपने (दानवीर कमरया रज्जीलालजीने) सदस्योंसे मजूरी ली और पहलेसे भी अच्छा भवन बनवा दिया। दोनों भवनोंके बीचमें एक बड़ा हाथीदरवाजा बनवाया।·········दरवाजेके ऊपर चन्द्रप्रभ चैत्यालय बनवा दिया।

[पृ० २८७]

आप बोले—'वर्णीजी ! हमारा दान करनेका भाव है।' मैंने कहा—'अच्छा है। जो आपकी इच्छा हो सो कीजिये।' आप बोले—'हम तो पञ्चकल्याणक करावेंगे।' मैंने कहा—'आपकी इच्छा हो सो कीजिये।'

आप कलक्टर आदिके पास गये। जमींदारोंसे भी मिले। परन्तु उन्होंने अपनी जमीन पर मेला भरानेके लिए २०००) माँगे। आप व्यर्थ पैसा खर्च करना उपयुक्त नहीं समझते थे, अतः जमींदारकी अनुचित माँगके कारण आपका चित्त पञ्चकल्याणक से विरक्त हो गया। फिर हमसे कहा—'हमारी इच्छा है कि पाठशालाका भवन बनवा देवें।' हमने कहा—'जो आपकी इच्छा।' बस, कथा था ? आपने पाठशालाके सदस्योंसे मंजूरी लेकर पाठशालाका भवन बनवाना प्रारम्भ कर दिया और अहर्निश परिश्रमकर ५० छात्रोंके योग्य भवन तथा एक रसोई घर बनवा दिया। साथमें १००) मासिक भी देने लगे।

कारण पाकर पाठशालाके वर्तमान प्रबन्धसे आपका चित्त उदास हो गया। आप बोले—'हम अपनी पाठशाला पृथक् करेंगे।' हमने कहा—आपकी इच्छा।' आपने कुछ माह तक पृथक् पाठशालाका संचालन किया। पश्चात् फिर प्राचीन पाठशालामें मिला दी और पूर्ववत् सहायता देने लगे। कुछ दिन बाद आप बोले कि 'हम पाठशालाके लिये एक भवन और बनवाना चाहते हैं।' मैंने कहा—बहुत अच्छा।'

आपने सदस्योंसे मंजूरी ली और पहलेसे भी अच्छा भवन बनवा दिया। दोनों भवनोंके बीचमें एक बड़ा हाथी दरवाजा बनवाया जिसमें बराबर हाथी जा सकता है। दरवाजेके ऊपर चन्द्रप्रभ चैत्यालय बनवा दिया जिसमें छात्र लोग प्रतिदिन दर्शन पूजन स्वाध्याय करते हैं। आपने एक बात विलक्षण की, जो प्रायः असम्भव थी और पीछे आपके भतीजेके विरोधसे मिट गई।

यदि विरोध न होता तो पाठशालाको स्थायी सम्पत्ति अनायास मिल जाती। वह यह है कि आपके भाई श्री लक्ष्मणदासजी कमरया मरते समय ३४०००) का ट्रष्ट कर गये थे। आपके प्रयत्नसे उसका १८०) मासिक पाठशालाको मिलने लगा और ६ वर्ष तक बराबर मिलता रहा, परन्तु आपके भतीजेने विरोध किया जिससे बन्द हो गया।

आपके दूसरे भतीजे श्री मुन्नालालजी हैं जो बहुत ही योग्य और कर्मठ व्यक्ति हैं। आपने उस विषयमें बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु योग्य सामग्रीके अभावमें प्रयत्न सफल नहीं हो सका। श्री मुन्नालालजी कमरयाने अपने काकाके उपदेशानुसार पाठशालाके अन्दर एक धर्मशालाका निर्माण करा दिया, जिससे अतिथियों और यात्रियोंको ठहरने आदिकी उत्तम सुविधा हो गई। पाठशाला के अन्दरके दोनों कूपोंका भी जीर्णोद्धार आपने करा दिया।

चन्द्रप्रभ चैत्यालयका कलशोत्सव आपने बड़ी धूमधामके साथ किया था। हजारों आदमियोंकी भीड़ एकत्रित हुई थी। सबके भोजन-पानकी व्यवस्था आपने ही की थी। आपके अपूर्व त्यागसे जङ्गलमें मङ्गल होगया। मोराजीका वह बीहड़ स्थान जहाँसे रात्रिके समय निकलनेमें लोग भयका अनुभव करते थे। आपके सर्वस्व त्यागसे सागरका एक दर्शनीय स्थान बन गया। एक छोटी-सी पहाड़ीकी उपत्यिकामें सड़कके किनारे चूनासे पुते हुए धवल उत्तुङ्ग भवन जब चाँदनी रातमें चन्द्रमाकी उज्ज्वल किरणोंका सम्पर्क पाकर और भी अधिक सफेदी छोड़ने लगते हैं तब ऐसा लगता है मानो यह कमरया रज्जीलालजीकी अमर निर्मल कीर्तिका पिण्ड ही हो।

इसी मोराजी भवनके विशाल प्राङ्गणमें परवारसभा हुई। सभाके अध्यक्ष थे श्री स्वर्गीय श्रीमन्त सेठ पूरनशाहजी सिवनी। जबलपुर, कटनी, खुरई आदि स्थानोंसे समाजके प्रायः प्रमुख-

प्रमुख सब लोग आये। कमरयाजी द्वारा निर्मित भव्य भवन देखकर सभी प्रमुदित हुए और सभीने उनके सामयिक दानकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की।

इतना नहीं, जब आपका स्वर्गवास होने लगा तब १६०००) दान और भी किया, जिसमें १००००) विद्यालयको तथा ६०००) दोनों मन्दिरोंके लिये थे। आप निरन्तर छात्रोंको भोजनादिसे तृप्त करते थे। आपकी प्रशंसा कहाँतक करें? इतना ही बहुत है कि आप योग्य नररत्न थे। आपके बाद आपकी धर्मपत्नी भी निरन्तर पाठशालाकी सहायता करती रहती थीं। आपकी एक सुपुत्री गुलाबबाई है जो कि सहडोल विवाही है, परन्तु अधिकतर सागर ही रहती है।

जैन जातिभूषण श्री सिंघई कुन्दनलालजी

सिंघई कुन्दनलालजी सागरके सर्वश्रेष्ठ सहृदय व्यक्ति हैं। आपका हृदय दयासे सदा परिपूर्ण रहता है। जबतक आप सामने आये हुए दुःखी मनुष्यको शक्त्यनुसार कुछ दे न लें तबतक आपको सन्तोष नहीं होता। न जाने कितने दुःखी परिवारोंको धन देकर, अन्न देकर, वस्त्र देकर और पूँजी देकर सुखी बनाया है। आप कितने ही अनाथ छोटे-छोटे बालकोंको जहाँ कहींसे ले आते हैं और अपने खर्चसे पाठशालामें पढ़ाकर उन्हें सिलसिलेसे लगा देते हैं। आप प्रतिदिन पूजन, स्वाध्याय करते हैं, अतिशय भद्र परिणामी हैं, प्रारम्भसे ही पाठशालाके सभापति होते आरहे हैं और आपका वरद हस्त सदा पाठशालाके ऊपर रहता है।

एकदिन आप बाईजीके यहाँ बैठे थे। साथमें आपके साले कुन्दनलालजी घीवाले भी थे। मैंने कहा-'देखो, सागर इतना

बड़ा शहर है, परन्तु यहाँ पर कोई धर्मशाला नहीं है। उन्होंने कहा—'हो जावेगी।'

दूसरे ही दिन श्री कुन्दनलालजी घीवालोंने कटराके नुक्कड़ पर बैरिष्टर बिहारीलालजी रायके सामने एक मकान ३४००)में ले लिया और इतना ही रुपया उसके बनानेमें लगा दिया। आजकल वह २५०००) की लागतका है और सिंघईजीकी धर्मशालाके नामसे प्रसिद्ध है। हम उसी मकानमें रहने लगे।

एक दिन मैंने सिंघईजीसे कहा कि यह सब तो ठीक हुआ, परन्तु आपके मन्दिरमें सरस्वतीभवनके लिये एक मकान जुदा होना चाहिये। आपने तीन मासके अन्दर ही सरस्वतीभवनके नामसे एक मकान बनवा दिया, जिसमें ४०० आदमी आनन्दसे शास्त्र प्रवचन सुन सकते हैं। महिलाओं और पुरुषोंके बैठनेके पृथक् पृथक् स्थान हैं।

एक दिन सिंघईजी पाठशालामें आये। मैंने कहा यहाँ और तो सब सुभीता है परन्तु सरस्वतीभवन नहीं है। विद्यालयकी शोभा सरस्वतीमन्दिरके विना नहीं। कहनेकी देर थी कि आपने मोराजीके उत्तरकी श्रेणीमें एक विशाल सरस्वतीभवन बनवा दिया।

'सरस्वतीभवनका उद्घाटन समारोहके साथ होना चाहिये और इसके लिये जयधवल तथा धवल ग्रन्थराज आना चाहिये' ....आपसे मैंने कहा। 'यहाँ कहाँ मिल सकेंगे?'...आपने कहा। 'सीताराम शास्त्री सहारनपुरमें हैं। उनसे हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनके पास दोनों ही ग्रन्थराज हैं, परन्तु २०००) लिखाईके माँगते हैं।'....मैंने कहा। 'मँगा लीजिये'....आपने प्रसन्नतासे उत्तर दिया।

मैंने दोनों ग्रन्थराज मगा लिये। जब शास्त्रीजी ग्रन्थ लेकर आये तब उन्हें २०००) के अतिरिक्त सुसज्जित वस्त्र और विदाई देकर विदा किया। सरस्वतीभवनके उद्घाटनका मुहूर्त्त आया।

किसीने आपकी धर्मपत्नीसे कह दिया कि आप सरस्वतीभवनमें प्रतिमा भी पधरा दो, जिससे निरन्तर पूजा होती रहेगी। सरस्वतीभवनसे क्या होगा? उससे तो केवल पढ़े लिखे लोग ही लाभ उठा सकेंगे। सिंघैनजीके मनमें बात जम गयी, फिर क्या था? पत्रिका छप गई कि अमुक तिथिमें सरस्वतीभवनमें प्रतिमाजी विराजमान होंगी। यह सब देखकर मुझे मनमें बहुत व्यग्रता हुई। मेरा कहना था कि मोराजीमें एक चैत्यालय तो है ही, अब दूसरेकी आवश्यकता क्या है? पर सुननेवाला कौन था? मैं मन ही मन व्यग्र होता रहा।

एक दिन सिंघईजीने निमन्त्रण किया। मैंने मनमें ठान ली कि चूँकि सिंघईजी हमारा कहना नहीं मान रहे हैं, अतः उनके यहाँ भोजनके लिये नहीं जाऊँगा। जब यह बात बाईजीने सुनी तब हमसे बोलीं—'भैया! कल सिंघईजीके यहाँ निमन्त्रण है।' मैंने कहा—'हाँ' है तो, परन्तु मेरा विचार जानेका नहीं है।' बाईजीने कहा—'क्यों नहीं जानेका है।' मैंने कहा—'ये सरस्वतीभवनमें प्रतिमाजी स्थापित करना चाहते हैं।' बाईजीने कहा—'बस यही, पर इसमें तुम्हारी क्या क्षति हुई? मान लो, यदि तुम भोजनके लिये न गये और उस कारण सिंघईजी तुमसे अप्रसन्न हो गये तो उनके द्वारा पाठशालाको जो सहायता मिलती है वह मिलती रहेगी क्या?' मैंने कहा—'न मिले हमारा क्या जायगा?' हमारा उत्तर सुनकर बाईजीने कहा कि 'तुम अत्यन्त-नादान हो। तुमने कहा—हमारा क्या जायगा? अरे मूर्ख? तेरा तो सर्वस्व चला जायगा। आखिर तुम यही तो चाहते हो कि विद्यालयके द्वारा छात्र पण्डित बनकर निकलें और जिनधर्मकी प्रभावना करें। यह विद्यालय आजकल धनिक वर्गके द्वारा ही चल रहे हैं। यद्यपि पण्डित लोग चाहें तो चला सकते हैं, परन्तु उनके पास द्रव्यकी त्रुटि है। यदि उनके पास पुष्कल द्रव्य होता तो

वे कदापि पराधीन होकर अध्ययन-अध्यापनका कार्य नहीं करते। अतः समयको देखते हुए इन धनवानोंसे मिलकर ही अभीष्ट कार्यकी सिद्धि हो सकेगो। आज पाठशालामें ६००) मासिकसे अधिक व्यय है यह कहाँसे आता है ? इन्हीं लोगोंकी बदौलत तो आता है ? अतः भूलकर भी न कहना कि मैं सिंघईजीके यहाँ भोजनके लिये नहीं जाऊँगा।' मैंने बाईजीकी आज्ञाका पालन किया।

सरस्वतीभवनके उद्घाटनके पहले दिन प्रतिमाजी विराजमान करनेका मुहूर्त हो गया। दूसरे दिन सरस्वतीभवनके उद्घाटनका अवसर आया। मैंने दो अलमारी पुस्तकें सरस्वतीभवनके लिये भेंट कीं। प्रायः उनमें हस्त लिखित ग्रन्थ बहुत थे। न्यायदीपिका परीक्षामुख, आप्तपरीक्षा, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, सूत्रजी सटीक, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, जैनेन्द्र-व्याकरण, समयसार, प्रवचनसार, आदिपुराण आदि अनेक शास्त्र हस्तलिखित थे।

उद्घाटन सागरके प्रसिद्ध वकील स्वर्गीय श्रीरामकृष्ण रावके द्वारा हुआ। अन्तमें मैंने कहा कि 'उद्घाटन तो हो गया, परन्तु इसकी रक्षाके लिये कुछ द्रव्यकी आवश्यकता है।' सिंघईजीने २५०१) प्रदान किये। अब मैंने आपकी धर्मपत्नीसे कहा कि 'यह द्रव्य बहुत स्वल्प है, अतः आपके द्वारा भी कुछ होना चाहिये।' आप सुनकर हँस गईं। मैंने प्रकट कर दिया कि २५०१) सिंघैन-जीका लिखो। इस प्रकार ५००२) भवनकी रक्षाके लिये हो गये। यह सरस्वतीभवन सुन्दररूपसे चलता है। लगभग ५००० हजार पुस्तकें होंगी।

कुछ दिन हुए कि सागरमें हरिजन आन्दोलन आरम्भ हो गया। मन्दिरोंमें सबको दर्शन मिलना चाहिए, क्योंकि भगवान् पपितपावन हैं। असवर्ण लोगोंका कहना था कि या तो 'पतित पावन' इस स्तोत्रका पाठ छोड़ दो या हमें भी भगवान्‌के दर्शन

करने दो। बात विचारणीय है, परन्तु यहाँ तो इतनी गहरी खाई है कि उसका भरा जाना असम्भवसा है। जब कि यहाँ दस्सों तकको दर्शन पूजनसे रोकते हैं तब असवर्णोंकी कथा कौन सुनने चला? उसे सुनकर तो बाँसों उछलने लगते हैं। क्या कहें? समयकी बलिहारी है। आत्मा तो सबका एक लक्षणवाला है। केवल कर्मकृत भेद है। चारों गतिवाला जीव सम्यग्दर्शनका पात्र है। फिर क्या शूद्रोंके सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। पुराणोंमें तो चाण्डालों तकके धर्मात्मा होनेकी कथा मिलती है। निकृष्टसे निकृष्ट जीव भी सम्यग्दर्शनका धारी हो सकता है। सम्यग्दर्शनकी बात तो दूर रहो, अस्पृश्य शूद्र श्रावकके व्रत धर सकता है। अस्तु, इस कथाको छोड़ो।

मैंने सिंघईजीसे कहा—'आप एक मानस्तम्भ बनवा दो, जिसमें ऊपर चार मूर्तियाँ स्थापित होंगी। हर कोई आनन्दसे दर्शन कर सकेगा।' सिंघईजीके उदार हृदयमें वह बात आ गई। दूसरे ही दिनसे भैयालाल मिस्त्रीकी देखरेखमें मानस्तम्भका कार्य प्रारम्भ हो गया और तीन मासमें बनकर खड़ा हो गया। पं० मोतीलालजी वर्णीद्वारा समारोहसे प्रतिष्ठा हुई। उत्तुङ्ग मानस्तम्भको देखकर समवसरणके दृश्यकी याद आ जाती है। सागरमें प्रतिवर्ष महावीर जयन्तीके दिन विधिपूर्वक मानस्तम्भ और तत्स्थ प्रतिमाओंका अभिषेक होता है, जिसमें समस्त जैन नर-नारियोंका जमाव, होता है।

इस प्रकार सिंघई कुन्दनलालजीके द्वारा सतत धार्मिक कार्य होते रहते हैं। ऐसा परोपकारी जीव चिरायु हो। आपके लघु भ्राता श्री नाथूरामजी सिंघईने भी दस हजार रुपया लगाकर एक गंगा-जमुनी चाँदी सोनेका विमान बनवा कर मन्दिरजीको समर्पित किया है। जो बहुत ही सुन्दर है तथा सागरमें अपने ढंगका एक ही है।

द्रोणगिरि

द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र बुन्देलखण्डके तीर्थक्षेत्रोंमें सबसे अधिक रमणीय है। हरा भरा पर्वत और समीप ही बहती हुई युगल नदियाँ देखते ही बनती हैं। पर्वत अनेक कन्दराओं और निर्झरों से सुशोभित है। श्री गुरुदत्त आदि मुनिराजोंने अपने पवित्र पाद-रजसे इसके कण कणको पवित्र किया है। यह उनका मुक्ति-स्थान होनेसे निर्वाणक्षेत्र कहलाता है। यहाँ आनेसे न जाने क्यों मनमें अपने आप असीम शान्तिका संचार होने लगता है। यहाँ ग्राममें एक और ऊपर पर्वतपर सत्ताईस जिन मन्दिर हैं। ग्रामके मन्दिरमें श्री ऋषभदेव स्वामीकी शुभ्रकाय विशाल प्रतिमा है। पर निरन्तर अँधेरा रहनेमें उसमें चमगीदड़ें रहने लगीं, जिसने दुर्गन्ध आती रहती थी। मैंने एक दिन सिंघईजी से कहा—'द्रोण-गिरि क्षेत्रके गाँवके मन्दिरमें चमगीदड़ रहती हैं, जिससे बड़ी अविनय होती है। यदि देशी पत्थरकी एक वेदी बन जावे और प्रकाशके लिये खिड़कियाँ रख दी जावें तो बहुत अच्छा हो।'

सिंघईजीके विशाल हृदयमें यह बात भी समा गई, अतः हमसे बोले कि 'अपनी इच्छाके अनुसार बनवा लो।' मैंने भैया-लाल मिस्त्रीको, जिसने कि मानस्तम्भ बनवाया था, सब बातें समझा दीं। उसने उत्तमसे उत्तम वेदी बना दी। मैं स्वयं वेदी और कारीगर को लेकर द्रोणगिरि गया तथा मन्दिरमें यथास्थान वेदी लगवा दी एवं प्रकाशके लिये खिड़कियाँ रखवा दीं। मन्दिरकी दालानमें चार स्तम्भ थे। उन्हें अलग कर ऊपर गाटर डलवा दिये, जिससे स्वध्यायके लिये पुष्कल स्थान निकल आया। पहले वहाँ दस आदमी कष्टसे बैठ पाते थे, अब वहाँ पचास आदमियोंके बैठने लायक स्थान हो गया।

यहाँ एक बात विशेष यह हुई कि जहाँ हम लोग ठहरे थे

वहाँ दरवाजेमें मधुमक्खियोंने छाता लगा लिया, जिससे आने जानेमें असुविधा होने लगी। मालियों ने विचार किया कि अब सब सो जावें तब धूम कर दिया जावे, जिससे मधुमक्खियाँ उड़ जावेंगी। ऐसा करनेसे सहस्रों मक्खियाँ मर जातीं, अतः यह बात सुनते ही मैंने मालियोंसे कहा कि 'भाई ! वेदी जड़ी जावे, चाहे नहीं जड़ी जावे, पर यह कृत्य तो हम नहीं देख सकते। तुम लोग भूलकर भी यह कार्य नहीं करना।' भरोसा माली धार्मिक था। उसने कहा कि 'आप निश्चिन्त रहिये, हम ऐसा काम न करेंगे' अनन्तर हम श्री जिनेन्द्रदेवके पास प्रार्थना करने लगे कि "हे प्रभो आपकी मूर्तिके लिये ही वेदी बन रही है। यदि यह उपद्रव रहा तो हम लोग प्रातःकाल चले जावेंगे। हम तो आपके सिद्धान्तके ऊपर विश्वास रखते हैं। परजीवोंको पीड़ा पहुँचाकर धर्म नहीं चाहते। आपके ज्ञानमें जो आया है वही होगा। सम्भव है यह विघ्न टल जावे।'....इस प्रकार प्रार्थना करके सो गये। प्रातःकाल उठनेके बाद क्या देखते हैं कि वहाँ पर एक भी मधुमक्खी नहीं है। फिर क्या था ? पन्द्रह दिनमें वेदिका जड़ गई। पश्चात् पण्डित मोतीलालजी वर्णीके द्वारा नवीन वेदिकामें विधिवत् श्री जीविराजमान हो गये।

रूढ़िवादका एक उदाहरण

यह प्रान्त अज्ञान-तिमिरव्याप्त है, अतः अनेक कुरूढ़ियोंका शिकार हो रहा है। क्या जैन, क्या अजैन, सभी पुरानी लीकको पीट रहे हैं और धर्मकी ओटमें आपसी वैमनस्यके कारण एक दूसरेको परेशान करते रहते हैं। इसी द्रोणगिरिकी बात है। नदीके घाटपर एक ब्राह्मणका खेत था।। उसका लड़का खेतकी रखवाली करता था। एक गाय उसमें चरनेके लिये आई और उसने

भगानेके लिये एक छोटा-सा पत्थर उठाकर मार दिया। गाय भाग गई। दैवयोगसे वही गाय पन्द्रह दिन बाद मर गई। ग्रामके ब्राह्मण तथा इतर समाजवालोंने उस बालकको ही नहीं उसके सर्वकुटुम्बको हत्याका अपराध लगा दिया। बेचारा बड़ा दुखी हुआ। अन्तमें पञ्चायत हुई, मैं भी वहीं था।

बहुतोंने कहा कि इन्हें गङ्गाजीमें स्नान कराकर पश्चात् हत्या करनेवालोंकी जैसी शुद्धि होती है वैसी ही इनकी ही चाहिये। मैंने कहा—'भाई! प्रथम तो इनसे हिंसा हुई नहीं। निरपराध दोषी बनाना न्यायसंगत नहीं। इनके लड़केने गाय भगानेके लिये छोटा-सा पत्थर मार दिया। उसका अभिप्राय गाय भागनेका था, मारनेका नहीं। यथार्थमें उसके पत्थरसे गाय नहीं मरी। पन्द्रह दिन बाद उसकी मौत आ गई, अतः अपने आप मर गई, इसलिये ऐसा दण्ड देना समुचित नहीं।'

बहुतसे कहने लगे-ठीक है, पर बहुतसे पुरानी रूढिवाले कुछ सहमत नहीं हुए। अन्तमें यह निर्णय हुआ कि ये सत्यनारायणकी एक कथा करवावें और ग्राम भरके घर पीछे एक आदमीका भोजन करावें····इस प्रकार शुद्धि हुई। बेचारे ब्राह्मणके सौ रुपया खर्च हो गये। मैं बहुत खिन्न हुआ। तब ब्राह्मण बोला—'आप खेद न करिये मैं अच्छा निपट गया, अन्यथा गङ्गाके कर्म करने पड़ते और तब मेरी गृहस्थी ही समाप्त हो जाती।' यह तो वहाँके रूढ़िवादका एक उदाहरण है। इसी प्रकार वहाँ न जाने प्रतिवर्ष कितने आदमी रूढ़ियोंके शिकार होते रहते हैं।

द्रोणगिरिं क्षेत्रपर पाठशालाकी स्थापना

मैं जब पपौराके परवारसभाके अधिवेशनमें गया तब वहाँ सेंदपा (द्रोणगिरि) निवासी एक भाई गया था। उसने कई

पण्डितोंसे निवेदन किया कि द्रोणगिरिमें एक पाठशाला होनी चाहिये, परन्तु सबने निषेध कर दिया। अन्तमें मुझसे भी कहा कि 'वर्णीजी! द्रोणगिरिमें पाठशालाकी महती आवश्यकता है।' मैंने कहा—'अच्छा जब आऊँगा तब प्रयत्न करूँगा।'

जब द्रोणगिरि आया तब उसका स्मरण हो आया, अतः पाठशालाके खोलनेका प्रयास किया। पर इस ग्राममें क्या धरा था? यहाँ जैनियोंके केवल दो तीन घर हैं जो कि साधारण परिस्थितिके हैं। मेलाके अवसर पर अवश्य आसपासके लोग एकत्रित हो जाते हैं। पर मेला अभी दूर था, इसलिये विचारमें पढ़ गया। इतनेमें ही घुवारामें जलविहार था। वहाँ जानेका अवसर मिला। मैंने वहाँ एकत्रित हुए लोगोंको समझाया कि—'देखो, यह प्रान्त विद्यामें बहुत पीछे है। आप लोग जलविहारमें सैकड़ों रुपये खर्च कर देते हो, कुछ विद्यादानमें भी खर्च करो। यदि क्षेत्र द्रोणगिरिमें एक पाठशाला हो जावे तो अनायास ही इस प्रान्तके बालक जैनधर्मके विद्वान् हो जावेंगे।'

बात तो सबको जच गई, पर रुपया कहाँसे आवे? किसीने कहा—'अच्छा चन्दा कर लो।' चन्दा हुआ, परन्तु बड़ा परिश्रम करने पर भी पचास रुपया मासिकका ही चन्दा हो सका।

घुवारासे गंज गये। वहाँ दो सौ पचास रुपयाके लगभग चन्दा हुआ। सिंघई बृन्दावनदासजी मलहरावालोंने कहा—'आप चिन्ता न करिये। हम यथाशक्ति सहायता करेंगे।' इस प्रान्तमें बाजनेवाले दुलीचन्द्रजी बड़े उत्साही नवयुवक हैं। उन्होंने कहा—'हम भी प्राणपनसे इसमें सहायता करेंगे।' पश्चात् मेलेका सुअवसर आ गया। सागरसे पं० मुन्नालालजी राँधेलीय आ गये। उन्होंने भी घोर परिश्रम किया। सिंघई कुन्दलालजीसे भी कहा कि यह प्रान्त बहुत पिछड़ा हुआ है अतः कुछ सहायता कीजिये। उन्होंने १००) वर्ष देना स्वीकृत किया। अन्तमें पं० मुन्नालालजी और

दुलीचन्द्रजीकी सम्मतिसे बैसाख वदि ७ सं० १९८५ में पाठशाला स्थापित कर दी। पं० गोरेलालजीजी बीस रुपया मासिक पर रख लिया, चार या पाँच छात्र भी आ गये और कार्य यथावत् चलने लगा।

एक वर्ष बीतनेके बाद हम लोग फिर आये। पाठशालाका वार्षिकोत्सव हुआ। पं० जीके कार्य से प्रसन्न होकर इस वर्ष सिंघईजीने बड़े आनन्दसे ५०००) देना स्वीकृत कर लिया। सिंघई वृन्दावनदासजीने एक सरस्वतीभवन बनवा दिया। कई आदमियोंने छात्रोंके रहनेके लिये छात्रालय बना दिया। एक कूप भी छात्रावासमें बन गया। सिंघईजीके छोटे भाई श्री नत्था सिंघईने भी एक कोठा बनवा दिया। छात्रोंकी संख्या २० हो गई और पाठशाला अच्छी तरह चलने लगी। इसमें विशेष सहायता श्री सिं० कुन्दलालजीकी रहती है। आप प्रतिवर्ष मेलाके अवसर पर आते हैं और क्षेत्रका प्रबन्ध भी आप ही करते हैं। आप क्षेत्र कमेटीके सभापति हैं।

इस प्रान्तमें आप बहुत धार्मिक व्यक्ति हैं। अनेक संस्थाओंको यथासमय सहायता करते हैं। हमारे साथ आपका बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। आप निरन्तर हमारी चिन्ता रखते हैं। इस पाठशालाका नाम श्री गुरुदत्त दि० जैन पाठशाला रखा गया।

दया ही मानवका प्रमुख कर्त्तव्य

द्रोणगिरसे लौट कर हम लोग सागर आ गये। एक दिनकी बात है कि मैं पं० वेणीमाधवजी व्याकरणाचार्य और छात्रगणके साथ सायंकालके चार बजे शौचादि क्रियासे निवृत्त होनेके लिये गाँवके बाहर एक मील पर गया था। वहीं कूप पर हाथ पैर धोनेकी तैयारी कर रहा था कि इतनेमें एक औरत बड़े जोरसे रोने

लगी। हम लोगोंने पूछा—'क्यों रोती हो?' उसने कहा—हमारे पैरमें काँटा लग गया है।' हमने कहा—'बतलाओ हम निकालते हैं।' परन्तु बार-बार कहने पर भी वह पैरको न छूने देती थी। कहती थी कि 'मैं जातिकी कोरिन तथा स्त्री हूँ। आप लोग पण्डित हैं। कैसे पैर छूने दूँ?' मैंने कहा—'बेटी! यह आपत्तिकाल है। इस समय पैर छुवानेमें कोई हानि नहीं।' बमुश्किल उसने एक लड़केसे कहा—'बेटा देखो।' लड़केने पैर देख कर कहा—'इसमें खजूरका कांटा टूट गया है जो बिना संडसीके निकलनेका नहीं।' सड़कके ऊपर एक लुहारकी दुकान थी। वहाँ एक छात्र संडसी लेनेके लिये भेजा। छात्रने बड़े अनुनयसे संडसी मांगी, पर उसने न दी। श्री वेणीमाधवजीने कहा—'जबरदस्ती छीन लाओ।' छात्र बलात्कार लुहारसे संडसी छीन लाए। मैंने चाहा कि संडसीसे कांटा निकाल दूँ, परन्तु उस औरतने पैर छुवाना स्वीकार न किया। तब कुछ छात्रोंने उसके हाथ पकड़ लिये और कुछने पैर। मैंने संडसीसे कांटा दबा कर ज्यों ही खींचा त्यों ही एक अंगुलका कांटा बाहर आ गया। साथ ही खूनकी धारा बहने लगी। मैंने पानी ढोलकर धोती फाड़कर पट्टी बाँध दी। उसे मूर्छा आ गई। पश्चात् जब मूर्छा शान्त हुई तब लकड़ीकी मौरी उठानेकी चेष्टा करने लगी, वह लकड़हारी थी। जंगलसे लकड़ियाँ लाई थी। मैंने कहा—'तुम धीरे-धीरे चलो। हम तुम्हारी लकड़ियाँ तुम्हारे घर पहुँचा देवेंगे।' बड़ी कठिनतासे वह मंजूर हुई। हम लोगोंने उसका बोझ शिरपर रखकर उसके मोहल्लामें पहुँचा दिया। उस मोहल्लेके जितने मनुष्य थे, हम लोगोंकी यह प्रवृत्ति देखकर हम लोगोंको देवता कहने लगे और जब कभी भी हम लोग वहाँसे निकलते थे तब दूरसे ही नमस्कार करते थे। लिखनेका तात्पर्य यह है कि मनुष्यको सर्वसाधारण दयाका उद्योग करना चाहिये, क्योंकि दया ही मानवका प्रमुख कर्त्तव्य है।

वेश्याव्यसन

एक दिन मैं भ्रमणके लिये स्टेशनकी ओर जा रहा था। साथमें एक पुलिसके क्लर्क भी थे, जिनका वेतन एकसौ पचीस रुपया मासिक था। कटरा बाजारकी बात है—वृक्षके नीचे एक आदमी पड़ा था, जो शरीरका सुन्दर था और देखनेमें उत्तम जातिका मालूम होता था। उसकी मुखाकृतिसे प्रतीत होता था कि वह शोकावस्थामें निमग्न है मैंने जिज्ञासु भावसे पूछा—'भाई! आप यहाँ निराश्रितकी तरह क्यों पड़े हुए हैं? आप आकृतिसे तो भद्र पुरुष मालूम होते हैं।' वह बोला–मैंने अपने पैरपर स्वयं कुल्हाड़ी मार ली।' मैं कुछ नहीं समझ सका, अतः मैंने पुनः कहा—'इसका क्या तात्पर्य है?' वह बोला—'हमारी आत्मकथा सुनना हो तो शान्त होकर सुन लो। वैसे तो क्लर्क महोदय, जो कि आपके साथ है, सब जानते हैं। परन्तु हमसे ही सुननेकी इच्छा हो और पन्द्रह मिनट का अवकाश हो तो सुननेकी चेष्टा कीजिये, अन्यथा खुशीसे जा सकते हैं।'

उसके उत्तरसे मेरी उत्कण्ठा बढ़ गई। क्लर्क साहबने बहुत कुछ कहा—'चलिये।' मैंने कहा—'नहीं जाऊँगा। कृपाकर आप भी पन्द्रह मिनट ठहर जाइये।' वह मेरे आग्रहसे ठहर गये।

उसने अपनी कथा सुनाना प्रारम्भ किया—'सर्व प्रथम उसने सीतारामका स्मरणकर कहा कि 'हे मङ्गलमय भगवन्! तेरी लीला अपरम्पार है। मैं क्या था और क्या हो गया? अथवा आपका इसमें क्या दोष? मैं ही अपने पतित कर्तव्योंसे इस अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ। मैं जातिका नीच नहीं, ब्राह्मण हूँ। मेरे सुन्दर स्त्री तथा दो बालक हैं, जो कि अब गोरखपुर चले गये हैं। मैं पुलिसमें हवालदार था। मेरे पास पाँच हजार नक़द रुपये थे। बीस रुपया मासिक वेतन था।

एक दिन मैं एक अफ़सरके यहाँ वेश्याका नाच देखनेके लिये चला गया। वहाँ जो वेश्या नृत्य कर रही थी, उसे देखकर मैं मोहित हो गया। दूसरे दिन जब उसके घर गया तब उसने जाल में फँसा लिया। बहुत कहनेसे क्या लाभ ? मेरे पास जो सम्पत्ति थी वह मैंने उसे दे दी। जब रुपया न रहा तब औरतके आभूषण देने लगा। पता लगने पर औरतने मुझे बहुत कुछ समझाया और कहा कि आपकी इस प्रवृत्तिको धिक्कार है। सुन्दर पत्नीको छोड़कर इस अकार्यमें प्रवृत्ति करते हुए आपको लज्जा न आई। अब मैं अपने बालकोंको लेकर अपने पिताके घर जाती हूँ। वहीं पर इन्हें शिक्षित बनाऊँगी। यदि आपकी प्रवृत्ति अच्छी हो जाय तो घर आ जाना। यह सब पापका फल है। आपने पुलिसके मुहकमामें रहकर जो गरीबोंको सताया है उसीका प्रत्यक्ष फल भोग रहे हो और आगे भोगोगे....। इतना कहकर वह अपने पिताके घर चली गई। जब मेरे पास कुछ नहीं रहा तब इधर वेश्याने अपने पास आनेसे रोक दिया और उधर निरन्तरकी गैरहाजिरीसे पुलिसकी नौकरी छूट गई। मैं दोनों ओरसे भ्रष्ट हो गया। न इधरका रहा न उधरका रहा। अब मैं इसी पेड़के नीचे पड़ा रहता हूँ, मोहल्लेमें जाकर आधा सेर आटा माँग लाता हूँ और चार टिक्कड़ बनाकर खा लेता हूँ।'

मैंने कहा—'इससे अच्छा तो यह होता कि आप अपने घर चले जाते और अपने बालकोंको देखते।' वह बोला—'यह तो असम्भव है।' मैंने कहा—'जब कि वह आपको अपने घर नहीं आने देती तब यहाँ रहनेसे क्या लाभ ?' वह बोला—'लाभ न होता तो क्यों रहता ?' मैंने पूछा—'क्या लाभ है ?' वह बोला–'सुनो, जब वह सायंकाल भ्रमणके लिये बाहर जाती है तब मैं बड़ी अदबके साथ कहता हूँ 'कहिये मिजाज शरीफ'....तब वह मेरे ऊपर पानकी पीक छोड़ देती है और १० गालियाँ देती हुई

मुखातिब होकर कहती है कि 'बेशरम ! यहाँसे घर चला जा। जो रुपया मुझे दिया है वह भी ले जा'....बस मैं इसीसे कृतकृत्य हो जाता हूँ....यही मेरी आत्मकथा है। मेरी इस कथाको सुनकर जो इस पापसे बचें वे धन्य हैं। वेश्या तो उपलक्षण है। परकीय स्त्री मात्रसे आत्मरक्षा करनी चाहिये। अथवा परस्त्री तो त्याज्य है ही, विवेकी मनुष्योंको स्वस्त्रीमें भी अत्यासक्ति न रखना चाहिये।

वेश्या व्यसनकी भयंकरताका ध्यान करते हुए हम उस दिन भ्रमणके लिये नहीं गये। वहींसे वापिस लौट आये।

महिलाका विवेक

सागरमें मन्त्री पूर्णचन्द्रजी बहुत बुद्धिमान् विवेकी हैं। उनके मित्र श्री पन्नालालजी बड़कुर थे। आप दोनोंकी परस्पर संजातमें कपड़ेकी दुकान थी। दोनोंमें सहोदर भाइयों जैसा प्रेम था। दैवयोगसे श्री पन्नालालजीका स्वास्थ्य खराब होने लगा। आप चार मास पाठशालाके स्वच्छ भवनमें रहे, परन्तु स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। चार मास बाद आप घर आ गये। अन्तमें आपको जलोदर रोग हो गया। एक दिन पेशाब बन्द हो गई, जिससे बेचैनी अधिक बढ़ गई। सदरसे डाक्टर साहब आये। उन्होंने मध्यान्हमें मदिराका पान करा दिया। यद्यपि इसमें न उनकी स्त्रीकी सम्मति थी और न पूर्णचन्द्रजीकी ही राय थी। फिर भी कुटुम्बके कुछ लोगोंने बलात्कार पान करा दिया।

उनकी धर्मपत्नीने मुझे बुलाया, परन्तु मैं उस दिन दमोह गया था। जब चार बजेकी गाड़ीसे वापिस आया और मुझे उनकी अधिक बीमारीका पता चला तो मैं शीघ्र ही उनके घर चला गया। उनकी धर्मपत्नीने कहा—'वर्णीजी ! मेरे पतिकी अवस्था शोचनीय है, अतः इन्हें सावधान करना चाहिए। साथ ही

इनसे दान भी कराना चाहिये, अतः अभी तो आप जाईये और सायंकालकी सामयिक कर आ जाईये।'

मैं कटरा गया और सामायिक आदिकर शामके ७ बजे बहुकुरजीके घर पहुँच गया। जब मैं वहाँ पहुँचा तब चमेलीचौकको अस्पतालका डाक्टर था। उसने एक आदमीसे कहा कि 'हमारे साथ चलो, हम बरांडी देंगे। उसे एक छोटे ग्लाससे पिला देना। इन्हें शान्तिसे निद्रा आ जावेगी।' पन्द्रह मिनट बाद वह आदमी दवाई लेकर आ गया। छोटे ग्लासमें दवाई डाली गई। उसमें मदिराकी गन्ध आई। मैंने कहा—'यह क्या है?' कोई कुछ न बोला। अन्तमें उनकी धर्मपत्नी बोली—'मदिरा है। यद्यपि पूर्णचन्द्रजीने और मैंने काफी मना किया था। फिर भी उन्हें दोपहरको मदिरा पिला दी गई और अब भी वही मदिरा दी जा रही है।' मैंने कहा—'पाँच मिनटका अवकाश दो। मैं श्रीपन्नालालजीसे पूँछता हूँ।' मैंने उनके शिरमें पानीका छींटा देकर पूछा 'भाई साहब! आप तो विवेकी हैं। आपको जो दवाई दी जा रही है वह मदिरा है। क्या आप पान करेंगे?' उन्होंने शक्ति भर जोर देकर कहा–'नहीं आमरणान्त मदिराका त्याग।' सुनते ही सबके होश ठिकाने आ गये और औषधि देना बन्द कर दिया। सबकी यही सम्मति हुई कि यदि प्रातःकाल इनका स्वास्थ्य अच्छा रहा तो औषधि देना चाहिये।

इसके बाद मैंने पन्नालालजीसे कहा कि 'आपकी धर्मपत्नीकी सम्मति है कि आप कुछ दान करें आयुका कुछ विश्वास नहीं।' धर्मपत्नीने भी कहा कि कितना दान देना इष्ट है?' उन्होंने हाथ उठाया। औरत ने कहा कि 'हाथमें पाँच अंगुलियाँ होती हैं, अतः पाँच हजार रुपयाका दान हमारे पतिको इष्ट है। चूँकि उनका प्रेम सदा विद्यादानमें रहता था, अतः यह रुपया संस्कृत विद्यालय को ही देना चाहिये और मन्त्री पूर्णचन्द्रजीसे कहा कि आप आज

ही दुकानमें विद्यालयके जमा कर लो तथा मेरे नाम लिख दो। अब इन्हें समाधिमरण सुनानेका अवसर है।' वह स्वयं सुनाने लगी और पन्द्रह मिनट बाद श्री पन्नालालजी बड़कुरका शान्तिसे समाधिमरण हो गया।

इसके बाद उनकी धर्मपत्नीने उपस्थित जनताके समक्ष कहा कि 'यह संसार है। इसमें जो पर्याय उत्पन्न होती है वह नियमसे नष्ट होती है, अतः हमारे पतिकी पर्याय नष्ट हो गई। चूँकि ऐसा होता ही, अतः इसमें आप लोगोंको शोक करना सर्वथा अनुचित है। यद्यपि आपके बड़े भ्राता व भतीजेको बन्धु वियोग जन्य हानि हुई, परन्तु वह अनिवार्य थी। इसमें शोक करनेकी कौन सी बात? हम प्रति दिन पाठ पढ़ते हैं—

'राजा राणा छत्रपति हाथिनके असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार॥
दल बल देवी देवता मात पिता परिवार।
मरती विरियाँ जीवको कोई न राखन हार॥'

जब कि यह निश्चय है तब शोक करनेकी क्या बात है? शोक करनेका मूलकारण यह है कि हम उस परपदार्थको अपना समझते हैं। यदि इनमें हमारी यह धारणा न होती कि हमारे हैं तो आज यह कुअवसर न आता। अस्तु आपकी जो इच्छा हो, उसकी शान्तिके लिये जो उचित हो वह कीजिये, परन्तु मैं हो अन्तरङ्गसे शोक नहीं चाहती। हाँ, लोकव्यवहारमें दिखानेके लिये कुछ करना ही होगा।' इतना कहकर वह मूर्छित हो गई। प्रातः काल श्री पन्नालालजीके शवका दाह संस्कार हुआ।

बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्

इसके पहलेकी बात है—मण्डामें पञ्चकल्याणक थे। हम वहाँ गये। न्यायदिवाकर पण्डित पन्नालालजी प्रतिष्ठाचार्य थे। आप

बहुत ही प्रतिभाशाली थे। बड़े-बड़े धनाढ्य और विद्वान् भी आपके प्रभावमें आ जाते थे। 'उस समय विद्याका इतना प्रचार न था, अतः आपकी प्रतिष्ठा थी' यह बात नहीं थी। आप वास्तवमें पण्डित थे। अच्छे-अच्छे ब्राह्मण पण्डित भी आपकी प्रतिष्ठा करते थे। क्षत्रपुर (छतरपुर) के महाराजा तो आपके अनन्यभक्त थे। जब आप क्षत्रपुर जाते थे तब राजमहलमें आपका व्याख्यान कराते थे।

आपने बहुत ही विधिपूर्वक प्रतिष्ठा कराई। जनताने अच्छा धर्म लाभ लिया। राजगद्दीके समय मुझे भी बोलनेका अवसर आया। व्याख्यानके समय मेरा हाथ मेजपर पड़ा, जिससे मेरी अँगूठीका हीरा निकल गया। सभा विसर्जन होनेके बाद डेरामें आये और आनन्दसे सो गये। प्रातःकाल सामायिकके लिये जब पद्मासन लगाई और हाथपर हाथ रक्खा तब अँगूठी गड़ने लगी। मनमें विचार आया कि इसका हीरा निकल गया है, इसी-लिये इसका स्पर्श कठोर लगने लगा है। फिर इस विकल्पको त्याग सामायिक करने लगा। सामायिकके बाद जब देखा तब सचमुच अंगूठीमें हीरा न था। मनमें खेद हुआ कि पाँच सौ रुपएका हीरा चला गया। जिससे कहूँगा वही कहेगा कि कैसे निकल गया ? बाईजी भी रंज करेंगी, अतः किसीसे कुछ नहीं कहता। जो हुआ सो हुआ। ऐसा ही तो होना था। इसमें खेदकी कौन-सी बात है ? जब तक हमारी अंगूठीमें था तब तक हमारा था। जब चला गया तब हमारा न रहा, अतः सन्तोष करना ही सुखका कारण है। परन्तु फिर भी मनमें एक कल्पना आई कि यदि किसीको मिल गया और उसने काँच जानकर फेंक दिया तो व्यर्थ ही जावेगा, अतः मैंने स्वयंसेवकोंको बुलाया और उनके द्वारा मेलामें यह घोषणा करादी कि वर्णीजीकी अंगूठीमेंसे हीरा निकल कर कहीं मंडपमें गिर गया है जो कि पाँच सौ रुपएका है।

यदि किसीको मिल जावे तो काँच समझकर फेंक न दे। उन्हींको दे देवे। यदि न देनेके भाव हों तो उसे बाजारमें पाँच सौ रुपया-से कममें न देवे। अथवा न बेचे तो मुद्रिकामें जड़वा लेवे।'

वह हीरा जिस बालकको मिला था, उसने अच्छा काँच समझ कर रख लिया था। जब मैं भोजन कर रहा था तब हीरा लेकर आया और भोजन करनेके बाद यह कहते हुए उसने दिया कि 'यह हीरा मुझे सभामण्डपमें, जहाँ कि नृत्य होता था, मिला था। मैंने चमकदार देखकर इसे रख लिया था। जिस समय मिला था उस समय यह दूसरा बालक भी वहाँ था। यदि यह न होता तो सम्भव है हमारे भाव लोभके हो जाते और आपको न देता। इस कथासे कुछ तत्त्व नहीं। परन्तु एक बात आपसे कहना हमारा कर्तव्य है। यद्यपि हम बालक हैं, हमारी गणना शिक्षकोंमें नहीं और आप तो वर्णी हैं, हजारों आदमियोंको व्याख्यान देते हैं, शास्त्रप्रवचन करते हैं, त्यागका उपदेश भी देते हैं और बहुतसे जीवोंका आपसे उपकार भी होता है। फिर भी मनमें आया, इस लिये कह रहा हूँ कि आपकी जो माता हैं वह धर्मकी मूर्ति हैं। आपका महान् पुण्यका उदय है जो आपको ऐसी माँ मिल गई। उनके उदार भावसे आप यथोचित द्रव्य व्यय कर सकते हो। परन्तु मुझसे पूछो तो क्या अंगूठी आपको रखनी न्यायोचित है। कोई कहे या न कहे, पर यह निश्चित है कि आप अनुचित वेषभूषा रखते हैं। आप ब्रह्मचारी हैं। आपको हीराकी अंगूठी क्या शोभा देती है? यदि आपके तेलका हिसाब लगाया जावे तो मेरी समझ-से उतनेमें एक आदमीका भोजन हो सकता है। आप दो आना रोजका तेल सिरमें डालते हैं। इतनेमें आनन्दसे एक आदमीका पेट भर सकता है। यह तो तेलकी बात रही। यदि फलादिककी बात कही जावे तो आप स्वयं लज्जित हो उठेंगे, अतः आशा करता हूँ कि आप इसका सुधार करेंगे।'

वह था तो बालक, पर उसके मुखसे अपनी इतनी खरी समालोचना सुनकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसी समय मैंने वह हीरा सिंघई कुन्दनलालजीको दे दिया तथा भविष्यमें हीरा पहिननेका त्याग कर दिया। साथ ही सुगन्धित तेलोंका व्यवहार भी छोड़ दिया। मेला पूर्ण होनेके बाद सागर आ गये। और आनन्दसे पाठशालामें रहने लगे।

श्रीगोम्मटेश्वर-यात्रा

सवत् १९७६ की बात है। अगहनका मास था। शरदीका प्रकोप वृद्धिपर था। इसी समय सागर जैन समाजका विचार श्रीगिरिनारजी तथा जैनविद्रीकी वन्दना करनेका स्थिर हो गया। अवसर देख बाईजीने मुझसे कहा—'बेटा! एक बार जैनबद्री की यात्राके लिए चलना चाहिये। मेरे मनमें श्री १००८ गोम्मटेश्वर स्वामीकी मूर्तिके दर्शन करनेकी बड़ी उत्कण्ठा है।' मैंने कहा—'बाईजी! सात सौ रुपया व्यय होगा। ललिताको भी साथ ले जाना होगा।' उन्होंने कहा—'बेटा। रुपयोंकी चिन्ता न करो।' उसी समय उन्होंने यह कहते हुए सात सौ रुपये सामने रख दिये कि मैं यह रुपये यात्राके निमित्त पहलेसे ही रक्खे थी। इतनेमें मुलाबाईने भी यात्राका पक्का विचार कर लिया। सेठ कमलापतिजी बरायठावालोंका भी विचार स्थिर हो गया और श्रीयुत गुलाबी, जो कि प० मनोहरलालजी वर्णीके पिता थे, यात्राके लिए तैयार हो गए। एक जैनी कटराबाजारमें था। मुलाबाईने उसे साथ ले जानेका निश्चय कर लिया। इस प्रकार हम लोगोंका यात्राका पूर्ण विचार स्थिर हो गया। सब सामग्री की योजना की गई और शुभ मुहूर्तमें प्रस्थान करनेका निश्चय किया गया।

श्रीसिंघई कुन्दनलालजी, जो हमारे परमस्नेही हैं, आये और

हमसे कहने लगे कि आनन्दसे जाईये और तीनसौ रुपया मेरे लेते जाईये। इनके सिवाय दो सौ रुपया यह कहते हुए और दिये कि जहाँ आप समझें वहाँ व्रतभण्डारमें दे देना। मैंने बहुत कुछ कहा, परन्तु उन्होंने एक न मानी। जब मैं यात्राके लिए चलने लगा तब स्टेशन तक बहुत जनता आई और सबने नारियल भेंट किये।

हम सागर स्टेशनसे चलकर बीना आये। यहाँ भी सिंघई परमानन्दजी अपने घर ले गये तथा एक रात्रि नहीं जाने दिया। आप बड़े ही धर्मात्मा पुरुष थे। बीनामें श्री जैन मन्दिर बहुत रमणीक है तथा उसीसे लगा हुआ पाठशालाका बोर्डिंग भी है, जिसका व्यय श्रीसिंघई श्रीनन्दनलालजीके द्वारा सम्यक् प्रकारसे चलता है। यहाँ भोजन कर नासिकका टिकिट लिया। मार्गमें भेलसा स्टेशनपर बहुतसे सज्जन मिले और श्रीफल भेंटमें दे गये।

रात्रिके समय नासिक पहुँचे। यहाँसे ताँगा कर श्रीगजपन्थाजी पहुँच गये। सात बलभद्र और आठ करोड़ मुनि जहाँसे मुक्तिको प्राप्त हुए उस पर्वतको देखकर चित्तमें बहुत प्रसन्नता हुई। मनमें यह विचार आया कि ऐसा निर्मल स्थान धर्मसाधनके लिए अत्यन्त उपयुक्त है। यदि यहाँ कोई धर्मसाधन करे तो सब सामग्री सुलभ है, जल-वायु उत्तम है तथा खाद्य-पेय पदार्थ भी योग्य मिलते हैं। परन्तु मूल कारण तो परिणामोंकी स्वच्छता है, जिसका अभाव है। अतः मनका विचार मनमें रह जाता है।

यहाँसे चलकर पूना आये, शहरमें गये और पूजनादि करनेके बाद भोजन कर बेलगाँव चले गये। स्टेशनसे धर्म्मशालामें पहुँचे। धर्मशाला मन्दिरकी एक दहलानमें थी, अतः सब लोग उसीमें ठहर गये। मैं दहलानसे मकानमें चला गया। यहाँ पर क्या देखता हूँ कि एक मनुष्य बैठा हुआ है और उसके कण्ठमें एक पुष्पमाला पड़ी हुई है। मेरा मन उसके देखनेमें लग गया।

मैं विचारता हूँ कि ऐसा सुन्दर मनुष्य तो मैंने आजतक नहीं देखा, अतः बार-बार उसकी ओर देखता रहा। अन्तमें मैंने कहा—'साहब इतने निश्चल बैठे हैं जैसे ध्यान कर रहे हों, पर यह समय ध्यानका नहीं। दिनके तीन बज चुके हैं। यह तो कहिये कि धर्मशालामें एक कोठरी हम लोगोंको ठहरनेके लिए मिलेगी या नहीं।' जब कुछ उत्तर न मिला तब मैंने स्थिर दृष्टिसे फिर देखा और बड़े आश्चर्यके साथ कहा-'अरे! यह तो प्रतिमा है।' वास्तवमें मैंने उतनी सुन्दर प्रतिमा अन्यत्र तो नहीं देखी। अस्तु, यहाँ पर दो दिन रहे। किला देखने गये। उसमें कई जिन-मन्दिर हैं, जिनकी कला-कुशलता देखकर शिल्प-विद्याके निष्णात विद्वानोंका स्मरण हो आता है। आजकल पत्थरोंमें ऐसा बारीक काम करनेवाले शायद ही मिलेंगे। यहाँ पर कई चैत्यालयोंमें ताम्रकी मूर्तियाँ देखनेमें आईं।

यहाँसे चलकर आरसीकेरी आये और वहाँसे चलकर मन्दगिरि। यहाँ पर श्रीमान् स्वर्गीय गुरमुखराय सुखानन्दजीकी धर्मशाला है जो कि बहुत ही मनोज्ञ है। यहाँ हम लोगोंने नदीके ऊपर बालूका चबूतरा बनाकर श्री जिनेन्द्रदेवका पूजन किया। बहुत ही निर्मल परिणाम रहे। यहीं पर मेरा अत्यन्त इष्ट चाकू गिर गया। इसकी तारीफ सुनकर आपको भारतके कारीगिरों पर श्रद्धा होगी। ओरछाके एक लुहारसे वह चाकू लिया था। लेते समय कारीगिरने उसकी कीमत पाँच रुपया माँगी। मैंने कहा—'भाई, राजिस चाकूकी भी तो इतनी कीमत नहीं होती। झूठ मत बोलो।' वह बोला—'आप राजिस चाकूको लड़ाकर इसके गुणकी परीक्षा करना।' मैंने पाँच रुपये दे दिये। दैवयोगसे मैं झाँसीसे बरुआसागर आता था। रेलमें एक आदमी मिल गया। उसके पास राजिस चाकू था। वह बोला—'हिन्दुस्तानके कारीगिर ऐसा चाकू नहीं बना सकते।'

मैंने कहा—'देखो भाई ! यह एक चाकू हमारे पास है।' उसने मुख बनाकर कहा—'आपका चाकू किस कामका ? यदि मैं राजिस चाकू इसके ऊपर पटक दूँ तो आपका चाकू टूट जावेगा।' मैंने कहा—'आप ऐसा करके देख लो। आज इसकी परीक्षा हो जावेगी। पाँच रुपयेकी बात नहीं।' उसने कहा—'यह तो एक आनाका भी नहीं।' मैंने कहा—'जल्दी परीक्षा कीजिये।' उसने ज्यों ही अपना राजिस चाकू मेरे चाकू पर पटका त्यों ही वह मेरे चाकूकी धारसे कट गया। यह देख मुझे विश्वास हुआ कि भारतमें भी बड़े बड़े कारीगिर हैं, परन्तु हम लोग उनकी प्रतिष्ठा नहीं करते। केवल विदेशी कारीगिरोंकी प्रशंसा कर अपनेको धन्य समझते हैं। अस्तु

यहाँसे नौ मील श्रीगोम्मटस्वामीका बिम्ब था। उसके मुखभागके दर्शन यहींसे होने लगे। भोजन करनेके बाद चार बजे श्री जैनबिद्री पहुँच गये। चूँकि ग्राममें कुछ प्लेगकी शिकायत थी, अतः ग्रामके बाहर एक गृहस्थके घर पर ठहर गये, रात्रिभर आनन्दसे रहे और श्रीगोम्मटस्वामीकी चर्चा करते रहे। प्रातः-काल स्नानादि कार्यसे निवृत्त हो कर श्री गोम्मटस्वामीकी वन्दना को चले। ज्यों-ज्यों प्रतिमाजीका दर्शन होता था त्यों-त्यों हृदयमें आनन्दकी लहरें उठतीं थीं। जब पासमें पहुँच गये तब आनन्दका पारावार न रहा। बड़ी भक्तिसे पूजन किया। जो आनन्द आया वह अवर्णनातीत है। प्रतिमाकी मनोज्ञताका वर्णन करनेके लिये हमारे पास सामग्री नहीं। परन्तु हृदयमें जो उत्साह हुआ वह हम ही जानते हैं, कहनेमें असमर्थ हैं। इसके बाद नीचे चतुर्विंशति तीर्थङ्करोंकी मूर्तिके दर्शन किये। पश्चात् श्रीभट्टारकके मन्दिरमें गये। वहाँकी पूजनविधि देख आश्चर्यमें पड़ गये। यहाँ पर पूजनकी जो विधि है वह उत्तर भारतमें नहीं। यहाँ शुद्ध पाठका पढ़ना आदि योग्य रीतिसे होता है। परन्तु एक बात हमारी

दृष्टिमें अनुचित प्रतीत हुई। वह यह है कि यहाँ जो द्रव्य चढ़ाते हैं उसे पुजारी ले जाते हैं और अपने भोजनमें लाते हैं।

यहाँका वर्णन श्रवणवेलगोलाके इतिहाससे आप जान सकते हैं। यहाँ पर मनुष्य बहुत ही सज्जन हैं। एक दिनकी बात है—मैं कूपके ऊपर स्नान करनेके लिये गया और वहाँ एक हजार रुपया के नोट छोड़ आया। जब भोजन कर चुका तब स्मरण आया कि नोटका बटुवा तो कूपपर छोड़ आये। एकबार व्याकुलता आई। बाईजी ने कहा—'इतनी आकुलता क्यों?' मैंने कहा—'नोट भूल आया।' बाईजी बोलीं—'चिन्ता न करो। प्रथम तो नोट मिल जावेंगे, यह जगद्विख्यात बाहुबली स्वामीका क्षेत्र है तथा हम शुभ परिणामोंसे यात्रा करनेके लिये आये हैं। इसके सिवाय हमारा जो धन है वह अन्यायोपार्जित नहीं है, यह हमारा दृढ़ विश्वास है। द्वितीय यदि न मिले तो एक तार सिंघई कुन्दनलाल जीको दे दो। रुपया आजावेंगे। चिन्ता करना व्यर्थ है। जाओ कूपपर देख आओ।'

मैं कूपपर गया तो देखता हूँ कि बटुआ जहाँ पर रखा था वहीं पर रखा है। मैंने आश्चर्यसे कहा कि यहाँ पर जो स्त्री पुरुष, थे उनमेंसे किसीने यह बटुवा नहीं उठाया। वे बोले—'क्यों उठाते? क्या हमारा था?' उन्होंने अपनी भाषा कर्णाटकीमें उत्तर दिया पर वहीं जो दो भाषाका जाननेवाला था, मैंने उससे उनका अभिप्राय समझा।

यहाँ पर चार दिन रहकर मूडविद्रीके लिए प्रस्थान कर दिया। मार्गमें अरण्यकी शोभा देखते हुए श्रीकारकल पहुँचे। छः मील मोटर नहीं जाती थी, अतः गाड़ीमें जाना पड़ा। मार्गमें बाईजी लघुशङ्काके लिये नीचे उतरीं। चार बजे रात्रिका समय था। उतरते ही बैलने बड़े वेगसे लात मारी, जिससे बाईजीकी मध्यमा अङ्गुली फट गई। हड्डी दिखने लगी। रुधिरकी धारा बह उठी, परन्तु

बाईजीने आह न की। केवल इतना कहा—'सेठ कमलापतिजी! बैलने अंगुलीमें लात मार दी।' पश्चात् वहाँसे चलकर एक धर्मशालामें ठहर गये। यहीं पर सामायिकादि कार्य किये। जब प्रातःकाल हुआ तब हमने कहा—'बाईजी! अस्पताल चलकर दवाई लगवा लीजिये।' बाईजी ने निषेध कर दिया कि हम अस्पतालकी दवाईका प्रयोग नहीं करेंगे, क्योंकि उसमें बरांडीका जुज रहता है। उन्होंने अण्डेकी राखको छानकर घीमें मन्थन कर लगाया। तीन मासमें अंगुली अच्छी हुई, परन्तु उन्होंने अस्पतालकी दवाईका प्रयोग नहीं किया।

कारकल क्षेत्र बहुत ही रम्य और मनोरम है। यहाँ पर श्री भट्टारक महाराजके मठमें ठहर गये। यहीं पर हमारे चिरपरिचित श्रीकुमारय्याजी मिल गये। आपने पूर्ण रीतिसे आतिथ्य-सत्कार किया। ताजे नारियलकी गिरी तथा उत्तम चावल आदि सामग्रीसे भोजन कराया। भोजन बाद हम लोग श्रीगोम्मटस्वामी की प्रतिमाके, जो कि खड्गासन है, दर्शन करनेके लिये गये। बहुत ही मनोज्ञ मूर्ति है। तीस फुट ऊँची होगी। सुन्दरतामें तो यही भान होता है कि मूड़विद्रीके कारीगरने ही यह मूर्ति बनाई हो। मनमें यही भाव आता था कि हे प्रभो! भारतवर्षमें एक समय वह था जब कि ऐसी-ऐसी भव्य मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा होती थी। यह काम राजा-महाराजोंका था। आज तो जैनधर्मके राजा न होनेसे धर्मायतनोंकी रक्षा करना कठिन हो रहा है। यहीं पर मठके सामने छोटीसी टेकरी पर एक विशाल मन्दिर है, जिसमें वेदीके चारों तरफ सुन्दर-सुन्दर मनोहारी बिम्ब हैं। इसके अनन्तर एक मन्दिर सरोवरमें हैं। उसके दर्शनके लिये गये। बादमें श्रीनेमिनाथ स्वामीकी श्याममूर्तिके दर्शन किये। मूर्ति पद्मासन थी। अन्दर और भी अनेक मन्दिरोंके दर्शन किये। यहीं पर एक विशाल मानस्तम्भ है, जिसके दर्शन कर यही स्मरण होता है कि

इसके दर्शनसे प्राणियोंके मान गल जाते थे, यह असम्भव नहीं। सब मन्दिरोंके दर्शन कर डेरे पर आ गये।

रात्रिके समय आरती देखने गये। एक पर्दा पड़ा था। पुजारी मन्त्रद्वारा आरती पढ़ रहा था। जब पर्दा खुला तब क्या देखता हूँ कि जगमग ज्योति हो रही है। चावलोंकी तीस या चालीस फूली-फूली पुड़ी, केला, नारियल आदि फलोंकी पुष्कलतासे वेदी सुशोभित हो रही है। देखकर बहुत ही आश्चर्यमें पड़ गया। चित्त विशुद्ध भावोंसे पूरित हो गया। वहाँ दो दिन रहे। पश्चात् श्रीमूडविद्रीको प्रस्थान कर गये।

एक घण्टेके बाद मूडविद्री पहुँच भी गये। यहाँ पर भी हमारे चिरपरिचित श्रीनेमिसागरजी मिल गये। यहाँके मन्दिरोंकी शोभा अवर्णनीय है। एक मन्दिर, जिसको त्रैलोक्यतिलक कहते हैं, अत्यन्त विशाल है। इसमें प्रतिमाओंका समूह है। सभी प्रतिमाएँ रमणीक हैं। एक प्रतिमा स्फटिकमणिकी बहुत ही मनोहर और चित्ताकर्षक है। सिद्धान्तमन्दिरके दर्शन किये। रत्नमयी बिम्बोंके दर्शन किये। दर्शन करानेवाले ऐसी सुन्दर रचनासे दर्शन कराते हैं कि समवसरणका बोध परोक्षमें हो जाता है। ऐसा सुन्दर दृश्य देखनेमें आता है कि मानो स्वर्गका चैत्यालय हो। यहाँ पर ताड़पत्रोंपर लिखे गये सिद्धान्तशास्त्रके दर्शन किये। यह नगर किसी कालमें धनाढ्य महापुरुषोंकी बस्ती रहा होगा, अन्यथा इतने अमूल्य रत्नोंके बिम्ब कहाँसे आते। धन्य हैं उन महानुभावोंको जो ऐसी अमर कीर्ति कर गये। यहाँ पर श्रीभट्टारकजी थे, जो बहुत ही वृद्ध और विद्वान् थे। आप दो घण्टा श्री जिनेन्द्रदेवकी अर्चामें लगाते थे। अर्चा ही में नहीं, स्वाध्यायका भी आपको व्यसन था तथा कोषके रक्षक भी थे। आपकी भोजनशालामें कितने ही ब्रह्मचारी त्यागी आजावें, सबके भोजनका प्रबन्ध था। हमारे लिए जिस वस्तुकी आवश्यकता

पड़ी वह आपके द्वारा मिल गई। इसके सिवाय हमारे चिर परिचित नेमिसागर छात्रने सब प्रकारका आतिथ्य-सत्कार किया। नारियलकी गिरीका तो इतना स्वाद हमने कहीं नहीं पाया। इस तरह तीन दिन हमारे इतने आनन्दसे गये कि जिसका वर्णन नहीं कर सकते।

यहाँसे फिर बेलगाँव होकर पूना आगये और पूनासे बम्बई न जाकर मनमाड़ आ गये। यहाँसे एरोलाकी गुफा देखनेके लिए दौलताबाद चले आये। वहाँके मन्दिरके दर्शनकर गुफा देखने गये। बीचमें एक रोजागाँव मिलता है वहीं पर डाक-बँगलामें ठहर गये। बँगलासे एक मील दूर गुफा थी, वहाँ गये। गुफा क्या है, महल है। प्रथम तो कैलाश गुफाको देखा। गुफासे यह न समझना कि दो या चार मनुष्य बैठ सकें। उसके बीचमें एक मन्दिर और चारों ओर चार बरामदा। तीन बरामदा इतने बड़े कि जिनमें प्रत्येकमें पाँच सौ आदमी आ सकें। चतुर्थ बरामदेमें सम्पूर्ण देवताओंकी मूर्तियाँ थीं। बीचमें एक बड़ा आँगन था। आँगनमें एक शिवजीका मन्दिर था जो कि एक ही पत्थरमें खुदा हुआ है। मन्दिरके सामनेका भाग छोड़कर तीनों ओर भीतपर हाथी खुदे हुए हैं, ऊपर जानेके लिए सीढ़ियाँ भी उसी मन्दिरमें हैं, छत है, शिखर है, कलशा भी है और खूबी यह कि सब एक पत्थरकी रचना है, इत्यादि कहाँ तक लिखें? यहाँ से श्री पार्श्वनाथ गुफा देखने गये। भीतर जाकर देखते हैं तो मन्दिरके इतने बड़े खम्भे दिखे कि जिनका घेरा चार गजसे कम न होगा। मूर्तियोंकी रचना अपूर्व है। बहुत ही सुन्दर रचना है। इसके बाद बौद्ध गुफा देखने गये। यह भी अपूर्व गुफा थी। मूर्तिका मुख देखकर मुझे तो जैन बिम्बका ही निश्चय हो गया। यहाँपर पचासों गुफाएँ हैं जो एक-से-एक बढ़कर हैं।

एक बात विचारणीय है कि वहाँ सब धर्मवालोंके मन्दिर

पाये जाते हैं। उन लोगोंमें परस्पर कितना सौमनस होगा। आज तो साम्प्रदायिकताने भारतको गारत बना दिया। धर्म तो आत्माकी स्वाभाविक परिणति है। उपासनाके भेदसे जनतामें परस्पर बहुत ही वैमनस्य हो गया है जो कि दुःखका कारण बन रहा है। यह आत्मा अनादिसे अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मबुद्धिकी कल्पना कर अनन्त संसारका पात्र बन रहा है। इसे न तो कोई नरक ले जाता है और न कोई कोई स्वर्ग। यह अपने ही शुभाशुभकर्मोंके द्वारा स्वर्गादि गतियोंमें भ्रमण करनेका पात्र होता है। मनुष्यजन्म पानेका तो यह कर्तव्य था कि अपने सदृश सबकी रक्षामें प्रयत्नशील होते। जैसे दुःख अपने लिए इष्ट नहीं वैसे ही अन्यको भी नहीं। फिर हमें अन्यको कष्ट देनेका क्या अधिकार? अस्तु,

यह गुफा हैदराबाद राज्यमें है। राज्यके द्वारा यहाँका प्रबन्ध अच्छा है। सब गुफाएँ सुरक्षित हैं। पहले समयमें धर्मान्ध मनुष्योंने कुछ क्षति अवश्य पहुँचाई है। न जाने मनुष्य जातिमें भी कैसे-कैसे राक्षस पैदा होते हैं? जिनका यह अन्ध विश्वास है कि हम जो कुछ उचित वा अनुचित करें वही उचित है और जो अन्य लोग करते हैं वह सब मिथ्या है। इतने मतोंकी सृष्टिका मूल कारण इन्हीं मनुष्योंके परिणामोंका तो फल है। धर्म तो आत्माकी वह परिणति है जिससे न तो आत्मा आप ससारका पात्र हो और न जिस आत्माको वह उपदेश कर वह भी संसार वनमें रुले। प्रत्युत अनुकूल चलकर बन्धनसे छूटे। परन्तु अब तो हिंसादि पञ्च पापोंके पोषक होकर भी आपको धार्मिक बनानेका प्रयत्न करनेमें भी अपनी संम्पूर्ण शक्ति लगा देते हैं। जैसे बकरा काटकर भी कहते हैं कि भगवती माता प्रसन्न होती है। गोकुशी करके परवर्दगार जहाँपनाहको प्रसन्न करनेकी चेष्टा की जाती है। यह सब अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मा माननेका फल है। यही कारण है कि यहाँ

भी गुफाओंमें जो मूर्तियाँ हैं उनके बहुतसे अङ्ग भङ्ग कर दिये गये हैं। विशेष क्या लिखें ? यहाँ जैसी गुफा भारतवर्षमें अन्य नहीं।

यहाँ आकर दौलताबाद किला देखा। वह भी दर्शनीय वस्तु है। मीलों लम्बी सुरङ्ग है। एक सुरङ्गमें मैं चला गया। एक फर्लांग गया। फिर भयसे लौट आया। आने-जानेमें कोई कष्ट नहीं हुआ। चपरासी बोला—'यदि चले जाते तो चार फर्लांग बाद तुम्हें मार्ग मिल जाता।' किला देखकर हम लोग फिर रेल के द्वारा स्टेशन आ गये और वहाँसे गाड़ीमें बैठकर गिरिनारकी यात्राके लिए चल दिये।

रात्रिका समय था। बाईजीने श्री नेमिनाथजीके भजन और बारहमासी आदिमें पूर्ण रात्रि सुखपूर्वक बिता दी। प्रातःकाल होते-होते सूरतकी स्टेशनपर पहुँच गये और वहाँसे धर्मशालामें जाकर ठहर गये। दर्शन पूजनकर फिर रेलमें सवार हो श्री गिरिनारजीके लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर शहरकी धर्मशालामें ठहर गये। श्रीनेमिनाथ स्वामीके दर्शन कर मार्ग-प्रयासको भूल गये। बादमें तलहटी पहुँचे और वहाँसे श्री गिरिनार पर्वतपर गये।

पर्वतपर श्रीनेमिनाथ स्वामीका दर्शन कर गद्गद् हो गये। पर्वतके ऊपर नाना प्रकारके पुष्पोंकी बहार थी। कुन्द जातिके पुष्प बहुत ही सुन्दर थे। दिगम्बर मन्दिरके दर्शनकर श्वेताम्बर मन्दिरमें गये। यात्रियोंके लिए इस मन्दिरमें सब प्रकारकी सुविधा है। भोजनादिका उत्तम प्रबन्ध है। यदि कोई वास्तविक विरक्त हो और यहाँ रहकर धर्म साधनकी इच्छा रखता हो तो इस मन्दिरमें बाह्य साधनोंकी सुलभता है। दिगम्बरोंका मन्दिर रमणीक है और श्रीनेमिनाथ स्वामीकी मूर्ति भी अत्यन्त मनोज्ञ है। परन्तु यदि कोई रहकर धर्मसाधन करना चाहे तो कुछ भी प्रबन्ध नहीं, क्योंकि यहाँ तो पर्वतके ऊपर रहना महान् अविनय

का कारण समझते हैं। जहाँ अविनय है वहाँ धर्मकी संभावना कैसी ? क्या कहें ? लोगोंने धर्मका रहस्य बाह्य कारणोंपर मान रक्खा है और इसीपर बल देते हैं। पर वास्तविक बात यह है कि जहाँ बाह्य पदार्थोंकी मुख्यताका आश्रय लिया जाता है वहाँ अभ्यन्तर धर्मकी उद्भूति नहीं होती। विनय-अविनयकी भी मर्यादा होती है। निमित्त कारणोंकी विनय उतनी ही योग्य है जो आभ्यन्तरमें सहायक हो। जैसे सम्यग्दर्शनका प्रतिपादक जो द्रव्यागम है उसको हम मस्तकसे अञ्जलि लगाकर विनय करते हैं, क्योंकि उसके द्वारा हमको अर्थागम और ज्ञानागमकी प्राप्ति होती है। केवल पुस्तककी विनय करनेसे अर्थागम और ज्ञानागम-का लाभ न होगा। पर्वत परम पूज्य है। हमें उसकी विनय करना चाहिए, यह सबको इष्ट है। परन्तु क्या इसका यह अर्थ है कि पर्वत पर जाना ही नहीं चाहिए ? क्योंकि यात्राका साधन पदयात्रा है। फिर जहाँ पदतलोंसे सम्बन्ध होगा वहाँ यदि अविनय मान ली जावे तो यात्रा ही निषिद्ध हो जावेगी। सो तो नहीं हो सकता। इसी प्रकार पर्वतोंपर रहनेसे जो शारीरिक क्रियाएँ आहार-विहारकी हैं वे तो करनी ही पड़ेंगी। वहाँ रहकर मानसिक परिणामोंकी निर्मलताका सम्पादन करना चाहिये।

इस प्रकार ऊहापोह करते हुए हम लोग एक मील न चले होंगे कि साधु लोगोंका अखाड़ा मिला। कई गायें भी वहाँ पर थीं। अनेक बाह्य साधन शरीरके पुष्टिकर थे। साधु लोग भी शरीर-से पुष्ट थे और श्री रामचन्द्रजीके उपासक थे। कल्याण-इच्छुक अवश्य हैं, परन्तु परिग्रहने उसमें बाधा डाल रक्खी है। यदि यह परिग्रह न हो तो कल्याणका मार्ग पास ही है, पर परिग्रहका पिशाच तो हृदयपर अपना ऐसा प्रभाव जमाये है, जिससे घरका त्याग किसी उपयोगमें नहीं आता। घरका त्यागना कोई कठिन वस्तु नहीं, परन्तु आभ्यन्तर मूर्छा त्यागना सरल भी नहीं। त्याग तो आभ्यन्तर ही है।

आभ्यन्तर कषायके बिना बाह्य वेषका कोई महत्त्व नहीं। सर्प बाह्य काँचली छोड़ देता है। परन्तु विष नहीं त्यागता, अतः उसका बाह्य त्याग कोई महत्त्व नहीं रखता। इसी प्रकार कोई बाह्य वस्त्रादि तो त्याग दे और अन्तरङ्ग रागादि नहीं त्यागे तो उस त्यागका क्या महत्त्व ? धान्यके ऊपरी छिलकाका त्याग किये बिना चावलका मल नहीं जाता, अतः बाह्य त्यागकी भी आवश्यकता है। परन्तु इतने ही से कोई चाहे कि हमारा कल्याण हो जावेगा सो नहीं। धान्यके छिलकाका त्याग होने पर भी चावलमें लगे हुए कणको दूर करनेके लिये कूटनेकी आवश्यकता है। फिर भला जिनके बाह्य त्याग नहीं उनके तो अन्तरङ्ग त्यागका लेश भी नहीं। मैं किसी अन्य मतके साधुकी अपेक्षा कथन नहीं करता। परन्तु मेरी निजी सम्मति तो यह है कि बाह्य त्याग बिना अन्तरङ्ग त्याग नहीं होता और यह भी नियम नहीं कि बाह्य त्याग होने पर आभ्यन्तर त्याग हो ही जावे। हाँ, इतना अवश्य है कि बाह्य त्याग होनेसे ही अन्तरङ्ग त्याग हो सकता है। दृष्टान्त जितने मिलते हैं सर्वांशमें नहीं मिलते, अतः वस्तुस्वरूप विचारना चाहिये। दृष्टान्त तो साधक है। अब हमको प्रकृतमें आना चाहिये। जहाँ हमारे परिणामोंमें रागादिकसे उदासीनता आवेगी वहाँ स्वयमेव बाह्य पदार्थोंसे उदासीनता आ जावेगी। पर पदार्थके ग्रहण करनेमें मूल कारण रागादिक ही हैं। बाह्य पदार्थ ही न होते तो अनाश्रय रागादिक न होते ऐसा कुतर्क करना न्यायमार्गसे विरुद्ध है। जिस प्रकार जीव द्रव्य अनादि कालसे स्वतःसिद्ध है उसी प्रकार अजीव द्रव्य भी अनादिसे ही स्वतःसिद्ध है। कोई किसीको न तो बनानेवाला है और न कोई किसीका विनाश करनेवाला है। स्वयमेव यह प्रक्रिया चली आ रही है। पदार्थोंमें परिणमन स्वयमेव हो रहा है। कुम्भकारका निमित्त पाकर घट बन जाता अवश्य है पर न तो कुम्भकार मिट्टीमें कुछ

अतिशय कर देता है और न मिट्टी कुम्भकारमें कुछ अतिशय पैदा कर देती है। कुम्भकारका व्यापार कुम्भकारमें होता है और मिट्टीका व्यापार मिट्टीमें। फिर भी लौकिक व्यवहार ऐसा होता है कि कुम्भकार घटका कर्ता है। यह भी निर्मूल कथन नहीं। इसे सर्वथा न मानना भी युक्तिसंगत नहीं। यहाँ मनमें यह कल्पना आई कि साधुता तो संसार-दुःख हरनेके लिये रामबाण औषधि है, परन्तु नामसाधुतासे कुछ तत्त्व नहीं निकलता—'आँखोंके अन्धे नाम नैनसुख'।

यहाँसे चलकर श्रीनेमिनाथ स्वामीके निर्वाणस्थानको, जो कि पञ्चम टोंकपर है, चल दिये। आध घण्टा बाद पहुँच गये। उस स्थानपर एक छोटी-सी मढ़िया बनी हुई है। कोई तो इसे आदमबाबा मानकर पूजते हैं, कोई दत्तात्रेय मानकर उपासना करते हैं और जैनी लोग श्रीनेमिनाथजी मानकर उपासना करते है। अंतिम माननेवालोंमें हम लोग थे। हमने तथा कमलापति सेठ, स्वर्गीय बाईजी और स्वर्गीय मुलाबाई आदिने आनन्दसे श्रीनेमिनाथ स्वामीकी भावपूर्वक पूजा की। इसके बाद आध घण्टा वहाँ ठहरे। स्थान रम्य था। परन्तु दस बज गये थे, अतः अधिक नहीं ठहर सके। यहाँसे चलकर एक घंटा बाद शेषा वन (सहस्रम्रवन) में आ गये। यहाँकी शोभा अवर्णनीय है। सघन आम्र वन है। उपयोग-विशुद्धताके लिए एकान्त स्थान है, परन्तु क्षुधाबाधाके कारण एक घण्टा बाद पर्वतके नीचे जो जमशाला है उसमें आ गये और भोजनादिसे निश्चिन्त हो गये। तीन बजे उठे। थोड़ा काल स्वाध्याय किया। यहाँपर ब्रह्मचारी भरतपुर-वालोंसे परिचय हुआ। आप बहुत विलक्षण जीव हैं। यहाँ रहकर आप धर्म साधन करते हैं। परन्तु जैसे आपने स्थान चुना वैसे परिणाम न चुना, अन्यथा फिर यहाँसे अन्यत्र जानेकी इच्छा न होती। मनुष्य चाहता तो बहुत है परन्तु कर्तव्य-पथमें उसका

अंश भी नहीं लाता। यही कारण है कि आजन्म कोल्हूके बैलकी दशा रहती है। चक्कर तो हजारों मीलका हो जाता है, परन्तु क्षेत्रकी सीमा दस या बारह गज ही रहती होगी। इसी प्रकार इस संसारी जीवका प्रयास है। इसी चतुर्गतिके भीतर ही घूमता रहता है। जिस प्रयाससे इस चतुर्गतिमें भ्रमण न हो उस ओर लक्ष्य नहीं। जो प्रयास हम कर रहे हैं, शुभाशुभ भावसे परे नहीं। इससे परे जो वस्तु है वह हमारे ध्यानमें नहीं आती, अतः निरन्तर इसीके चक्रमें पड़े रहते हैं। उस चक्रसे निकलने की योग्यता भी मिल जाती है, परन्तु अनादि कालीन संस्कारों के दृढ़ प्रभावसे उपयोगमें नहीं लाते। अन्तमें जहाँ योग्यता नहीं उसी पर्यायमें चले जाते हैं। ब्रह्मचारी छोटेलालजी योग्य व्यक्ति हैं, परन्तु इतनी कथा करते हैं कि अपनी योग्यताको अयोग्य दशामें ला देते हैं। अस्तु, उनकी कथा क्या लिखें, हम स्वयं उसी स्वाँगके पात्र हैं।

यहाँ दो दिन रहकर पश्चात् बड़ौदाके लिए प्रयाण किया। यहाँ बहुत स्थान परोपकारके हैं। परन्तु उन्हें देखनेका न तो प्रयास किया और न रुचि ही हुई। यहाँसे चलकर आबूरोड़पर आये और यहाँसे मोटरमें बैठकर पहाड़के ऊपर गये। पहाड़के ऊपर जानेका मार्ग सर्पकी चालके समान लहराता हुआ घुमावदार है। ऊपर जाकर दिगम्बर मन्दिरमें ठहर गये। बहुत ही भव्य मूर्ति है। यहाँ पर श्वेताम्बरोंके मन्दिर बहुत ही मनोज्ञ हैं। उन्हें देखनेसे ही उनकी कारीगरीका परिचय हो सकता है। कहते हैं कि उस समय इन मन्दिरोंके निर्माणमें सोलह करोड़ रुपये लगे। परन्तु वर्तमानमें तो अरबमें भी वैसी सुन्दरता आना कठिन है। इन मन्दिरोंके मध्य एक छोटा-सा मन्दिर दिगम्बरों का भी है। यहाँसे ६ मील दूरीपर एक दैलवाला है, जहाँ एक पहाड़ीपर श्वेताम्बरोंके विशाल मन्दिरमें ऐसी भी प्रतिमा है

जिसमें बहुभाग सुवर्णका है। एक सरोवर भी है जिसके तटपर सङ्गमर्मरकी ऐसी गाय बनी हुई है जो दूरसे गायके सदृश ही प्रतीत होती है। यहाँपर दो दिन रहकर पश्चात् अजमेर आ गये। यहाँ श्री सोनी भागचन्द्रजी रहते हैं जो कि वर्तमानमें जैनधर्मके संरक्षक हैं, महोपकारी हैं। आपके मन्दिर नशियाजी आदि अपूर्व-अपूर्व स्थान हैं। उनके दर्शनकर चित्तमें अति शान्ति आई। यहाँ दो दिन रहकर जयपुर आ गये और नगरके बाहर नशियाजीमें ठहर गये। यहाँपर सब मन्दिरोंके दर्शन किये। मन्दिरोंकी विशालताका वर्णन करना बुद्धि-बाह्य है। यहाँपर जैन विद्यालय है जिसमें मुख्य रूपसे संस्कृतका पाठन होता है। यहाँ शास्त्र-भण्डार भी विशाल है। धर्मसाधनको सब सुविधाएँ भी यहाँपर हैं। यहाँ तीन दिन रहकर आगरा आये और यहाँसे सीधे सागर चले आये। सागरकी जनताने बहुत ही शिष्टताका व्यवहार किया। कोई सौ नारियल भेंटमें आये। यह सब होकर भी चित्तमें शान्ति न आई।

श्री गिरिनार यात्रा

सन् १९२१ की बात है। अहमदाबादमें कांग्रेस थी। पं० मुन्नालालजी और राजधरलालजी बरया आदिने कहा कि 'कांग्रेस देखनेके लिये चलिये।' मैंने कहा—'मैं क्या करूँगा?' उन्होंने कहा—'बड़े-बड़े नेता आवेंगे, अतः उनके दर्शन सहज ही हो जावेंगे। देखो, उन महानुभावोंकी ओर कि जिन्होंने देशके हितके लिये अपने भौतिक सुखको त्याग दिया, जो गवर्नमेण्ट द्वारा नाना यातनाओंको सह रहे हैं, जिन्होंने लौकिक सुखको लात मार दी है और जो निरन्तर ४० करोड़ जनताका कल्याण चाहते रहते हैं। आज भारत वर्षकी जो दुर्दशा है वह किसीसे छिपी नहीं है।

जिस देशमें घी, दूधकी नदियाँ बहती थीं वहाँ आज करोड़ों पशुओंकी हत्या होनेसे रुधिरकी नदियाँ बह रही हैं। शुद्ध घी-दूधका अभावसा हो गया है। जहाँ आर्ष-वाक्योंकी ध्वनिसे पृथिवी गूँजती थी वहाँ पर विदेशी भाषाका ही दौर-दौरा है। जहाँ पर पण्डित लोग किसी पदार्थकी प्रमाणता सिद्ध करनेके लिये अमुक ऋषिने अमुक शास्त्रमें ऐसा लिखा है''''इत्यादि व्यवस्था देते थे वहाँ अब साहब लोगोंके वाक्य ही प्रमाण माने जाते हैं। अतः नेता लोग निरन्तर यह यत्न करते रहते हैं कि हमारा देश पराधीनताके बन्धनसे मुक्त हो जावे। कांग्रेसमें जानेसे उन महानुभावोंके व्याख्यान सुननेको मिलेंगे और सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि श्रीगिरिनार सिद्धक्षेत्रकी वन्दना अनायास हो जावेगी।

मैं श्रीगिरिनारजीकी यात्राके लोभसे कांग्रेस देखनेके लिये चला गया और अहमदाबादमें श्रीछोटेलालजी सुपरिन्डेन्टेन्टके यहाँ ठहर गया। यहाँ पर श्रीब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी और श्रीशान्तिसागरजी छाणीवाले ब्रह्मचारी वेठामें पहलेसे ही ठहरे थे। हम तीनोंका निमन्त्रण एक सेठके यहाँ हुआ। चूँकि मुझे ज्वर आता था, अतः घर पर पथ्यसे भोजन करता था। परन्तु उस दिन पूड़ी शाक मिली। खीर भी बनी थी, जो उन्होंने मुझे परोसना चाही, पर मैंने एक बार मना कर दिया। परन्तु जब दूसरी बार खीर परोसनेके लिये आये तब मैंने लालच वश ले ली। फल उसका यह हुआ कि वेगसे ज्वर आ गया। बहुत ही वेदना हुई जिससे उस दिनका कांग्रेसका अधिवेशन नहीं देख सका। दूसरे दिन ज्वर निकल गया, अतः कांग्रेसका अधिवेशन देखनेके लिये गया। वहाँका प्रबन्ध सराहनीय था। क्या होता था कुछ समझमें नहीं आया. किन्तु वहाँ पेपरोंमें सब समाचार आनुपूर्वी मिल जाते थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि जिनका देश है वे तो पराधीन होनेसे भिक्षा माँग रहे हैं और जिनका कोई स्वत्व नहीं

वे पुरुषार्थ बलसे राज्य कर रहे हैं। ठीक ही तो कहा है–'वीरभोग्या वसुन्धरा' जिन लोगोंका इस भारतवर्षपर जन्मसिद्ध अधिकार है वे तो असघटित होनेसे दास बन रहे हैं और जिनका कोई स्वत्व नहीं वे यहाँके प्रभु बन रहे हैं। जब तक इस देशमें परस्पर मनोमालिन्य और अविश्वास रहेगा तब तक इस देशकी दशा सुधरना कठिन है। यदि इस देशमें आज परस्पर प्रेम हो जावे तो विना रक्तपातके भारत स्वतन्त्र हो सकता है, परन्तु राही होना असम्भव है। '८ कनवजिया ९ चूल्हें' की कहावत यहीं चरितार्थ होती है। परस्पर मनोमालिन्यका मूल कारण अनेक मतोंकी सृष्टि है। एक दूसरेके शत्रु बन रहे हैं। जो वास्तविक धर्म है वह तो संसारबन्धनका घातक है। उस ओर हमारी दृष्टि नहीं। धर्म तो अहिंसामय है। वेद भी यही बात कहता है–'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि।' तथा 'अहिंसा परमो धर्मः' यह भी अनादि मन्त्र है। जैन लोग इसे अब तक मानते हैं। यद्यपि उनकी भारतमें बहुत अल्प संख्या है फिर भी उसे व्यवहारमें लानेके लिये सतत प्रयत्नशील रहते हैं। श्रीमहात्मा गाँधीने भी उसे अपनाया है और उनका प्रभाव भी जनतामें व्याप्त रहा है....यह प्रसन्नताकी बात है। अस्तु,

हम लोग कांग्रेस देखकर श्रीगिरिनारजीकी यात्राके लिये अहमदाबादसे प्रस्थान कर स्टेशनपर गये और जूनागढ़का टिकिट लेकर ज्यों ही रेलमें बैठे त्यों ही मुझे ज्वरने आ सताया। बहुत बेचैनी हो गई। यद्यपि साथमें पं० मुन्नालालजी और राजधरलालजी वरया थे। परन्तु मैंने किसीसे कुछ संकेत नहीं किया। चुपचाप पड़ गया। पास ही एक वकील बैठे थे, जो राजकोटके रहनेवाले थे और श्वेताम्बर सम्प्रदायके थे। उनसे राजधर वरयाका संवाद होने लगा। बहुत कुछ बात हुई। अन्तमें राजधर वरयाने वकील साहबसे कहा कि मैं तो विशेष बहस नहीं कर सकता। यदि आपको विशेष बहस करना है तो

यह वर्णीजी जो कि बगलमें लेटे हुए हैं, उन्हें जगाये देता हूँ, आप उनसे शङ्का-समाधान करिये। बरयाने मुझे जगाया और कहा कि यह वकील साहब बहुत ही शिष्ट पुरुष हैं, आपसे मतसम्बन्धी चर्चा करना चाहते हैं। मैं उठकर बैठ गया और कुछ समय तक हमारी वकील साहबसे तत्त्वचर्चा होती रही। चर्चाका विषय था—वस्त्रादि परिग्रह है या नहीं? उनका कहना था कि वस्त्र परिग्रह नहीं है। मेरा कहना था कि मोहनीय कर्मके उदयसे जो परिणाम आत्माका होता है, वास्तविक परिग्रह वही है। उसके मिथ्यात्व, वेदत्रय, हास्यादि नव नोकषाय और क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय इस प्रकार चौदह भेद आगममें बतलाये हैं। यही अन्तरङ्ग परिग्रह हैं। अतः वस्त्रोंकी चर्चा छोड़ो, शरीर भी परिग्रह है। परन्तु यह निश्चित है कि वस्त्रादिका ग्रहण विना मूर्छाके नहीं होता, अतः उसे भी भगवान्‌ने उपचारसे परिग्रह संज्ञा दी है। यदि वस्त्रादिके ग्रहणमें मूर्छा न हो तो उसे कौन सँभाले? मैला हो गया, फट गया इत्यादि विकल्प क्यों होवें? श्रीप्रवचनसारमें इसको उपाधि कहा है। जहाँ उपाधि है वहाँ नियमसे हिंसा है, अतः श्री कुन्दकुन्द महाराजने कहा है कि 'जीवके मरने पर हिंसा हो और न भी हो। परन्तु उपाधिके सद्भावमें वह नियमसे होती है,' क्योंकि ईर्यापथसे साधु चल रहा है। इतनेमें कोई सूक्ष्म जीव आया और उसके पगतले दबकर मर गया तो उस समय जीवके मरने पर भी प्रमत्तयोगका अभाव होनेसे साधु हिंसाका भागी नहीं होता और यदि प्रमत्तयोग है तो बाह्य हिंसा न होने परभी हिंसा अवश्यम्भावी है। परन्तु वस्त्रादि उपाधिके सद्भावमें नियमसे हिंसाका सद्भाव है, क्योंकि अन्तरङ्गमें मूर्च्छा विद्यमान है। आप कहते रहे कि दिगम्बर साधु भी तो पीछी, कमण्डलु तथा पुस्तक रखते हैं। उनको भी परिग्रही कहना चाहिए? मैंने कहा—आपका कहना ठीक है, परन्तु इस परिग्रह और वस्त्र

परिग्रहमें महान् अन्तर है। पीछी दयाका उपकरण है, कमण्डलु शौचका उपकरण है और पुस्तक ज्ञानका उपकरण है पर वस्त्र परिग्रह तो केवल शीतादि निवारणके लिए ही रक्खा जाता है। साथ ही इसमें एक दोष यह भी है कि वस्त्र रखनेवाला साधु नग्न परीषह नहीं सहन कर सकता। फिर भी पीछी आदि परिग्रह छठवें गुणस्थान पर्यन्त ही है। सप्तमादि गुणस्थानोंमें यह भी नहीं रहते···इत्यादि बहुत देर तक बातचीत होती रही।

आपकी प्रकृति सौम्य थी, अतः आपने कहा कि 'अच्छा, इसपर विचार करेंगे, अभी मैं इस सिद्धान्तको सर्वथा नहीं मानता। हाँ सिद्धान्त उत्तम है यह मैं मानता हूँ।' मैंने कहा— 'कल्याणका मार्ग पक्षसे बहिर्भूत है।' आपने कहा—'ठीक है, परन्तु जिसकी वासनामें जो सिद्धान्त प्रवेश कर जाता है उसका निकलना सहज नहीं। काल पाकर ही वह निकलता है। सब जानते हैं कि शरीर पुद्गलद्रव्यका पिण्ड है। इसके भीतर आत्माके अंशका भी सद्भाव नहीं है। यद्यपि आत्मा और शरीर एकक्षेत्रावगाही हैं फिर भी आत्माका अंश न पुद्गलात्मक शरीरमें है और न पुद्गलात्मक शरीरका आत्मामें ही है। इतना सब होनेपर भी जीवका इस शरीरके साथ अनादिसे ऐसा मोह हो रहा है कि वह अहर्निश इसीकी सेवामें प्रयत्नशील रहता है। वह इसके लिए जो-जो अनर्थ करता है वह किसीसे गोप्य नहीं है।' मैं बोला— 'ठीक है परन्तु अन्तमें जिसका मोह इससे छूट जाता है वही तो सुमार्गका पात्र होता है। परद्रव्यके सम्बन्धसे जहाँ तक मूर्छा है वहाँ तक कल्याणका पथ नहीं। हम अपनी दुर्बलतासे वस्त्रको न त्याग सकें, यह दूसरी बात है, परन्तु उसे रागबुद्धिसे रखकर भी अपने आपको अपरिग्रही मानें, यह खटकनेकी बात है।' अन्तमें आपने कहा—'यह विषय विचारणीय है।' मैं बोला— 'आपकी इच्छा।'

इसके बाद मैंने कहा कि 'मुझे निद्रा आती है, अतः कृपा कर आप अपने स्थान पर पधारिये। आपके सद्भावमें मैं लेट नहीं सकता। आप एक वकील हैं, पर कहनेमें आपको जरा भी कष्ट न होगा, झट कह उठोगे कि देखो यह लोग धार्मिक कहलाते हैं और हमारे बैठे हुए सो गये, यही असभ्यता इन लोगोंमें है।' वकील साहब बोले—'आप सो जाइये, मैं किस प्रकृतिका मनुष्य हूँ, आपको थोड़ी देरमें पता लग जावेगा। सभ्यता-असभ्यता विद्यासे नहीं जानी जाती। मेरा तो यह सिद्धान्त व अनुभव है कि चाहे संस्कृतका विद्वान् हो, चाहे भाषाका हो और चाहे अंग्रेजीका डाक्टर हो, जो सदाचारी है वह सभ्य है और जो असदाचारी है वह असभ्य है। अन्य कथा जाने दीजिये, जो अपढ़ होकर भी सदाचारी हैं वे सभ्यगणनामें गिननेके योग्य हैं और जो सर्व विद्याओंके पारगामी होकर सदाचारसे रिक्त हैं वे असभ्य हैं।'

वकील साहबकी विवेकपूर्ण बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और मेरे मनमें विचार आया कि आत्माकी अनन्त शक्ति है। न जाने किस आत्मामें उसके गुणोंका विकास हो जावे। यह कोई नियम नहीं कि अमुक जातिमें ही सदाचारी हों, अमुकमें नहीं। मैंने कहा—'महाशय ! मैं आपके इस सुन्दर विचारसे सहमत हूँ। अब मैं लेटता हूँ। अपराधको क्षमा करना'....इतना कह कर मैं लेट गया। चूँकि ज्वर था ही, अतः पैरोंमें तीव्र वेदना थी। मनमें ऐसी कल्पना होती थी कि यदि नाई मिलता तो अभी मालिस करवा लेता। एक कल्पना यह भी होती थी कि वरया-जीसे कहूँ कि मेरे पैरोंसे बड़ी वेदना है, जरा दाब दो। परन्तु संकोचवश किसीसे कुछ कहा नहीं। मैं इस प्रकार विचारोंमें ही निमग्न था कि वकील साहब पैर अनायास दबाने लगे। मैंने कहा—'वकील साहब आप क्या कर रहे हैं ?' उन्होंने कहा—'कोई

हानिकी बात नहीं। मनुष्य मनुष्य हीके तो काम आता है। आप निश्चिन्ततासे सो जाओ।' मैं अन्तरङ्गसे खुश हुआ, क्योंकि यही तो चाहता था। कर्मने वह सुयोग स्वयं मिला दिया।' लिखनेका तात्पर्य यह है कि यदि उदय बलवान् हो तो जहाँ जिस वस्तुकी सम्भावना न हो वहाँ भी वह वस्तु मिल जाती है और उदय निर्बल हो तो हाथमें आई हुई वस्तु भी पलायमान हो जाती है। इस प्रकार दस बजेसे लेकर तीन बजे तक वकील साहब मेरी वैयावृत्य करते रहे। जब प्रातःकालके तीन बजे तब वकील साहबने कहा कि 'अब गिरिनारजीके लिए आपको गाड़ी बदलेगी, जग जाइये।'

हम जग गये और वकील साहबको धन्यवाद देने लगे। उन्होंने कहा कि इसमें धन्यवादकी आवश्यकता नहीं। यह तो हमारा कर्तव्य ही था। यदि आज हमारा भारतवर्ष अपने कर्तव्य का पालन करने लग जावे तो इसकी दुरवस्था अनायास ही दूर हो जावे, परन्तु यही होना कठिन है। अन्तमें वकील साहब चले गये और हम लोग प्रातःकाल जूनागढ़ पहुँच गये। स्टेशनसे धर्मशालामें गये। प्रातःकालकी सामायिकादिसे निश्चिन्त होकर मन्दिर गये और श्रीनेमिनाथ स्वामीके दर्शन कर तृप्त हो गये।

प्रभुका जीवनचरित्र स्मरण कर हृदयमें एकदम स्फूर्ति आ गई और मनमें आया कि हे प्रभो ! ऐसा दिन कब आवेगा जब हम लोग आपके पथका अनुकरण कर सकेंगे। आपको धन्य है। आपने अपने हृदयमें सांसारिक विषयसुखकी अकांक्षाके लिए स्थान नहीं दिया। प्रत्युत अनित्यादि भावनाओंका चिन्तवन किया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने अपना नियोग साधन कर आपकी स्तुति की और आपने दैगम्बरी दीक्षा धारण कर अनन्त प्राणियोंका उपकार किया।''''इत्यादि चिन्तवन करते हुए हम

लोगोंने दो घण्टा मन्दिरमें बिताये। अनन्तर धर्मशालामें आकर भोजनादिसे निवृत्त हुए। फिर मध्याह्नकी सामायिक कर गिरिनार पर्वतकी तलहटीमें चले गये। प्रातःकाल तीन बजेसे वन्दनाके लिए चले और छः बजते-बजते पर्वत पर पहुँच गये। वहाँ पर श्रीनेमिप्रभुके मन्दिरमें सामायिकादि कर पूजन-विधान किया। मूर्ति बहुत ही सुभग तथा चित्ताकर्षक है।

गिरिनार पर्वत समधरातलसे बहुत ऊँचा है। बड़ी-बड़ी चट्टानोंके बीच सीढ़ियाँ लगाकर मार्ग सुगम बनाया गया है। कितनी ही चोटियाँ तो इतनी ऊँची हैं कि उनसे मेघमण्डल नीचे रह जाता है और ऊपरसे नीचेकी ओर देखनेपर ऐसा लगता है मानो मेघ नहीं समुद्र भरा है। कभी-कभी वायु आघात पाकर काले-काले मेघोंकी टुकड़ियाँ पाससे ही निकल जाती हैं, जिससे ऐसा मालूम देता है मानो भक्तजनोंके पापपुञ्ज ही भगवद्भक्तिरूपी छेनीसे छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर उड़ रहे हों। ऊपर अनन्त आकाश और चारों ओर क्षितिज पर्यन्त फैली हुई वृक्षोंकी हरीतिमा देखकर मन मोहित हो जाता है। यह वही गिरिनार है, जिसकी उत्तङ्ग चोटियोंसे कोटि-कोटि मुनियोंने निर्वाणधाम प्राप्त किया है। यह वही गिरिनगर है जिसकी कन्दराओंमें राजुल जैसी सती आर्याओंने घनघोर तपश्चरण किया है। यह वही गिरिनगर है जहाँ कृष्ण और बलभद्र जैसे यदुपुङ्गव भगवान् नेमिनाथकी समवसरणसभामें बड़ी नम्रताके साथ उनके पवित्र उपदेश श्रवण करते थे। यह वही गिरिनगर है जिसकी गुहामें आसीन होकर श्री धरसेन आचार्यने पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यके लिए षट्खण्डागमका परायण कराया था।

मन्दिरसे निकलकर श्वेताम्बर मन्दिरमें जानेका विचार किया। यद्यपि राजधर वरयाने कहा कि पञ्चम टोंकपर चलो,

जहाँ कि श्री नेमिप्रभुका निर्वाण हुआ है तो भी देखनेकी उत्कट अभिलाषासे हम और पण्डित मुन्नालालजी श्वेताम्बर मन्दिरमें चले गये। मन्दिर बहुत विशाल है। एक धर्मशाला भी वहीं है, जिसमें कि सब प्रकारकी सुविधाएँ हैं। खाने-पीनेका भी पूर्ण प्रबन्ध है। यहाँपर यदि कोई साधर्मी भाई धर्म साधनके लिए रहना चाहे तो व्यग्रता नहीं हो सकती। सुविधाकी दृष्टिसे यह सब ठीक है, परन्तु यह पञ्चम काल है। तपोभूमि भोगभूमि बना दी गई है। मन्दिर गये और श्रीनेमिप्रभुकी मूर्ति देखी। ऐसा प्रत्यय हुआ जैसे कोई राजा बैठे हों। हाथोंमें सुवर्णके जड़ाऊ कटक, मस्तकमें कीमती मुकुट, अंगमें बहुमूल्य अंगी, कण्ठमें पुष्पादिसे सुसज्जित बहुमूल्य हार तथा इत्रोंसे सुचर्चित कितना शृङ्गार था, हम वर्णन नहीं कर सकते।

मनमें आया कि देखो इतना सब विभव होकर भी भगवान् संसारसे विरक्त हो गये। यदि उस मूर्तिके साथमें दैगम्बरी दीक्षा की मूर्ति भी होती तो संसारकी असारताका परिज्ञान करनेवालों को बहुत शीघ्र परिज्ञान हो जाता। परन्तु यहाँ तो पक्षपातका इतना प्रभाव है कि दिगम्बर मुद्राको देख भी नहीं सकते। संसारमें यदि यह हठ न होती तो इतने मतोंकी सृष्टि न होती।

वहाँसे चलकर पञ्चम टोंकपर पहुँचे। वहाँ जो पूजाका स्थान है उसे वैष्णव लोग दत्तात्रय कहकर पूजते हैं, कितने ही आदम बाबा कहकर अर्चा करते हैं और दिगम्बर सम्प्रदायवाले श्री नेमिनाथ स्वामीकी निर्वाणभूमि मानकर पूजते हैं। स्थान अत्यन्त पवित्र और वैराग्यका कारण है। परन्तु यहाँ तो केवल स्थानकी पूजा और नेमिप्रभुका कुछ गुण गान कर लौटनेकी चिन्ता हो जाती है।

वहाँसे चलकर बीचमें एक वैष्णव मन्दिर मिलता है, जिसमें साधु लोग रहते हैं। पचासों गाय आदिका परिग्रह उनके पास

है। श्रीरामके उपासक हैं। वहाँसे चलकर सहस्राम्र वनमें आये, जो पहाड़से नीचे तलमें है। जहाँ सहस्रों आमके वृक्ष हैं। बहुत ही रम्य और एकान्त स्थान है। आधा घण्टा रहकर भूखकी वेदना होने लगी, अतः स्थानसे जो लाभ लेना चाहिये वह न ले सके और एक घण्टा चलकर तलहटीकी धर्मशालामें आ गये। वहाँ भोजनादिसे निवृत्त होकर लेट गये।

यहाँसे चलकर पश्चात् रेलमें सवार होकर अहमदाबाद होते हुए बड़ौदा आये। यहाँपर बहुतसे स्थान देखने योग्य हैं, परन्तु शरीरमें स्वास्थ्यके न रहनेसे दाहोद चले आये। यहाँ एक पाठशाला है, जिसमें पं० फूलचन्द्रजी पढ़ाते हैं। यह विद्वान् हैं और सन्तोषी भी। उनके आग्रहसे आठ दिन यहाँ ठहर गये।

यहाँ सन्तोषचन्द्रजी अध्यात्मशास्त्रके अच्छे विद्वान हैं। आपकी स्त्रीका भी अध्यात्मशास्त्रमें अच्छा प्रवेश है। इनके सिवाय और भी बहुत भाई अध्यात्मके प्रेमी ही नहीं, परीक्षक भी हैं। एक दिन मैं सायंकाल सामायिक करके टहल रहा था, इतनेमें एक बाईजी कहती हैं 'यदि प्यास लगी है तो पानी पी लीजिये। अभी तो रात्रि नहीं हुई।' मैंने कहा—'यह क्यों? क्या मेरी परीक्षा करना चाहती हो?' उसने कहा—अभिप्राय तो यही था, पर आप तो परीक्षामें फैल नहीं हुए। बहुतसे फेल हो जाते हैं।'

यहाँ जितने दिन रहा तत्त्वचर्चामें काल गया। पश्चात् यहाँसे चलकर उज्जैन आया और वहाँसे भोपाल होता हुआ सागर आ गया।

भिक्षासे शिक्षा

पहलेकी एक बात लिखना रह गई है। जब मैं कटराकी धर्मशालामें नहीं आया था, बड़ा बाजारमें श्री सिं० बालचन्द्रजीके ही मकानमें रहता था, तबकी बात है। मेरे मकानके पास ही एक लम्पूलाल रहते थे, जो गोलापूर्व वंशज थे। बहुत ही बुद्धिमान् और विवेकी जीव थे। हमेशा श्री सिं० बालचन्द्रजीके शास्त्रप्रवचनमें आते थे। पाँच सौ रुपयासे ही आप व्यापार करते थे। आपकी स्त्री भी धर्मात्मा थी। उनका हमसे बड़ा प्रेम था। जब लम्पूलालजी बीमार पड़े तब समाधिमरणसे देहका त्याग किया और उनके पास जो द्रव्य था उसका यथायोग्य विभाग कर ७५) हमारे फल खानेके लिये दे गये। वे बाईजीसे कहा करते थे कि वर्णीजी आपसे अधिक खर्च करते हैं। न जाने आप इनका निर्वाह कैसे करती हैं। ये प्रकृतिके बड़े उदार हैं। बाईजी हँसकर कह देती थीं कि जब सम्पत्ति समाप्त हो जावेगी तब देखा जायगा, अभीसे चिन्ता क्यों करूँ। वे व्यवहारके भी बड़े पक्के थे। एक दिन बाईजीके पास आकर बोले—'बाईजी! आज दही खानेकी इच्छा है।' बाईजीने एक कटोरामें दही दे दिया। वे घर ले गये, शामको कटोरा और दो आना पैसे दे गये। बाईजीने कहा— भैया! दो आने पैसे किसलिये रक्खे हैं?' उन्होंने कहा-'यह दहीकी कीमत है।' बाईजीने कहा—'क्या मैंने पैसेके लिये दही दिया था?' उन्होंने कहा—'तो क्या मुफ्तमें मांगने आया था? मुफ्त की चीज हमेशा तो नहीं मिलती।' बाईजी चुप हो रहीं। मैं उनके इस स्पष्ट व्यवहारसे बहुत विस्मित हुआ, अस्तु।

यह दूसरी बात है—एक दिन मैं भोजन कर रहा था। इतनेमें एक भिखमंगा आया और गिड़गिड़ा कर मांगने लगा। मुझसे भोजन नहीं किया गया। मैंने दो रोटी और कढ़ी लेकर उसे दी

तथा पानी पिलाया। पानी पीते समय उसका कपड़ा उघड़ गया, जिससे उसका पेट भरा हुआ दिखाई दिया। मैंने कहा—'इतने करुण स्वरसे क्यों मांगते हो ? तुम्हारे पेटके देखनेसे तो मालूम होता है कि तुम भूखे नहीं हो। शब्दोंसे अवश्य ऐसा लगता है कि तुम आठ दिनके बुभुक्षित हो।' वह बोला—'यदि इस तरह न मांगा जावे तो कौन साला देवे ?' मैं उसके शब्द सुनकर एक-दम कुपित हो गया, परन्तु यह सोचकर शान्त रह गया कि भिख-मंगा है। यदि इसे डांटता हूँ तो पचास गालियाँ सुनावेगा। नीचके मुँह लगना अच्छा नहीं।

मैंने नम्र शब्दोंमें उससे कहा—'भाई ! क्षमा करो, हम भूल गये। परन्तु यह तो बताओ कि आपके पास कितना रूपया है ?' वह बोला—'वर्णीजी ! आप बड़े भोलेभाले हो। अरे हम तो भिक्षुक हैं,टुकड़ा मांगकर उदर पोषण करते हैं,हमारे पास क्या व्यापार है, जिससे रुपया आवे।' मैंने कहा—'आप ठीक कहते हैं, परन्तु हम ऐसा सुनते हैं कि भिखमंगोंके पास गूदड़ियोंमें हजारों रुपये रहते हैं।' वह बोला—'यह तो सरासर सफेद झूठ है। सैकड़ों रह सकते हैं, परन्तु इस चर्चामें क्या है ? अथवा आप पूछना ही चाहते हैं तो सुनो—मेरे पास १००) नकद, ? जोड़ो चूड़ा और १० सेर गेंहू चांवल आदिका संग्रह है। इसके अति-रिक्त एक स्त्री भी है , जिसकी उमर ४० वर्षकी है ।' मैंने कहा—'स्त्री कहाँ से आई ?' वह बोला—'आप बड़े भोले हो। जैसे भिख-मंगे हैं वैसे वह भिखमंगी है। आप कुछ नहीं समझते। संसारमें बड़ी दुर्घटनाएँ होती हैं।' मैंने कहा-'जब कि तुम्हारे पास इतनी सामग्री है तब इस प्रकार भीख क्यों माँगते हो ?' वह बोला-'देखो, फिर वही बात ? यदि इस तरहसे न माँगे तो कौन साला देवे ? मैंने कहा-'जाईये ।' वह बोला-'जाते हैं। केवल तुम्हारा ही घर है क्या ? तुम्हारेसे बीसों उल्लू हमको देनेवाले हैं। हममें माँगनेका वह

पुरुषार्थ है कि माँगकर दश आदमियोंको खिला सकते हैं। अब आप एक शिक्षा हमारी मानना। वह यह कि केवल ऊपरी वेष देखकर ठगा न जाना। 'दया करना धर्म है' यह ठीक है, क्योंकि सर्वमतवाले इसे अपने-अपने शास्त्रोंमें पाते हैं। परन्तु यह समझना कठिन है कि यह दयाका पात्र है। तुम लोग शास्त्रमात्र पढ़ लेते हो, परन्तु शास्त्र-प्रतिपाद्य विषयमें निपुण नहीं होते। जैसे मैंने आपको ठग लिया। अथवा मैं तो उपलक्षण हूँ। अभी दो घण्टा बाद एक लूला यहाँसे निकलेगा। मैं देखता हूँ कि आपकी माताजी उसे प्रतिदिन १ रोटी देती हैं, परन्तु आपको नहीं मालूम, उसके पास क्या है ? उसके पास २०००) की नकदी है और इतने पर भी वह माँगता है। यह भारतदेश है। इसमें धर्मके नामपर मनुष्योंने प्राणतक न्यौछावर कर दिये, परन्तु अब यहाँके मनुष्योंमें विवेककी मात्रा घटती जाती है। पात्र-अपात्रका विचार उठता जाता है। सैकड़ों ऐसे परिवार हैं कि जिनकी रक्षा करनी चाहिए पर उनकी ओर दान देने वालोंकी दृष्टि नहीं। अन्धे-लूलोंको देखकर आप लोगोंका दयाका स्रोत उमड़ पड़ता है, पर इतना विवेक नहीं रहता कि इनके रहनेके स्थान भी देखें। वहाँ ये क्या-क्या बातें करते हैं, यह आप लोग नहीं जानते। मैं जहाँ रहता हूँ वहाँ पर बहुतसे दरिद्र भिखमंगोंका निवास है। उनमें कोई भी अभागा मँगता होगा, जिसके कि पास द्रव्य न हो। प्रत्येकके पास कुछ न कुछ रुपया होगा। खानेकी सामग्री तो एक मास तककी होगी। आप लोग हमारी दशा देखकर वस्त्रादि देते हैं पर जो नवीन वस्त्र मिलता है उसे हम बेच देते हैं, चाहे एक रुपयोंके स्थानमें चार आना ही क्यों न मिलें ? हमारा क्या गया, जो मिला सो ही भला। यही कारण है कि भारतमें भिखमंगे बढ़ते जाते हैं। आप लोग यदि विवेकसे काम लेते तो जो परिवार वास्तवमें दरिद्र हैं, जिनके बालक मारे-

मारे फिरते हैं उनका पोषण करते, उन्हें शिक्षित बनाते,व्यापार-नौकरीसे लगाते, परन्तु वह तो दूर रहा, आप अयोग्य आदमियोंको दान देकर भिखमंगोंकी संख्या बढ़ा रहे हैं। जब बिना कुछ किये ही हम लोगोंको आपकी उदारतासे बहुत कुछ मिल जाता है तब हमें काम करनेकी क्या आवश्यकता है। भारतवर्षमें अकर्मण्यता इन्हीं अविवेकी दानवीरोंकी बदौलत ही तो अपना स्थान बनाये हुए है। आप लोगोंके पास जो द्रव्य है उसका उपयोग या तो आप हमारे लिए दान देकर करते हैं या अधिक भाव हुए तो मन्दिर बनवा दिया या संघ निकाल दिया या अन्य कुछ कर दिया। यदि वैष्णव सम्प्रदायमें धन हुआ तो शिवालय बनवा दिया, राममन्दिर बनवा दिया या साधुमण्डलीको भोज दे दिया। आप लोगोंने यह कभी विचार नहीं किया कि जातिमें कितने परिवार आजीविका-विहीन हैं, कितने बालक आजीविकाके बिना यहाँ-वहाँ घूम रहे हैं और कितनी विधवाएँ आजीविकाके बिना आह-आह करके आयु पूर्ण कर रही हैं। असलमें बात यह है कि आप लोग न्यायसे द्रव्य उपार्जन नहीं करते, अन्यथा आपके धनका इतना दुरुपयोग न होता। किसी कविने ठीक कहा है—

'गङ्गाजीके घाट पर खाई खीर अरु खाँड़।
योंका धन यों ही गया तुम वेश्या हम भाँड़।'

शायद इसका तात्पर्य आप न समझे होंगे। तात्पर्य यह है कि एक वेश्याने आजन्म व्यभिचारसे पैसा उपार्जन किया। अन्तमें उसे दानकी सूझी। उसने विचारा कि मैंने जन्म भर बहुत पाप किये अब अन्तमें कुछ दान-पुण्य अवश्य करना चाहिये। ऐसा विचार कर उसने प्रयागके लिये प्रयाण किया। कुम्भका मेला था। लाखों यात्रीगण स्नानके लिये जा रहे थे। उस वेश्याको देखकर एक भाँड़ने विचार किया कि देखो हजारों चूहे खाकर बिल्ली हज्जको जा रही है।' मैं भी आज इसे अपना प्रभाव

दिखा कर मोहित करूँगा ? ऐसा विचार कर वह भाँड़ साधुका वेष बना एक घाट पर निश्चल आसनसे आँख मूदकर ईश्वरका भजन करने लगा। उसने ऐसी मुद्रा धारण की कि देखनेवाले बिना नमस्कार किये नहीं जाते थे। कोई-कोई तो बीस-बीस मिनट तक साधु महाराजकी स्तुतिकर अपने आपको कृतकृत्य समझते थे और जब वहाँसे जाते थे तब साधु महाराजकी प्रशंसा करते हुए अपनेको धन्य समझते थे। महाराजके सामने पुष्पोंका ढेर लग गया। सेरों मिठाईके दोने चढ़ गये। इतनेमें वह वेश्या वहाँ पहुँची और महाराजकी मुद्रा देखकर मोहित हो गई। धन्य मेरे भाग्य कि इस कालमें भी ऐसे महात्माके दर्शन मिल गये। कैसी सुन्दर मुद्रा है ? मानों शान्तिके अवतार ही हैं। महाराज.... इत्यादि शब्दों द्वारा महाराजकी प्रशंसा करने लगी। महाराजने वेश्याको देखकर एकदम साँस रोक ली और पत्थरकी मूर्तिकी तरह निश्चल हो गये।

वेश्या घूमघाम कर फिर आई और महाराजको निश्चल देख कर दस मिनट खड़ी रही। अनन्तर मन-ही-मन विचारने लगी कि यदि महाराज मेरे यहाँ भोजन कर लें तो मैं जन्म भरके पापसे मुक्त हो जाऊँगी, परन्तु कोई पटरी नहीं बैठी। ऐसा तर्क-वितर्क करती हुई सामने खड़ी रही और महाराज उसी प्रकार निश्चल बने रहे। अन्तमें वेश्याने कहा—'महाराज ! धन्य हैं आपकी तपस्याको और धन्य है आपकी ईश्वरभक्तिको। अब भी इस कलिकालमें आप जैसे नररत्नोंसे इस वसुन्धराकी महिमा है। मैं बारम्बार आपको नमस्कार करती हूँ। मैं वह हूँ जिसने सैकड़ों घरोंके लड़कोंको कुमार्गमें लगा दिया और सैकड़ोंको दरिद्र बना दिया। अब आपके सामने उन पापोंकी निन्दा करती हूँ। यदि आपकी समाधि खुलती और आप मेरा निमन्त्रण अंगीकार करते तो मेरा भी कल्याण हो जाता।' इतना कहकर वेश्या चली गई।

महाराजके मनमें पानी आ गया। उन्होंने मन-ही-मन कहा—'अच्छा बनाव बना।'

आध घण्टा बाद वेश्या फिर आ गई और पहले ही के समान नमस्कारादि करने लगी। उसकी भक्ति देखकर महाराज अपनी समाधिको अब अधिक देर तक कायम न रख सके। समाधि तोड़कर आशीर्वाद देते हैं—'तुम्हारा कल्याण हो।' साथ ही हाथ ऊपर उठाकर कहने लगे कि 'हम अपने दिव्य ज्ञानसे तुम्हारे हृदयकी बात जान गये। तू अमुक गाँवकी रहनेवाली वेश्या है। तूने युवावस्थामें बहुत पाप किये,पर अब वृद्धावस्थामें धर्मके विचार हो गये हैं। तू यहाँ किसी साधुको खीर खाँड़का भोजन कराने आई है। तेरा विश्वास है कि साधुको भोजन देने से मेरे पाप छूट जावेंगे और मेरी परलोकमें सद्गति होगी। यहाँ पर कुम्भका मेला है। हजारों साधु ब्राह्मण आये हैं। तू यद्यपि उन्हें दान दे सकती है पर तेरी यह दृष्टि हो गई है कि मेरा-सा साधु यहाँ नहीं है। सो ठीक है, परन्तु मैं तो कोई साधु नहीं, केवल इस वेषमें बैठा हूँ जिससे तुझे साधु-सा मालूम होता हूँ। देख, सामने सैकड़ों दोना मिठाई और सैकड़ों फूलों की मालाएँ पड़ी हुई हैं पर मैं कितना खा सकता हूँ? लोक अविवेकी हैं, विना विचारे ही यह मिठाई चढ़ा गये। यदि विवेक होता तो किसी गरीबको देते। इन लोगोंने यह भी विचार नहीं किया कि यह साधु इन सैकड़ों फूलोंकी मालाओंका क्या करेगा? परन्तु लोग तो भेड़ियाधसानका अनुकरण करते हैं। व्यासजीने ठीक ही कहा है—

'गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः।
बालुकापुञ्जमात्रेण गतं मे ताम्रभाजनम्॥'

इसका यह तात्पर्य है कि एक बार एक ऋषि गंगा स्नान करनेके लिए गया। चूँकि भीड़ बहुत थी, अतः विचार किया कि

यदि तटपर कमण्डलु रखकर गोता लगाता हूँ और तब तक कोई कमण्डलु ले जाय तो क्या करूँगा ? ऋषिको तत्काल एक उपाय सूझा और उसके फलस्वरूप अपना कमण्डलु बालुका-पुंजसे ढककर गोता लगानेके लिये चले गये। दूसरे लोगोंने देखा कि महाराज बालूका ढेर लगाकर गंगास्नानके लिए गये हैं, अतः हमको यही करना चाहिये। फिर क्या था ? हजारों आदमियोंने बालूके ढेर लगाकर गंगा-स्नान किये। जब साधु महाराज गंगाजीसे निकले तो क्या देखते हैं कि हजारों बालूके ढेर लगे हुए हैं, कहाँ कमण्डलु खोजें ? उस समय वह बड़े निर्वेदसे बोले कि 'गतानुगतिको लोकः'—अतः तू हठ छोड़ दे कि यहाँ यही एक उत्तम साधु है। सैकड़ों एक-से-एक बढ़कर साधु आये हुए हैं। तू उन्हें दान देकर अपनी इच्छा पूर्ण कर और पापसे मुक्त हो। हमारा आशीर्वाद ही बहुत है। मैं तो तेरा भोजन नहीं कर सकता हूँ।'

साधु महाराजकी उपेक्षापूर्ण बात सुनकर वेश्याकी और भी अधिक भक्ति हो गई। वह बोली—'महाराज ! मैं तो आपको ही महात्मा समझती हूँ। आशा है, मेरी कामना विफल न होगी। जब जैसाको तैसा मिलता है तभी काम बनता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

'उत्तमसे उत्तम मिले मिले नीचसे नीच।
पानीसे पानी मिले कीचसे कीच॥'

साधुने कहा—'ठीक, परन्तु तेरे भोजनसे मेरी तपस्या भंग हो जावेगी और मैं वेश्याका अन्न खानेसे फिर तपस्या करनेका पात्र भी न रहूँगा। शुद्ध होनेके लिए मुझे स्वयं एक ब्राह्मण साधुको भोजन कराना पड़ेगा, जिसमें एक लाख रुपयेकी आवश्यकता पड़ेगी। मैं किसीसे याचना तो करता नहीं। यदि तेरा सावकाश हो तो जो तेरी इच्छा हो सो कर। मेरी इच्छा नहीं कि तुझे

इतना व्यय कर शुद्ध होना पड़े।' उसने कहा—'महाराज! रुपया की कोई चिन्ता नहीं। पापका पैसा है, यदि सुकृतमें लग जावे तो अच्छा है।' 'अच्छा तो संकल्प पढ़ूँ?' महाराजने दबी जबानसे कहा और उसने उसी समय एक लाख नोट उनके सामने रख दिये। महाराज ने मन ही मन संकल्प पढ़ा और कहा—'ला खीर और खाँड़ भोजन कर लूँ।' वेश्याने बड़ी प्रसन्नता के साथ खीर और खाँड़ समर्पित कर दी। साधु महाराजने आनन्दसे भोजन किया और कुछ प्रसाद उसे भी दे दिया। वेश्या मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई और कहने लगी कि रुपया तो हाथका मैल है, फिर हो जायगा पर पापसे शुद्ध तो हुई। अन्तमें महाराजको धन्यवाद देकर जब वह जाने लगी तब महाराजने अपने असली भाँड़का रूप धारणकर यह दोहा पढ़ा—'गङ्गाजीके घाट पर·····' समझे।

उस भिखमंगेने कहा कि 'यही हाल आप लोगोंके धन उपार्जनका है। प्रथम तो आपकी आयका बहुत-सा अंश इनकम टेक्सके रूपमें गवर्मेन्ट ले जाती है, बहुत-सा विवाह आदिमें चला जाता है, बहुत-सा वैद्य-डाक्टरोंके पेटमें चला जाता है और कुछ अंश हम जैसे कंगाल भाई फक्कड़बाजीसे माँग ले जाते हैं। हम तो मूर्ख हैं यदि कोई विद्वान् हो तो इसकी मीमांसामें एक पुराण बना सकता है।

मैं जन्मसे भिखमंगा न था, एक धनाढ्य कुलमें उत्पन्न हुआ था, जातिका द्विज वर्ण हूँ, मेरे जमींदारी होती थी और लेन-देन भी था। मेरे दुर्भाग्यसे मेरा बाप मर गया। मेरा धन मेरे चाचा आदिने हड़प लिया। मेरी स्त्री शोकमें मर गई। मैं दुखी हो गया। खानेको इतना तंग हुआ कि कभी-कभी शाम तक भोजन मिलना भी कठिन हो गया। अन्तमें यह विचार किया कि ईसाई या मुसलमान हो जाऊँ, परन्तु धर्म-परिवर्तनकी अपेक्षा भीख

माँगना ही उचित समझा। मैं सात क्लास हिन्दी पढ़ा हूँ, इससे माँगनेका ढंग अच्छा है। जबसे भिक्षा माँगने लगा हूँ, सुखसे हूँ। विषयकी लिप्सासे एक भिखमंगीको स्त्री और एकको दासी बना लिया है। यद्यपि मुझे इस बातका पश्चात्ताप है कि मैंने अन्याय किया और धर्मशास्त्रके विरुद्ध मेरा आचरण हुआ। परन्तु करता क्या? 'आपत्काले मर्यादा नास्ति'। यह हमारी रामकहानी है। अब आप विवेकसे भिक्षा देना, अन्यथा पैसा भी खोओगे और गाली भी खाओगे। पुण्यका लेश भी पाना तो दूर रहा, अविवेकसे दान देना मूर्खता है। अच्छा अब मैं जाता हूँ'.......इतना कह कर वह आगे चला गया और हम समीप ही इकट्ठे हुए लोगोंके साथ इन भिखमंगोंकी चालाकीपर अचम्भा करने लगे।

प्रभावना

व्यवहारधर्मकी प्रवृत्ति देश-कालके अनुसार होती है। अभी आप मारवाड़में जाईये, वहाँ आपको गेहूँ आदि अनाज धोकर खानेका रिवाज नहीं मिलेगा। परन्तु चुगनेकी पद्धति बहुत ही उत्तम मिलेगी। भोजन करनेके समय वहाँके लोग पैरोंके धोनेमें सेरों पानी नहीं ढोलेंगे और स्नान अल्प जलसे करेंगे। इसका कारण यह है कि वहाँ पानीकी बहुलता नहीं। परन्तु हमारे प्रान्तमें विना धोया अनाज नहीं खावेंगे, भोजनके समय लोटा भर पानी ढोल देवेंगे और स्नान भी अधिक जलसे करेंगे। इसका मूल कारण पानीकी पुष्कलता है। इन क्रियाओंसे न तो मारवाड़की पद्धति अच्छी है और न हमारी बुरी है। त्रसहिंसा वहाँ भी टालते हैं और यहाँ भी टालते हैं। यह तो बाह्य क्रियाओंकी बात रही। अब कुछ धार्मिक बातों पर भी विचार कीजिए—जिस ग्राममें मन्दिर और मूर्तियोंकी प्रचुरता है, यदि वहाँ पर मन्दिर

न बनवाया जाय तथा गजरथ न चलाया जावे तो कोई हानि नहीं। वही द्रव्य दरिद्र लोगोंके स्थितीकरणमें लगाया जावे, बालकोंको शिक्षित बनाया जावे, धर्मका यथार्थ स्वरूप समझाकर लोगोंकी धर्ममें यथार्थ प्रवृत्ति करायी जावे, प्राचीन शास्त्रोंकी रक्षा की जावे, प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया जावे या सब विकल्प छोड़ यथायोग्य विभागके द्वारासाधर्मी भाईयोंको धर्म-साधनमें लगाया जावे तो क्या धर्म नहीं हो सकता ?

प्रभावना दो तरहसे होती है एक तो पुष्कल द्रव्यको व्ययकर गजरथ चलाना, पचासों हजार मनुष्योंको भोजन देना, संगीत मंडलीके द्वारा गान कराना और उसके द्वारा सहस्रों नर-नारियोंके मनमें जैनधर्मकी प्राचीनताके साथ-साथ वास्तविक कल्याणका मार्ग प्रकट कर देना···यह प्रभावना है। प्राचीन समयमें लोग इसी प्रकारकी प्रभावना करते थे। परन्तु इस समय इस तरहकी प्रभावनाकी आवश्यकता नहीं है और दूसरी प्रभावना यह है जिसकी कि लोग आज अत्यन्त आवश्यकता बतलाते हैं। वह यह कि हजारों दरिद्रोंको भोजन देना, अनाथोंको वस्त्र देना, प्रत्येक ऋतुके अनुकूल व्यवस्था करना, अन्नक्षेत्र खुलवाना, गर्मीके दिनोंमें पानी पीनेका प्रबन्ध करना, आजीविका-विहीन मनुष्योंको आजीविकासे लगाना, शुद्ध औषधियोंकी व्यवस्था करना, स्थान-स्थानपर ऋतुओंके अनुकूल धर्मशालाएँ बनवाना और लोगोंका अज्ञान दूरकर उनमें सम्यग्ज्ञानका प्रचार करना। श्रीसमतन्तभद्र स्वामीने प्रभावनाका यह लक्षण बतलाया है—

'अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥'

अर्थात् अज्ञानान्धकारसे जगत् आच्छन्न है। उसे जैसे बने वैसे दूरकर जिन शासनका माहात्म्य फैलाना सो प्रभावना है। आज मोहान्धकारसे जगत् व्याप्त है। उसे यह पता नहीं कि हम

कौन हैं ? हमारा कर्तव्य क्या है ? प्रथम तो जगत्‌के प्राणी स्वयं अज्ञानी हैं। दूसरे मिथ्या उपदेशोंके द्वारा आत्मज्ञानसे वञ्चित कराये जाते हैं। भारतवर्षमें करोड़ों आदमी देवीको बलिदान कर धर्म मानते हैं। जहाँ देवीकी मूर्ति होती है वहाँ दशहराके दिन सहस्रों बकरोंकी बलि हो जाती है। रुधिरके पनारे बहने लगते हैं। हजारों महिषोंका प्राणघात हो जाता है। यह प्रथा नेपालमें है। कलकत्तामें भी कालीजीके सम्मुख बड़े-बड़े विद्वान् लोग इस कृत्यके करनेमें धर्म समझते हैं। उन्हें जहाँ तक बने सन्मार्गका उपदेश देकर सन्मार्गकी प्रभावना करना महान् धर्म है। परन्तु हमारी दृष्टि उस ओर नहीं जाती। धर्मका स्वरूप तो दया है। वे भी तो हमारे भाई हैं जो कि उपदेशके अभावमें कुमार्गगामी हो गये हैं। यदि हमारा लक्ष्य होता तो उनका कुमार्गसे सुमार्गपर आना क्या दुर्लभ था। वे संज्ञी हैं, मनुष्य हैं, साक्षर हैं, बुद्धिमान हैं फिर भी सदुपदेशके अभावमें आज उनकी यह दुर्दशा हो रही है। यदि उन्हें सदुपदेशका लाभ हो तो उनका सुधरना कठिन बात नहीं। परन्तु उस ओर हमारी दृष्टि जाती ही नहीं। अन्यकी कथा छोड़िये। देहातमें जिन जैन लोगोंका निवास है उन्हें जैनधर्मके परिचय करानेका कोई साधन नहीं है। जो उपदेशक हैं वे उन्हीं बड़े-बड़े शहरोंमें जाते हैं जहाँ कि सवारी आदिके पुष्कल सुभीते होते हैं। अथवा देहातकी बात जाने दीजिये, तीर्थस्थानों पर भी शास्त्रप्रवचनका कोई योग्य प्रबन्ध नहीं। केवल पूजन-पाठसे ही मनुष्य सन्तोष कर लेते हैं। सबसे महान् तीर्थ गिरिराज सम्मेदाचल है जहाँसे अनन्तानन्त प्राणी मोक्षलाभ कर चुके। परन्तु वहाँ पर भी कोई ऐसा विद्वान् नहीं जो जनताको मार्मिक शब्दोंमें क्षेत्रका माहात्म्य समझा सके। जहाँ पर हजारों रुपये मासिकका व्यय है वहाँ पर ज्ञानदानका कोई साधन नहीं।

जिस समय श्रीशान्तिसागर महाराजका वहाँ शुभागमन हुआ था उस समय वहाँ एक लाखसे भी अधिक जनताका जमाव हुआ था। भारतवर्ष भरके धनाढ्य, विद्वान् तथा साधारण मनुष्य उस समारोहमें थे। पण्डितोंके मार्मिक तत्त्वोंपर बड़े-बड़े व्याख्यान हुए थे। महासभा, तीर्थक्षेत्र कमेटी आदिके अधिवेशन हुए थे, कोठियोंमें भरपूर आमदनी हुई, लाखों रुपये रेलवे कम्पनी ने कमाये और लाखों ही रुपये मोटरकार तथा बैलगाड़ियोंमें गये। परन्तु सर्वदाके लिये कोई स्थायी कार्य नहीं हुआ। क्या उस समय दश लाखकी पूँजीसे एक ऐसी संस्थाका खोला जाना दुर्लभ था, जिसमें कि उस प्रान्तके भीलोंके हजारों बालक जैनधर्म-की शिक्षा पाते, हजारों गरीबोंके लिये औषधिका प्रबन्ध होता और हजारों मनुष्य आजीविकाके साधन प्राप्त करते। परन्तु यह तो स्वप्नकी वार्ता है, क्योंकि हमारी दृष्टि इन कार्योंको व्यर्थ समझ रही है। यह कलिकालका माहात्म्य है कि हम द्रव्य व्यय करके भी उसके यथेष्ट लाभसे वञ्चित रहते हैं। ईसाई धर्मवा-लोंको देखिये, उन्होंने अपनी कर्तव्यपटुतासे लाखों आदमियोंको ईसाई धर्ममें दीक्षित कर लिया। हम यहाँ पर उस धर्मकी समीक्षा करते, परन्तु यह निश्चित है कि वह धर्म भारतवर्षका नहीं, उसका चलानेवाला यूरोपका था।

एक दिनकी बात है। बरुवासागरमें मूलचन्द्रके श्वसुरके उसके पुत्रने शिरमें लाठी मार दी, उससे शिर फूट गया और रुधिर बहने लगा। हम व मूलचन्द्र सराफ वहीं पर बैठे थे, केवल वचनोंसे प्रलाप करने लगे कि देखो, कैसा दुष्ट है? पिताका शिर जर्जर कर दिया। अरे! कोई है नहीं, इसे पकड़ो। दरोगा साहब के यहाँ पुलिसमें रिपोर्ट कर दो। पता लगेगा कि मारनेका यह फल होता है। देखो, कैसा दुष्ट है। पिता वृद्ध है। उसको उचित तो यह था कि इसकी वार्धक्य अवस्थामें सेवा करता, पर वह तो दूर रहो,

उल्टा लाठीसे शिर जर्जरित कर दिया। हा भगवन्! भारतमें कैसे अधम पुरुष होने लगे हैं? यही कारण है कि यहाँ पर दुर्भिक्ष और मारीका प्रकोप बना रहता है। जहाँ पापी मनुष्योंका निवास, रहता है वहाँ दुःखकी सब सामग्री रहती है.........' इत्यादि जो कुछ मनमें आया उसे वचनों द्वारा प्रकट कर हम दोनोंने सन्तोष कर लिया। पर यह न हुआ कि उस वृद्धकी कुछ सेवा करते। इतने में क्या देखते हैं कि एक मनुष्य जो वहाँ भीड़में खड़ा हुआ था, एकदम दौड़ा हुआ अपने घर गया और शीघ्र ही कुछ समान लेकर वहाँ आगया। उसने जलसे उस वृद्धका शिर धोया और घावके ऊपर एक बोतलमेंसे कुछ दवाई डाली। पश्चात् एक रेशम का टुकड़ा जलाकर शिरमें भर दिया। फिर एक पट्टी शिरमें बाँध दी। साथमें दो आदमी लाया था, उनके द्वारा उस वृद्धको उसके घर पहुँचा दिया। भीड़में खड़े हुए पचासों आदमी उसकी इस सेवावृत्तिकी प्रशंसा करने लगे।

हम लोगोंने उससे पूछा—'भाई! आप कौन हैं? वह बोला 'इससे आपको क्या प्रयोजन? हम कोई रहें, आपके काम तो आये।' फिर हमने आग्रहसे पूछा—'जरा बतलाइये तो कौन हैं?' उसने कहा—'हम एक हिन्दूके बालक हैं। ईसाई धर्ममें हमारी दीक्षा हुई है। हमारा बाप जातिका कोरी था। इसी गाँवका रहनेवाला था। जब दुर्भिक्ष पड़ा और हमारे बापकी किसीने परवरिश न की, तब लाचार होकर उन्होंने ईसाईधर्म अंगीकार कर लिया। हमारी माँ अब भी सीतारामका स्मरण करती है। हमारी भी रुचि हिन्दू धर्मसे हटी नहीं है। परन्तु खेद है आप तो जैनी हैं, पानी छानकर पीते हैं, रात्रि-भोजन नहीं करते, किसी जीवका वध न हो जावे, इसलिए चुग चुगकर अन्न खाते हैं, कण्डा नहीं जलाते' क्योंकि उसमें जीवराशि होती है, खटमल होनेपर खटिया घाममें नहीं डालते और किसी स्त्रीके शिरमें जुवाँ हो जावें तो

उन्हें निकालकर सुरक्षित स्थानपर रख देते हैं....यह सब होने पर भी आपके यहाँ जो दया बतलाई है उससे आप लोग वञ्चित रहते हैं। एक वृद्धको उसके लड़केने लाठी मार दी, यह तुम लोग देखते रहे। क्या एकदम लाठी मार दी होगी? नहीं, पहले तो वृद्धने उसे कुछ अनाप-सनाप गाली दी होगी। पश्चात् लड़केने कुछ कहा होगा। धीरे-धीरे बात बढ़ते-बढ़ते यह अवसर आ गया कि लड़केने पिताका शिर फोड़ दिया। आप लोगोंको उचित था कि उसी समय, जब कि उन दोनोंकी बात बढ़ रही थी, उन्हें समझाकर या स्थानान्तरित करके शान्त कर देते। परन्तु तुम लोगोंकी यह प्रकृति पड़ गई है कि झगड़ामें कौन पड़े? यह शूरता नहीं, यह तो कायरता है। पीछे जब लड़केने वृद्धका शिर फोड़ दिया तब चिल्लाने लगे कि हाय रे हाय! कैसा दुष्ट बालक है पर हम आपसे ही पूछते हैं कि ऐसी समवेदना किस काम की? तुम लोग केवल बोलनेमें शूर हो, जिसका समवेदनामें कर्तव्य नहीं उससे क्या लाभ? कार्य करनेमें नपुंसक हो। उचित तो यह था कि उस वृद्धकी उसी समय औषधि आदिसे सेवा करते। परन्तु तुम्हें तो खून देखनेसे भय लगता है। पराये शरीरकी रुग्णावस्था देख ग्लानि आती है। तुम लोग अपने माँ-बापकी शुश्रूषा नहीं कर सकते। व्यर्थ ही अहिंसा धर्मकी अवहेलना कर रहे हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अहिंसा ही परम धर्म है। परन्तु तुम लोगोंकी भाषा ही बोलनेमें मधुर है। तुम्हारा अन्तरङ्ग शुद्ध नहीं। हम लोगोंसे आप लोग घृणा करते हो। परन्तु कभी एकान्तमें यह विचारा कि हम ईसाई क्यों हो गये? खानेके लिए अन्न न मिला। पहिननेके लिए वस्त्र नहीं मिले। उस हालतमें आप ही बतलाइये, क्या करते? आपका धर्म इतना उत्कृष्ट है कि उसका पालन करनेवाला संसारमें अलौकिक हो जाता है। परन्तु तुम्हारे आचरणको देखकर मुझे तो दया आती है। मुझे

तो ऐसे स्वार्थी लोगोंको मनुष्य कहते हुए भी लज्जा आती है, अतः मेरी तो आपसे यह विनय है कि आप लोग जितना बोलते हैं उसका सौवाँ हिस्सा भी पालन करनेमें लावें तो आपकी उपमा इस समय भी मिलना कठिन हो जावे। आप लोगोंमें इतनी अज्ञानता समा गई है कि आप लोग मनुष्यको मनुष्य नहीं मानते। सबसे उत्कृष्ट मनुष्य-पर्याय है, उसका आप लोगोंको ध्यान नहीं। यदि इसका ध्यान होता तो आपके धनका सदुपयोग मनुष्यत्वके विकासमें परिणत होता। आप लोगोंके यहाँ एक भी ऐसा आयतन नहीं, जिसमें बालकोंको प्रथम धार्मिक शिक्षा दी जाती हो। आप लोगोंके लाखों रुपये मन्दिर-प्रतिष्ठा तथा तीर्थ-यात्रा आदिमें व्यय होते हैं, परन्तु बालकोंको वास्तविक धर्मका ज्ञान हो इस ओर किसीका लक्ष्य नहीं, किसीका प्रयत्न नहीं। अस्तु, हमको क्या प्रयोजन! केवल आपकी चेष्टा देख हमने आप लोगोंकी कुछ त्रुटियोंका आभास करा दिया है। अच्छा हम जाते हैं....।'

हम उसकी इस खरी समालोचनासे बहुत ही प्रसन्न हुए। जिन्हें हम यह समझते हैं कि ये लोग धर्म-विरुद्ध आचारण करते हैं वे लोग भी हमारे कार्योंको देखकर हमें उत्तम नहीं मानते। कितना गया-बीता हो गया है हमारा आचरण? वास्तवमें धर्मकी प्रभावना आचरणसे होती है। यदि हमारी प्रवृत्ति परोपकाररूप है तो लोग अनायास ही हमारे धर्मकी प्रशंसा करेंगे और यदि हमारी प्रकृति तथा आचार मलिन है तो किसीकी श्रद्धा हमारे धर्ममें नहीं हो सकती। यही कारण है कि अमृत-चन्द्र सूरिने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखा है—

> 'आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
> दानतपोजिनपूजाविद्यातिशयैश्च जिनधर्मः॥'

निरन्तर ही रत्नत्रयरूप तेजके द्वारा आत्मा प्रभावना सहित

करनेके योग्य है। तथा दान, तप, जिनपूजा, विद्याभ्यास आदि चमत्कारोंसे जिनधर्मकी प्रभावना करनी चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि संसारी जीव अनादि कालसे अविद्या-अन्धकारके द्वारा आच्छन्न हैं। उन्हें आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं। वे शरीरको ही आत्मा मान रहे हैं। निरन्तर उसीके पोषणमें उपयोग लगा रहे हैं तथा उसीके लिए अनुकूलमें राग और प्रतिकूलमें द्वेष करने लगते हैं। चूँकि श्रद्धाके अनुकूल ही ज्ञान और चारित्र होता है, अतः सर्व प्रथम श्रद्धाको ही निर्मल बनानेका प्रयत्न करना चाहिए। उसके निर्मल होते ही ज्ञान और और चारित्रका प्रादुर्भाव अनायास हो जाता है। इसीका नाम रत्नत्रय है और यही मोक्षमार्ग है। अरे, यह तो आत्माकी निज विभूति है। जिसके हो जाती है वह संसार-बन्धनसे छूट जाता है। वह भक्त कहलाने लगता है। वास्तवमें मोक्ष-प्राप्ति होना ही निश्चय प्रभावना है। इसकी महिमा वचनके द्वारा नहीं कही जा सकती। मोक्षका लक्षण आचार्योंने इस प्रकार लिखा है—

> 'सुखमात्यन्तिकं यत्र बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
> तं वै मोक्षं विजानीयाद् दुष्प्राप्यमकृतात्मभिः॥'

जहाँ अविनाशी अतीन्द्रिय और केवल बुद्धिके द्वारा ग्रहणमें आनेवाला सुख उपलब्ध हो उसे ही मोक्ष जानना चाहिए। यह मोक्ष अकर्मण्य अथवा अकुशल मनुष्योंको दुर्लभ रहता है।

प्रभावना अङ्गकी महिमा अपरम्पार है, हमलोग उस पर लक्ष्य नहीं देते। एक मेलेमें लाखों व्यय कर देवेंगे। पर यह न होगा कि ऐसा कार्य करें जिससे सर्वसाधारण लाभ उठा सकें। आजकल प्रायः अंग्रेजी दवाका विशेष प्रचार हो गया है। इसका मूल कारण यह है कि ऐसे औषधालय नहीं रहे जिनमें शुद्ध औषधि तैयार मिल सके। यद्यपि इसमें लाखों रुपयोंका काम है, पर समुदाय क्या नहीं कर सकता? उत्तमसे उत्तम वैद्योंकी

नियुक्ति की जावे, शुद्ध औषधिकी सुलभता हो, ठहरने आदिके सब साधन उपलब्ध हों तो लोग अनुपसेव्य औषधका सेवन क्यों करेंगे ?

एक भी विद्यालय ऐसा नहीं जिसमें सौ छात्र संस्कृत पढ़ते हों। बनारसमें एक विद्यालय है। सबसे उत्तम स्थान है। जो पण्डित अन्यत्र सौ रुपयेमें मिलेगा वहाँ वह बीस रुपयेमें मिल सकता है। प्रत्येक विषयके विद्वान् वहाँ अनायास मिल सकते हैं, पर आजतक उसका मूलधन एक लाख भी नहीं हो सका। निरन्तर अधिकारी वर्गको चिन्तित रहना पड़ता है। आज तक उस संस्थाको स्थापित हुए चालीस वर्ष हो चुके, पर कभी पचाससे अधिक छात्र उसमें नहीं रह सके। धनाभावके कारण वहाँ केवल जैन छात्रोंको ही स्थान मिल पाता है। आज यदि पच्चीस रुपया छात्रवृत्ति ब्राह्मण छात्रोंको दी जावे तो सहस्रों छात्र जैनधर्मके सिद्धान्तोंके पारगामी हो सकते हैं और अनायास ही धर्मका प्रचार हो सकता है।

जब लोग धर्मको जान लेंगे तब अनायास उस पर चलेंगे। आत्मा स्वयं परीक्षक है, परन्तु क्या करें ? सबके पास साधन नहीं। यदि धर्म-प्रचारके यथार्थ साधन मिलें तो विना किसी प्रयत्नके धर्मप्रसार हो जावे। धर्म वस्तु कोई बाह्य पदार्थ नहीं। आत्माकी निर्मल परिणतिका नाम ही तो धर्म है। जितने जीव हैं सबमें उसकी योग्यता है, परन्तु उस योग्यताका विकास संज्ञी जीवके ही होता है। जो असंज्ञी हैं अर्थात् जिनके मन नहीं उनके तो उसके विकासका कारण ही नहीं है। संज्ञी जीवोंमें एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसके उसका पूर्ण विकास हो सकता है। यही कारण है कि मनुष्य पर्याय सब पर्यायोंमें उत्तम पर्याय मानी गई है। इस पर्यायसे हम संयम धारण कर सकते हैं, अन्य पर्यायोंमें संयमकी योग्यता नहीं। पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंसे चित्तवृत्तिको हटा

लेना तथा जीवोंकी रक्षा करना ही तो संयम है। यदि इस ओर हमारा लक्ष्य हो जावे तो आज ही हमारा कल्याण हो जावे। हमारा ही क्या, समाज भरका कल्याण हो जावे।

पहले समयमें मुनिमार्गका प्रसार था, गृहस्थ लोग संसारसे विरक्त हो जाते थे और उनकी गृहिणी आर्या अर्थात् साध्वी हो जाती थीं। उनका जो परिग्रह बचता था वह अन्य लोगोंके उपभोगमें आता था तथा सहस्रों बालक अल्पावस्थामें ही त्यागी-मुनि हो जाते थे, अतः उनका विभव भी हम ही लोग भोगते थे। परन्तु आजके लोग तो मरते-मरते भोगों से उदास नहीं होते। उन्हें आनन्दका अनुभव कहाँसे आवे? मरते-मरते यही शब्द सुने जाते हैं कि यह बालक आपकी गोदमें है, रक्षा करना इत्यादि। यह दुरवस्था समाजकी हो रही है।

जिनके पास पुष्कल धन है वे अपनी इच्छाके प्रतिकूल एक पैसा भी नहीं खर्च करना चाहते! यदि आप वास्तवमें धर्मकी प्रभावना करना चाहते हैं तो जाति-पक्षको छोड़कर प्राणीमात्रका उपकार करो। आगममें तो यहाँ तक लिखा है कि श्री आदिनाथ भगवान् जब अपने पूर्वभवमें राजा वज्रजङ्घ थे और वज्रदन्त चक्रवर्तीके विरक्त होनेके बाद उनकी राज्यव्यवस्थाके लिये जारहे थे तब बीचमें एक सरोवरके तट पर ठहरे थे। वहाँ उन्हों ने चारण ऋद्धिधारी मुनियों के लिये आहारदान दिया। जिस समय वे अहारदान दे रहे थे उस समय शूकर, सिंह नकुल और वानर ये चार जीव भी शान्त भावसे बैठे थे और आहार-दान देख कर मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। भोजनानन्तर राजा वज्रजङ्घने चारणमुनियों से प्रश्न किया कि हे मुनिराज! यह जो चार जीव शान्त बैठे हुए हैं इसका कारण क्या है? उस समय मुनिराजने उनके पूर्व जन्मका वर्णन किया, जिसे सुनकर वे इतने प्रभावित हुए कि उनका अवशिष्ट जीवन धर्ममय हो गया और

आयुका अवसान होने पर जहाँ राजा वज्रजङ्घ और उनकी रानी श्रीमतीका जन्म हुआ वहीं पर इनका भी जन्म हुआ तथा राजाके मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और श्रेष्ठी ये चारों जीव भी वहीं उत्पन्न हुए। पश्चात् वज्रजङ्घका जीव जब कई भवोंके बाद श्रीआदिनाथ तीर्थङ्कर हुआ तब वे जीव भी उन्हीं प्रभुके बाहुबलि आदि पुत्र हुए। कहनेका तात्पर्य यह है कि धर्म किसी जाति विशेषका पैतृक विभव नहीं, अपि तु प्राणीमात्रका स्वभाव धर्म है। कर्मकी प्रबलतासे उसका अभावसा हो रहा है, अतः उन्हें धर्मकी प्रभावना इष्ट है उन्हें उचित है कि प्राणीमात्रके ऊपर दया करें। अहंबुद्धिको तिलाञ्जलि देवें। तभी धर्मकी प्रभावना हो सकती है।

बाह्य उपकरणोंका प्राचुर्य धर्मका उतना साधक नहीं जितना कि आत्मपरिणतिका निर्मल होना साधक है। भूखे मनुष्यको आभूषण देना उतना तृप्तिजनक नहीं जितना कि दो रोटियाँ देना है। इस पञ्चम कालमें प्रायः दुखी प्राणी बहुत हैं अतः अपनी सामर्थ्यके अनुकूल उनके दुःख दूर करनेमें प्रयास करो। वे आपसे आप धर्ममें प्रेम करने लगेंगे। 'जैनधर्मके अनुयायी केवल पन्द्रह लाख रह गये'.....इतना कहनेसे ही काम न चलेगा। 'पञ्चमकाल है। इसमें तो धर्मका ह्रास होना ही है। वीरप्रभुने ऐसा ही देखा है'.....इस प्रकारके विचारोंमें कुछ सार नहीं। प्रतिदिन व्यापार करते हो, टोटा भी पड़ता है और नफा भी होता है। क्या जब टोटा पड़ता है तब व्यापार त्याग देते हो? नहीं, तब धर्ममें इतनी निराशताका उपयोग क्यों? धर्मके लिये यथाशक्ति द्रव्यका सदुपयोग करो। यही सच्ची प्रभावना है।

बहुतसे ऐसे महानुभाव हैं कि जिनके सजातीय बन्धु तो आजीविका विहीन होकर इतस्ततः भ्रमण कर रहे हैं पर वे हजारों रुपये प्रतिष्ठा आदिमें व्यय कर रहे हैं और खूबीकी बात

यह कि सजातीय बन्धुओंकी अवस्थाके सुधारमें एक पैसा देनेमें भी उदारताका परिचय नहीं देते। क्या यह प्रभावना है ?

ऐसा देखा गया है कि मनुष्य जिनसे हजारों रुपये अर्जन कर इस लोकमें प्रतिष्ठाको प्राप्त हुए हैं और जिनके द्रव्यसे धर्म कर सिंघई, सेठ या श्रीमन्त बननेके पात्र हुए हैं उन्हींके नन्हें-नन्हें बालकोंपर जो कि अन्नके लिए तरस रहे हैं दया न करके मनोनीत कार्योंमें द्रव्य व्यय कर धर्मात्मा बननेका प्रयत्न करते हैं, यह क्या उचित है ? यह क्या धर्मका स्वरूप है ? इसका मूल कारण अन्तरङ्गमें अभिप्रायकी मलिनता है। जिनका अभिप्राय निर्मल है वे जो भी कार्य करेंगे, यथायोग्य करेंगे। गर्मीके दिनमें प्राणी तृष्णासे आतुर रहते हैं, अतः उन्हें पानीसे सन्तुष्ट करना उचित है।

आज कल संसारमें अधिकतर मनुष्य बेकार हो गये हैं। उन्हें यथायोग्य कार्यमें लगा देना ही उचित है। आगमकी तो यह आज्ञा है कि द्रव्यक्षेत्रादि निमित्तको देखकर द्रव्यादिकी व्यवस्था करना चाहिये। वर्तमानमें अनेक मनुष्य अन्नके बिना अपना धर्म छोड़कर अन्य धर्म अङ्गीकार कर लेते हैं। कोई उनकी रक्षा करनेवाला नहीं। द्रव्यका सदुपयोग यही है कि दुखी प्राणियों की रक्षामें लगाया जावे। प्रत्येक आत्मामें धर्म है, परन्तु कर्मोदयकी बलवत्तासे उसका विकास नहीं हो पाता। यदि भाग्योदयसे तुम्हारी आत्मामें उसके विकासका अवसर आता है तो इस बाह्य द्रव्यसे ममता छोड़कर नैर्ग्रन्थपद धारण करो। यदि इतनी योग्यता नहीं तो बाह्य सामग्री तुम्हें उपलब्ध है उसे उसीके साधनोंमें व्यय करो। जितना-जितना कषायका उपशम होता जावे उतना-उतना त्यागकी वृद्धिरूप करते जाओ। सबसे पहले गृहस्थावस्थामें अन्यायसे जो धनार्जन करते थे उसका संवर करो एवं अन्यायके जो विषय थे उन्हें त्यागो। भोजन ऐसा करो जो

अभक्ष्य न हो। दानशाला खोलो, परन्तु उनमें शुद्ध भोजनादिकी व्यवस्था हो। औषधालय खोलो, परन्तु शुद्ध औषधिकी व्यवस्था करो। विद्यालय खोलो, परन्तु उनमें स्वपरभेदज्ञानकी शिक्षाके मुख्य साधन जुटाओ। मन्दिर बनवाओ, परन्तु उनमें ऐसी प्रतिमा पधरावो कि उसे देखकर प्राणीमात्रको शान्ति आजावे। मेरी निजी सम्मति तो यह है कि एक ऐसा मन्दिर बनवाना चाहिये कि जिसमें सब मतवालोंकी सुन्दरसे सुन्दर मूर्तियाँ और उनके ऊपर सङ्गमर्मरमें उनका इतिहास लिखा रहे। जैसे कि दुर्गाकी मूर्तिके साथ दुर्गा सप्तशती। इसी प्रकार प्रत्येक देवताकी मूर्तिके साथ सङ्गमर्मरके विशाल पटियेपर उसका इतिहास रहे। इन सबके अन्तमें श्रीआदिनाथ स्वामीकी मूर्ति अपने इतिहासके साथमें रहे और अन्तमें एक सिद्धभगवान्‌की मूर्ति रहे। यह तो देव-मन्दिरकी व्यवस्था रही। इसके बाद साधुवर्गकी व्यवस्था रहना चाहिये। सर्वमतके साधुओंकी मूर्तियां तथा उनका इतिहास और अन्तमें साधुउपध्याय, आचार्यकी मूर्तियां एवं उनका इतिहास रहे। मन्दिरके साथमें एक बड़ा भारी पुस्तकालय हो जिसमें सर्व आगमोंका समूह हो। प्रत्येक मतवालोंको उसमें पढ़नेका सुभीता रहे। हर एक विभागमें निष्णात विद्वान् रहे जो कि अपने मतकी मार्मिक स्थिति सामने रख सकें। यह ठीक है कि यह कार्य सामान्य मनुष्योंके द्वारा नहीं हो सकता पर असम्भव भी नहीं है। एक करोड़ तो मन्दिर और सरस्वती-भवनमें लग जावेगा और एक करोड़के व्याजसे इसकी व्यवस्था चल सकती है। इसके लिए सर्वोत्तम स्थान बनारस है। हमारी तो कल्पना है कि जैनियोंमें अब भी ऐसे व्यक्ति हैं कि जो अकेले ही इस महान् कार्यको कर सकते हैं। धर्मके विकासके लिए तो हमारे पूर्वज लोगोंने बड़े-बड़े राज्यादि त्याग दिये। जैसे माताके उदरसे जन्मे वैसे ही चले गये। ऐसे-ऐसे उपाख्यान आगमोंमें मिलते हैं कि

राजाके विरक्त होनेपर सहस्रों विरक्त हो गये। जिनके भोजनके लिये देवोंके द्वारा सामग्री भेजी जाती थी, वे दिगम्बर पदका आलम्बन कर भिक्षावृत्ति अंगीकार करते हैं। जिनके चलनेके लिये नाना प्रकारके वाहन सदा तैयार रहते थे वे युगप्रमाण भूमिको निरखते हुए नंगे पैर गमन करते हुए कर्मबन्धनको नष्ट करते हैं।

आगममें यहाँ तक लिखा है कि आदि प्रभुको छः मास पर्यन्त अन्तरायके कारण चर्याकी विधि न मिली फिर भी उनके चित्तमें उद्वेग नहीं हुआ। ऐसे ही विशाल महानुभाव जगत्का कल्याण कर सकते हैं, अतः जिनके पास वर्तमानमें पुष्कल द्रव्य है उन्हें जैनधर्मके विकासमें व्ययकर एकबार प्रभावनाका स्वरूप संसारको दिखा देना चाहिये। पर वास्तवमें बात यही है कि लिखनेवाले बहुत हैं और करनेवाले विरले हैं। जब कि लिखनेवालेको यह निश्चय हो गया कि इस प्रकार धर्मकी प्रभावना होती है तब स्वयं उसे उस रूप बन जाना चाहिये। पर देखा यह जाता है कि लेखक स्वयं वैसे बननेकी चेष्टा नहीं करते। केवल मोहके विकल्पोंमें जो कुछ मनमें आया वह लेखबद्ध कर देते हैं या वक्ता बनकर मनुष्यके बीच उसका उपदेश सुना देते हैं तथा लोगों द्वारा 'धन्य हो, धन्य हो' यह कहला कर अपनेको कृत-कृत्य समझ लेते हैं। क्या इसे वास्तविक प्रभावना कहा जाय? वास्तविक प्रभावना यही है कि आत्मामें सम्यग्दर्शनादि गुणोंका विकास किया जाय। इस प्रभावनाका प्रारम्भ सातिशय मिथ्यादृष्टिसे शुरू होता है और पूर्णता चतुर्दशगुणस्थानके चरम समयमें होती है।

परवारसभाके अधिवेशन

एक बार परवारसभाका उत्सव सागरमें हुआ। श्रीमन्त सेठ पूरनशाहजी सिवनीवाले सभापति थे। सभामें परस्पर बड़ा

झगड़ा हुआ। झगड़ेकी जड़ चार सांकें थीं। श्रीमन्त सेठ मोहन-लालजी खुरईकी सम्मति आठ सांकोंकी थी। जो प्राचीन प्रथा है उसे आप अन्य रूपमें परिवर्तित नहीं करना चाहते थे। मैंने लोगोंसे बहुत विनयके साथ कहा कि समय पाकर चार सांकें क्या, दो ही रह जावेंगी। इस समय आप लोग श्रीमन्त साहबकी बात रहने दीजिये। आप इस प्रान्तके कर्णधार हैं। सबने स्वीकार किया। विवाद शान्त हो गया।

हमारे परमस्नेही श्रीरज्जीलालजी कमरयाको सभाकी तरफसे 'दानवीर' पदवी देनेका आयोजन हो चुका था, परन्तु परस्पर चार सांकके मनोमालिन्यसे वह पदवी स्थगित कर दी गई। इस प्रान्तमें वह एक ही विलक्षण पुरुष था, जिसने एक लाख रुपया लगाकर विद्यालयका भवन निर्माण कराया था।

इसके बाद एक बार पपौरामें परवार सभाका अधिवेशन हुआ जिसका अध्यक्ष मैं था, परन्तु इस प्रान्तमें सुधारकोंकी दाल नहीं गल पाई। श्री पं० मोतीलालजीके द्वारा स्थापित वीर-विद्यालयको कुछ सहायता अवश्य मिल गई, पर वह नहीं के तुल्य थी। आज जो सर्वत्र परवार लोग फैले हुए हैं वे इसी प्रान्तके हैं। परन्तु इनकी दृष्टि इस ओर नहीं, यह अज्ञानताकी ही महिमा है।

पपौरा जैसा उत्तम स्थान इस प्रान्तमें नहीं, यहाँ ७५ जैन मन्दिर हैं। बड़े-बड़े जिनालय हैं। आजकल लाखों रुपयोंमें भी वैसी सुन्दर और सुदृढ़ इमारतें नहीं बन सकतीं। यहाँ बड़गैनी-का एक बहुत ही भव्य मन्दिर है। उसकी दन्तकथा इस प्रकार सुनी जाती है—

बड़गैनीका पति बहुत बीमार था। उनके कोई पुत्र न था। 'जिनके कोई वारिस न हो उनके धनका स्वामी राज्य होता था। किन्तु वह द्रव्य यदि धर्म-कार्यमें लगा दी जावे तो राज्यकी

ओरसे धर्ममें पूर्ण सहायता दी जाती थी और द्रव्य राज्यमें नहीं जाती थी'...ऐसा वहाँके राज्यका नियम था। जिस रात्रिको बड़गैनीका पति मरनेवाला था उस रात्रिको बड़गैनीने सबसे कहा कि आप लोग अपने-अपने घर जाईये। जब सब लोग चले गये तब बड़गैनीने अन्दरसे किवाड़ लगा लिये और सब धन, जो लाख रुपयेसे ऊपर था, आंगनमें रखकर उस पर हल्दी चावल छिड़क दिये। रात्रिके बारह बजे पतिका अन्त हो गया। प्रातःकाल दाहक्रिया होनेके बाद राज्यकर्मचारीगण आये। बड़गैनीने कहा-'धन तो आँगनमें रक्खा है, आप लोग ले जाईये। परन्तु मैंने अपने मृत पतिकी आज्ञानुसार यह सब धन धर्म-कार्यमें लगानेका निश्चय कर लिया है।' कर्मचारीगणने वापिस जाकर दीवान साहबको सब व्यवस्था सुना दी। दीवान साहबने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि वह जो भी धर्मकार्य करना चाहे, आनन्दसे करे। राज्यकी ओरसे उसमें पूर्ण सहायता दी जाना चाहिये।

बड़गैनीने पपौरा जाकर बड़े समारोहके साथ मन्दिरकी नींव डाल दी और शीघ्र ही मंदिर बनवा कर पञ्चकल्याणक करनेका निश्चय कर लिया। गजरथ उत्सव हुआ जिसमें एक लाख जैनी और एक लाखसे भी अधिक साधारण लोग एकत्रित हुए थे। राज्यकी ओरसे इतना सुन्दर प्रबन्ध था कि किसीकी सुई भी चोरी नहीं गई। तीन पंगतें हुई, जिनमें प्रत्येक पंगतमें पचहत्तर हजारसे कम भोजन करनेवालोंकी संख्या न होती थी। तीन लाख आदमियोंका भोजन बना था। आजकल तो इस प्रथाको व्यर्थ बताने लगे हैं। अस्तु, समयकी बलिहारी है।

एक बात और विलक्षण हुई सुनी जाती है जो इस प्रकार है—मेलाके समय कुवोंका पानी सूख गया, जिससे जनता एक-दम बेचैन हो उठी। किसीने कहा मन्त्रका प्रयोग करो। किसीने

कहा तन्त्रका उपयोग करो। पर बड़गैनी बोली मुझे कूपमें बैठा दो। लोगोंने बहुत मना किया, पर वह न मानी। अन्तमें बड़गैनी कुएँमें उतार दी गई। वह वहाँ जाकर भगवान्का स्मरण करने लगी—'भगवान्! मेरी लाज रक्खो।' उसने इतने निर्मलभावोंसे स्तुति की कि दस मिनटके भीतर कुआ भर गया और बड़गैनी ऊपर आ गई। चौबीस घण्टा पानी ऊपर रहा, रस्सीकी आवश्यकता नहीं पड़ी। आनन्दसे मेला भरके प्राणियोंने पानीका उपयोग किया। धर्मकी अचिन्त्य महिमा है। पश्चात् मेला विघट गया····यह दन्तकथा आज तक प्रसिद्ध है।

निस्पृह विद्वान् और उदार गृहस्थ

इसी पपौराकी बात है। यहाँ पर रामबगस सेठके पञ्चकल्याणक थे। उनके यहाँ श्री स्वर्गीय भागचन्द्रजी साहब प्रतिष्ठाचार्य थे। जब आप आये तब सेठजीके सुपुत्र गङ्गाधर सेठने पूछा कि 'महाराज! आपके लिये कैसा भोजन बनवाया जावे, कच्चा या पक्का या कच्चा-पक्का।' श्रीपण्डितजीने उत्तर दिया—'न कच्चा न पक्का न कच्चा-पक्का।' तब गङ्गाधर सेठने कहा—'तो आपका भोजन कैसा होगा?' पण्डितजी बोले—'सेठजी! मेरे प्रतिज्ञा है कि जिसके यहाँ प्रतिष्ठा करनेके लिये जाऊँ उसके यहाँ भोजन न करूँगा।'

सेठजीके पिता बहुत चतुर थे। उन्होंने मुनीमको आज्ञा दी कि 'जितने स्थानों पर गजरथकी पत्रिका गई है उतने स्थानों पर निषेधके पत्र भेजो और उनमें लिख दो कि अब सेठजीके यहाँ गजरथ नहीं है। जितना घास हो, ग्राम भरकी गायोंको डाल दो, लकड़ी घड़ा आदि गरीब मनुष्योंको वितरण कर दो, घी आदि खाद्य सामग्रीको साधारण रूपसे वितरण कर दो तथा राज्यमें

इत्तिला कर दो कि सेठजीके यहाँ गजरथ नहीं है, अतः सरकार प्रबन्ध आदिका कोई कष्ट न उठावे। श्रीपण्डितजी महाराजको सवारीका प्रबन्ध कर दो, जिससे वे श्रीपंपापुर (पपौरा) के जिनालयोंके दर्शन कर आवें। जब वहाँसे वापिस आवें तब ललितपुर तक सवारीका योग्य प्रबन्ध कर देना और ललितपुर तक आप स्वयं पहुँचा आना।' पण्डितजी बोले—'सेठजी यह क्यों ?' सेठजीने कहा—'आप हमारा अन्न भक्षण करनेमें समर्थ नहीं। अर्थात् आप उसे अयोग्य समझते हैं। जब यह बात है तब हम अन्य समाजको अयोग्य अन्न खिला कर पातकी नहीं बनना चाहते।' पण्डितजी बोले—'सेठजी ! मेरे प्रतिज्ञा है, अतः मैं लाचार हूँ।' सेठजीने कहा—'महाराज ! हम तो अज्ञानी हैं और आप बहुज्ञानी हैं, पर क्या यह आगम कहता है कि जिसके यहाँ पञ्चकल्याणक हों उसके यहाँ भोजन न करना ?' पण्डितजी बोले-'आगमकी आज्ञा तो ऐसी नहीं, परन्तु हमने लोभकी मात्रा न बढ़ जावे, इससे त्याग कर दिया।' सेठजीने कहा-'आपका यह त्याग हमारी समझमें नहीं आता। अथवा आपकी इच्छा हो, सो करें। हमारी इच्छा अब पञ्चकल्याणक करनेकी नहीं। जब कि आप जैसे महान् पुरुषकाही आदर करनेके पात्र नहीं तब इतना महान् पुण्य करनेके पात्र हो सकेंगे, इसमें संदेह होता है।' अन्तमें पण्डितजी निरुत्तर होकर बोले—'अच्छा सेठजी भोजन बनवाइये, हम सब लोग भोजन करेंगे।' सेठजी बहुत प्रसन्न हुए और शीघ्र ही मुनीमसे बोले कि 'जाओ शीघ्र ही पपौरा सामान भेजनेका प्रबन्ध करो। महाराज ! चलिये भोजन करिये।' पण्डितजी मुसकराते हुए भोजनके लिये गये। साथमें सेठजी भी थे। बुन्देलखण्डका कच्चा-पक्का भोजन कर पण्डितजी बहुत प्रसन्न हुए। भोजनके पश्चात् पपौराके लिये प्रस्थान कर गये। कई मील तक मेलाकी भीड़ थी।

उस समय पंपापुरकी शोभा स्वर्गखण्डके समान हो रही थी। लाखों जैनी आये थे। मेला सानन्द समाप्त हुआ और सब लोग अपने-अपने स्थान पर चले गये। श्रीयुत पं० भागचन्द्रजी साहब भी जानेके लिये प्रस्तुत हुए, तब सेठजीने कहा कि 'महाराज! एक दिन और ठहर जाइये,मैं आगन्तुक महानुभावोंको विदाकर आपको भेजूँगा।' पण्डितजी रह गये। रात्रिको मन्दिरमें सभा हुई। सेठजीने राज्यके सब कर्मचारियोंको निमन्त्रण दिया। पण्डितजीने धर्मके ऊपर व्याख्यान दिया। सब मण्डली प्रसन्न हुई। प्रातःकाल पण्डितजीके गमनका सुअवसर आया। सम्पूर्ण जैन मण्डलीने पुष्पमालाओंसे पण्डितजीका सत्कार किया। सेठ जीने प्रतिष्ठाचार्यका जैसा सत्कार विहित था, वैसा किया। यद्यपि पण्डितजीने बहुत मना किया, परन्तु सेठजीने एक न सुनी और शास्त्रानुकूल उनका सत्कार किया। पण्डितजी भी अन्तरङ्गसे बहुत प्रसन्न हुए।

अब समयका परिवर्तन हो गया। आज पण्डित चाहते हैं पर समाज देना नहीं चाहती; उन दिनों जो पण्डितोंका आदर था आज उसका शतांश भी नहीं। दो मीलतक सब लोग पण्डितजीको पहुँचानेके लिये गये और सबने विनम्र भावसे प्रार्थना की कि 'महाराज! फिर भी इस प्रान्तमें आपका शुभागमन हो। हम लोग ऐसे प्रान्तमें रहते हैं कि जहाँ विद्याकी न्यूनता है। परन्तु महाराज! हम लोग सरल बहुत हैं। आप जो शिक्षा देवेंगे उसका यथाशक्ति पालन करेंगे। महाराज! हमारे देशकी औरतें हाथसे ही आटा पीसती हैं और हाथसे ही पानी भरती हैं। किसी अन्य जातिका भोजन हम लोग नहीं करते। हमारे यहाँ बाजारकी मिठाई खानेका रिवाज नहीं हैं। अष्टमी, चतुर्दशीको प्रायः लोग एकाशन करते हैं। वर्षा ऋतुके आते ही बैल और बैलगाड़ियोंका चलाना छोड़ देते हैं। आधे कुवारसे पुनः काममें लेते हैं। मन्दिर

में अब शास्त्र बांचते हैं तब शुद्ध वस्त्रोंका उपयोग करते हैं। बाजार के कपड़ोंको पहिनकर शास्त्रका स्पर्श नहीं करते। हमारे प्रान्तमें प्रायः जलबिहार करनेका बहुत रिवाज है। तीर्थयात्राके बाद दो सौ या चार सौ आदमियोंकी पंगत प्रायः सभी लोग करते हैं।.... यह सब ऊपरी क्रिया होते हुए भी हम लोग विद्यासे शून्य हैं। इस प्रान्तमें श्री देवीदासजी आदि अच्छे अच्छे विद्वान् हो गये हैं। वर्तमानमें पं० बिहारीलालजी सतना तथा पं० रामलालजी खिमलासा आदि अब भी हैं, फिर भी विरलता है। आशा है हमारी प्रार्थना पर आपका चित्त दयार्द्र हुआ होगा।'....... इतना कह कर सबके नेत्र अश्रुओंसे प्लावित हो गये। श्रीमान् पण्डितजी भी गद्‌गद् स्वरसे कहने लगे कि समय पाकर हम अवश्य इस प्रान्तमें आवेंगे। इस प्रकार पण्डितजी साहबको विदाकर सब लोग अपने अपने घर गये।...यह कथा वहाँ अब भी खूब प्रसिद्ध है।

जबलपुरमें शिक्षा-मन्दिर

ललितपुरमें पञ्चकल्याणक महोत्सव था, तीन गजरथ थे, शास्त्रिपरिषद्का उत्सव था, परवारसभाका अधिवेशन था, साथ ही मोरेना विद्यालयका भी उत्सव था। इस महोत्सवमें एक लाख जैनी थे। परवारसभाके सभापति सिंघई पन्नालालजी अमरावतीवाले थे। इसी अवसरपर गोलापूर्व सभाका भी अधिवेशन था। उसके सभापति सिंघई कुन्दनलालजी थे। गोलालारे सभाका भी आयोजन था। सभाओंमें व्याख्याताओंकी लम्बी-लम्बी वक्तृताएँ हुईं। फल क्या हुआ, सो आज कलकी सभाओंसे अनुमान कर लेना चाहिए। मोरेना विद्यालयका उत्सव हुआ, परन्तु पारस्परिक मनोमालिन्यके कारण विशेष लाभ नहीं हुआ।

स्वर्गीय पूज्य गोपालदासजीके प्रभावसे ही आज सिद्धान्तका प्रचार जैनियोंमें हो रहा है। आपके स्मरणसे ही हमें शान्ति आती है। आपने मोरेनामें एक उच्चकोटिके सिद्धान्त-विद्यालयकी स्थापना की थी, जहाँ बंशीधरजी, पं० माणिकचन्द्रजी, पं० देवकीनन्दनजी आदि बड़े उत्साहके साथ काम करते थे। किन्तु उनके पश्चात् पक्षपातके कारण सिद्धान्तमहोदधि पं० बंशीधरजी साहब वहाँसे जबलपुर चले गये, श्रीमान् न्यायाचार्य पं० माणिक चन्द्रजी साहब सहारनपुर चले गये और श्रीमान् व्याख्यानवाचस्पति पं० देवकीनन्दनजी साहब कारंजा चले गये।

शास्त्रिपरिषद्का भी अधिवेशन हुआ पर, कुछ शास्त्री लोगोंकी कृपासे आधा यहाँ हुआ आधा दिल्लीको गया। श्रीमान् पंडित तुलसीरामजी वाणीभूषण, पंडित बंशीधरजी तथा पंडित देवकी नन्दनजीके उद्योगसे बुन्देलखण्ड प्रान्तमें एक शिक्षामन्दिरकी स्थापना हुई। श्रीमान् सेठ मथुरादासजी टड़ैयाने, जिनके यहाँ गजरथ था, कहा—'चिन्ता मत करो, सब कार्य निर्विघ्न होगा। श्रीअभिनन्दन स्वामीका यह अचिन्त्य प्रताप है कि एक ही बार उनके दर्शन करनेसे सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं, अतः आप लोग एक बार क्षेत्रपालमें स्थित श्रीअभिनन्दननाथस्वामीकी मूर्तिका स्मरण करो, परन्तु यह भाव निष्कपट हो। तिरस्कारकी भावना कार्यकी बाधक है। आज कल हम जिस धर्म-कार्यकी नींव डालते हैं उसमें यह अभिप्राय रहता है कि अमुकके धर्मकार्यसे हमारा धर्मकार्य उत्तम है। अस्तु, इन कथाओंको छोड़िये और शिक्षा-मन्दिरकी उन्नतिका यत्न कीजिये।' इस कार्यमें श्रीयुत सिंघई कुंवरसेनजी सिवनी, सिंघई पन्नालालजी अमरावती, सिंघई फतहचन्द्रजी नागपुर और श्री सर्राफ मूलचन्द्रजी बरुआसागर आदिका मुख्य प्रयत्न था।

चूँकि जबलपुर बुन्देलखण्ड प्रान्तका एक सम्पन्न नगर है,

अतः वहीं शिक्षामन्दिरके लिए स्थान चुना गया। यहाँ एक कमेटीमें यह निश्चित हुआ कि शिक्षामन्दिरके प्रचारके लिए एक डेपुटेशन मध्यप्रान्तमें जाना चाहिये और डेपुटेशनका प्रथम स्थान अमरावती होना चाहिये। अन्य अनेक गण्यमान्य व्यक्ति अमरावती पहुँचे। श्रीयुत सिं० पन्नालालजीने सबका अच्छा स्वागत किया। वहाँसे नागपुर, वर्धा, आरवी, रायपुर, डोंगरगढ़, अकलतरा आदि कई स्थानोंपर गये। अच्छी सफलता मिली, प्रायः बीस हजार रुपये हो गये।

जबलपुरमें शिक्षामन्दिर खुल गया। श्रीमान् पं० वंशीधरजी सिद्धान्तवाचस्पति मुख्याध्यापकके स्थानपर और श्री पं० गोविन्दरायजी काव्यतीर्थ सहायक अध्यापकके स्थानपर नियुक्त हुए। छात्रसंख्या भी अच्छी हो गई और काम यथावत् चलने लगा।

एक लाख रुपया स्थायी करनेका संकल्प था और यदि लोग चार मास भ्रमण करते तो होना अशक्य नहीं था। परन्तु जबलपुरवालोंने ऐसा टपाया कि चन्दा एकदम बन्द हो गया और दो तीन वर्षके बाद शिक्षामन्दिरकी इतिश्री हो गई।

परवारसभामें विधवाविवाहका प्रस्ताव

अबतक सागर पाठशालाकी व्यवस्था अच्छी हो गई थी। छात्रगण मनोयोग पूर्वक अध्ययन करने लगे थे। आज जो पण्डित जीवन्धरजी न्यायतीर्थ इन्दौरमें रहते हैं उन्होंने इसी विद्यालयमें मध्यम परीक्षा तक अध्ययन किया था। पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ जो कि आजकल हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसमें जैनधर्मके प्रोफेसर हैं, इसी विद्यालयके विद्यार्थी हैं। पं०

दयाचन्द्रजी शास्त्री, पं० माणिकचन्द्रजी और पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य ये तीनों विद्वान् इसी पाठशालाके प्रमुख छात्र थे और आजकल इसी पाठशालामें अध्यापन कर रहे हैं। श्री पं० कमलकुमारजी व्याकरणतीर्थ, जो कि सर सेठ साहबके विद्यालयमें व्याकरणाध्यापक हैं, इसी पाठशालाके प्रमुख छात्र रह चुके हैं। श्री पं० पन्नालालजी, जो कि अकलतराके प्रसिद्ध व्यापारी और लखपति हैं, इसी पाठशालाके छात्र हैं। कहाँ तक लिखें ? बहुतसे उत्तमोत्तम विद्वान् इस विद्यालयसे निकलकर जैनधर्मको सेवा कर रहे हैं।

यहाँ चार मास रहकर मैं फिर काशी चला गया, क्योंकि मेरा जो विद्याध्ययनका लक्ष्य था वह छूट चुका था और उसका मूल कारण इतस्ततः भ्रमण ही था। आठ मास बनारस रहा, इतनेमें बीना (बारहा) का मेला आ गया। वहीं पर परवारसभाका अधिवेशन था। अधिवेशनके सभापति बाबू पंचमलालजी तहसीलदार थे और स्वागताध्यक्ष श्रीसिंघई हजारीलालजी 'महाराजपुरवाले थे।

मेरे पास महाराजपुरसे तार आया कि आप मेलामें अवश्य आईये। यहाँ पर जो परवारसभा होनेवाली है उसमें विधवा-विवाहका प्रस्ताव होगा, उसके पोषक बड़े-बड़े महानुभाव आवेंगे, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी भी आवेंगे, अतः ऐसे अवसर पर आपका आना परमावश्यक है.......अन्तमें लाचार होकर मुझे जानेका निश्चय करना पड़ा। जब मैं बनारससे सागर पहुँचा तब पाठशालामें श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी उपस्थित थे। मैं पाठशाला गया। उन्होंने इच्छाकार की। मैंने कहा—ब्रह्मचारीजी! मैं इच्छाकार नहीं करना चाहता, क्योंकि आप ऐसे महापुरुष होकर भी विधवाविवाहके पोषक हो गये। मुझे खेद है कि आपने यह कार्य हाथमें लेकर जैन समाजको अधःपतनकी ओर ले

आनेका प्रयास किया है। आप जैसे मर्मज्ञको यह उचित न था।' आप बोले—शास्त्रार्थ कर लो।" मैंने कहा—'मैं तो शास्त्रार्थ करना उचित नहीं समझता। शास्त्रार्थमें यह होगा कि कुछ तो आपके पक्षमें हो जावेंगे और कुछ मेरे पक्षमें! अभी आपके पक्षका एक भी नहीं। परन्तु शास्त्रार्थ करनेके बाद इन्हीं महाशयोंमें बहुतसे आपके अनुयायी हो जावेंगे, क्योंकि संसारमें सब प्रकारके मनुष्य हैं। अतः मेरी तो यही सम्मति है कि बीना-बारहाके दर्शन कर बम्बईकी ओर प्रयाण कर जावें। बड़ा लाभ होगा। यह देश भोला है। यहाँ तो ऐसा प्रचार करो कि जिससे सहस्रों बालक साक्षर हो जावें। अभी आपकी बातका समय नहीं, क्योंकि लोगोंके हृदयमें आप जिस पापकी प्रवृत्ति करना चाहते हैं अभी उसकी वासना तक नहीं है। पञ्चमकालका अभी दसवाँ हिस्सा हो गया है। अभी इतने कलुषित संस्कार नहीं, अतः मेरी प्रार्थनापर मीमांसा करनेकी चेष्टा करिये। शीघ्रता करनेमें आप हानिके सिवाय लाभ न उठावेंगे।' ब्रह्मचारीजी बोले—'तुमने देश कालपर ध्यान नहीं दिया। वैधव्य होनेका दुःख वही जानती है जो विधवा हो जाती है। विषय-सुखकी लालसा सत्तर वर्ष तकके वृद्धकी नहीं जाती, अतः कितने ही आदमी सत्तर वर्षकी अवस्थामें भी विवाह करनेसे से नहीं चूकते और समाजमें ऐसे-ऐसे मूढ़ लोग भी हैं जो धनके लालचसे कन्याको बेच देते हैं। फिर जब वह वृद्ध मर जाता है तब उस बेचारी विधवाकी जो दशा होती है वह समाजसे छिपी नहीं। अनेक विधवाएँ गर्भपात करती हैं और अनेक विधर्मियोंके घर चली आती हैं। एतदपेक्षा यदि विधवाविवाह कर दिया जावे तब कौन-सी हानि है? मैं बोला—'हानि जो है सो तो प्रकट है। जिन जैनियोंमें इसकी प्रथा हो गई है उनकी दशा देखनेसे तरस आता है। इसके प्रचारसे जो अनर्थ होंगे उनका अनुमान जिनमें विधवाविवाह होता है उनके व्यवहारसे कर सकते हो। जो हो,

इस विषयपर मैं शास्त्रार्थ करना उचित नहीं समझता। इसका पक्ष लेना केवल पापका पोषक होगा। आप भी अन्तमें पश्चात्ताप करेंगे। आपका यश समाजमें बहुत है, उसे कलङ्कित करना सर्वथा अनुचित है। जो आपके पथके पोषक हैं वे एक भी आपके साथी न रहेंगे। यदि आपको मेरा विश्वास न हो तो उनके घर हीसे इस प्रथाको चलाईये, सब पता लग जावेगा। केवल कहने मात्रसे कुछ नहीं होगा। लोग तो अन्तरङ्गसे मलिन हैं, केवल कौतूहल देखना चाहते हैं। आप और पण्डितोंमें परस्पर शास्त्रार्थ कराकर तमाशा देखना चाहते हैं। आपकी इच्छा हो, सो करें। मैं तो आपका हितैषी हूँ। देखो, प्रथम तो आप ब्रह्मचारी हैं, ब्रह्मचारी ही नहीं, विद्वान् भी हैं, दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी हैं, पाश्चात्य विद्यामें भी आपका अच्छा ज्ञान है, व्याख्याता भी हैं, तथा आपका समाजमें अच्छा आदर है। आशा है कि आप इस दुराग्रहको छोड़ आर्षवाक्योंकी अवहेलना न करेंगे ?' ब्रह्मचारीजीने कहा—'चूँकि अभी तुम्हें समाजकी दुरवस्थाका परिचय नहीं, अतः इस विषयको छोड़ विषयान्तरकी मीमांसा कीजिये।' मैंने मन ही मन विचार किया कि अब इस विषयमें चर्चा करना व्यर्थ है। ब्रह्मचारीजीसे भी कहा कि 'आपकी जो इच्छा हो, सो करिये। आशा है आप विचारशील हैं, अतः सहसा कोई कार्य न करेंगे।'

····इतनी चर्चा होनेके बाद हम बाईजीके यहाँ आये और भोजन किया। इतनेमें श्रीलोकमणि दाऊ भी शाहपुरसे आगये। यह सम्मति हुई कि जबलपुर और खुरई समाजको एक एक तार दिया जावे। पण्डित मुन्नालालजीने कहा कि 'चिन्ता मत करो, हम लोग भी वहाँ चलेंगे। यद्यपि वहाँ परवारसभा है और हम गोलापूर्व हैं, अतः उसमें बोलनेका अधिकार हमारे लिये नहीं है। फिर भी हम जनतामें आर्ष-पद्धतिके विरुद्ध कदापि विधवाविवाह

की वासना न होने देवेंगे। समयकी बलिहारी है कि आज विधवा-विवाहकी पुष्टि करनेवालोंका समुदाय बनता जाता है। अस्तु, कल हम सब अपनी मण्डली सहित आपके साथ चलेंगे।'

अमरावतीसे श्री सिंघई पन्नालालजी भी आगये। इस तरह हम सब बीना-बारहाके लिये चलकर देवरीप हुँचे। यह वह स्थान है जहाँ कि श्री प्रेमीजीका जन्म हुआ था। वहाँसे छः मील बीना-बारहा क्षेत्र है। रात्रिके सात बजते-बजते वहाँ पहुँच गये। रात्रिको शास्त्र-प्रवचन हुआ। यहाँ पर विधवाविवाहके पोषक प्रायः बहुत सज्जन आगये थे, केवल साधारण जनता ही विरोधमें थी। परवारसभाका अधिवेशन शानदार होनेवाला था, परन्तु साधारण जनतामें विधवाविवाहकी चर्चाका प्रभाव विरुद्ध रूपमें पड़ा।

रात्रिको सब्जेक्टकमेटीकी बैठक होनेवाली थी। मेरा भी नाम उसमें था, पर मैं नहीं गया। सभापति महोदयने बैठक स्थगित कर दी। दूसरे दिन स्वागताध्यक्षका प्रारम्भिक भाषण होनेवाला था, परन्तु सभाके न होनेसे उनका भाषण भी रह गया। मैंने स्वागताध्यक्षसे कहा कि आप अपने भाषणकी एक कापी मुझे दे दीजिये। इन्होंने दे दी। मैंने उसका अद्योपान्त अवलोकन किया। उससे भी विधवाविवाहकी पुष्टि होती थी। मैंने कहा—'सिंघईजी! आपने यह क्या अनर्थ किया?' उन्होंने कहा—'यह भाषण मैंने नहीं बनाया।' मैंने कहा—'यह कौन मानेगा? आपको उचित था कि छपनेके पहले कच्ची कापीको एक बार देख लेते।' आप बोले—'अब क्या हो सकता है?'

जबलपुर और खुरई समाजको तार दिये थे, पर वहाँसे कोई नहीं आये। इससे विधवाविवाहके पोषकोंका पक्ष प्रबल होगा। समाजमें बोलनेवालोंकी त्रुटि नहीं, परन्तु समयपर काम करनेवाले नहीं। पञ्चम काल है। इस समय अधर्मका पक्ष पुष्ट करनेवालों की बहुलता होती जाती है।

मध्याह्नके समय विधवाविवाह पोषक व्याख्यान हुए। मनुष्योंका जमाव भी पुष्कल होता रहा। कहाँ तक कहा जावे जो निषेध पक्षके थे वे भी समुदायमें सुननेको जाते रहे। रात्रिके समय श्री पं० मुन्नालालजी, पण्डित मौजीलालजी व लोकमणि दाऊके 'विधवाविवाह आगमानुकूल नहीं' इस विषय पर सारगर्भित व्याख्यान हुए। मैं तो तमाशा देखनेवालोंमें था, क्योंकि मैं इस विषयमें विशेष ज्ञान नहीं रखता था। पर मेरा जनतासे यही कहना था कि जो आप लोगोंके ज्ञानमें आवे सो करिये।

रात्रिको परवारसभाकी सब्जेक्टकमेटी हुई, मैं भी गया। यद्यपि वहाँ जितने मेम्बर थे उनमें अधिकांश विधवाविवाहके निषेधक थे, किन्तु बोलनेमें पटु न थे। जो पटु थे उनमें बहुभाग पोषक पक्षके थे।

दूसरे दिन आमसभा हुई। जनताकी सम्मति विधवाविवाह के निषेध पक्षमें थी। यदि प्रस्ताव आता तो लड़ाई होनेकी सम्भावना थी, अतः प्रस्ताव न आया। केवल ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीका विधिपक्षमें व्याख्यान हुआ। उस पक्षवाले प्रसन्न हुए। परन्तु जनताको व्याख्यान सुनकर बहुत दुःख हुआ। लोग मुझसे बोलनेका आग्रह करने लगे। मैं खड़ा हुआ, परन्तु पानी बरसने लगा। मैंने कहा कि 'पानी आ रहा है, इसलिये आप लोग व्याकुल होंगे, अतः अपना-अपना सामान देखिये।' पर लोगोंने कहा कि 'पानी नहीं पत्थर भी बरसें तो भी हम लोग आपका व्याख्यान सुने बिना न उठेंगे।' अन्तमें लाचार होकर मुझे बोलना पड़ा। उस बारिसके बीच भी लोग शान्तिसे भाषण सुनते रहे। अन्तमें अधिक वर्षा होनेके कारण सभा भंग हो गई।

रात्रिको सात बजते-बजते मण्डपमें जनता एकत्रित हो गई। लोगोंने ब्रह्मचारीजीके बहिष्कारका प्रस्ताव पास कर डाला। इतनेमें

ब्रह्मचारीजी बड़े आवेगके साथ यह कहते हुए सभामण्डपमें आये कि मेरा बहिष्कार करने वाला कौन है ? जनता उत्तेजित हो उठी। एक आदमी बहुत ही बिगड़ा। मैंने उसका हाथ पकड़कर उसे किसी तरह शान्त किया। सेठ ताराचन्द्रजी बम्बईवाले बहुत कुछ रुष्ट हुए। कुछ लोग ब्रह्मचारीजीको समझाकर उनके डेरेपर ले गये।

परवारसभाके इस प्रकरणसे उपस्थित जनतामें किसीको आनन्द नहीं हुआ। सब खिन्नचित्त होकर घर गये। क्षेत्र उत्तम है। श्री शान्तिनाथ भगवान्की विशालकाय प्रतिमा है। एक मन्दिरमें बड़ी-बड़ी पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। एक मन्दिर कुछ ऊँचाई देकर बनाया गया है। कुल तीन मन्दिर हैं। एक छोटी-सी धर्मशाला भी है। यदि कोई धर्म-साधन करे तो सब तरह-की सुविधा है।

परवारसभा पूर्ण होगई। सब आगन्तुक महाशय चले गये। सभापति साहब अन्तमें गये। हमसे आपका जो स्नेह पहले था वही रहा, परन्तु परस्परमें सम्भाषणके समय वह बात न रही जो पहले थी। संसारमें मनुष्यके जो कषाय उत्पन्न हो जाती है उसके पूर्ण किये बिना उसे चैन नहीं पड़ता। हमको यह कषाय हो गई कि देखो, ये लोग आगम-विरुद्ध उपदेश देकर एक जाति को पतित करनेकी चेष्टा करते हैं, अतः पुरुषार्थ कर इसे रोकना चाहिये और विधवाविवाहके पोषकोंको यह कषाय हो गई कि जब मनुष्यको अपनी इच्छानुसार अनेक विवाह करने पर रुकावट नहीं तो विधवाको दूसरा विवाह करने पर क्यों रोक लगाई जावे ? आखिर उसे भी अधिकार है। अस्तु, जहाँ पर दोनों पक्षके मनुष्य परस्पर मिलते हैं वहाँ साधारण लोगोंको शास्त्रार्थ देखनेका अवसर मिल जाता है। दुःख केवल इस बातका है कि लोग इस विषयमें सिद्धान्त-वाक्यकी अवहेलना कर देते हैं।

सिद्धान्तमें तो कन्यासम्वरणको ही विवाहका लक्षण लिखा है। यहाँसे चलकर हम लोग सागर आगये। यहाँपर ब्रह्मचारीजी-का विधवाविवाह पोषक व्याख्यान एक बंगाली वकीलके सभा-पतित्व में हुआ। हम लोग भी उसमें गये, परन्तु सभापतिने बोल-नेका अवसर न दिया। ब्रह्मचारीजीने एक विवाह भी कराया। कहाँ तक कहें? सागरमें जो चकराघाट है वहीं पर यह कृत्य कराया गया।

इसके बाद सागरमें एक सभा हुई, जिसमें नाना प्रकारके विवाद होनेके अनन्तर यह तय हुआ कि जो विधवाविवाहमें भाग ले उसके साथ सम्पर्क न रक्खा जावे। कहनेका तात्पर्य यह है कि अब प्रतिदिन शिथिलाचारकी पुष्टि होगी, लोग आगमविरुद्ध तर्कोंसे ही अपना पक्ष पुष्ट करेंगे। जो श्रद्धालु हैं उनकी यही दृष्टि है कि आगमानुकूल तर्क ही प्रमाणभूत है और जो तर्कको ही मुख्य मानते हैं उनका यह कहना है कि जो वाक्य (आगम) तर्कके अनुकूल है वही प्रमाण है। अस्तु,

यहाँसे हम जबलपुर गये। वहाँ श्री हनुमानताल पर सभा हुई। उसमें भी बहुत कुछ वाद-विवादके बाद यही निश्चय हुआ कि परवारसभामें जो विधवाविवाहकी चर्चा हुई वह सर्वथा हमारे कुलके विरुद्ध है तथा धर्मशास्त्रके प्रतिकूल है। खेद इस बातका है कि हमारे माननीय तहसीलदार साहबने अपने भाषणमें इसकी चर्चा कर व्यर्थ ही समाजमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया। हम लोगोंको अब भी विश्वास है कि तहसीलदार साहब अब तक जो हुआ सो हुआ, पर अब भविष्यमें इस विषयपर तटस्थ रहेंगे। यहाँसे चल कर हम लोग सागर चले आये। कुछ दिन बाद जबलपुरमें चवेनीके ऊपर परस्परमें मनोमालिन्य होनेसे दो पक्ष हो गये। एक पक्ष दूसरे पक्षके परस्पर महान् विरोधी हो गये। बहुत कुछ प्रयत्न हुआ, परन्तु आपसमें कलह शान्त न हुई।

बंशीधरजी डेवड़ियासे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्होंने कई भाईयोंको भेजा और साथ ही एक पत्र इस आशयका लिखा कि आप पत्रके देखते ही चले आईये। यहाँ आपसमें अत्यन्त कलह रहती है जो संभव है आपके प्रयत्नसे दूर हो जावे। मैं उसी दिन गाड़ीमें बैठकर जबलपुर पहुँच गया, रात्रिको सभा हुई, तीन घण्टा विवाद रहा, अन्तमें सब लोगोंने सर्वदाके लिये इस प्रथाको बन्द कर दिया और परस्परमें प्रेमभावसे मिल गये, कलहकी शान्ति हो गई और हमारे लिये सहजमें यश मिल गया। इस कलहाग्निके शान्त करनेका श्रेय श्री सिंघई गरीबदासजी, बंशीधरजी डेवड़िया, श्री सिंघई मौजीलालजी नरसिंहपुरवाले तथा बल्लू बड़कुरको ही मिलना चाहिये, क्योंकि उनके परिश्रम और सद्भावनासे ही वह शान्त हो सकी थी।

पपौरा और अहारक्षेत्र

यह वही पपौरा है जहाँ पर स्वर्गीय श्री मोतीलालजी वर्णीने अथक परिश्रम कर एक वीरविद्यालय स्थापित किया था। इस विद्यालयमें स्थायी द्रव्यका अभाव था फिर भी श्री वर्णी मोतीलालजी केवल अपने पुरुषार्थके द्वारा पाँच सौ रुपया मासिक व्यय जुटाकर इसकी आजन्म रक्षा करते रहे। इस विद्यालयकी स्थापनामें श्रीमान् पण्डित नन्हेंलालजी प्रतिष्ठाचार्य टीकमगढ़ और श्रीमान् स्वर्गीय दरयावलालजी कठरयाका पूर्ण सहयोग रहा। इस प्रान्तमें ऐसे विद्यालयकी महती आवश्यकता थी। श्री वर्णीजी ने अपना सर्वस्व विद्यालयको दे दिया। आपका जो सरस्वतीभवन था वह भी आपने विद्यालयको प्रदान कर दिया। आप विद्यालयकी उन्नतिके लिये अहर्निश व्यस्त रहते थे। प्रान्तमें

धनिक वर्ग भी बहुत है, परन्तु उसके द्वारा विद्यालयको यथेष्ट सहायता कभी नहीं मिली। वर्णीजी प्रतिष्ठाचार्य भी थे, इससे प्रत्येक प्रान्तमें भ्रमण करनेका अवसर आपको मिलता रहता था। इस कार्यसे आपको जो आय होती थी उसीसे पाँच सौ रुपया मासिककी पूर्ति करते थे। इन्हें जितना धन्यवाद दिया जावे थोड़ा है। मैं तो आपको अपना बड़ा भाई मानता था। आपका मेरे ऊपर पुत्रवत् स्नेह रहता था। हम लोगोंका बहुत समयसे परिचय था।

प्रारम्भमें वीर विद्यालयके सुयोग्य मन्त्री श्रीमान् पं० ठाकुरदासजी बी० ए० थे। आप सरकारी स्कूलमें काम करते हुए भी निरन्तर विद्यालयकी रक्षामें व्यस्त रहते थे। आपके प्रयत्नसे विद्यालयके लिए एक भव्य भवन बन गया, जो कि बोर्डिंगसे पृथक् है। यही नहीं, सरस्वती भवनका निर्माण आदि अनेक कार्य आपके द्वारा सम्पन्न हुए हैं। आप छात्रोंके अध्ययनपर निरन्तर दृष्टि रखते थे। 'छात्र व्युत्पन्न हों' इस विषयमें आपकी विशेष दृष्टि रहती थी। आपके द्वारा केवल विद्यालयकी उन्नति नहीं हुई, क्षेत्रकी भी व्यवस्था सुचारुरूपसे चल रही है। जो जीर्ण मन्दिर थे उनका भी आपने उद्धार कराया तथा भोहरेमें अँधेरा रहता था उसे भी आपने सुधराया। आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है। आप निरन्तर धर्मकी रक्षामें प्रयत्नशील रहते हैं। आप अंग्रेजी भाषाके साथ साथ संस्कृतके भी अच्छे विद्वान् हैं। विद्वान् ही नहीं, सदाचारी भी हैं। सदाचारी ही नहीं, सदाचारके प्रचारक भी हैं। आप यदि किसी छात्रमें सदाचारकी त्रुटि पाते थे तो उसे विद्यालयसे पृथक् करनेमें संकोच नहीं करते थे। वर्षों तक आपने मन्त्रीका पद सँभाला, पर अब कई कारणोंसे आपने मन्त्री पदका कार्य छोड़ दिया है। फिर भी विद्यालयसे अरुचि नहीं है।

इस समय विद्यालयके मन्त्री श्री खुन्नीलालजी भदौरावाले

हैं। आप भी बहुत सुयोग्य व्यक्ति हैं। जिस प्रकार विद्यालय वर्णी मोतीलालजीके समक्ष चलता था, उसी प्रकार चला रहे हैं। आपका कुटुम्ब सम्पन्न है। आप भी सम्पन्न हैं। राज्यके प्रमुख व्यापारी हैं। साथमें ज्ञानी और सदाचारी भी हैं। विद्यालयकी उन्नतिमें निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। आपके प्रयत्नसे कुछ स्थायी द्रव्य भी हो गया है। आपकी भावना है कि कम-से-कम विद्यालयमें एक लाख रुपयाका स्थायी द्रव्य हो जावे और सौ छात्र अध्ययन करें। राज्यकी सहायतासे यह कार्य अनायास हो सकता है। इस प्रान्तकी जनता विद्यादानमें बहुत कम द्रव्य व्यय करती है। यद्यपि यहाँके महाराज विद्याके पूर्ण रसिक हैं और जबसे आपने राज्यकी बागडोर हाथमें ली है तबसे शिक्षा में बहुत सुधार हुए हैं। फिर भी जनताके सहयोगके बिना एकाकी महाराज क्या कर सकते हैं ? इतने पर भी हमें आशा है कि हमारे मन्त्रीजीकी आशा शीघ्र ही सफलीभूत होगी।

श्री वर्णीजीने केवल यही विद्यालय स्थापित नहीं किया था। किन्तु अपनी जन्म-नगरी जतारामें भी तीन हजारकी लागतका एक मकान बनवाकर वहाँ की पाठशालाके लिये अर्पित कर दिया था। यद्यपि आप मेरे साथ गिरिराजपर रहनेका निश्चय कर चुके थे और कुछ समय तक वहाँ रहे भी, परन्तु विद्यालयके मोहवश पपौराके लिये लौट आये और जन्मभूमि जतारामें समाधि-मरणकर स्वर्ग सिधार गये। मेरा दाहना हाथ भंग हो गया। मुझे आपके वियोगका बहुत दुःख हुआ।

पपौरा क्षेत्रसे दस मील पूर्वमें अहार अतिशय क्षेत्र है। यहाँ पर श्रीशान्तिनाथ स्वामीकी अत्यन्त मनोहर प्रतिमा है, जिसकी शिल्पकलाको देखकर आश्चर्य होता है। यहाँ पर भूगर्भमें सहस्रों मूर्तियाँ हैं जो भूमि खोदनेपर मिलती हैं। किन्तु हम लोग उस ओर दृष्टि नहीं देते। यहाँ आस-पास जैन महाशय अच्छी संख्या

में निवास करते हैं। पास ही पठा ग्राम है। वहाँ के निवासी श्री पं० बारेलालजी वैद्यराज क्षेत्रके प्रबन्धक है। आप बहुत सुयोग्य और उत्साही कार्यकर्ता हैं। परन्तु द्रव्यकी पूर्ण सहायता न होनेसे शनैः शनैः कार्य होता है। यहाँ पर एक छोटीसी धर्मशाला भी है। मन्दिरसे आधा फर्लाङ्ग पर अहार नामका ग्राम है तथा एक बड़ा भारी सरोवर है। ग्राममें ५ घर जैनियोंके हैं जिनकी स्थिति साधारण है। यहाँसे तीन मील पर बैसा गाँव है जहाँ जैनियोंके कई घर हैं। दो घर सम्पन्न भी हैं, परन्तु उनकी दृष्टि क्षेत्रकी ओर जैसी चाहिये वैसी नहीं। अन्यथा वे चाहते तो अकेले ही क्षेत्रका उद्धार कर सकते थे।

मैंने यहाँ पर क्षेत्रकी उन्नतिके लिये एक छोटे विद्यालयकी आवश्यकता समझी। लोगोंसे कहा। लोगोंने उत्साहके साथ चन्दा देकर श्री शान्तिनाथ विद्यालय स्थापित कर दिया। पं० प्रेमचन्द्र जो शास्त्री तेंदूखेड़ावाले उसमें अध्यापक हैं, जो बड़े सन्तोषी जीव हैं। एक छात्रालय भी साथमें है। परन्तु धनकी त्रुटिसे विद्यालय विशेष उन्नति नहीं कर सका।

रूढ़ियोंकी राजधानी

यह एक ऐसा प्रान्त है जहाँ ज्ञानके साधन नहीं। बड़ी कठिनतासे दस प्रतिशत साधारण नागरी जाननेवाले मिलेंगे। यही कारण है कि यहाँके मनुष्य बहुत-सी रूढ़ियोंसे संत्रस्त हैं। मैं प्रायः दो वर्ष तक पैदल भ्रमणकर उन रूढ़ियोंके मिटानेका प्रयत्न करता रहा, फिर भी निःशेष नहीं कर सका। वहाँकी रूढ़ियोंके कुछ उदाहरण देखिये—'एक बंजारीपुरा गाँव है। वहाँ एक बुढ़िया माँ मन्दिरमें दर्शन करनेके लिये गई थी। वहाँ उसके

जानेके पहले ही दैववश ऊपरसे एक अंडा गिर कर फूट गया था। उस बुढ़ियाके बालकसे एक दूसरे जैनी महाशयका विरोध था। उन्होंने झट पंचायतको बुलाया और यह प्रस्ताव रक्खा कि बुढ़ियाने अंडा फोड़ डाला है। बूढ़ी माँ सत्यवादिनी थी। उसने कहा—'बेटा! मेरा पैर अवश्य पड़ा था, परन्तु अण्डा न था उसका छिलका था।' पञ्चोंने एक न सुनी और उसे हत्या लगा दी। हत्या करनेवालेको जो कृत्य करने पड़ते हैं वे सब बुढ़ियाके बालकको करने पड़े। प्रथम तो मन्दिरके दर्शन बन्द किये गये, चार मास बाद उसकी फिर पञ्चायत की गई, देहातके पञ्च बुलाये गये। सबने आकर यह निर्णय दिया कि अमुक तिथिको इनका मिलौना किया जावे। एक पंगत पक्की और एक कच्ची देवें। इसके पहले किसी सिद्धक्षेत्रकी वन्दना करें, ५१) मन्दिरको दण्ड देवें और जब किसीके विवाहमें चल जावें तब विवाहमें बुलाये जावें। इन सब कार्योंमें बुढ़ियाके पाँच सौ मिट गये।'

एक इससे भी विलक्षण न्याय एक गाँवमें सुननेमें आया। 'एक दिगौड़ा गाँव है। वही दिगौड़ा, जहाँ कि पं० देवीदासजीका जन्म हुआ था। यहाँ पर एक जैनी महाशयका घोड़ा चरनेके लिये गाँवके बाहर गया। वहीं पर एक दूसरे जैनी महाशयका घोड़ा चरता था, जो पहले घोड़ेकी अपेक्षा दुर्बल था। दैवयोग-से उन दोनोंमें परस्पर लड़ाई हो गई। बलिष्ठ घोड़ेने दुर्बल घोड़ेको इतने जोरसे टाँगे मारीं कि उसका प्रणान्त हो गया। लोग चिल्लाते हुए आये कि अमुकके घोड़ेने अमुकके घोड़ेको इतने जोरसे टाँगे मारीं कि वह मर गया। जिसका घोड़ा मर गया था वह रोने लगा, क्योंकि उसीके द्वारा उसकी आजीविका चलती थी। उसने शामको ग्रामके पञ्चोंसे प्रार्थना की कि अमुकके घोड़ेने हमारा घोड़ा मार दिया। मैं गरीब आदमी हूँ। यही घोड़ा हमारी आजीविकाका साधन था। जिसके घोड़ेने मारा था वह भी

बुलाया गया। पञ्चायत शुरू हुई। अन्तमें यह फैसला हुआ कि जिसका घोड़ा दुर्बल था उसको आज्ञा दी गई कि तुमने इतना दुर्बल घोड़ा क्यों रक्खा जो कि घोड़ेकी टापसे ही मर गया, अतः तुम्हारा मन्दिर बन्द किया जाता है। तुम सिद्धक्षेत्रकी वन्दना करो। पाश्चात् एक मास बाद गाँवके पञ्चोंको एक दिन पक्का और एक दिन कच्चा भोजन कराओ तथा ग्यारह रुपया मन्दिरको दो। जिसके घोड़ाने मारा था उससे कहा गया कि तुमने अपना घोड़ा इतना बलिष्ठ क्यों बनाया कि उसकी टापसे दूसरा घोड़ा मर गया, अतः तुम्हें भी दो मास तक मन्दिर बन्द किया जाता है; पश्चात् एक पक्की और एक कच्ची पंगत गाँवके पञ्चोंको दो, पन्द्रह रुपया मन्दिरको दो और जिसका घोड़ा मर गया है उसे एक साधारण घोड़ा ले दो।'

ऐसे ही एक गाँवमें और गया। वहाँ एक जैन वैद्य रहता था जो बड़ा दयालु था। किसीसे कुछ नहीं लेता था। इसी गाँवमें एक सोनी वैद्य भी रहता था, जो कि जैनी वैद्यसे बहुत डाह रखता था। डाह रखनेका कारण यह था कि यह दवा करके रुपये लेता था और जैनी वैद्य कुछ भी नहीं लेता था, इसलिए लोग अधिकांश जैनी वैद्यके पास ही जाते थे और इससे उस सोनी वैद्यकी आजीविकामें अन्तर पड़ता था।

एक दिन जैनी वैद्यको घोड़ीके दूधकी आवश्यकता हुई। सोनी वैद्यके पास घोड़ी थी, अतः वह उसके पास जाकर बोला कि घोड़ी का दूध चाहिये। उसने कहा—हमारी घोड़ी है, खुशीसे ले जाइये। वह ले आया। दैवयोगसे पन्द्रह दिन बाद घोड़ी मर गई। फिर क्या था? सोनी वैद्यने पञ्चोंसे कहा कि आपके जैनी वैद्यके साथ हमने तो इतना अच्छा व्यवहार किया कि उन्हें घोड़ीके दूधकी आवश्यकता थी, मैंने ले जानेकी अनुमति दे दी। पर ये न जाने क्या कर गये, जिससे हमारी घोड़ी उसी दिनसे बीमार हो गई और

आज मर भी गई। पच्चीस रुपयाकी होगी, अतः इनसे रुपये दिलाये जावें या वैसी ही घोड़ी दिलाई जावे।

पञ्चोंने आनुपूर्वी फैसला कर दिया और कहा कि न जाने तुमने घोड़ीको क्या खिला दिया जिससे कि वह मर गई। चूँकि इसमें तुम्हारा अपराध सिद्ध है, अतः तुम्हारे ऊपर पच्चीस रुपया जुर्माना किया जाता है। यह रुपया सोनोको दिया जावे। तुम्हें तीन मास तक मन्दिर बन्द है। पश्चात् तीर्थ वन्दना करके आओ और एक पक्की तथा एक कच्ची पंगत गाँवके पञ्चोंको दो।'

....इस प्रकार इस प्रान्तमें ऐसे अनेक निरपराध प्राणियोंको सताया जाता है जिसका मूल कारण अविद्या ही है, परन्तु इस ओर न तो कोई धनाढ्य ही हैं और न कोई विशेष विद्वान् ही, जो इस त्रुटिकी पूर्ति कर सकें। यदि कोई दयालु महानुभाव एक ऐसा विद्यालय इस प्रान्तमें खोलें, जिसमें अधिक नहीं तो साधारण हिन्दीका ही ज्ञान हो जावे। यहाँ पाँच सौ रुपयामें सौ छात्र सानन्द अध्ययन कर सकते हैं। यदि इस प्रान्तको रूढ़ियोंकी राजधानी कहें तो अत्युक्ति न होगी।

बरुवासागर

यहाँसे बरुवासागर गया। वहाँ पर एक विद्यालय है। स्वर्गीय सर्राफ मूलचन्द्रजीने गाँवके बाहर स्टेशनके ऊपर एक पहाड़ीपर इसकी स्थापना की है। एक ओर महान् सरोवर है और दूसरी ओर अटवी, जिससे प्राकृतिक सुषमा बिखर पड़ी है। छोटा-सा बाजार है और उसमें एक चैत्यालय भी। चैत्यालयका पूर्ण प्रबन्ध श्रीमान् बाबू रामस्वरूपजी करते हैं।

आप आगराके निवासी हैं। प्रतिदिन पूजा और स्वाध्यायमें तीन घण्टा लगाते हैं। विद्यालयकी रक्षा आपके ही द्वारा हो रही

यहाँसे बरुआसागर गया

वहाँ पर एक विद्यालय

है। स्वर्गीय सराफ़

मूलचन्दजीने गाँव

के बाहर स्टेशनके

ऊपर एक पहाड़ी

पर इसकी

स्थापना

की है।

चैत्यालयका पूर्ण प्रबन्ध

श्रीमान् बाबू रामस्वरूप

जी करते। ....

विद्यालयकी रक्षा

आपके द्वारा ही

हो रही है।

[पृ०३७४]

है। श्री स्वर्गीय मूलचन्द्रजी सर्राफ झाँसीमें पाँच कोठा विद्यालय के लिये लगा गये थे, जिनका किराया केवल पच्चीस रुपया मासिक आता है। पर उतनेसे काम नहीं चलता, अतः विद्यालयकी पूर्ण सहायताका भार बाबू रामस्वरूपजी पर ही आ पड़ा है और आप उसे सहर्ष वहन कर रहे हैं।

छात्रोंके रहनेके लिये आपने कई कमरे बनवा दिये हैं। साथ ही अन्य महाशयोंसे भी बनवाये हैं। इस समय विद्यालयका व्यय दो सौ रुपया मासिकसे कम नहीं है। उसकी अधिकांश पूर्ति आप ही करते हैं। आपके यहाँ श्रीयुत दुर्गाप्रसादजी ब्राह्मण आगरा जिलाके रहनेवाले बहुत ही सुयोग्य व्यक्ति हैं। पाठशालाकी सदैव रक्षा करते हैं। आप ही विद्यालयके अध्यक्ष हैं।

श्रीमनोहरलालजी शास्त्री अध्यापक हैं। आप बहुत ही सुयोग्य हैं। छात्रोंको सुयोग्य-व्युत्पन्न बनानेकी चेष्टामें रात दिन लीन रहते हैं। पच्चीस छात्र अध्ययन करते हैं, परन्तु प्रान्तवासियोंकी इस ओर बहुत कम दृष्टि रहती है। इस प्रान्तमें धनाढ्य भी हैं, परन्तु परोपकारके नामसे भयभीत रहते हैं। यदि बहुत उदारता हुई तो जलविहारोत्सव कर कृतकृत्य हो जाते हैं। यदि प्रान्तवासी ध्यान देवें तो अल्प व्ययमें अनायास ही बहुसंख्यक छात्रोंका उपकार हो जावे पर ध्यान होना ही कठिन है।

यहाँकी देहातमें प्रायः प्रायमरी पाठशालाएँ नहींके बराबर हैं। प्राचीनकालमें पांडे लोग पढ़ाते थे। उन्हें पूर्णिमा और अमावस्या को लोग सीधा दे देते थे तथा प्रतिमास कोई दो पैसा कोई चार पैसा नकद दे दिया करते थे। इस तरह उनका निर्वाह हो जाता था और गाँवके बालक सहजमें पढ़ जाते थे। जो कुछ पढ़ाते थे, पाटीपर पढ़ाते थे तथा लड़के जो पढ़ते थे उसे हृदयमें लिख लेते थे। पुस्तककी पढ़ाई नहीं थी। सायंकालके समय जो कुछ पढ़ते थे उसे एक लड़का कण्ठस्थ पढ़ता था और शेष लड़के उसी

को दुहराते थे। इस प्रकार अनायास छात्रोंकी योग्यता उत्तम हो जाती थी। परन्तु अब वह प्रथा बन्द हो गई है। अब तो केवल पैसेकी विद्या रह गई है।

पहले छात्रोंकी गुरुमें भक्ति रहती थी। गुरुके चरणोंमें मस्तक नवाकर छात्र गुरुका अभिवादन करते थे, पर आज बहुत हुआ तो मस्तकसे हाथ लगा कर गुरुको प्रणाम करनेकी पद्धति रह गई है। फल उसका यह है कि धीरे-धीरे विनय-गुणका लोप हो गया। प्राचीन पद्धतिके अभावमें भारतकी जो दुर्दशा हो रही है वह सबको विदित है।

यहाँसे चल कर फिर सागर आगये और देख कर सन्तुष्ट हुए कि पाठशालाकी व्यवस्था ठीक चल रही है। यहाँ के कार्य-कर्ता और समाजके लोगोंमें मैंने एक बात देखी कि वे अपना उत्तरदायित्व पूर्णरूपसे सँभालते हैं।

बाईजीका सर्वस्व समर्पण

एक बार मैं बनारस विद्यालयके लिये बाईजीके नाम से एक हजार रुपया लिखा आया, पर भयके कारण बाईजीसे कहा नहीं। बाईजी मुझे आठ दिनमें तीन रुपया फल खानेके लिये देती थीं, मैं फल न खा कर उन रुपयोंको पोष्ट आफिसमें जमा कराने लगा। एक दिन बाईजीने पूछा—'भैया फल नहीं लाते?' मैंने कह दिया—'आज कल बाजारमें अच्छे फल नहीं आते।' बाईजी ने कहा—'अच्छा।'

एक दिन बाईजी बड़े बाजार गईं। जब लौटकर आ रही थीं तब मार्गमें फलवाले सफीकी दुकान मिल गई। बाईजीने सफीसे कहा-'क्यों सफी! भैयाको फल नहीं देते?' सफीने कहा—'वह दूरसे रास्ता काटकर निकल जाते हैं।'

बाईजीने दो [रुपयाके फल लिए और धर्मशालामें आकर मुझसे कहा—'यह फल सफीने दिये हैं पर तुम कहते थे कि अच्छे फल नहीं आते, यह मिथ्या व्यवहार अच्छा नहीं।' इतनेमें ही वहाँ पड़ी हुई पोष्ट आफिसकी पुस्तकपर उनकी दृष्टि जा पड़ी। उन्होंने पूछा-'यह कैसी पुस्तक है ?' मैं चुप रह गया। वहाँ डाक-पीन खड़ा था। उसने कहा-'यह डाकखानेमें रुपया जमा करानेकी पुस्तक है।' बाईजीने कहा—'कितने रुपये जमा हैं ?' वह बोला—'पच्चीस रुपये।' बाईजी बोलीं—'हम तो फलके लिये देते थे और तुम डाकखानेमें जमा करते हो, इसका अर्थ हमारी समझमें नहीं आता।' मैंने कहा—'मैंने बनारस विद्यालयके लिये आपके नामसे एक हजार रुपये दिये हैं, उन्हें अदा करना है।' बाईजीने कहा—'इस प्रकार कब तक अदा होंगे ?' मैं चुप रह गया। वह कहती रहीं कि 'जिस दिन दिये उसी दिन देना उचित था। दानकी रकम है वह तो ऋण है। पाँच रुपया मासिक उसका व्याज हुआ। तुम्हें दस रुपया मासिक ही तो देती हूँ। इनसे किस प्रकार अदा करोगे ? जब तुम्हें हमारा भय था तब दान देनेका क्या आवश्यकता थी ? जो हुआ, सो हुआ, अभी जाओ और एक हजार रुपया आज ही भेज दो।'

मैं सब सुनता रहा, बाईजीने यह आदेश दिया कि 'दानकी रकमको पहले दो, पीछे नाम लिखाओ। दान देना उत्तम है, परन्तु देते समय परिणाममें उत्साह रहे। वह उत्साह ही कल्याणका बीज है। दानमें लोभका त्याग होना चाहिये। स्वपरानुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्—अपना और परका अनुग्रह करनेके लिये जो धनका त्याग किया जाता है वही दान कहलाता है। देनेके समय हमारे यह भाव रहते हैं कि इससे परका उपकार हो अर्थात् जब हम व्रतीको दान देते हैं तब हमारे यह भाव होते हैं कि इसके द्वारा इनका शरीर स्थिर रहेगा और उस शरीरसे यह मोक्षमार्गका

साधन करेंगे। यद्यपि मोक्षमार्ग आत्माके गुणोंके निर्मल विकास-से होता है तथापि शरीर उसमें निमित्त कारण है। जैसे वृद्ध मनुष्य अपने पैरोंसे चलता है परन्तु उसमें यष्टि सहकारी कारण होती है। अथवा जब नेत्र निर्बल हो जाते हैं तब चश्माके द्वारा मनुष्य देखता है। यद्यपि देखनेवाला नेत्र ही है तो भी चश्मा सहकारी कारण है।

दान देनेमें परका यही उपकार हुआ कि ज्ञानादिके निमित्त कारणोंमें स्थिरता ला सका। परन्तु परमार्थसे देनेवालेका महान् उपकार हुआ। वह इस प्रकार कि दान देनेके पहले लोभकषायकी तीव्रतासे इस जीवके परपदार्थके ग्रहण करनेका भाव था, परन्तु दान देते समय आत्मगुणघातक लोभका निरास हुआ। लोभके अभावमें आत्माके चारित्र गुणका विकास हुआ और चारित्र गुणका आंशिक विकास होनेसे मोक्षमार्गकी आंशिक वृद्धि हुई। अतः दान देनेके भाव जिस समय हों उसी समय उस द्रव्य-को पृथक् कर देना उचित है। तत्काल न देनेसे महान् अनर्थकी सम्भावना है। कल्पना करो आज तो सातोदयसे तुम्हारे पास द्रव्य है। यदि कल असातोदय आजावे और तुम स्वयं दरिद्री होकर परकी आशा करने लगो तो दत्त द्रव्यको कहाँ से चुकाओगे? अथवा कल यह भाव हो जावे कि किस चक्रमें फँस गये? इस संस्थासे अच्छा काम नहीं चलता, बड़ी अव्यवस्था है, अतः यहाँ दान देना ठीक नहीं था आदि नाना असत्कल्पनाएँ होने लगें तो उनके केवल पापबन्ध ही होगा। इसलिये जिस समय दान देनेके भाव हों उस समय सम्यक् विचार कर बोलो और बोलनेके पहले दे दो, यही सर्वोत्तम मार्ग है। यदि बोलते समय न दे सको तो घर आकर भेज दो। कल के लिये उस रकमको घरमें न रक्खो। यह हमारा अभिप्राय है सो तुमसे कह दिया। अब आगेके लिये हमारे पास जो

कुछ है वह सब तुम्हें देती हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, सो करो। भयसे मत करो। आजसे हमने इस द्रव्यसे ममता त्याग दी। हाँ, इतना करना कि यह ललिताबाई, जो कि तीस वर्षसे हमारे पास है, यदि अपने साथ न रहे, तो पाँच सौ रुपयेका सोना और पन्द्रह सौ रुपये इसे दे देना तथा दो सौ रुपये सिमराके मन्दिर को भेज देना। अब विशेष कुछ नहीं कहना चाहती।' बाईजीके इस सर्वस्व समर्पणसे मेरा हृदय गद्गद हो गया और मैं उठकर बाहर चला गया।

बण्डाकी दो वार्ताएं

एक बार सागरमें प्लेग पड़ गया, हम लोग बण्डा चले गये साथमें पाठशाला भी लेते गये। उस समय श्रीमान् पं० दीपचन्द्र जी वर्णी पाठशालाके सुपरिन्टेन्डेन्ट थे, अतः वे भी गये और उनकी मां भी। दीपचन्द्रजीके साथ हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध था। आपका प्रबन्ध सराहनीय था।

एक दिनकी बात है—एक लकड़ी बेचनेवाली आई, उसकी लकड़ी चार आनेमें ठहराई, मेरे पास अठन्नी थी, मैंने उसे देते हुए कहा कि 'चार आना वापिस दे दे।' उसने कहा—'मेरे पास पैसा नहीं है।' मैंने सोचा—'कौन बाजार लेने जावे, अच्छा आठ आना ही ले जा।' वह जाने लगी, उसके शरीरपर जो धोती थी वह बहुत फटी थी। मैंने उससे कहा—'ठहर जा'। वह ठहर गई। मैं ऊपर गया। वहाँ बाईजीकी रोटी बनानेकी धोती सूख रही थी, मैं उसे लाया और वहीं पर चार सेर गेहूँ रक्खे थे, उन्हें भी लेता आया। नीचे आकर वह धोती और गेहूँ दोनों ही मैंने उस लकड़ीवालीको दे दिये।

श्रीदीपचन्द्रजीने देख लिया। मैंने कहा—'आप बाईजीसे न

कहना।' वे हँस गये। इतनेमें बाईजी मन्दिरसे आ गईं और ऊपर गईं। चूल्हा सुलगा कर धोती बदलनेके लिये ज्यों ही छत पर गईं त्यों ही धोती नदारत देखी। हमसे पूछने लगीं–'भैया! धोती कहाँ गई?' मैंने कहा–'बाईजी! मुझे पता नहीं'–यह कहते हुए मुझे कुछ हँस आया। अब बाईजीने दीपचन्द्रजीसे पूँछा—'अच्छा तुम बताओ, कहाँ गई?' उन्होंने कह दिया कि 'वर्णीजीने धोती और चार सेर गेहूँ लकड़ी बेचनेवालीको दे दिये।' बाईजी खुश होकर कहने लगीं कि 'धोती देनेका रञ्ज नहीं, किन्तु दूसरी दे देते, गेहूँ भी दूसरे दे देते। अब जब धोती सूखेगी तब रोटी बनेगी, भोजनमें विलम्ब होगा। भूखा रहना पड़ेगा।' मैंने कहा–'बाईजी! आपका कहना बहुत उचित है परन्तु मैं पर्यायबुद्धि हूँ। जिस समय मेरे सामने जो उपस्थित हो जाता है वही कर बैठता हूँ।'

एक दिन श्रीसुनू शाहके यहाँ भोजनके लिए गया। उन्होंने बड़े स्नेहसे भोजन कराया। उनकी स्त्रीका मुझसे बड़ा स्नेह था। वह बोली–'दो रुपये लेते जाइये और खानेके लिये सागरसे फल मंगा लीजिये।' मैं भोजन कर चलने लगा। इतनेमें एक भिक्षुक रोटी माँगता हुआ सामने आ गया। मैंने उसे दो रुपये दे दिये। इतनेमें सुनू शाह आ गये। उन्होंने भिक्षुकको दो रुपया देते हुए देख लिया।.........यह देखकर वे इतने प्रसन्न हुए कि मैं वहाँसे चलकर चार मास नैनागिरमें रहा, जिसका पूरा व्यय उन्होंने दिया।

पुण्य-परीक्षा

एक दिनकी बात है सब लोग नैनागिरमें धर्मचर्चा कर रहे थे। मैना सुन्दरी आदिकी कथा भी प्रकरणमें आ गई। एक बोला–'वर्णीजीका पुण्य अच्छा है, वे जो चाहें हो सकता है।' एक बोला—'इन गप्पोंमें क्या रक्खा है? इनका पुण्य अच्छा है

यह तो तब जानें जब इन्हें आज भोजनमें अंगूर मिल जावें।' नैनागिरमें अंगूर मिलना कितनी कठिन बात है ? मैंने कहा— 'मैं तो पुण्यशाली नहीं परन्तु पुण्यात्मा जीवोंको सर्वत्र सब वस्तुएँ सुलभ रहती हैं।' वह बोला—'सामान्य बात छोड़िये, आपकी बात हो रही है। यदि आप पुण्यशाली हैं तो अभी आपको भोजनमें अंगूर मिल जावें। यों तो जगत्‌में चाहे जिसको जो चाहे कह दो। मैं तो आपको पुण्यात्मा तभी मानूँगा जब आज आपको अभी अंगूर मिल जावेंगे।' मैंने कहा—'यदि मेरे पल्ले पुण्य है तो कौन-सी बड़ी बात है ?' वह बोला—'बातोंमें क्या रक्खा है ?' मैंने कहा—'बात ही से तो यह कथा हो रही है।' एक बोला—'अच्छा, इसमें क्या रक्खा है। सब लोग भोजनके लिए चलो, पुण्यपरीक्षा फिर हो लेगी।' हँसते हँसते सब लोग भोजनके लिये बैठे ही थे कि इतनेमें दिल्लीसे अयोध्याप्रसादजी दलाल सागर होते हुए नैनागिर आ पहुँचे और आते ही कहने लगे—'वर्णीजी ! भोजन तो नहीं कर लिये, मैं ताजा अंगूर लाया हूँ।' सब हँसने लगे। उस दिनके भोजनमें सबसे पहला भोजन उन्हींके अंगूरोंका हुआ। यह घटना देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। इससे यह सिद्ध होता है कि जो भवितव्य है वह दुर्निवार है।

अपनी भूल

नैनागिरसे चलकर सागर आ गया। यहाँ एक दिन बाजार जाते समय एक गाड़ी लकड़ीकी मिली। मैंने उसके मालिकसे पूछा—'कितनेमें दोगे ?' वह बोला—'पौने तीन रुपयामें।' मैंने कहा—'ठीक ठीक कहो।' वह बोला—'ठीक क्या कहें ? दो दिन बैलोंको मारते हैं, हम पृथक् परिश्रम करते हैं, इतने पर भी सवेरे से घूम रहे हैं, दोपहर होगये, अभी तक कुछ खाया नहीं, फिर

भी लोग पौने दो रुपयासे अधिक नहीं लगाते।' मैंने कहा—'अच्छा चले चलो, पौने तीन रुपया ही देवेंगे।' वह खुशीसे कटराकी धर्मशालामें गाड़ीकी लकड़ी रखने लगा। मैंने कहा—'काटकर रक्खो।' वह बोला—'काटनेके दो आना और दो।' मैंने कहा—'हमने पौने तीन रुपया दिये। सच कहो क्या पौने तीन रुपयाकी गाड़ी है।' वह बोला—'नहीं, पौने दो रुपयासे अधिककी नहीं, परन्तु आपने पौने तीन रुपयामें ठहरा ली, इसमें मेरा कौन-सा अपराध है? आपने उस समय यह तो नहीं कहा था कि काटना पड़ेगा।' मैंने कहा—'नहीं।' वह बोला—'तब दो आना के लिये क्यों बेईमानी करते हो, मैं एकदम बोला-'अच्छा नहीं काटना चाहता है तो चला जा, मुझे नहीं चाहिये।' वह बोला-'आपकी इच्छा। मैं तो काटकर रखे देता हूँ, पर आप अपनी भूल पर पछताओगे। परन्तु यह संसार है, भूलोंका घर है।' अन्तमें उसने लकड़ी काटकर रख दी। मैंने पौने तीन रुपया उसे दे दिया। वह चला गया। जब मैं भोजन करनेके लिए बैठा। आधे भोजनके बाद मुझे अपनी भूल याद आई। मैंने एकदम भोजनको छोड़ हाथ धो लिए। बाईजीने कहा—'बेटा! अन्तराय हो गया?' मैंने कहा—'नहीं।' लकड़ीवालेकी सब कथा सुनाई। बाईजीने कहा—'तुमने बड़ी गलती की जब पौने दो रुपयाके स्थानपर पौने तीन रुपया दिए तब दो आना और दे देता।'

अन्तमें एक सेर पक्वान्न और दो आना लेकर चला। दो मील चलनेके बाद वह गाड़ीवाला मिला। मैंने उसे दो आने और पक्वान्न दिया। वह खुश हुआ। मुझे आशीर्वाद देता हुआ बोला—'देखो, जो काम करो, विवेकसे करो। आपने पौने दो रुपयेके स्थानमें पौने तीन रुपया दिये, यह भूलकी। पौने दो रुपया ही देना थे। यदि मेरा उपकार करना था तो एक रुपया स्वतन्त्र देते तथा दो आनाके लिए बेईमान न बनना पड़ता। अब भविष्य

में ऐसी भूल न करना। जितना सुख आपको एक रुपया देनेका नहीं हुआ उतना दुःख इस दो आनाकी भूलका होगा। व्यवहारमें यथार्थ बुद्धिसे काम लो। यों ही आवेगमें आकर न ठगा जाओ तथा दानकी पद्धतिमें योग्य-अयोग्यका विचार अवश्य रक्खो। आशा है अब ऐसी भूल न करोगे।'

बिल्लीकी समाधि

सागरकी ही घटना है। हम जिस धर्मशालामें रहते थे उसमें एक बिल्लीका बच्चा था। उसकी माँ मर गई। मैं बच्चेको दूध पिलाने लगा। बाईजी बोलीं—'यह हिंसक जन्तु है। इसे मत पालो।' मैं बोला—'इसकी मां मर गई, अतः दूध पिला देता हूँ। क्या अनर्थ करता हूँ?' बाईजी बोलीं—'प्रथम तो तुम आगमकी आज्ञाके विरुद्ध काम करते हो। दूसरे संसार है। तुम किस किस की रक्षा करोगे?'

मैं नहीं माना। उसे दूध पिलाता रहा। जब वह चार मासका हुआ तब एक दिन उसने एक छोटासा चूहा पकड़ लिया। मैंने हरचन्द कोशिश की कि वह चूहेको छोड़ देवे पर उसने न छोड़ा। मैंने उसे बहुत डरवाया, पर वह चूहा खा गया।

इस घटनासे जब मैं आता था तब वह डरकर भाग जाता था, परन्तु जब बाईजी भोजन करती थीं तब आ जाता था और जब तक बाईजी उसे दूध रोटी न दे देतीं तब तक नहीं भागता था। बाईजीसे उसका अत्यन्त परिचय हो गया। जब बाईजी बरुआसागर या कहीं अन्यत्र जाती थीं तब वह एक दिन पहलेसे भोजन छोड़ देता था और जब तांगा पर बैठकर स्टेशन जाती थीं तब वहीं खड़ा रहता था। तांगा जानेके बाद ही वह धर्मशाला

छोड़ देता था और जब बाईजी आ जाती थीं तब पुनः आ जाता था। अन्तमें जब वह बीमार हुआ तब दो दिन तक उसने कुछ भी नहीं लिया और बाईजीके द्वारा नमस्कारमन्त्रका श्रवण करते हुए उसने प्राणविसर्जन किया। कहनेका तात्पर्य यह है कि पशु भी शुभ निमित्त पाकर शुभ गतिके पात्र हो जाते हैं, मनुष्योंकी कथा कौन कहे ?

बाईजीकी हाजिरजवाबी

बाईजीकी विलक्षण प्रतिभा थी। उन्हें तत्काल उत्तर सूझता था। एक दिनकी बात है—कटरा बाजारके मन्दिरमें पाठशालाके भोजनकी अपील हुई। एक दिनका भोजन खर्च दस रुपया था। बहुत लोगोंने एक-एक दिनका भोजन लिखाया। मैंने भी बाईजीके नामसे एक दिनका भोजन लिखा दिया। एक बोला कि 'बाईजी आप भी वर्णीजीके नामसे एक दिनका भोजन लिखा दो।' बाईजीने कहा—'अच्छा है, परन्तु आप लोग भी इसीके अनुकूल लिखा दो।' लोग हँस पड़े।

एक बार श्रीमान् सिंघई कुन्दनलालजीके सरस्वतीभवनकी प्रतिष्ठा थी। प्रतिष्ठाचार्यने केलेके स्तम्भ द्वारपर लगवाये, आमके पत्तोंके वन्दनमाल बँधवाये और घमलोंमें यवके अंकुर निकलवाये। सिंघईजी बोले—'बाईजी! बड़ी हिंसा होती है। धर्मके कार्यमें तो ऐसा नहीं होना चाहिये।' बाईजीने कहा—'भैया! प्रतिष्ठाचार्यसे पूँछो।' सिंघईजीने कहा—'हम तो आपसे पूछते हैं।' बाईजीने कहा—'भैया! मंगलकार्य है। उसमें मङ्गलके लिए यह सब किया जाता है।' सिंघईजीको संतोष न हुआ। वे फिर भी बोले—'यदि यह सब न कराया जाता तो।' बाईजीने हँसकर

उत्तर दिया—'भैया! जब आसौजमें गल्ला बेचते हो और उसमें दुकनियाँ तिरूले आदि जीव निकलते हैं तब उनका क्या करते हो? आरम्भके कार्योंमें त्रसजीवोंकी रक्षा न हो और माङ्गलिक कार्यमें एकेन्द्रिय जीवकी रक्षाकी बात करो। जब तुम्हारे आरम्भ-त्याग हो जावेगा तब तुम्हें मन्दिर बनानेका कोई उपदेश न करेगा। यह तुम्हारा दोष नहीं, स्वाध्याय न करनेका ही फल है।' कहनेका तात्पर्य यह है कि वे समयपर उचित उत्तर देनेसे न चूकती थीं।

व्यवस्थाप्रिय बाईजी

बाईजीको अव्यवस्था जरा भी पसन्द न थी। वे अपना प्रत्येक कार्य व्यवस्थित रखती थीं। प्रत्येक वस्तु यथास्थान रखती थीं। आपकी सदा यह आज्ञा रहती थी कि लिखा हुआ कोई भी पत्र कूड़ामें न डाला जावे तथा जहाँ तक हो पुस्तकोंकी विनय की जावे। चाहे छपी पुस्तक हो, चाहे लिखी, विनय-पूर्वक ऊपर ही रखना चाहिये।

एक दिनकी बात है। आप मन्दिरसे आ रही थीं। धर्मशालाके कूड़ागृहमें उन्हें एक कागज मिल गया। उसमें भक्तामरका श्लोक था। बाईजीने ललिताको बहुत डांटा—'क्यों री! इसे क्यों झाड़ा?' वह उत्तर देने लगी—'वर्णीजीसे कहो कि वे क्यों ऐसा करते हैं?' बाईजीने मुझसे भी कहा कि 'मैंने सौ बार तुमसे कहा कि ऐसी भूल मत करो, चाहे गजट मंगाना बन्द कर दो।' मैं चुप हो गया। बाईजीने ललिताका शिर पकड़ा और भीतमें अपना हाथ लगाकर वेगसे पटका, परन्तु उसको रंचमात्र भी चोट न आई, क्योंकि उन्होंने हाथ लगा लिया था। मैं बाईजीकी इस विवेकपूर्ण सजाको देखकर हँस पड़ा।

बाईजीकी प्रकृति अत्यन्त सौम्य थी। उन्हें क्रोधकी मात्राका लेश भी न था। कैसा ही उद्दण्ड मनुष्य क्यों न आवे, उनके समक्ष नम्र ही हो जाता था। बाईजी जितनी शान्त थीं, उतनी ही उदार थीं। मैं जहाँ तक जानता हूँ उनकी प्रकृति अत्यन्त उच्च थी। एक बार मैंने बनारससे बाईजीको लिखा कि 'पीतलके वर्तनोंमें खटाईके पदार्थ विकृत हो जाते हैं।' आपने उत्तर लिखा कि चाँदीके वर्तन जितने आवश्यक समझो, बनवा लो।'

मैंने एक थाली एक सौ तीस रुपया भर, एक भगोनियाँ सौ रुपया भर, एक ग्लास बीस रुपया भर, दो चमची दस रुपया भर, एक कटोरदान अस्सी रुपया भर और एक लोटा अस्सी रुपया भर बनवा लिया। जब बनकर आये तब विचार किया कि यदि इन्हें उपयोगमें लाऊँगा तो इनकी सुन्दरता चली जावेगी, अतः पेटीमें बन्दकर रख दिये। जब दो मास बाद सागर आया और बाईजीने चाँदीके वर्तन देखे तब बोलीं—'भैया! क्या इन्हें उपयोगमें नहीं लाये?' मैंने कहा—'सुन्दरता न बिगड़ जाती?' बाईजीने हँसते हुए कहा—'तो फिर किसलिये बनवाये थे?'

बाईजीने उसी समय बलते हुए चूल्हेपर भगौनी चढ़ा दी, लोटा ग्लास पानीसे भरकर रख दिये और जब भोजनके लिये बैठा तब चाँदीका थाल भी सामने रख दिया। एक भी दिन ऐसा नहीं गया, जिस दिन उन बर्तनोंका उपयोग न किया हो।

बाईजीमें सबसे बड़ा गुण उदारताका था। जो चीज हमको भोजनमें देती थीं, वही नाई, धोबी, मेहतरानी आदिको देती थीं। उनसे यदि कोई कहता तो साफ उत्तर देती थीं कि महीनों बाद त्योहारके दिन ही तो इन्हें देती हूँ। खराब भोजन क्यों दूँ? आखिर ये भी तो मनुष्य हैं?

उनके पास जो भी आता था प्रसन्न होकर जाता था। क्रोध तो वह कभी करती ही न थीं। उनके प्रत्येक कार्य नियमानुकूल

होते थे। एक बार भोजन करती थीं और एक बार पानी पीती थीं। आयसे कम व्यय करती थीं। आवश्यक वस्तुओंका यथा-योग्य संग्रह रखती थीं। दियासलाईके स्थानपर दियासलाई और लालटेनके स्थान पर लालटेन। कहनेका तात्पर्य यह है कि उन्हें कोई वस्तु खोजनेके लिये परेशान न होना पड़ता था। ऐसा समय नहीं आया कि कभी बाजारसे पैसा भंजाने पड़े हों।

उन्हें औषधियोंका अच्छा ज्ञान था। मैं तो चालीस वर्ष उनके सहवासमें रहा, कभी उनका शिर तक नहीं दूखा। उनका भोजन एक पावसे अधिक न था। छाछका उपयोग अधिक करती थीं। जो भी वस्तु रखती थीं बहुत सँभाल कर रखती थीं।

मुझे एक धोती कर्णाटकके छात्रने दी थी जो बहुत सुन्दर थी, परन्तु कुछ मोटी थी। मैंने बाईजीको दे दी। बाईजीने उस धोतीके द्वारा निरन्तर पूजन की और बीस वर्षके बाद जब उनका स्वर्गवास हो गया तो ज्यों-की-त्यों धोती उनके सन्दूकसे निकली। बाईजीके सहवाससे मैंने भी उदारताका गुण ग्रहण कर लिया, परन्तु उसकी रक्षा उनकी निर्लोभतासे हुई।

अबला नहीं सबला

सागरसे, गौरझामरमें पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा थी, वहाँ गया। प्रतिष्ठामें पं० दीपचन्द्रजी वर्णी, बाबा भागीरथजी वर्णी तथा सागरके विद्वान पं० दयाचन्द्र जी शास्त्री, पं० मुन्नालालजी आदि भी उपस्थित थे।

मध्याह्नके बाद आमसभा हुई। उसमें शीलव्रतके ऊपर भाषण हुए। रात्रिके समय एक युवती श्रीमन्दिरजीके दर्शनके लिए जा रही थी। मार्गमें एक सिपाहीने उसके उरस्थलमें मजाकसे एक कंकड़ मार दिया, फिर क्या था अबला सबला हो गई। उस

युवतीने उसके शिरका साफा उतार दिया और लपककर तीन या चार थप्पड़ उसके गालमें इतने जोरसे मारे कि गाल लाल हो गया। लोगोंने पूछा कि 'बाईजी! क्या बात है?' वह बोली—'क्या बात है? खेद है कि आप लोग प्रतिष्ठामें लाखों रुपये व्यय करते हो, परन्तु प्रबन्ध कुछ भी नहीं करते। हजारों मनुष्य निरावरण स्थानमें पड़े हुए हैं पर किसीको चिन्ता नहीं। कोई किसीके साथ कैसा असद्व्यवहार करे, कोई पूछनेवाला नहीं। स्त्रियाँ बेचारीं स्वभावसे ही लज्जाशील होतीं हैं। दुष्ट गुण्डे उन्हें देख देखकर हँसते हैं। जिस कूपपर वे नहाती हैं उसीपर मनुष्य नहाते हैं। कोई-कोई मनुष्य इतने दुष्ट होते हैं कि स्त्रियोंके आंगोपाङ्ग देखकर हँसी करते हैं। अभी की बात है—मन्दिर जा रही थी, इस दुष्टने, जो पुलिसकी वर्दी पहने है और रक्षाका भार अपने शिरपर लिये है, मेरे उरस्थलमें कंकण मार दी। इस पामरको लज्जा नहीं आती जो हम अबलाओं के ऊपर ऐसा अनाचार करता है। आप लोग इन्हें रक्षाके लिये रखते हैं, सहस्रों रुपये व्यय करते हैं, पर ये दुष्ट यह निन्द्य कार्य करते हैं। आप इसे इसके स्वामीके पास ले जाइये। इसके ऊपर दया करना न्यायका गला घोंटना है। आप लोग इतने भीरु हो गये हैं कि अपनी माँ-बहनोंकी रक्षा करनेमें भी भय करते हैं। मैंने दोपहरको शीलवती देवियोंके चरित्र सुने थे, इससे मेरा इतना साहस हो गया। यदि आप लोग न होते तो मैं इस दुष्टकी जो दशा करती यह यही जानता।' इतना कहकर वह उस सिपाही से पुनः बोली—'रे नराधम! प्रतिज्ञा कर कि मैं अब कभी भी किसी स्त्रीके साथ ऐसा व्यवहार न करूँगा, अन्यथा मैं स्वयं तेरे दरोगाके पास चलती हूँ और वह न सुनेंगे तो सागर कप्तान साहबके पास जाऊँगी।'

वह विवेकशून्य-सा हो गया। बड़ी देरमें साहसकर बोला—

'बेटी ! मुझसे महान् अपराध हुआ । क्षमा करो । अब भविष्यमें ऐसी हरकत न होगी । खेद है कि मुझे आजतक ऐसी शिक्षा नहीं मिली । आपकी शिक्षा प्रत्येक मनुष्यको सादर स्वीकार करना चाहिये । इस शिक्षाके बिना हम इतने अधम हो गये हैं कि कार्य-अकार्य कुछ भी नहीं देखते । आज मुझे अपने कर्तव्य-का बोध हुआ ।' युवतीने उसे क्षमा कर दिया और कहा—'पिताजी ! मेरी थप्पड़ोंका खेद न करना । मेरी थप्पड़ें तुम्हें शिक्षकका काम कर गईं । अब मैं मन्दिर जाती हूँ । आप भी अपनी ड्यूटी अदा करें ।'

वह मण्डपमें पहुँची और उपस्थित जनताके समक्ष खड़ी होकर कहने लगी–माताओ और बहिनो तथा पिता, चाचा और भाईयो ! आज मेरी उम्रमें प्रथम दिवस है कि मैं एक अबोध स्त्री आपके समक्ष व्याख्यान देनेके लिये खड़ी हुई हूँ । मैंने केवल चार क्लास हिन्दीकी शिक्षा पाई है । यदि शिक्षापर दृष्टि देकर कुछ बोलनेका प्रयास करूँ तो कुछ भी नहीं कह सकती, किन्तु आज दोपहरको मैंने शीलवती स्त्रियोंके चरित्र सुने । उससे मेरी आत्मा-में वह बात पैदा हो गई कि मैं भी तो स्त्री हूँ । यदि अपना पौरुष उपयोगमें लाऊँ तो जो काम प्राचीन माताओंने किये उन्हें मैं भी कर सकती हूँ । यही भाव मेरी रग-रगमें समा गया । उसीका नमूना है कि एकने मेरेसे मजाक किया । मैंने उसे जो थप्पड़ें दीं, वही जानता होगा और उससे यह प्रतिज्ञा करवाकर आई हूँ कि 'बेटी ! अब ऐसा असद्व्यवहार न करूँगा ।'

प्रकृत बात यह है कि हमारी समाज इस विषयमें बहुत पीछे है । सबसे पहले हमारी समाजमें यह दोष है कि लड़कियोंको योग्य शिक्षा नहीं देते । बहुतसे बहुत हुआ तो चार क्लास हिन्दी पढ़ा देते हैं, जिस शिक्षामें केवल कुत्ता, बिल्ली और गिलहरियोंकी कथा आती है । बालिकाओंका क्या कर्तव्य है ? इसके नाते

अकार भी नहीं सिखाया जाता। माता-पिता यदि धनी हुआ तो कन्याको गहनोंसे लादकर खिलौना बना देता है। न उसे शरीरको नीरोग रखनेकी शिक्षा देता है और न स्त्रीधर्मकी। यदि गरीब माता-पिता हुए तो कहना ही क्या है? यह सब जहन्नुममें जावे। वरकी तलाशमें भी बहुत असावधानी करते हैं। लड़कीको सोना पहिननेके लिए मिलना चाहिये, चाहे लड़का अनुरूप हो या न हो। विवाहमें हजारों खर्च कर देवेंगे, परन्तु योग्य लड़की बने, इसमें एक पैसा भी खर्च नहीं करेंगे। लड़केवाले भी यही ख्याल रखते हैं कि सोना मिलना चाहिये, चाहे लड़की अनुकूल हो या प्रतिकूल। अस्तु, इस विषयपर विशेष मीमांसा नहीं करना चाहती, क्योंकि सभी लोग अपनी यह भूल स्वीकार करते हैं। मानते भी हैं। परन्तु छोड़ते नहीं। 'पञ्चोंका कहना शिरमाथे, परंतु पनाला यहीं रहेगा।' सबसे जघन्य कार्य तो यह है कि हमारे नवयुवक और युवतियोंने विषय-सेवनको दालरोटी समझ रक्खा है। इनके विषयसेवनका कोई नियम नहीं है। ये न धर्मपर्वोंको मानते हैं और न धर्मशास्त्रोंके नियमोंको। शास्त्रोंमें लिखा है कि स्त्रीका सेवन अन्नकी तरह करना चाहिये, परन्तु कहते हुए लज्जा आती है कि एक बालक तो दूध पी रहा है, एक स्त्रीके उदरमें हैं और एक बगलमें बैठा चें-चें कर रहा है। तीन सालमें तीन बच्चे। ऐसा लगता है, मानों स्त्रियाँ बच्चे पैदा करनेकी होड़में लग रही हैं। कोई-कोई तो इतने दुष्ट होते हैं कि बालकके उदरमें रहते हुए भी अपनी पापवासनासे मुक्त नहीं होते। क्या कहूँ? स्त्रीका राज्य नहीं, नहीं तो एक-एककी खबर लेती। फल इसका देखो कि सैकड़ों नरनारी तपेदिकके शिकार हो रहे हैं। मन्दाग्निके शिकार तो सौमें नब्बे रहते हैं। जहाँ पर औषधियोंकी आवश्यकता न पड़ती थी वहाँ अब वैद्यमहाराजकी आवश्यकता होने लगी है। प्रदर रोगकी तो मानो बाढ़ ही आगई है। धातु-

क्षीणता एक सामान्य रोग हो गया है। गजटोंमें सैकड़ों विज्ञापन ऐसे ऐसे रोगोंके रहते हैं जिन्हें बांचनेमें शर्म आती है। अतः यदि जातिका अस्तित्व सुरक्षित रखना चाहती हो तो मेरी बहिनों! बेटियो! इस बातकी प्रतिज्ञा करो कि हमारे पेटमें बच्चा आनेके समयसे लेकर जब तक वह तीन वर्षका न होगा तब तक ब्रह्मचर्य व्रत पालेंगी और यही नियम पुरुष वर्गको लेना चाहिये। यदि इसको हास्यमें उड़ा दोगे तो याद रक्खो तुम हास्यके पात्र भी न रहोगे। साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करो कि अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टाह्निका पर्व, सोलहकारण पर्व तथा दश-दक्षण पर्वमें ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करेंगी। विशेष कुछ नहीं कहना चाहती।'

उनका व्याख्यान सुन कर सब समाज चकित रह गई। पास ही बैठे हुए बाबा भागीरथजीने दीपचन्द्रजी वर्णीसे कहा कि यह अबला नहीं, सबला है।

हरी भरी खेती

सागरकी जनता अभी तक अपने आचार-विचारको पूर्ववत् सुरक्षित रक्खे हुए है। यद्यपि यहाँपर अन्य बड़े-बड़े शहरोंके अनुपातसे धनिक वर्गकी न्यूनता है तो भी लोगोंके हृदयमें धार्मिक कार्योंके प्रति उत्साह रहता है। पाठशालाके प्रारम्भसे लेकर आज तक जब हम उसकी उन्नति और क्रमिक विकासपर दृष्टि डालते हैं तब हमारे हृदयमें सागरवासियोंके प्रति अनायास आस्था उत्पन्न हो जाती है। सिंघई कुन्दनलालजी, चौ० हुकमचन्द्रजी, मानिकचौकवाले, मलैया शिवप्रसाद शोभाराम बालचन्द्रजी, सि० राजारामजी, सि० होतीलालजी, मोदी शिखरचन्द्रजीकी माँ, जौहरी खानदान;आदि] अनेक महाशय

ऐसे हैं जो सदा पाठशालाका सिञ्चन करते रहते हैं। इस प्रकार यह सागरकी पाठशाला प्रारम्भसे लेकर अब तक सानन्द चल रही है। मेरा ख्याल है कि किसी भी संस्थाके संचालनके लिये पैसा उतना आवश्यक नहीं है जितना कि योग्य प्रामाणिक कार्यकर्ताओंका मिलना। इस पाठशालाके चलनेका मुख्य कारण यहाँके योग्य और प्रामाणिक कार्यकर्ताओंका मण्डल ही है।

पाठशालामें निरन्तर उत्तमसे उत्तम विद्वान् रक्खे गए हैं। प्रारम्भमें श्रीमान् पण्डित सहदेव झा तथा छिंगे शास्त्री रक्खे गये। ये दोनों अपने विषयके बहुत ही योग्य विद्वान् थे। इसके बाद पं० वेणीमाधवजी व्याकरणाचार्य, पं० लोकनाथजी शास्त्री, पं० छेदीप्रसादजी व्याकरणाचार्य नियुक्त हुए। जैन अध्यापकोंमें पं० मुन्नालालजी न्यायतीर्थ रांघेलीय रखे गये, जो अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्वान् हैं। आप इस विद्यालयके सर्व प्रथम छात्र हैं। आपने यहाँ कई वर्ष तक अध्यापन कार्य किया। अब आप ही इस विद्यालयके मन्त्री हैं जो बड़े उत्साह और लगनके साथ काम करते हैं। आज कल आप स्वतन्त्र व्यवसाय करते हैं। आपके पहले श्रीपूर्णचन्द्रजी बजाज मन्त्री थे। आप प्रायः तीस वर्ष पाठशालाके मन्त्री रहे होंगे। आप बड़े गम्भीर और विचारक पुरुष हैं। साथ ही विद्या-प्रचारके बड़े इच्छुक हैं। आपने जब यहाँ यह पाठशाला न खुली थी तब एक छोटी पाठशाला खोल रक्खी थी। आगे चलकर वह छोटी पाठशाला ही इस रूपमें परिवर्तित हो गई। एक वाचनालय भी आपने खोला था, जो आज सरस्वती-वाचनालयके नामसे प्रसिद्ध है।

आजकल भी इस पाठशालाके जो अध्यापक हैं, वे बहुत ही सुयोग्य हैं। प्रधानाध्यापक पं० दयाचन्द्रजी शास्त्री हैं। आपने प्रारम्भसे यहाँ अध्ययन किया। बादमें बनारस चले गये। न्याय-

तीर्थ परीक्षा पास की। धर्मशास्त्रमें जीवकाण्ड तक ही अध्ययन किया, परन्तु आपकी बुद्धि इतनी प्रखर है कि आप आजकल सिद्धान्तशास्त्रमें जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, त्रिलोकसार, राजवार्तिक तथा धवलादि ग्रन्थोंका अध्यापन करते हैं और न्यायमें प्रमेय-कमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, श्लोकवार्तिक आदि पढ़ाते हैं। अनेकों छात्र आपके श्रीमुखसे अध्ययन कर न्यायतीर्थ तथा शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण हुए हैं। आपकी प्रशंसा कहाँ तक की जावे, ये ग्रन्थ प्रायः आपको कण्ठस्थ हैं। आपके बाद पं० माणिकचन्द्रजी हैं। आप छात्रोंको व्युत्पन्न बनानेमें बहुत पटु हैं। आप छात्रोंको प्रारम्भसे ही इतना सुबोध बना देते हैं कि सहज ही मध्यमा परीक्षाके योग्य हो जाते हैं। आज कल आप सर्वार्थसिद्धि, जीव-काण्ड तथा सिद्धान्तकौमुदी भी पढ़ाते हैं। पढ़ानेके अतिरिक्त पाठशालाके सरस्वतीभवनकी व्यवस्था भी आप ही करते हैं। आपने आदिसे अन्त तक इसी विद्यालयमें अध्ययन किया है। इनके बाद तीसरे अध्यापक पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य हैं। आप बहुत ही सुयोग्य हैं। इन्होंने मध्यमा तक गुरुमुखसे अध्ययन किया। फिर प्रतिवर्ष अपने आप साहित्यका अध्ययन कर परीक्षा देते रहे। इस प्रकार पाँच खण्ड पास किये। सिर्फ छठवीं वर्ष दो मासको बनारस गये और साहित्याचार्य पदवी लेकर आ गये। आप इतने प्रतिभाशाली हैं कि बनारसके छात्र आपसे साहित्यिक अध्ययन करनेके लिए यहाँ आते हैं। आपके पढ़ाये हुए छात्र बहुत ही सुबोध होते हैं। आपने यहीं अध्ययन किया है। कहनेका तात्पर्य यह है कि सागर विद्यालय इन्हीं सुयोग्य विद्वानोंके द्वारा चल रहा है। द्रव्यकी पुष्कलता न होनेपर भी आप लोग योग्य रीतिसे पाठशालाको चला रहे हैं। अब तक पचासों विद्वान् पाठशालासे निष्णात होकर निकल चुके, जिनमें कई तो बहुत ही कुशल निकले। सन्तोषकी बात तो यह

है कि इस संस्थाका संचालन इसीसे पढ़कर निकले हुए विद्वान् लोग कर रहे हैं। मंत्री इसी पाठशालाके छात्र हैं, छः अध्यापकोंमें पाँच अध्यापक इसी पाठशालाके पढ़े हुए हैं, सुपरिन्टेन्डेन्ट और क्लर्क भी इसी संस्थाके छात्र हैं। ऐसा सौभाग्य शायद ही किसी संस्थाको प्राप्त होगा कि उससे निकले हुए विद्वान् उसीकी सेवा कर रहे हों।

पं० मूलचन्द्रजी विलौवा जखौरा निवासीने इस पाठशालामें बहुत काम किया। आपकी बदौलत पाठशालाको हजारों रुपये मिले। आप बहुत साहसी मनुष्य हैं। इस प्रकार यह विद्यालय इस प्रान्तकी हरी-भरी खेती है, जिसे देखकर अन्यकी तो नहीं कहता पर मेरा हृदय आनन्दसे आ प्लुत हो जाता है।

सागर सागर ही है, अतः इसमें रत्न भी पैदा होते हैं। बालचन्द्रजी मलैया सागरके एक रत्न ही हैं। इन्होंने जबसे काम सँभाला तबसे सागरकी ही नहीं, समस्त बुन्देलखण्ड प्रान्तके जैन समाजकी प्रतिष्ठा बढ़ा दी। आप जितने कुशल व्यापारी हैं उतने धार्मिक भी हैं। आपने ग्यारह हजार रुपया सागर विद्यालयको दिये, चालीस हजार रुपया जैन हाईस्कूलकी बिल्डिंगके लिये दिये, बीस हजार रुपया जैन गुरुकुल मलहराको दिये, पच्चीस हजार रुपया सागरमें प्रसूति गृह बनानेके लिये दिये और इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष अनेक छात्रोंको छात्रवृत्ति देते रहते हैं। अध्ययनके प्रेमी हैं। आपने अपने हीरा आइल मिल्स लाइब्रेरीमें कई हजार पुस्तकोंका संग्रह किया है। आपकी इस सर्वाङ्गीण उन्नतिमें कारण आपके बड़े भाई श्रीशिवप्रसादजी मलैया हैं, जो बड़े ही शान्त विचारक और गम्भीर प्रकृतिके मानव हैं। आप इतने प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं कि एकान्त स्थानमें बैठे-बैठे अपने विशाल कार्य-भारका चुपचाप सफल सञ्चालन करते रहते हैं।

विद्यालयकी सुव्यवस्था और समाजके लोगोंकी आभ्यन्तर

अभिरुचिके कारण मेरा मुख्य स्थान सागर ही हो गया और मेरी आयुका बहुभाग सागरमें ही बीता।

शाहपुरमें विद्यालय

शाहपुरमें पञ्चकल्याणक थे। प्रतिष्ठाचार्य श्रीमान् पं० मोतीलालजी वर्णी थे। यह नगर गनेशगंज स्टेशनसे डेढ़ मील दूर है। यहाँ पर पचास घर जैनियोंके हैं। प्रायः सभी सम्पन्न, चतुर और सदाचारी हैं। इस गाँवमें कोई दस्सा नहीं। यहाँ पर श्री हजारीलाल सराफ व्यापारमें बहुत कुशल है। यदि यह किसी व्यापारी क्षेत्रमें होता तो अल्प ही समयमें सम्पत्तिशाली हो जाता, परन्तु साथ ही एक ऐसी बात भी है जिसमें समाजके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं हो पाता।

जिनके पञ्चकल्याणक थे वह सज्जन व्यक्ति हैं। उनका नाम हलकूलालजी है। उनके चाचा वृद्ध हैं, जिनका स्वभाव प्राचीन पद्धतिका है। विद्याकी ओर उनका बिलकुल भी लक्ष्य नहीं। मैंने बहुत समझाया कि इस ओर भी ध्यान देना चाहिये, परन्तु उन्होंने टाल दिया। यहाँ पर एक लोकमणि दाऊ हैं। उनके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनसे मैंने कहा कि 'ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे यहाँ पर एक पाठशाला हो जावे, क्योंकि यह अवसर अनुकूल है। इस समय श्री जिनेन्द्र भगवान्के पञ्चकल्याणक होनेसे सब जनताके परिणाम निर्मल हैं। निर्मलताका उपयोग अवश्य ही करना चाहिये।' दाऊने हमारी बातका समर्थन किया।

देवाधिदेव श्री जिनेन्द्रदेवका पाण्डुकशिलापर अभिषेक था। पाण्डुकशिला एक ऊँची पहाड़ीपर बनाई गई थी, जिसपर कल्पित ऐरावत हाथीके साथ चढ़ते हुए हजारों नर-नारियोंकी

भीड़ बड़ी ही भली मालूम होती थी। भगवान्के अभिषेकका दृश्य देखकर साक्षात् सुमेरु पर्वतका आभास हो रहा था। जब अभिषेकके बाद भगवान्का यथोचित शृङ्गारादि किया जा चुका तब मैंने जनतासे अपील की कि—'इस समय आप लोगोंके परिणाम अत्यन्त कोमल हैं, अतः जिनका अभिषेक किया है उनके उपदेशोंका विचार करनेके लिये यहाँ एक विद्याका आयतन स्थापित होना चाहिये।' सब लोगोंने 'हाँ हाँ, ठीक है ठीक है, जरूर होना चाहिये, आदि शब्द कहकर हमारी अपील स्वीकार की, परन्तु चन्दा लिखानेका श्रीगणेश नहीं हुआ। सब लोग यथास्थान चले गये। इसके बाद राज्यगद्दी, दीक्षाकल्याणक, केवलकल्याणक और निर्वाणकल्याणकके उत्सव क्रमसे सानन्द सम्पन्न हुए। मुझे देखकर अन्तरङ्ग महती व्यथा हुई कि लोग बाह्य कार्योंमें तो कितनी उदारताके साथ व्यय करते हैं, परन्तु सम्यग्ज्ञानके प्रचारमें पैसाका नाम आते ही इधर उधर देखने लगते हैं। जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवकी मुद्राकी प्रतिष्ठासे धर्म होता है उसी प्रकार अज्ञानी जनताके हृदयसे अज्ञान-तिमिरको दूरकर उनमें सर्वज्ञ वीतराग देवके पवित्र शासनका प्रसार करना भी तो धर्म है। पर लोगोंकी दृष्टि इस ओर हो तब न। मन्दिरोंमें टाइल और सङ्गमर्मर जड़वानेमें लोग सहस्रों व्यय कर देंगे पर सौ रुपयेके शास्त्र बुलाकर विराजमान करनेमें हिचकते हैं।

इस प्रान्तमें यह पद्धति है कि आगत जनता पञ्चकल्याणक करनेवालेको तिलक दान करती है तथा पगड़ी बांधती है। यदि गजरथ करनेवाला यजमान है तो उसे सिंघई पदसे भूषित करते हैं और सब लोग सिंघईजी कहकर उनसे जुहार करते हैं। इसी समयसे लेकर वह तथा उसका समस्त परिवार आगे चलकर सिंघई शब्दसे प्रख्यात हो जाता है। अन्तमें जब यहाँ भी पञ्चकल्याणक करनेवालेको तिलकदानका अवसर आया तब

मैंने श्रीयुत् लोकमणि दाऊसे कहा कि 'इन्हें सिंघई पद दिया जावे। चूँकि सिंघई पद गजरथ चलानेवालेको ही दिया जाता था, अतः उपस्थित जनताने उसका घोर विरोध किया और कहा कि यदि यह मर्यादा तोड़ दी जावेगी तो सैकड़ों सिंघई हो जावंगे। मैंने कहा—'इस प्रथाको नहीं मिटाना चाहिये, परन्तु जब कल्याणपुरामें पञ्चकल्याणक हुए थे तब वहाँ श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी खुरईवाले, श्रीमान् सेठ ब्रजलाल चन्द्रभानु लक्ष्मीचन्द्रजी बमरानावाले, श्रीमान् सेठ टड़ैयाजी ललितपुरवाले तथा श्री चौधरी रामचन्द्रजी टीकमगढ़वाले आदि सहस्रों पञ्च उपस्थित थे। वहाँ यह निर्णय हुआ था कि यदि कोई एक मुस्त पाँच हजार विद्यादानमें दे तो उसे सिंघई पदसे भूषित करना चाहिये। यद्यपि वहाँ भी बहुतसे महानुभावोंने इसका विरोध किया था, परन्तु बहु सम्मतिसे प्रस्ताव पास हो गया था। अतः यदि हलकूलालजी पाँच हजार रुपया विद्यादानमें दें तो उन्हें यह पद दे दिया जावे। हमारी बात सुनकर सब पञ्चोंने अपना विरोध वापिस ले लिया और उक्त शर्तपर सिंघईपद देनेके लिये राजी हो गये, परन्तु हलकूलाल सहमत नहीं हुए। उनका कहना था कि हम पाँच हजार रुपये नहीं दे सकते। मैंने लोकमन दाऊसे कानमें धीरेसे कहा कि 'देखो ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, अतः आप इसे समझा देवें।' अन्तमें दाऊ उन्हें एकान्तमें ले गये। उन्होंने जिस किसी तरह तीन हजार रुपये तक देना स्वीकार किया। मैंने उपस्थित जनतासे अपील की कि आप लोग यह अच्छी तरह जानते हैं कि परवारसभामें पाँच हजार रुपया देने पर सिंघई पदवीका प्रस्ताव पास किया है। उन्होंने बारह हजार रुपया तो प्रतिष्ठामें व्यय किया है और तीन हजार रुपया विद्यादानमें दे रहे हैं तथा इनके तीन हजार रुपया देनेसे ग्रामवाले भी दो हजार रुपयेकी सहायता अवश्य

कर देवेंगे, अतः इन्हें सिंघई पदसे भूषित किया जावे। विवेकसे काम लेना चाहिये। इतने बड़े ग्राममें पाठशाला न होना लज्जाकी बात है। बहुत वाद-विवाद हुआ। प्राचीन पद्धति-वालोंने बहुत विरोध किया। पर अन्तमें दो घंटे बाद प्रस्ताव पास हो गया। उसी समय हल्कूलालजीको पञ्चोंने सिंघईपदकी पगड़ी बाँधी। इस प्रकार श्री लोकमन दाऊकी चतुराईसे शाहपुरमें एक विद्यालयकी स्थापना हो गयी। पञ्चकल्याणकका उत्सव निर्विघ्न समाप्त हो गया, पर अकस्मात् माहुटका पानी बरस जानेसे जनताको कष्ट सहना पड़ा। सागर विद्यालयका भी वार्षिक अधिवेशन हुआ था। वहाँसे सागर आगये और यथावत् धर्म-साधन करने लगे।

खतौलीमें कुन्दकुन्द विद्यालय

एक बार बरुवासागरसे खतौली गया। वहाँ पर श्रीमान् भागीरथजी भी, जो मेरे परमहितैषी बन्धु एवं प्राणीमात्रकी मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति करानेवाले थे, मिल गये। यहीं पर श्रीदीप-चन्द्रजी वर्णी भी थे। उनके साथ भी मेरा परम स्नेह था। हम तीनोंकी परस्पर घनिष्ठ मित्रता थी। एक दिन तीनों मित्र गङ्गाकी नहरपर भ्रमणके लिये गये। वहींपर सामायिक करनेके बाद यह विचार करने लगे कि यहाँ एक ऐसे विद्यालयकी स्थापना होनी चाहिए, जिससे इस प्रान्तमें संस्कृत-विद्याका प्रचार हो सके। यद्यपि यहाँ पर भाषाके जाननेवाले बहुत हैं जो कि स्वाध्यायके प्रेमी तथा तत्त्वचर्चामें निपुण हैं तथापि क्रमबद्ध अध्ययनके बिना ज्ञानका पूर्ण विकास नहीं हो पाता।

यहाँ पं० धर्मदासजी, लाला किशोरीलालजी, लाला मंगस-रामजी, लाला विश्वम्भरदासजी, लाला बाबूलालजी, लाला

पूज्य वर्णी गणेशप्रसादजी पूज्य वर्णी भागीरथजी पूज्य वर्णी दीपचंदजी

[पृ० ३०८]

खिचौड़ीमल्लजी तथा श्रीमहादेवी आदि तत्त्वविद्याके अच्छे जानकार हैं। पं० धर्मदासजी तो बहुत ही सूक्ष्मबुद्धि हैं। आपको गोम्मटसारादि ग्रन्थोंका अच्छा अभ्यास है। इनमें जो लाला किशोरीमल्लजी हैं वे बहुत ही विवेकी हैं। मैं जब खुरजा विद्यालयमें अध्ययन करता था तब आप भी वहाँ अध्ययन करनेके लिये आये थे। एक दिन आपने यह प्रतिज्ञा ली कि हम व्यापारमें सदा सत्य बोलेंगे। आप तीन भाई थे। आपके पिताजी अच्छे पुरुष थे। धनाढ्य भी थे। पिताजीने लाला किशोरीमल्लजीको आज्ञा दी कि दुकानपर बैठा करो। आज्ञानुसार आप दुकानपर बैठने लगे। जो ग्राहक आता उसे आप सत्य मूल्य ही कहते थे। परन्तु चूँकि आजकल मिथ्या व्यवहारकी बहुलता है, इसलिए ग्राहक लोगोंसे इनकी पटरी न पटे। यह कहें 'अमुक वस्त्र एक रुपया गज मिलेगा।' ग्राहक लोग वर्तमान प्रणालीके अनुसार कहें—'बारह आना गज दोगे।' यह कहें—'नहीं।' ग्राहक फिर कहें—'अच्छा साढ़े बारह आना गज दोगे।' यह कहें—नहीं।' इस प्रकार इनकी दुकानदारीका ह्रास होने लगा जब इनके पिताजीको यह बात मालूम हुई तब उन्होंने किशोरीमल्लजीकी बहुत भर्त्सना की और कहा कि 'तू बहुत नादान है। समयके अनुकूल व्यापार होता है। जब बाजारमें सभी मिथ्या भाषण करते हैं तब क्या तू हरिश्चन्द्र बनकर दुकान चला सकेगा? कुछ दिन बाद दुकानको ध्वस्त कर देगा।' लाला किशोरीमल्लजी बोले—'पिताजी! अन्तमें सत्यकी ही विजय होती है। अन्यायसे धन अर्जन करना मुझे इष्ट नहीं है। जितने दिनका जीवन है, सूखी रोटीसे भले ही पेट भर लूँगा, परन्तु अन्यायसे धनार्जन न करूँगा। किसी कविने कहा है—

'अन्यायोपार्जितं वित्तं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति॥'

यदि आपको मेरा व्यवहार इष्ट नहीं है तो आप मुझे पृथक् कर दीजिये। मेरे भाग्यमें जो होगा उसके अनुसार मेरी दशा होगी, आप चिन्ता छोड़िये।'

पिताने आवेगमें आकर इन्हें पृथक् कर दिया। यह पृथक् हो गये। इन्होंने मन्दिरमें जाकर इष्टदेवका आराधन किया और यह प्रतिज्ञा की कि एक वर्षमें इतने रुपयेका कपड़ा बेचेंगे, भाद्रमासमें व्यापार न करेंगे और किसीको उधार न देवेंगे। यह भी निश्चय किया कि हमारे नियमके अनुसार यदि कपड़ा पहले बिक गया तो फिर भाद्रमास तक सानन्द धर्मसाधन करेंगे।

आपका अटल विश्वास अल्पकालमें ही जनताके हृदयमें जम गया और आपकी दुकान प्रसिद्ध हो गई। आप प्रायः कभी नौं माह और कभी दस माह ही व्यापार करते थे। इतने ही समयमें आपको प्रतिज्ञाके अनुसार माल बिक जाता था। आप थोड़े ही वर्षोंमें धनी हो गये। आपकी दानमें भी अच्छी प्रवृत्ति थी। आपके दो बालक थे। आप किसीको उधार कपड़ा न बेचते थे।

एक बार आपने ऐसा अटपटा नियम लिया कि कपड़ा लेनेवालेको प्रथम तो हम उधार नहीं देवेंगे और यदि किसी व्यक्तिने विशेष आग्रह किया तो दो हजार रुपया तक दे देवेंगे, परन्तु वह दूसरे दिन तक दे जावेगा तो ले लेवेंगे, अन्यथा नहीं और वह भी जब तक कि रोकड़ वही चालू रहेगी, बन्द होनेके बाद न लेवेंगे। दैवयोगसे जिसने इनके यहाँसे कपड़ा उधार लिया था वह दूसरे दिन जब इनकी रोकड़ बन्द हो गई तब रुपया लाया। आपने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार रुपया नहीं लिया। यद्यपि उसने बहुत कुछ मिन्नत की, पर आपने एक न सुनी। कहनेका तात्पर्य यह है कि आप अपनी प्रतिज्ञासे च्युत नहीं हुए। फल यह हुआ कि इनकी धाक बाजारमें जम गई,

जिससे थोड़े ही दिनोंमें आपकी गणना उत्तम साहूकारोंमें होने लगी। आपको तत्त्वज्ञान भी समीचीन था। अध्यात्मविद्यासे बड़ा प्रेम था। मेरी जो अध्यात्मविद्यामें रुचि हुई, यह आपके ही सम्बन्धसे हुई। आपको द्यानतरायजीके सैकड़ों भजन आते थे।

एक दिन मैंने खतौलीमें विद्यालय स्थापित करनेकी चर्चा कुछ लोगोंके समक्ष की, तब लाला विश्वम्भरदासजी बोले कि आप चिन्ता न करिये। शास्त्रसभामें इसका प्रसंग लाइये, बातकी बातमें पाँच हजार रुपया हो जावेंगे। ऐसा ही हुआ। दूसरे दिन मैंने शास्त्रसभामें कहा—'आज कल पाश्चात्य विद्याकी ओर ही लोगोंकी दृष्टि है और जो आत्मकल्याणकी साधक संस्कृत-प्राकृत विद्या है उस ओर किसीका लक्ष्य नहीं। पाश्चात्य विद्याका अभ्यास कर हम लौकिक सुख पानेकी इच्छासे केवल धनार्जन करनेमें लग जाते हैं। पर यह भूल जाते हैं कि यह लौकिक सुख स्थायी नहीं है, नश्वर है, अनेक आकुलताओंका घर है; अतः प्राचीन विद्याकी ओर लक्ष्य देना चाहिये।'

उपस्थित जनताने यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया, जिससे दस मिनटमें ही पाँच हजार रुपयाका चन्दा भरा गया और यह निश्चय हुआ कि एक संस्कृत विद्यालय खोला जावे, जिसका नाम कुन्दकुन्द विद्यालय हो। दो दिन बाद विद्यालयका मुहूर्त होना निश्चित हुआ। बीस रुपया मासिक पर पं० मुन्शीलालजी, जो कि संस्कृतके अच्छे ज्ञाता थे, नियुक्त किये गये। अन्तमें विद्यालयका मुहूर्त हुआ, रुपया सब वसूल हो गये, एक बिल्डिंग भी विद्यालयको मिल गई। पश्चात् वहाँसे चलकर हम सागर आगये। विद्यालकी स्थापना सन् १९३५ में हुई थी। यह विद्यालय अब कालेजके रूपमें परिणत हो गया है। जिसमें लगभग छह सौ छात्र अध्ययन करते हैं और तीस अध्यापक हैं।

कुछ प्रकरण

एक बार हम और कमलापति सेठ बरायठासे आ रहे थे। करीपुरसे दो मील दूर एक कुए पर पानी पी रहे थे। पानी पीकर ज्यों ही चलने लगे, त्यों ही एक मनुष्य आया और कहने लगा कि हमें पानी पिला दीजिये। मैंने कुएसे पानी खींचकर दूसरे लोटा-में छाना। वह बोला—'महाराज! मैं मेहतर-भंगी हूँ।' मैंने कहा—'कुछ हानि नहीं, पानी ही तो पीना चाहते हो, पी लो।' सेठजी बोले—'पत्ते लाकर दोना बना लो।' मैं बोला—'यहाँ दोना नहीं बन सकता, क्योंकि यहाँ पलाशका वृक्ष नहीं है।' मैंने उस मनुष्यसे कहा—'खोबा बाँधो, हम पानी पिलाते हैं।' सेठजी बोले—'लोटा आगमें शुद्ध करना पड़ेगा।' मैंने कहा—'कुछ हानि नहीं, पानी तो पिलाने दो।' सेठजीने कहा—'पिलाइये।'

मैंने उसे पानी पिलाया। पश्चात् वह लोटा उसे ही दे दिया और सेठजीसे कहा—'चलो शुद्ध करनेकी झंझट मिटी।' सेठजी हँस गये और वह भंगी भी 'जय महाराज' कहता हुआ चला गया। जब वहाँसे चलकर सागर आये और बाईजीको सेठजीने सब व्यवस्था सुनाई तब वह हँसकर बोलीं—'इसकी ऐसी ही प्रवृत्ति है, जाने दो।' इसके बाद कुछ देर तक मेरी ही चर्चा चलती रही। इसी बीचमें बाईजीने सेठजीसे कहा कि 'यह बिना दिये कुछ लेता भी नहीं।'

एक बार सिमरामें जब यह मेरे यहाँ आया, मैं मन्दिर गई और इससे कह गई कि देखो जेठका मास है। यदि प्यास लगे तो कटोरदानमें मीठा रक्खा है, खा लेना। इसे प्यास लगी। इसने बाजारसे एक आनाकी शक्कर मगाई और शर्बत बनाकर पीने

लगा। इतनेमें मैं आई। मैंने कहा—'कटोरदानसे मीठा नहीं लिया?' वह चुप रह गया।

एक बार मैं बनारससे सागर आ रहा था, आषाढ़का माह था। पचास लंगड़ा आमोंकी एक टोकनी साथमें थी। मोगलसरायसे डाकगाड़ीमें बैठ गया। जिस डब्बामें बैठा था, उसीमें कटनी जानेवाला एक मुसलमान भी बैठ गया। उसके पास एक आमकी टोकनी थी। जब गाड़ी चली तब उसने टोकनीमेंसे एक आम निकाला और चाकूसे तराशकर खानेकी चेष्टा की। इतनेमें बम्बई जानेवाले चार मुसलमान और आ गये। उसने सबको विभाग कर आम खाये। इस तरह मिर्जापुर तक दस आम खाये होंगे। मिर्जापुरमें इलाहाबाद जानेवाले पाँच-छह मुसलमान उस डब्बामें और आ गये। फिर क्या था? आमोंका तराशना और खाना चलता रहा। इस तरह छीकी तक पचीस आम पूर्ण हो गये। इलाहाबाद जानेवाले मुसलमान तो चले गये, पर वहाँसे पाँच मुसलमान और भी आ गये। उनका भी इसी तरह कार्य चलता रहा। कहनेका तात्पर्य यह कि कटनी तक वह टोकनी पूर्ण हो गई। मैं यह सब देखकर बहुत ही विस्मित हुआ। मैं एकदम विचारमें डूब गया कि देखो इन लोगोंमें परस्पर कितना स्नेह है?

अच्छा, यह कथा तो यहीं रही। मैं कटनी उतर गया। यहाँ पर सिंघई कन्हैयालालजी बड़े धर्मशील थे। कोई भी त्यागी या पण्डित आवे तो आपके घर भोजन किये बिना नहीं जाता। आपके सभी भाई व्यापारकुशल ही नहीं, दानशूर भी थे। एक भाई 'लालाजी' नामसे प्रसिद्ध थे। बीमारीके समय पचीस हजार रुपया संस्कृत विद्यालयको दे गये। पन्द्रह हजार रुपया एक बार सब भाइयोंने इस शर्तपर जमा करा दिये कि इसका ब्याज पंडित जगन्मोहनलालजीके लिये ही दिया जावे। पाँच हजार

रुपया एकबार कन्याशालाको दे दिये और भी हजारों रुपयोंका दान आप लोगोंने किया, जो मुझे मालूम नहीं।

उनके यहाँ आनन्दसे भोजन किया। आमकी टोकनीमेंसे बीस आम छात्रोंको दे दिये। शेष लेकर सागर चला। शाहपुरकी स्टेशन (गनेशगंज) पर पहुँचा। वहाँपर गाड़ी पन्द्रह मिनट ठहर गई। बगलमें काम करनेवाले नौकरोंकी गाड़ी थी। हमारी गाड़ी ज्यों ही खड़ी हुई, त्यों ही सामनेकी गाड़ीसे निकलकर कितने ही छोटे छोटे बच्चे भीख मांगने लगे। उन दिनों स्टेशनपर आम बहुत बिकते थे। कई लोग चूस चूसकर उनकी गोई बाहर फेंकते जाते थे। माँगनेवाले माँगनेसे नहीं चूकते थे। कई दयालु आदमी बालकोंको आम भी दे देते थे। मैंने भी टोकरीसे दो आम फेंक दिये, जिन्हें पानेके लिये लड़के आपसमें झगड़ने लगे। अन्तमें मैंने एक बड़े आदमीको बुलाया और कहा कि तुम आम बाँट दो, हम देते जाते हैं। कहनेका अभिप्राय यह कि मैंने तीस ही आम बाँट दिये, क्योंकि मेरे चित्तमें तो मुसलमानकी चेष्टा भरी थी। साथ ही मैं भी इस प्रकृतिका हूँ कि जो मनमें आवे उसे करनेमें विलम्ब न करना।

वहाँसे चलकर सागर आ गया। जब बाईजीसे प्रणाम किया तो उन्होंने कहा—'बेटा! बनारससे लँगड़ा आम नहीं लाये?' मैंने कहा—'बाईजी! लाया तो था, परन्तु शाहपुरमें बाँट आया।' उन्होंने कहा—'अच्छा किया। परन्तु एक बात मेरी सुनो, दान करना उत्तम है। परन्तु शक्तिको उल्लंघन कर दान करनेकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। प्रथम तो सबसे उत्तम दान यह है कि हम अपने आपको दान करनेवाला न मानें। अनादि कालसे हमने अपनेको नहीं जाना। केवल परको अपना मान यों ही अनन्तकाल बिता दिया और चतुर्गतिरूप संसारमें कर्मानुकूल पर्याय पाकर अनेक संकट सहे। संकटसे मेरा तात्पर्य है कि असंख्यात विकल्प

कषायोंके कर्ता हुए, क्योंकि कषायके विकल्प ही तो संकटके कारण हैं। जितने विकल्प कषायोंके हैं उतने ही प्रकारकी आकुलता होती है और आकुलता ही दुःखकी पर्याय है। कषाय वस्तु अन्य है और आकुलता वस्तु अन्य है। यद्यपि सामान्यरूपसे आकुलता कषायसे अतिरिक्त विभिन्न नहीं मालूम होती, तो भी सूक्ष्म विचारसे आकुलता और कषायमें कार्यकारणभाव प्रतीत होता है। अतः यदि सत्य सुखकी इच्छा है तो यह कर्तृत्वबुद्धि छोड़ो कि मैं दाता हूँ। यह निश्चित है, जबतक अहंकारता न आवेगी तबतक बन्धन ही में फँसे रहोगे। जब कि यह सिद्धांत है कि सब द्रव्य पृथक् पृथक् हैं। कोई किसीके आधीन नहीं तब कर्तृत्वका अभिमान करना व्यर्थ है।' मैं बाईजीकी बात सुनकर चुप रह गया।

शिखरजीकी यात्रा और बाईजीका व्रत ग्रहण

प्रातःकालका समय था। माघमासमें कटरा बाजारके मन्दिरमें आनन्दसे पूजन हो रहा था। सब लोग प्रसन्न चित्त थे। सबके मुखसे श्री गिरिराजकी वन्दनाके वचन निकल रहे थे। हमारा चित्त भी भीतरसे गिरिराजकी वन्दनाके लिये उमंग करने लगा और यह विचार हुआ कि गिरिराजकी वन्दनाको अवश्य जाना। मन्दिरसे धर्मशालामें आए और भोजन शीघ्रता से करने लगे। भोजन करनेके अनन्तर श्री बाईजीने कहा कि 'इतनी शीघ्रता क्यों?' 'भोजनमें शीघ्रता करना अच्छा नहीं।' मैंने कहा—'बाईजी! कल कटरासे पच्चीस मनुष्य श्री गिरिराजजी जी जा रहे हैं। मेरा भी मन श्री गिरिराजजीकी यात्राके लिये व्यग्र हो रहा है।' बाईजीने कहा—'व्यग्रताकी आवश्यकता नहीं, हम भी चलेंगे। मुलाबाई भी चलेगी।'

दूसरे दिन हम सब यात्राके लिये स्टेशनसे गयाका टिकट लेकर चल दिये। सागरसे कटनी पहुँचे और यहाँसे डाकगाड़ी में बैठकर प्रातःकाल गया पहुँच गये। वहाँ श्रीजानकीदास कन्हैयालालके यहाँ भोजनकर दो बजेकी गाड़ीसे बैठकर शामको श्री पार्श्वनाथ स्टेशन पर पहुँच गये और गिरिराजके दूरसे ही दर्शन कर धर्मशालामें ठहर गये। प्रातःकाल श्री पार्श्वप्रभुकी पूजाकर मध्यान्ह बाद मोटरमें बैठकर श्री तेरापन्थी कोठीमें जा पहुँचे।

यहाँ पर श्री पं० पन्नालालजी मैनेजरने सब प्रकारकी सुविधा कर दी। आप ही ऐसे मैनेजर तेरापन्थी कोठीको मिले कि जिनके द्वारा वह स्वर्ग बन गई। विशाल सरस्वतीभवन तथा मन्दिरों-की सुन्दरता देख चित्त प्रसन्न हो जाता है। श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमा तो चित्तको शान्त करनेमें अद्वितीय निमित्त है। यद्यपि उपादानमें कार्य होता है, परन्तु निमित्त भी कोई वस्तु है। मोक्षका कारण रत्नत्रय की पूर्णता है, परन्तु कर्मभूमि, चरम शरीर आदि भी सहकारी कारण है।

सायंकालका समय था। हम सब लोग कोठीके बाहर चबू-तरा पर गये। वहीं पर सामायिकादि क्रिया कर तत्त्वचर्चा करने लगे। जिस क्षेत्रसे अनन्तानन्त चौबीसी मोक्ष प्राप्त कर चुकीं वहाँकी पृथिवीका स्पर्श पुण्यात्मा जीवको ही प्राप्त हो सकता है। रह रह कर यही भाव होता था कि हे प्रभो! कब ऐसा सुअव-सर आवे कि हम लोग भी दैगम्बरी दीक्षा अवलम्बनकर इस दुःखमय जगत्से मुक्त हों।

बाईजीका स्वास्थ्य श्वास रोगसे व्यथित था, अतः उन्होंने कहा—'भैया आज ही यात्राके लिये चलना है, इसलिए यहाँसे जल्दी स्थान पर चलो और मार्गका जो परिश्रम है उसे दूर कर-नेके लिये शीघ्र आरामसे सो जाओ। पश्चात् तीन बजे रात्रिसे

यात्राके लिये चलेंगे।' आज्ञा प्रमाण स्थान पर आये और सो गये। दो बजे निद्रा भंग हुई। पश्चात् शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर एक डोली मँगाई। बाईजीको उसमें बैठाकर हम सब श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी जय बोलते हुए गिरिराजकी वन्दनाके लिये चल पड़े। गन्धर्व नालापर पहुँचकर सामायिक क्रिया की। वहाँसे चलकर सात बजे श्रीकुन्थनुनाथ स्वामीकी वन्दना की। वहाँसे सब टोंकोंकी यात्रा करते हुए दस बजे श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी टोंक पर पहुँच गये। आनन्दसे श्रीपार्श्वनाथ स्वामी और गिरिराज की पूजा की। चित्त प्रसन्नतासे भर गया। बाईजी तो आनन्दमें इतनी निमग्न हुईं कि पुलकित वदन हो उठीं, और गद्गद् स्वरमें हमसे कहने लगीं कि—'भैया! अब हमारी पर्याय तीन माहकी है, अतः तुम हमें दूसरी प्रतिमाके व्रत दो।' मैंने कहा—'बाई-जी! मैं तो आपका बालक हूँ, आपने चालीस वर्ष मुझे बालक-वत् पुष्ट किया, मेरे साथ आपने जो उपकार किया है उसे आजन्म नहीं विस्मरण कर सकता, आपकी सहायतासे ही मुझे दो अक्षरोंका बोध हुआ, अथवा बोध होना उतना उपकार नहीं जितना उपकार आपका समागम पाकर कषाय मन्द होनेसे हुआ है, आपकी शांतिसे मेरी क्रूरता चली गई और मेरी गणना मनु-ष्योंमें होने लगी। यदि आपका समागम न होता तो न जाने मेरी क्या दशा होती? मैंने द्रव्यसम्बन्धी व्यग्रताका कभी अनु-भव नहीं किया, दान देनेमें मुझे संकोच नहीं हुआ, वस्त्रादिकोंके व्यवहारमें कभी कृपणता न की, तीर्थयात्रादि करनेका पुष्कल अवसर आया.....इत्यादि भूरिशः आपके उपकार मेरे ऊपर हैं। आप जिस निरपेक्षवृत्तिसे व्रतको पालती हैं मैं उसे कहनेमें असमर्थ हूँ। और जब कि मैं आपको गुरु मानता हूँ तब आपको व्रत दूँ यह कैसे सम्भव हो सकता है?' बाईजीने कहा—'बेटा! मैंने जो तुम्हारा पोषण किया है वह केवल मेरे मोहका कार्य है।

फिर भी मेरा यह भाव था कि तुझे साक्षर देखूँ । तूने पढ़नेमें परिश्रम नहीं किया। बहुतसे कार्य प्रारम्भ कर दिये। परन्तु उपयोग स्थिर न किया। यदि एक कामका आरम्भ करता तो बहुत ही यश पाता। परन्तु जो भवितव्य होता है वह दुर्निवार है। तूने सप्तमी प्रतिमा ले ली, यह भी मेरी अनुमतिके बिना ले ली, केवल ब्रह्मचर्य पालनेसे प्रतिमा नहीं हो जाती, १२ व्रतोंका निरतिचार पालन भी साथमें करना चाहिए, तुम्हारी शक्तिको मैं जानती हूँ, परन्तु अब क्या ? जो किया सो अच्छा किया, अब हम तो तीन मासमें चले जावेंगे, तुम आनन्दसे व्रत पालना, भोजनका लालच न करना, वेगमें आकर त्याग न करना, चरणानुयोगकी अवहेलना न करना तथा आयके अनुकूल व्यय करना। अपना द्रव्य त्यागकर परकी आशा न करना, 'जो न लीना काहुका तो दीना कोटि हजार।' दूसरेसे लेकर दान करनेकी पद्धति अच्छी नहीं। सबसे प्रेम रखना, जो तुम्हारा दुश्मन भी हो उसे मित्र समझना, निरन्तर स्वाध्याय करना, आलस्य न करना, यथासमय सामायिकादि करना, गल्पवादके रसिक न बनना, द्रव्यका सदुपयोग इसीमें है कि यद्वा तद्वा व्यय नहीं करना, हमारे साथ जैसा क्रोध करते थे वैसा अन्यके साथ न करना, सबका विश्वास न करना, शास्त्रोंकी विनय करना, चाहे लिखित पुस्तक हो, चाहे मुद्रित। उच्च स्थानपर रखकर पढ़ना, जो गजट आवें उन्हें रद्दीमें न डालना, यदि उनकी रक्षा न कर सको तो न मंगाना, हाथकी पुस्तकोंको सुरक्षित रखना और जो नवीन पुस्तक अपूर्व मुद्रित हो उसे लिखवाकर सरस्वतीभवनमें रखना।

यह पञ्चम काल है। कुछ द्रव्य भी निजका रखना। निजका त्याग कर परकी आशा रखना महती लज्जाकी बात है अपना दे देना और परसे मांगनेकी अभिलाषा करना घोर निन्द्य कार्य है। योग्य पात्रको दान देना। विवेक शून्य दानकी कोई महिमा

नहीं। लोक प्रतिष्ठाके लिये धार्मिक कार्य करना ज्ञानी जनोंका कार्य नहीं। ज्ञानी जन जो कार्य करते हैं वह अपने परिणामोंकी जातिको देखकर करते हैं। शास्त्रमें यद्यपि मुनि-श्रावक धर्मका पूर्ण विवेचन है तथापि जो शक्ति अपनी हो उसीके अनुसार त्याग करना। व्याख्यान सुन कर या शास्त्र पढ़ कर आवेग वश शक्तिके बाहर त्याग न कर बैठना। गल्पवादमें समय न खोना। प्रकरणके अनुकूल शास्त्रकी व्याख्या करना। 'कहींकी ईंट कहींका रोरा भानुमतीने कुनमा जोरा' की कहावत चरितार्थ न करना। श्रोताओंकी योग्यता देखकर शास्त्र वाचना। समयकी अवहेलना न करना। निश्चयको पुष्ट कर व्यवहारका उच्छेद न करना, क्योंकि यह दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। 'निरपेक्षो नयो मिथ्या' यह आचार्योंका वचन है। यदि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयमें परस्पर सापेक्षता नहीं है तो उनके द्वारा अर्थक्रियाकी सिद्धि नहीं हो सकती। इनके सिवाय एक यह बात भी हमारी याद रखना कि जिस कालमें जो काम करो, सब तरफसे उपयोग खींच कर चित्त उसीमें लगा दो। जिस समय श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजामें उपयोग लगा हो उस समय स्वाध्यायकी चिन्ता न करो और स्वाध्यायके कालमें पूजनका विकल्प न करो। जो बात न आती हो उसका उत्तर न दो, यही उत्तर दो कि हम नहीं जानते। जिसको तुम समझ गये कि गलत हम कह रहे थे, शीघ्र कह दो कि हम वह बात मिथ्या कह रहे थे। प्रतिष्ठाके लिये उसकी पुष्टि मत करो। जो तत्त्व तुम्हें अभ्रान्त आता है वह दूसरेसे पूछ कर उसे नीचा दिखानेकी चेष्टा मत करो। विशेष क्या कहें? जिसमें आत्माका कल्याण हो वही कार्य करना। भोजनके समय जो थालीमें आवे उसे सन्तोष पूर्वक खाओ। कोई विकल्प न करो। व्रतकी रक्षा करनेके लिये रसना इन्द्रिय पर विजय रखना। विशेष कुछ नहीं।'......

इतना कहकर बाईजीने श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी टोंकपर द्वितीय प्रतिमाके व्रत लिये और यह भी व्रत लिया कि जिस समय मेरी समाधि होगी उस समय एक वस्त्र रखकर सबका त्याग कर दूँगी—क्षुल्लिका वेषमें ही प्राण विसर्जन करूँगी। यदि तीन मास जीवित रही तो सर्व परिग्रहका त्याग कर नवमी प्रतिमाका आचरण करूँगी। हे प्रभो पार्श्वनाथ! तेरी निर्वाण भूमिपर प्रतिज्ञा लेती हूँ, इसे आजीवन निर्वाह करूँगी। कितने ही कष्ट क्यों न आवें सबको सहन करूँगी। औषधका सेवन मैंने आज तक नहीं किया। अब केवल सूखी वनस्पतिको छोड़कर अन्य औषध सेवनका त्याग करती हूँ। वैसे तो मैंने १८ वर्षकी अवस्थासे ही आज तक एक बार भोजन किया है, क्योंकि मेरी १८ वर्षमें वैधव्य अवस्था हो चुकी थी। तभीसे मेरे एक बार भोजनका नियम था। अब आपके समक्ष विधिपूर्वक उसका नियम लेती हूँ। मेरी यह अन्तिम यात्रा है। हे प्रभो! आज तक मेरा जीव संसारमें रुला इसका मूल कारण आत्मीय-अज्ञान था, परन्तु आज तेरे चरणाम्बुज प्रसादसे मेरा मन स्वपर ज्ञानमें समर्थ हुआ। अब मुझे विश्वास हो गया कि मैं अपनी संसार-अटवीको अवश्य छेदूँगी। मेरे ऊपर अनन्त संसारका जो भार था वह आज तेरे प्रसादसे उतर गया।

श्रीबाईजीकी आत्मकथा

हे प्रभो! मैं एक ऐसे कुटुम्बमें उत्पन्न हुई जो अत्यन्त धार्मिक था। मेरे पिता मौजीलाल एक व्यापारी थे। शिकोहाबादमें उनकी दुकान थी। वह जो कुछ उपार्जन करते उसका तीन भाग बुन्देलखण्डसे आनेवाले गरीब जैनोंके लिए दे देते थे। उनकी आय चार हजार रुपया वार्षिक थी। एक हजार रुपया गृहस्थीके कार्यमें खर्च होता था।

एक बार श्री गिरिराजकी यात्राके लिए बहुतसे जैनी जा रहे थे। उन्होंने श्री मौजीलालजीसे कहा कि 'आप भी चलिये।' आपने उत्तर दिया कि 'मेरे पास चार हजार रुपया वार्षिककी आय है, तीन हजार रुपया मैं अपने प्रान्तके गरीब लोगोंको दे देता हूँ और एक हजार रुपया कुटुम्बके पालनमें व्यय हो जाता है इससे नहीं जा सकता। श्री भगवान्‌की यही आज्ञा है कि जीवोंपर दया करना। उसी सिद्धान्त की मेरे दृढ़ श्रद्धा है जिस दिन पुष्कल द्रव्य हो जावेगा उस दिन यात्रा कर आऊँगा।'

'मेरे पिताका मेरे ऊपर बहुत स्नेह था। मेरी शादी सिमरा ग्रामके श्रीयुत सिं० भैयालालजीके साथ हुई थी। जब मेरी अवस्था अठारह वर्षकी थी तब मेरे पति आदि गिरनारकी यात्राको गये। पावागढ़में मेरे पतिका स्वर्गवास हो गया, मैं उनके वियोगमें बहुत खिन्न हुई, सब कुछ भूल गई। एक दिन तो यहाँतक विचार आया कि संसारमें जीवन व्यर्थ है। अब मर जाना ही दुःखसे छूटनेका उपाय है। ऐसा विचार कर एक कुएके ऊपर गई और विचार किया कि इसीमें गिरकर मर जाना श्रेष्ठ है। परन्तु उसी क्षण मनमें विचार आया कि यदि मरण न हुआ तो अपयश होगा और यदि कोई अंग भंग हो गया तो आजन्म उसका क्लेश भोगना पड़ेगा, अतः कुएसे पराङ्मुख होकर डेरापर आ गई और धर्मशालामें जो मन्दिर था उसीमें जाकर श्री भगवान्‌से प्रार्थना करने लगी कि—'हे प्रभो! एक तो आप हैं जिनके स्मरणसे जीवका अनन्त संसार छूट जाता है और एक मैं हूँ जो अपमृत्यु कर नरक मार्गको सरल कर रही हूँ। हे प्रभो! यदि आज मर जाती तो न जाने किस गतिमें जाती? आज मैं सकुशल लौट आई यह आपकी ही अनुकम्पा है। संसार में अनेक पुरुष परलोक चले गये। उनसे मुझे कोई दुःख नहीं हुआ पर आज पति वियोगके कारण असह्य वेदना हो

रही है इसका कारण मेरी उनमें ममता बुद्धि थी। अर्थात् ये मेरे हैं और मैं इनकी हूँ यही भाव दुःखका कारण था। जब तत्त्वदृष्टिसे देखती हूँ तब ममता बुद्धिका कारण भी अहम्बुद्धि है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होने लगता है। अर्थात् 'अहमस्मि'—जब यह बुद्धि रहती है कि मैं हूँ तभी परमें 'यह मेरा है' यह बुद्धि होती है। इस प्रकार वास्तवमें अहम्बुद्धि ही दुःखका कारण है। हे भगवन्! आज तेरे समक्ष यह प्रतिज्ञा करती हूं कि न मेरा कोई है और न मैं किसीकी हूँ। यह जो शरीर दीखता है वह भी मेरा नहीं है, क्योंकि दृश्यमान शरीर पुद्गलका पिण्ड है। तब मेरा कौनसा अंश उसमें है जिसके कि साथ मैं नाता जोड़ूँ? आज मेरी भ्रान्ति दूर हुई। जो मैंने पाप किया उसका आपके समक्ष प्रायश्चित लेती हूँ। वह यह कि आजन्म एक बार भोजन करूँगी, भोजन के बाद दो बार पानी पीऊँगी, अमर्यादित वस्तुका भक्षण न करूँगी, आपके पूजाके बिना भोजन न करूँगी, रजोदर्शनके समय भोजन न करूँगी, यदि विशेष बाधा हुई तो जलपान कर लूँगी, यदि उससे भी सन्तोष न हुआ तो रसोंका त्यागकर नीरस आहार ले लूँगी, प्रतिदिन शास्त्रका स्वाध्याय करूँगी, मेरे पतिकी जो सम्पत्ति है उसे धर्म कार्यमें व्यय करूँगी, अष्टमी चतुर्दशीका उपवास करूँगी, यदि शक्ति हीन हो जावेगी तो एक बार नीरस भोजन करूँगी, केवल चार रस भोजनमें रखूँगी, एक दिनमें तीनका ही उपयोग करूँगी।'

....इस प्रकार आलोचना कर डेरामें मैं आ गई और सासको, जो कि पुत्रके विरहमें बहुत ही खिन्न थी सम्बोधा—माताराम! जो होना था वह हुआ, अब खेद करनेसे क्या लाभ? आपकी सेवा मैं करूंगी, आप सानन्द धर्मसाधन कीजिये। यदि आप खेद करेंगी तो मैं सुतरां खिन्न होऊँगी, अतः आप मुझे ही पुत्र समझिये। मेलाके लोग इस प्रकार मेरी बात सुनकर प्रसन्न हुए।

पावागढ़से गिरनार जी गये और वहाँसे जो तीर्थमार्गमें मिले सबकी यात्रा करते हुए सिमरा आ गये। फिर क्या था? सब कुटुम्बी आ आकर मुझे पति वियोगके दुःखका स्मरण कराने लगे। मैंने सबसे सान्त्वना पूर्वक निवेदन किया कि जो होना था सो तो हो गया। अब आप लोग उनका स्मरणकर व्यर्थ खिन्न मत हूजिये। खिन्नताका पात्र तो मैं हूँ, परन्तु मैंने तो यह विचारकर सन्तोष कर लिया कि पर जन्ममें जो कुछ पाप कर्म मैंने किये थे यह उन्हींका फल है। परमार्थसे मेरे पुण्य कर्मका उदय है। यदि उनका समागम रहता तो निरन्तर आयु विषय भोगोंमें जाती, अभक्ष्य भक्षण करती और दैवयोगसे यदि सन्तान हो जाती तो निरन्तर उसके मोहमें पर्याय बीत जाती। आत्मकल्याणसे वञ्चित रहती, जिस संयमके अर्थ सत्समागम और मोह मन्द होनेकी महती आवश्यकता है तथा सबसे कठिन ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना है वह व्रत मेरे पतिके वियोगसे अनायास हो गया।

जिस परिग्रहके त्यागके लिए अच्छे-अच्छे जीव तरसते हैं और मरते-मरते उससे विमुक्त नहीं हो पाते, पतिके वियोगसे वह व्रत मेरे सहजमें हो गया। मैंने नियम लिया है कि जो सम्पत्ति मेरे पास है उससे अधिक नहीं रखूँगी तथा यह भी नियम किया कि मेरे पतिकी जो पचास हजार रुपयाकी साहुकारी है उसमें सौ रुपया तक जिन किसानोंके ऊपर है वह सब मैं छोड़ती हूँ तथा सौ रुपयासे आगे जिनके ऊपर है उनका ब्याज छोड़ती हूँ। वे अपनी रकम बिना ब्याजके अदा कर सकते हैं। आजसे एक नियम यह भी लेती हूँ कि जो कुछ रुपया किसानोंसे आवेगा उसे संग्रह न करूँगी, धर्मकार्य और भोजनमें व्यय कर दूँगी। आप लोगोंसे मेरी सादर प्रार्थना है कि आजसे यदि आप लोग मेरे यहाँ आवें तो दोपहर बाद आवें, प्रातःकालका समय मैं

धर्मकार्यमें लगाऊँगी।'''कृषक महाशय मेरी इस प्रवृत्तिसे बहुत प्रसन्न हुए।

इधर राज्यमें यह वार्ता फैल गई कि सिमरावाली सिंघैनका पति गुजर गया है, अतः उसका धन राज्यमें लेना चाहिये और उसकी परवरिशके लिये तीस रुपया मासिक देना चाहिये। किन्तु जब राज दरबारमें यह सुना गया कि वह तो धर्ममय जीवन बिता रही है तब राज्यसे तहसीलदारको परवाना आया कि उसकी रक्षा की जावे, उसका धन उसीको दिया जावे और जो किसान न दे वह राज्यसे वसूलकर उसको दिया जावे।'''इस प्रकार धनकी रक्षा अनायास हो गई।

इसके बाद मैंने सिमराके मन्दिरमें सङ्गमर्मरकी वेदी लगवाई और उनकी प्रतिष्ठा बड़े समारोहके साथ करवाई। दो हजार मनुष्योंका समारोह हुआ, तीन दिन पंक्ति भोजन हुआ। दूसरे वर्ष शिखरजीकी यात्रा की। इस प्रकार आनन्दसे धर्म ध्यानमें समय बीतने लगा। एक चतुर्मासमें श्रीयुत मोहनलाल क्षुल्लकका समागम रहा। प्रति दिन दस या पन्द्रह यात्री आने लगे, यथाशक्ति उनका आदर करती थी।

इसी बीचमें श्री गणेशप्रसाद मास्टर जतारासे आया। उसके साथमें पं० कड़ोरेलाल भायजी तथा पं० मोतीलालजी वर्णी भी थे। उस समय गणेशप्रसादकी उमर बीस वर्षकी होगी। उसको देखकर मेरा उसमें पुत्रवत् स्नेह हो गया। मेरे स्तनसे दुग्ध धारा बह निकली। मुझे आश्चर्य हुआ, ऐसा लगने लगा मानो जन्मान्तर का यह मेरा पुत्र ही है। उस दिनसे मैं उसे पुत्रवत् पालने लगी। वह अत्यन्त सरल प्रकृतिका था। मैंने उसी दिन दृढ़ संकल्पकर लिया कि जो कुछ मेरे पास है वह सब इसीका है और अपने उस संकल्पके अनुसार मैंने उसका पालन किया। उसने छाँछ माँगी, मैंने रबड़ी दी। यद्यपि इसकी प्रकृति सरल थी

तो भी बीचमें इसे क्रोध आ जाता था, परन्तु मैं सहन करती गई, क्योंकि एक बार इसे पुत्रवत् मान चुकी थी।

एक दिनकी बात है कि मैं आंख कमजोर होनेसे उसमें मोती का अंजन लगा रही थी। गणेशप्रसादने कहा—'माँ! मैं भी लगाता हूँ।' मैंने कहा—'बेटा तेरे योग्य नहीं।' परंतु वह नहीं माना। लगानेसे उसकी आँखमें कुछ पीड़ा देने लगा, आँख आँसुओंसे भर गई और गुस्सेमें आकर उसने शीशी फोड़ डाली, सोलह रुपयाका नुकसान हुआ। मैंने कहा—'बेटा! नुकसान किसका हुआ? फिर दूसरा शीशी मंगाओ।'

एक बात इसमें सबसे उत्तम यह थी कि दुखी आदमीको देखकर उसके उपकारकी चेष्टा करनेमें नहीं चूकता था। यदि इसके पहिननेका भी वस्त्र होता और किसीको आवश्यकता होती तो यह दे देता था। एक बार यह शिखरजीमें प्रातःकाल शौचादि क्रियाको गया था, मार्गमें एक बुढ़िया ठण्डसे कप रही थी। यह जो चद्दर ओढ़े था उसे दे आया और काँपता काँपता धर्मशाला में आया। मैंने कहा—'चद्दर कहाँ है?' बोला—'एक बुढ़ियाको दे आया हूँ।'

एक बार इसको मैंने छह सौ रुपयेकी हीराकी अँगूठी बनवा दी। इसने अपने गुरु अम्बादास शास्त्रीको दे दी और मुझसे छह मास तक नहीं कहा। भय भी करता था। अन्तमें मैंने जब जोर देकर कहा कि अंगूठी कहाँ है? तब बोला वह तो मैंने अष्टसहस्री पूर्ण होनेकी खुशीमें शास्त्रीजीको दे दी....इस तरह मेरी जो आय होती थी वह प्राय: इसीके खर्चमें जाती थी।

कुछ दिनके बाद मैं सिमरा छोड़कर बरुआसागर आ गई, किसानोंके ऊपर जो कर्ज था सब छोड़ दिया और मेरे रहनेका जो मकान था वह मन्दिरको दे दिया। केवल दस हजारकी सम्पत्ति लेकर सिमरासे बरुआसागर आ गई और सर्राफ मूल-

चन्द्रजीके यहाँ रहने लगी। वे सौ रुपया मासिक व्याज उपार्जन कर मुझे देने लगे।

कुछ दिनके बाद सागर आगई और सि० बालचन्द्रजी सवालनवीसके मकानमें रहने लगी। आनन्दसे दिन बीते। यहाँ पर सिंघई मौजीलालजी बड़े धर्मात्मा पुरुष थे। वह निरन्तर मुझे शास्त्र सुनाने लगे। कटरामें प्रायः गोलापूर्व समाजके घर हैं। प्रायः सभी धार्मिक हैं। यहाँ पर स्त्रीसमाजका मेरे साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। यहाँ अधिकांश घरोंमें शुद्ध भोजनकी प्रक्रिया है। मैं जिस मकानमें रहती थी उसीमें कुन्दनलाल घी-वाले भी रहते थे, जो एक विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इस प्रकार मेरा तीस वर्षका काल सागरमें आनन्दसे बीता। अन्तमें कटरा संघके साथ यह मेरी अन्तिम यात्रा है। मेरा अधिकांश जीवन धर्मध्यानमें ही गया। मेरी श्रद्धा जैनधर्ममें ही आजन्म-से रही। पर्याय भरमें मैंने कभी कुदेवका सेवन नहीं किया। केवल इस बालकके साथ मेरा स्नेह हो गया। सो उसमें भी मेरा यही अभिप्राय रहा कि यह मनुष्य हो जावे और इसके द्वारा जीवोंका कल्याण हो। मेरा भाव यह कभी नहीं रहा कि वृद्धा-वस्थामें यह मेरी सेवा करेगा। अस्तु, मेरा कर्तव्य था, अतः उसका पालन किया।

हे प्रभो! यह मेरी आत्मकथा है जो कि आपके ज्ञानमें यद्यपि प्रतिभासित है तथापि मैंने निवेदन कर दी, क्योंकि आपके स्मरणसे कल्याणका मार्ग सुलभ हो जाता है, ऐसा मेरा विश्वास है।...इत्यादि आलोचना कर बाईजीने व्रत ग्रहण किया फिर वहाँसे चलकर हम सब तेरापन्थी कोठीमें आगये।

यहाँ पर पं० पन्नालालजीने कहा कि 'बाईजीका स्वास्थ्य अच्छा नहीं, अतः यहीं पर रह जाओ। हम सब उनकी वैया-वृत्त्य करेंगे।' परन्तु बाईजीने कहा—'नहीं, यद्यपि स्थान उत्तम

है, परन्तु यहाँ सर्व साधन नहीं। अतः मैं जाऊँगी। वहाँ ही सर्व साधनकी योग्यता है।'

दो दिन रहकर गया आये। यहाँ पर श्री बाबू कन्हैयालालजीने बहुत आग्रह किया, अतः दो दिन यहाँ रहना पड़ा। श्री बाईजीका निमन्त्रण बाबू कन्हैयालालजीके यहाँ था। उनकी धर्मपत्नीने बाईजीका सम्यक् प्रकारसे स्वागत किया। बाईजीकी चेष्टा देख कर उसे एकदम भाव हो गया कि अब बाईजीका जीवन थोड़े दिनका है। उसने एकान्तमें मुझे बुलाकर कहा कि 'वर्णीजी! मैं आपको बड़ा मानती हूँ, परन्तु एक बात आपके हितकी कहती हूँ। वह यह कि जब तक बाईजीका स्वास्थ्य अच्छा न हो उन्हें छोड़कर कहीं नहीं जाना, अन्यथा आजन्म आपको खेद रहेगा। मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की।

वहाँसे कटनी आये। श्वास रोग बाईजीको दिन-दिन त्रास देने लगा। कटनीमें मन्दिरोंके दर्शनकर सागरके लिये रवाना हो गये और सागर आकर यथास्थान धर्मशालामें रहने लगे।

श्रीबाईजीका समाधिमरण

बाईजीका स्वास्थ्य प्रतिदिन शिथिल होने लगा। मैंने बाईजीसे आग्रह किया कि आपकी अन्तर्व्यवस्था जाननेके लिये डाक्टरसे आपका फोटो (एक्सरा) उतरवा लिया जावे। बाईजीने स्वीकार नहीं किया। एक दिन मैं और वर्णी मोतीलालजी बैठे थे। बाईजीने कहा 'भैया! मैं शिखरजी में प्रतिज्ञा कर आई हूँ कि कोई भी सचित्त पदार्थ नहीं खाऊँगी। फल आदि चाहे सचित्त हों चाहे अचित्त हों, नहीं खाऊँगी। दवाई में कोई रस नहीं खाऊँगी। गेहूँ, दलिया घी और नमकको छोड़कर कुछ न खाऊँगी। दवाईमें अलसी अजवाइन और हर्र छोड़कर अन्य कुछ न खाऊँगी।'

उसी समय उन्होंने शरीर पर जो आभूषण थे उतार दिये, बाल कटवा दिये, एक बार भोजन और एक बार पानी पीनेका नियम कर लिया। प्रातःकाल मन्दिर जाना, वहाँसे आकर शास्त्र स्वाध्याय करना, पश्चात् दस बजे एक छटाक दलियाका भोजन करना, शामको चार बजे पानी पीना और दिन भर स्वाध्याय करना यही उनका कार्य था। यदि कोई अन्य कथा करता तो वे उसे स्पष्ट आदेश देतीं कि बाहर चले जाओ।

पन्द्रह दिन बाद जब मन्दिर जानेकी शक्ति न रही तक हमने एक ठेला बनवा लिया, उसीमें उनको मन्दिर ले जाते थे। पन्द्रह दिन बाद वह भी छूट गया, कहने लगीं कि हमें जानेमें कष्ट होता है, अतः यहींसे पूजा कर लिया करेंगे। हम प्रातःकाल मन्दिरसे अष्ट द्रव्य लाते थे और बाईजी एक चौकीपर बैठे बैठे पूजन पाठ करती थीं। मैं ९ बजे दलिया बनाता था और बाईजी दस बजे भोजन करती थीं। एक मास बाद आध छटाक भोजन रह गया, फिर भी उनकी श्रवणशक्ति ज्योंकी त्यों थी।

श्वास रोगके कारण बाईजी लेट नहीं सकती थीं, केवल एक तकियाके सहारे चौबीस घण्टा बैठी रहती थीं। कभी मैं, कभी मुलाबाई, कभी वर्णी मोतीलालजी, कभी पं० दयाचन्द्रजी और कभी लोकमणि दाउ शाहपुर निरन्तर बाईजीको धर्मशास्त्र सुनाते रहते थे। बाईजीको कोई व्यग्रता न थी। उन्होंने कभी भी रोग वश 'हाय हाय' या 'हे प्रभो क्या करें' या 'जल्दी मरण आ जाओ' या कोई ऐसी औषधि मिल जावे जिससे मैं शीघ्र ही नीरोग हो जाऊँ' ऐसे शब्द उच्चारण नहीं किये। यदि कोई आता और पूछता कि 'बाईजी ! कैसी तबियत है ?' तो बाईजी यही उत्तर देतीं कि 'यह पूछनेकी अपेक्षा आपको जो पाठ आता हो सुनाओ, व्यर्थ बात मत करो।'

एक दिन मैं एक वैद्यको लाया जो अत्यन्त प्रसिद्ध था। वह 'बाई जीका हाथ देखकर बोला कि दवाई खानेसे अच्छा हो सकता है।' बाईजीने कहा–'कब तक अच्छा होगा ?' उसने कहा—'यह हम नहीं जानते।' बाईजीने कहा—'तो महाराज जाइये और अपनी फीस ले जाइये, मुझे न कोई रोग है और न कोई उपचार चाहती हूँ। जो शरीर पाया वह अवश्य बीतेगा, पचहत्तर वर्षकी आयु बीत गई, अब तो अवश्य जावेगी। इसके रखनेकी न इच्छा है और न हमारी राखी रह सकती है। जो चीज उत्पन्न होती है उसका नाश अवश्यम्भावी है। खेद इस बातका है कि यह नहीं मानता। कभी वैद्यको लाता है और कभी हकीमको। मैं औषधिका निषेध नहीं करती। मेरे नियम है कि औषध नहीं खाना। दो मासमें पर्याय छूट जावेगी, इससे जहाँ तक बने परमात्माका स्मरणकर लूँ, यही परलोकमें साथ जावेगा। जन्मभर इसका सहवास रहा। इसके सहवाससे तीर्थयात्राएँ कीं, व्रत तप किये, स्वाध्याय किया, धर्मकार्योंमें सहकारी जान इसकी रक्षा की। परन्तु अब यह रहनेकी नहीं, अतः इससे न हमारा प्रेम है न द्वेष है।' वैद्यने मुझसे कहा कि 'बाईजीका जीव कोई महान् आत्मा है। अब आप भूलकर भी किसी वैद्यको न लाना, इनका शरीर एक मासमें छूट जावेगा। मैंने ऐसा रोगी आज तक नहीं देखा।' यह कह वैद्यराज चले गये। उनके जानेके बाद बाईजी बोलीं कि 'तुम्हारी बुद्धिको क्या कहें ? जो रुपया वैद्यराजको दिया। यदि उसीका अन्न मंगाकर गरीबोंको बाँट देते तो अच्छा होता। अब वैद्यको न बुलाना।'

बाईजीका शरीर प्रतिदिन शिथिल होता गया। परन्तु उनकी स्वाध्यायरुचि और ज्ञानलिप्सा कम नहीं हुई। एक दिन बीनाके श्रीनन्दनलालजी आये और मुझसे मुकदमासम्बन्धी बात करने लगे। बाईजीने तपक कर कहा—'भैया ! यहाँ अदालत नहीं

अथवा वकीलका घर नहीं जो आप मुकदमाकी बात कर रहे हो, कृपया बाहर जाइये और मुझसे भी कहा कि बाहर जाकर बात कर लो, यहाँ फालतू बात मत करो।' ....इस तरह बाईजीकी दिनचर्या व्यतीत होने लगी।

बाईजीको निद्रा नहीं आती थी। केवल रात्रिके दो बजे बाद कुछ आलस्य आता था। हम लोग रात्रि-दिन उनकी वैयावृत्यमें लगे रहते थे। जब बाईजीकी आयुका एक मास शेष रहा तब एक दिन श्रीलम्पूलालजी घीवालोंने पूछा कि 'बाईजी! आपको कोई शल्य तो नहीं है।' बाईजीने कहा—'अब कोई शल्य नहीं। पर कुछ पहले एक शल्य अवश्य थी। वह यह कि बालक गणेशप्रसाद जिसे कि मैंने पुत्रवत् पाला है, यदि अपने पास कुछ द्रव्य रख लेता तो इसे कष्ट न उठाना पड़ता। मैंने इसे समझाया भी बहुत, परन्तु इसे द्रव्य रक्षा करनेकी बुद्धि नहीं। मैंने जब जब इसे दिया इसने पाँच या सात दिनमें सफा कर दिया। मैंने आजन्म इसका निर्वाह किया। अब मेरा अन्त हो रहा है, इसकी यह जाने, मुझे शल्य नहीं। मेरे पास जो कुछ था इसे दे दिया। एक पैसा भी मैंने परिग्रह नहीं रक्खा। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मेरे मरनेके बाद यह एक दिन भी मेरी दी हुई द्रव्य नहीं रख सकेगा। परन्तु अच्छे कार्यमें लगावेगा, असत् कार्यमें नहीं।' श्री लम्पूलालजीने कहा कि 'फिर इनका निर्वाह कैसे होगा?' बाईजीने कहा कि 'अच्छी तरह होगा। जैसे मेरा इसके साथ कोई जाति सम्बन्ध नहीं था, फिर भी मैंने इसे आजन्म पुत्रवत् पाला वैसे इसके निमित्तसे अन्य कोई मिल जावेगा। इसकी पर्यायगत योग्यता बड़ी बलवती है।' बाईजीकी बात सुनकर लम्पू भैया हँस गये और उनके बाद सिंघईजी भी आये। वे भी हँसकर चले गये।

एक दिन मैंने बाईजीसे कहा—'बाईजी! यह शांतिबाई

प्राणपनसे आपकी वैयावृत्त्य करती है, इसे कुछ देना चाहिये।' बाईजीने कहा—'तुम्हारी जो इच्छा हो सो दे दो। मैं तो द्रव्यका त्याग कर चुकी हूँ।'

जब आयुमें दस दिन रह गये तब बाईजीने मुझसे कहा—'बेटा। एकान्तमें कुछ कहना है।' मैं दो बजे दिनको उनके पास आकर बैठ गया और बोला 'बाईजी! मैं आ गया, क्या आज्ञा है?' बाईजी बोलीं—'संसारमें जहाँ संयोग है वहाँ वियोग है। हमने तुम्हें चालीस वर्ष पुत्रवत् पाला है यह तुम अच्छी तरह जानते हो। इतने दीर्घ कालमें हमसे यदि किसी प्रकारका अपराध हुआ हो तो उसे क्षमा करना और बेटा! मैं क्षमा करती हूँ अथवा क्या क्षमा करूँ, मैंने हृदयसे कभी भी कष्ट नहीं पहुँचाया। अब मेरी अन्तिम यात्रा है, कोई शल्य न रहे इससे आज तुम्हें कष्ट दिया। यद्यपि मैं जानती हूँ कि तेरा हृदय इतना बलिष्ठ नहीं कि इसका उत्तर कुछ देगा।'

मैं सचमुच ही कुछ उत्तर न दे सका, रुदन करने लगा, हिलहिली आने लगी। बाईजीने कहा—'बेटा जाओ बाजारसे फल लाओ' और ललितासे कहा कि 'भैयाको पाँच रुपया दे दे, फल लावे। मुझे वहाँसे कहा कि 'जाओ', मैं ऊपर गया। मुलाबाईने मुझे देखा, मेरी रुदन अवस्था देख नीचे गई। बाईजीने कहा—'मुला नाटकसमयसार सुनाओ।' वह सुनाने लगी। तीन या चार छन्द सुनानेके बाद वह भी रुदन करने लगी। बाईजीने कहा—'मुला'! ऊपर जाओ।' वह ऊपर चली गई। जब शान्ति बाईने उसे रोते देखा तब वह भी बाईजीके पास गई बाईजीने कहा—'शान्ति समाधिमरण सुनाओ।' वह भी एक दो मिनट बाद पाठ करती करती रोने लगी। मैं जब बाजार गया तब श्री सिंघईजी मिले। उन्होंने मेरा वदन मलीन देखा और पूछा कि 'बाईजीकी तबियत कैसी है?' मैंने कहा—'अच्छी है।' वे

बाईजीके पास गये। बाईजीने कहा—'सिंघई भैया! अनुप्रेक्षा सुनाओ।' वे अनुप्रेक्षा सुनाने लगे। परन्तु थोड़ी देर में सुनाना भूलकर रुदन करने लगे। इस प्रकार जो जो जावे वही रोने लगे। तब बाईजीने कहा—'आप लोगोंका साहस इतना दुर्बल है कि आप किसीकी समाधि करानेके पात्र नहीं।'

इस प्रकार बाईजीका साहस प्रतिदिन बढ़ता गया। इसके बाद बाईजीने केवल आधी छटाक दलियाका आहार रक्खा और जो दूसरी बार पानी पीती थीं वह भी छोड़ दिया। सब ग्रन्थोंका श्रवण छोड़कर केवल रत्नकरण्डश्रावकाचारमेंसे सोलह कारण भावना, दशधा धर्म, द्वादशानुप्रेक्षा और समाधिमरणका पाठ सुनने लगीं। जब आयुके दो दिन रह गये तब दलिया भी छोड़ दिया, केवल पानी रक्खा और जिस दिन आयुका अवसान होनेवाला था उस दिन जल भी छोड़ दिया। उस दिन उनका बोलना बन्द हो गया। मैं बाईजीकी स्मृति देखनेके लिये मन्दिरसे पूजनका द्रव्य लाया और अर्घ बनाकर बाईजीको देने लगा। उन्होंने द्रव्य नहीं लिया और हाथका इशाराकर जल माँगा। उसने हस्त प्रक्षालन कर गन्धोदककी वन्दना की। मैं फिर अर्घ देने लगा तो फिर उन्होंने हाथ प्रक्षालनके लिये जल माँगा। पश्चात् हस्त प्रक्षालन कर अर्घ चढ़ाया। फिर हाथ धोकर बैठ गई और सिलेट माँगी। मैंने सिलेट दे दी। उसपर उन्होंने लिखा कि 'तुम लोग आनन्दसे भोजन करो।'

बाईजी तीन माससे लेट नहीं सकती थीं। उस दिन पैर पसार कर सो गई। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने समझा कि आज बाईजीको आराम हो गया। अब इनका स्वास्थ्य प्रतिदिन अच्छा होने लगेगा। इस खुशीमें उस दिन हमने सानन्द विशिष्ट भोजन किया। दो बजे पं० मोतीलालजी वर्णीसे कहा कि 'बाईजीकी तबियत अच्छी है, अतः घूमनेके लिये जाता हूँ।' वर्णीजीने कहा

उन्होंने बाईजीको बैठा दिया। बाईजीने दोनों हाथ जोड़ 'ॐ सिद्धाय नमः' कहकर प्राण त्याग दिये।

[पृ० ४२३]

कि 'तुम अत्यन्त मूढ़ हो। यह अच्छेके चिन्ह नहीं हैं, अवसरके चिह्न हैं।' मैंने कहा—'तुम बड़े धन्वन्तरि हो। मुझे तो यह आशा है कि अब बाईजीको आराम होगा।' वर्णीजी बोले—'तुम्हारा सा दुर्बोध आदमी मैंने नहीं देखा। देखो, हमारी बात मानो, आज कहीं मत जाओ।' मैंने कहा—'आज तो इतने दिन बाद अवसर मिला है और आज ही आप रोकते हैं।'

कुछ देर तक हम दोनोंमें ऐसा विवाद चलता रहा। अन्तमें मैं साढ़े तीन बजे जलपान कर ग्रामके बाहर चला गया। एक बागमें जाकर नाना विकल्प करने लगा—'हे प्रभो! हमने जहाँ तक बनी बाईजीकी सेवा की, परन्तु उन्हें आराम नहीं मिला। आज उनका स्वास्थ्य कुछ अच्छा मालूम होता है। यदि उनकी आयु पूर्ण हो गई तो मुझे कुछ नहीं सूझता कि क्या करूंगा?' इन्हीं विकल्पोंमें शाम हो गई, अतः सामायिक करके कटराके मन्दिरमें चला गया। वहाँ पर शास्त्र प्रवचन होता था, अतः ९ बजे तक शास्त्र श्रवण करता रहा। साढ़े नौ बजे बाईजीके पास पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि कोई तो समाधिमरणका पाठ पढ़ रहा है और कोई 'राजा राणा छत्रपति' पढ़ रहा है। मैं एकदम भीतर गया और बाईजीका हाथ पकड़ कर पूछने लगा—'बाईजी सिद्ध परमेष्ठीका स्मरण करो।' बाईजी बोलीं—'भैया! कर रहे हैं, तुम बाहर जाओ।' मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि अब तो बाईजीकी तबियत अच्छी है। मैं सानन्द बाहर आगया और उपस्थित महाशयोंसे कहने लगा कि 'बाईजी अच्छी हैं।' सब लोग हँसने लगे।

मैं जब बाहर आया तब बाईजीने मोतीलालजीसे कहा कि 'अब हमको बैठा दो।' उन्होंने बाईजीको बैठा दिया। बाईजीने दोनों हाथ जोड़ 'ओं सिद्धाय नमः' कह कर प्राण त्याग दिये। वर्णीजीने मुझे बुलाया—'शीघ्र आओ।' मैंने कहा—'अभी तो

बाईजीसे मेरी बातचीत हुई। मैंने पूछा था—सिद्ध भगवान्‌का स्मरण है। उत्तर मिला था हाँ, तुम बाहर जाओ। अब मैं उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता था।' वर्णीजीने कहा कि 'आज्ञा देनेवाली बाईजी अब कहीं चली गई?' क्या ऊपर गई हैं?' वर्णीजी बोले—'बड़े बुद्धू हो। अरे वह तो समाधिमरण कर स्वर्ग सिधार गई। जल्दी आओ उनका अन्तिम शव तो देखो कैसा निश्चल आसन लगाये बैठी हैं?' मैं अन्दर गया, सच-मुच ही बाईजीका जीव निकल गया था, सिर्फ शव बैठा था। देखकर अशरण भावनाका स्मरण हो आया—

'राजा राणा छत्रपति हाथिनके असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार॥
दलबल देवी देवता मात पिता परिवार।
मरती बिरियां जीवको कोई न राखन हार॥'

उसी समय कार्तिकेय स्वामीके शब्दों पर स्मरण जा पहुँचा—

'जं कि चि वि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण।
परिणामसरूवेण वि ण य कि पि वि सासयं अत्थि॥
सीहस्सकये पडियं सारंग जह ण रक्खए को वि।
तह मिच्चुणा वि गहियं जीवं पि ण रक्खए को वि॥'

जो कोई वस्तु उत्पन्न होती है उसका विनाश नियमसे होता है। पर्यायरूप कर कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है। सिंहके पैरके नीचे आये मृगकी जैसे कोई रक्षा नहीं कर सकता उसी प्रकार मृत्युके द्वारा गृहीत इस जीवकी कोई रक्षा नहीं कर सकता। इसका तात्पर्य यह है कि पर्याय जिस कारणकूटसे होती है उसके अभावमें वह नहीं रह सकती। प्राणीके अन्दर एक आयुः प्राण है उसका अभाव होनेपर एक समय भी जीव नहीं रह सकता। अन्यकी कथा छोड़ो, स्वर्गके देवेन्द्र भी आयुका अवसर होनेपर

एक समय मात्र भी स्वर्गमें ठहरनेके लिए असमर्थ हैं। अथवा देवेन्द्रोंकी कथा छोड़ो, श्रीतीर्थंकर भी मनुष्यायुका अवसान होनेपर एक सैकिण्ड भी नहीं रह सकते। यह बात यद्यपि आबाल वृद्ध विदित है, फिर भी पर्यायके रखनेके लिये मनुष्यों द्वारा बड़े बड़े प्रयत्न किये जाते हैं। यह सब पर्यायबुद्धिका फल है। इसका भी मूल कारण यही है कि जो संसार बनाये हुए है। जिन्हें संसार मिटाना हो उन्हें इस पर विजय प्राप्त करना चाहिए।

'हेउअभावे णियमा णाणिस्स आसवणिरोहो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो॥
कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायइ णिरोहो।
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होइ॥

संसारके कारण मिथ्यात्व, अज्ञान,अविरति और योग ये चार हैं। इनके अभावमें ज्ञानी जीवके आस्रवका अभाव होता है। जब आस्रवभावका अभाव होजाता है तब ज्ञानावरणादि कर्मोंका अभाव हो जाता है और जब कर्मोंका अभाव हो जाता है तब नोकर्म-शरीरका भी अभाव हो जाता है एवं जब औदारिकादि शरीरोंका अभाव हो जाता है तब संसारका अभाव हो जाता है···इस तरह यह प्रक्रिया अनादिसे हो रही है और जब तत्त्वज्ञान हो जाता है तब यह प्रक्रिया अपने आप लुप्त हो जाती है, स्वाभाविक प्रक्रिया होने लगती है। पर्याय क्षणभंगुर संसारमें भी है और मुक्तिमें भी है।

बाईजीका शव देखकर मैं तो चित्रामका सा पुतला हो गया। वर्णीजीने कहा कि 'खड़े रहनेका काम नहीं।' मैंने कहा—'तो क्या रोनेका काम है?' वर्णीजी बोले—'तुमको तो चुहल सूझ रही है। अरे जल्दी करो और उनके शवका दाह आध

घण्टेमें कर दो, अन्यथा सम्मूर्छन त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होने लगेगी।' मैं तो किंकर्तव्यके ऊहापोहमें पागल था, परन्तु वर्णीजीके आदेशानुसार शीघ्रही बाईजीकी अर्थी बनानेमें व्यस्त हो गया। इतनेमें ही श्रीमान् पं० मुन्नालालजी, श्री होतीलालजी, पं० मूलचन्द्रजी आदि आगये और सबका यह मंसूबा हुआ कि विमान बनाया जावे। मैंने कहा कि 'विमान बनानेकी आवश्यकता नहीं। शवको शीघ्र ही श्मशान भूमिमें ले जाना अच्छा है।' कटरामें श्रीयुत, सिंघई राजारामजी और मौजीलालजीकी दुकानसे चन्दन आगया। श्रीयुत रामचरणलाजजी चौधरी भी आगये। आपने भी कहा कि 'शीघ्रता करो।' हम लोगोंने १५ मिनटके बाद शव उठाया। उस समय रात्रिके दस बजे थे। बाईजीके स्वर्गवासका समाचार विजलीकी तरह एकदम बाजारमें फैल गया और श्मशान भूमिमें पहुंचते पहुंचते बहुत बड़ी भीड़ हो गई।

बाईजीका दाह संस्कार श्रीरामचरणलालजी चौधरीके भाईने किया। चिता धू धू कर जलने लगी और आध घण्टेमें शव जल कर खाक हो गया। मेरे चित्तमें बहुत ही पश्चात्ताप हुआ। हृदय रोनेको चाहता था, पर लोक लज्जाके कारण रो नहीं सकता था। जब वहाँसे सब लोग चलनेको हुए तब मैंने सब भाइयोंसे कहा कि—'संसारमें जो जन्मता है उसका मरण अवश्य होता है। जिसका संयोग है उसका वियोग अवश्यंभावी है। मेरा बाईजीके साथ चालीस वर्षसे सम्बन्ध है। उन्होंने मुझे पुत्रवत् पाला। आज मेरी दशा माता विहीन पुत्रवत् हो गई है। किन्तु बाईजीके उपदेशके कारण मैं इतना दुःखी नहीं हूँ जितना कि पुत्र हो जाता है। उन्होंने मेरे लिये अपना सर्वस्व दे दिया। आज मैं जो कुछ उन्होंने मुझे दिया सबका त्याग करता हूँ और मेरा स्नेह बनारस विद्यालसे है, अतः कल ही

बनारस भेज दूँगा। अब मैं उस द्रव्यमेंसे पाव आना भी अपने खर्चमें न लगाऊँगा।' श्रीसिंघई कुन्दनलालजीने कहा कि 'अच्छा किया, चिन्ताकी बात नहीं। मैं आपका हूँ। जो आपको आवश्यकता पड़े मेरेसे पूरी करना।'……इस तरह श्मशानसे सरोवर पर आये। सब मनुष्योंने स्नान कर अपने-अपने घरका मार्ग लिया। कई महाशय मुझे धर्मशालामें पहुँचा गये। यहाँ पर आते ही शान्ति, मुला और ललिता रुदन करने लगीं। पश्चात् शान्त हो गईं। मैं भी सो गया, परन्तु नींद नहीं आई, रह रह कर बाईजीका स्मरण आने लगा।

समाधिके बाद

जब किसीका इष्ट वियोग होता था तो मैं समझाने लगता था कि भाई! यह संसार है। इसका यही स्वरूप है। जिसका संयोग होता है उसका वियोग अवश्य होता है, अतः शोक करना व्यर्थ है। पर बाईजीका वियोग होने पर मैं स्वयं शोक करने लगा। लोक लज्जाके कारण यद्यपि शोकके चिह्न बाह्यमें प्रकट नहीं हो पाते थे परन्तु अन्तरङ्गमें अधिक वेदना रहती थी। इससे सिद्ध होता है कि यह मोहका संस्कार बड़ा प्रबल है। घरमें रहनेसे चित्त निरन्तर अशान्त रहता था, अतः दिनके समय किसी बागमें चला जाता था और रात्रिको पुस्तकावलोकन करता रहता था।

मेरा जो पुस्तकालय था वह मैंने स्याद्वाद विद्यालय बनारसको दे दिया। तीन दिनके बाद ललिता बोली—'हम बाईजीका मरणभोज करेंगे।' मैंने कहा—'अब यह प्रथा बन्द हो रही है, अतः तुम्हें भी नहीं करना चाहिये।' वह बोली—'ठीक है, परन्तु हम तो केवल उन्हींके स्मरणके लिये उन्हींका धन

भोजनमें लगाते हैं। आपके पास जो था उसे तो आप स्याद्वाद विद्यालयको दान कर चुके। अब हमारे पास जो है उसे लगावेंगे। उनकी आयु ७५ वर्षकी थी और अभी वृद्धजनोंका मरणभोज प्रायः सर्वत्र चालू है, अतः आप हमें यह कार्य करने दीजिये।' मैं चुप रह गया। ललिताने एक हजार मनुष्योंका भोजन बनवाया और बारहवें दिन खिलाया, विद्यालयके छात्रोंको भी भोजन कराया, अनाथालयके बालक बालिकाओं को भी भोजन दिया तथा जितने माँगनेवाले (भिखारी) आये उन सबको भोजन दिया। पश्चात् जो बचा उसे, पल्लेदारोंको जो सिंघईजी आदि की दुकानों पर काम करते थे, दे दिया। फिर भी जो बचा वह बाईजीका काम करनेवाली औरतों को बाँट दिया।

बारह दिनके बाद बाईजीके जो वस्त्रादि थे वे ललिता और शान्तिबाईको दे दिये। इसे बाँटनेमें ललिता और शान्तिमें परस्पर मनोमालिन्य हो गया। वास्तवमें परिग्रह ही पापकी जड़ है। ललिताने एक दिन मुझसे कहा—'भैया! एकान्तमें चलो।' मैं गया तब एक डबुलिया उसने दी। उसमें ५००) का माल था। उसने कहा—'बाईजी मुझे दे गई हैं!' मैंने कहा—'तुम रक्खो। उसने कहा 'मुझे आवश्यकता नहीं। न जाने कौन चुरा ले जायगा?'

इन कार्योंसे निश्चिन्त होकर मैं रहने लगा, परन्तु उपयोग नहीं लगता था। मुलाबाईने बहुत समझाया—भैया! अब चिन्ता छोड़ो। बाईजी तो गई, मैं आपको भोजन बनाकर खिलाऊँगी।' मैंने कहा—'मुलाबाई! मेरे पास जो कुछ था वह तो मैं दे चुका। अब मेरे पास एक पैसा भी नहीं है, किसीसे माँगनेकी आदत नहीं। यद्यपि सिंघईजी सब कुछ करनेको तैयार हैं, परन्तु माँगनेमें लज्जा आती है।' सान्त्वना देती हुई मुलाबाई बोली—'भैया! कुछ चिन्ता मत करो। मेरे पास जो कुछ

है उससे आप निर्वाह करिये। बहुत कुछ है। मैंने आपको बड़ा भाई माना है। आखिर मेरा धन कब काम आवेगा? मेरे कौन बैठा है?'....इत्यादि बहुत कुछ सान्त्वना उसने दी परन्तु चित्तकी उदासीनता न गई।

एक दिन विचार किया कि यदि यहाँसे द्रोणगिरि चला जाऊँ तो वहाँ शान्ति मिलेगी। विचारकर मोटर स्टेण्ड पर आया। वहाँ भैयालालजी गोदरेने सबसे अगाड़ीकी सीट पर बैठा दिया। एक घण्टा बाद मोटर छूट गई। मलहराका टिकट था। मोटर बण्डा पहुँची। वहाँ ड्राईवरने कहा—'वर्णीजी! आप इस सीटको छोड़कर बीचमें बैठ जाइये। मैं बोला—'क्यों?' 'यहाँ दरोगा साहब आते हैं, वे शाहगढ़ जा रहे हैं।' 'तुमने इस सीटका भाड़ा क्यों लिया?' 'आप जानते हैं 'जबर्दस्तीका ठेंगा शिर पर' आप जल्दी सीटको त्याग दीजिए?' 'यह तो न्याय नहीं बलात्कार है।' 'न्याय अन्यायकी कथा छोड़िये जब राज्यमें ही न्याय नहीं तब हममें कहाँसे आवेगा? आपने मामूली किराये-से एक रुपया ही तो अधिक दिया है, पर हम दरोगा साहबकी कृपासे २० के बदले ४० सवारियाँ ले जाते हैं। यदि उन्हें न ले जावें तो हमारी क्या दुर्गति होगी, आप जानते हैं। अतः इसीमें आपका कल्याण है कि आप बीचमें बैठ जाइए। अथवा आपको न जाना हो उतर जाईये। यदि आप न उतरेंगे तो बलात्कार मुझे उतारना होगा। आपको अदालतकी शरण लेनी है, भले ही लीजिए। परन्तु मैं इस सीट पर न बैठने दूँगा।'

मैं चुपचाप गाड़ीसे उतर गया और उसी दिनसे यह प्रतिज्ञा की कि अब आजन्म मोटर पर न बैठूँगा। वहाँसे उतरकर धर्म-शालामें ठहर गया। रात्रिको शास्त्र प्रवचन किया। 'पराधीन स्वप्नहु सुख नाहीं' यह लोकोक्ति बार-बार याद आती रही। दो दिन वहाँ रहा। पश्चात् सागर चला आया और जिस मकान-

में रहता था उसीमें रहने लगा। बहुत कुछ उपाय किये, पर चित्त शान्त नहीं हुआ। असाढ़का महीना था, अतः कहीं जा भी नहीं सकता था।

शाहपुरमें

एक दिन शाहपुरसे लोकमणि दाऊ आये। उन्होंने कहा—शाहपुर चलिये। वहाँ सब साधन अच्छे हैं।' उनके कहनेसे मैं शाहपुर चला गया। यहीं पर सेठ कमलापतिजी और वर्णी मोतीलालजी भी आगये। आप लोगोंके समागमसे धार्मिक चर्चामें काल जाने लगा।

यहाँ पर भगवानदास भायजी बड़े धार्मिक जीव हैं। निरन्तर स्वाध्यायमें काल लगाते हैं। आपके पाँच सुपुत्र हैं और पाँचों ही पण्डित हैं तथा योग्य स्थानों पर विद्याध्ययन कराते हैं—पं० माणिकचन्द्रजी सागरमें विद्यालय अध्ययन कराते हैं, पं० श्रुतसागरजी रामटेक गुरुकुलमें मुख्याध्यापक है, पं० दयाचन्द्रजी पहले बीनामें थे, अब जबलपुर गुरुकुलमें मुख्याध्यापक है, पं० धर्मचन्द्रजी शाहपुर विद्यालयमें सुपरिन्टेन्डेन्ट पदपर नियत हैं और सबसे छोटे अमरचन्द्रजी पिताजीके साथ स्वाध्यायमें दत्तचित्त रहते हैं। इनके समागमसे अच्छा आनन्द रहा।

यहाँकी समाज बहुत ही सच्चरित्र है और परस्पर अति संगठित भी है। यहाँ पर नन्दलालजी गानेके बड़े प्रेमी हैं। हल्कू सिंघई भी बड़े धर्मात्मा हैं। इनके यहाँ एक बार पञ्चकल्याणक और एक बार गजरथ हो गया है। आपने पञ्चकल्याणकमें तीन हजार रुपया दिये थे जिनकी बदौलत आज शाहपुरमें एक विद्यालय चल रहा है। इस विद्यालयमें ग्रामवालोंने शक्तिसे बाहर दान दिया है। आज शाहपुरमें एक विद्यालय है जिसमें

४० छात्र अध्ययन कर रहे हैं। २० छात्र उसकी बोर्डिंगमें हैं। यदि वहाँ पर एक लाखका ध्रौव्यफण्ड हो तो हाईस्कूल तक अंग्रेजी और मध्यमा तक संस्कृतकी शिक्षाका अच्छा प्रबन्ध हो सकता है। तथा ५० छात्र बोर्डिंगमें रह सकते हैं, परन्तु यह सुमत होना असम्भव है। ये लोग इस तत्त्वको नहीं समझते। भाद्रमासमें खतौलीसे लाला त्रिलोकचन्द्र, लाला हुकुमचन्द्र सलावावाले और पं० शीतलप्रसादजी शाहपुराके आनेसे तात्त्विक चर्चाका विशेष आनन्द रहा।

एक दिन हम, कमलापति सेठ और वर्णी मोतीलालजी परस्परमें धार्मिक भावोंकी समालोचना कर रहे थे। सब लोग यही कहते थे कि 'धर्म कल्याणकारी है, पर उसका यथाशक्ति आचरण भी करना चाहिये।' कोई कहता था कि 'एकान्तमें रहना अच्छा है, क्योंकि यातायातमें बड़ा कष्ट होता है तथा अन्तरङ्ग धर्म भी नहीं पलता।' वर्णी मोतीलालजीने कहा कि 'यदि वर्णी गणेशप्रसादजी यातायात छोड़ देवें तो हम अनायास उनके साथ रहने लगेंगे।' यही बात सेठ कमलापतिजीने भी कही कि 'यदि केवल वर्णीजी स्थिर हो जावें तो हम अनायास स्थिर हो जावेंगे और इनके साथ आजन्म जीवन निर्वाह करेंगे। इन्हींकी चञ्चल प्रकृति है।' मैंने कहा—'यदि मैं रेलकी सवारी छोड़ दूँ तो आप लोग भी छोड़ सकते हैं?' दोनों महाशय बोले—'इसमें क्या शक है?' मैं भोलाभाला उन दोनों महाशयोंके जालमें फँस गया। उसी क्षण उनके समक्ष प्रतिज्ञा कर ली कि 'मैंने आजन्म रेलकी सवारी त्याग दी, आप दोनों कहिये क्या कहते हैं?'

पण्डित मोतीलाल वर्णीने उत्तर दिया कि 'पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाको छोड़कर रेलमें न बैठूँगा।' इसी प्रकार सेठ कमलापतिजीने भी कहा कि 'मैं सालमें एक बार रेल पर जाऊँगा तथा

एक बार आऊँगा' और मुझसे भी कहने लगे कि आप भी इसी प्रकार नियम करिये एकदम त्यागना अच्छा नहीं। मैं तो अपने विचारोंपर दृढ़ रहा, परन्तु उन लोगोंने जो कहा उसे बदलनेको राजी नहीं हुए....इस प्रकार भाद्र मास सानन्द बीता, खतौली-वाले खतौली चले गये, वर्णी मोतीलालजी जतारा गये, सेठ कम-लापतिजी बरायठा गये पर हम लाचार थे, अतः रह गये।

आधे आश्विनमें पैदल सागर आ गये। मेरे आनेके पहले ही बाईजीकी ननद ललिताबाईका स्वर्गवास हो गया था। उसके पास जो पाँच सौ रुपया थे वे उसकी ओरसे सागर पाठशालामें दे दिये। पन्द्रह दिन सागर रहे, परन्तु उपयोगकी स्थिरता नहीं हुई। यहाँ पर मुलाबाई थी उसने भी बहुत समझाया, परन्तु चित्तका क्षोभ न गया। धर्मशालामें पहुँचते ही ऐसा लगने लगा मानों बाईजी धीमी आवाजसे कह रही हों 'भैया! भोजन कर लो।'

गिरिराजकी पैदल यात्रा

एक दिन सिंघईजीके घर भोजनके लिये गये। भोजन करने-के बाद यह कल्पना मनमें आई कि पैदल करौपुर जाना चाहिये। बाईजी तो थीं ही नहीं, किससे पूछना था? अतः मध्याह्नकी सामायिकके बाद पैदल चल दिये और एकाकी चलते चलते पाँच बजे करौपुर पहुँच गये। पन्द्रह मिनट बाद सिंघईजीके मुनीम हजारीलाल आ गये। बहुत ही शिष्टाचारसे पेश आये। कहने लगे कि 'आपके चले आनेसे सिंघईजी बहुत ही खिन्न हैं।' उनका अभिप्राय यह था कि यदि मुझसे मिलकर यात्रा करते तो अच्छा होता। यों तो मैं जानता हूँ कि कोई किसीका नहीं, जीव एकाकी ही जन्मता है, और एकाकी ही मरता है।

फिर भी संसारमें मोही जीवको एक दूसरेका आश्रय लेना पड़ता है। सब पदार्थ भिन्न भिन्न हैं, फिर भी मोहमें परपदार्थके बिना कोई भी काम नहीं होता। श्रद्धा और है, चारित्रमें आना और है। श्रद्धा तो दर्शनमोहके अभावमें होती है और चारित्र चारित्रमोहके अभावमें होता है। मेरी यह श्रद्धा है कि आप मेरेसे भिन्न हैं और मैं भी आपसे भिन्न हूँ, फिर भी आपके सहवासको चाहता हूं। आपकी यह दृढ़ श्रद्धा है कि कल्याणमार्ग आत्मामें है, फिर भी आप शिखरजी जा रहे हैं। यह आपको दृढ़ निश्चय है कि ज्ञान और चारित्र आत्माके ही गुण हैं, फिर भी आप पुस्तकावलोकन, तीर्थयात्रा तथा व्रत-उपवासादि निमित्तोंको मिलाते ही हैं। इसीप्रकार मैं भी आप का निमित्त चाहता हूँ। इसमें कौन-सा अन्याय है? संसारसे विरक्त होकर भी साधु लोग उत्तम निमित्तोंको मिलाते ही हैं..यह सिंघईजीका संदेश था सो आपको सुना दिया।

बात वास्तविक थी, अतः मैं कुछ उत्तर न दे सका और दो दिन रहकर बण्डा चला गया। यहाँ पर श्री दौलतरामजी चौधरी बहुत ही धर्मात्मा हैं। उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा—'आप गिरिराजको जाते हो तो जाओ, बहुत ही प्रशस्त कार्य है। परन्तु नैनागिरिजी भी तो सिद्धक्षेत्र है, अनुपम और रम्य है। यहाँ पर सब सामग्री सुलभतया मिल सकती है। हम लोग भी आपके समागमसे धर्मलाभ कर सकेंगे तथा आपकी वैयावृत्यका भी अवसर हमको मिलता रहेगा और सबसे बड़ी बात यह है कि आपकी वृद्ध अवस्था है। इस समय एकाकी इतनी लम्बी यात्रा पैदल करना हानिप्रद हो सकती है, अतः उचित तो यही है कि आप इसी प्रान्तमें धर्मसाधन करें फिर आपकी इच्छा···।'

मैं सुनकर उत्तर न दे सका और दो दिन बाद भी

नैनागिरिजी को चला गया। बीचमें एक दिन दलपतपुर रहा। यहाँ पर सिंघई जवाहरलालजी मेरे बड़े प्रेमी थे। वे बोले— 'आप जाते हैं, जाओ। परन्तु हम लोगोंका भी तो कुछ विचार करना था। हम आपके धर्ममें आज तक बाधक नहीं हुए। धर्मका उत्थान तो आत्मामें होता है, क्षेत्र निमित्तमात्र ही है। अज्ञानी मनुष्य निमित्तोंपर बहुत बल देते हैं, पर ज्ञानी मनुष्योंकी दृष्टि उपादानकी ओर रहती है। आप साक्षर हैं। यदि आप भी निमित्तकी प्रधानतापर विशेष आग्रह करते हैं तो हम कुछ नहीं बोलना चाहते। आपकी इच्छा हो, सो कीजिये। अथवा मेरी तो यह श्रद्धा है कि इच्छासे कुछ नहीं होता। जो होनेवाला कार्य है वह अवश्य होता है। बाईजीका एक विलक्षण जीव था जो कि योग्य कार्यके करनेमें ही अपना उपयोग लगाता था। अब आपको शिक्षा देनेवाला वह जीव नहीं रहा, अतः आपकी प्रवृत्ति स्वच्छन्द हो गई है। हम तो आपके प्रेमी हैं, प्रेम-वश अपने हृदयकी बात आपके सामने प्रकट करते ही हैं। आपका जिसमें कल्याण हो वह कीजिये....।' बाईजीका नाम सुनकर पुनः उसके अपरिमित उपकारोंका स्मरण हो आया। मैंने सिंघई जवाहरलालजीको कुछ उत्तर नहीं दिया और दूसरे दिन श्रीनैनागिरिको चला गया।

यहाँ पर एक धर्मशाला है, उसीमें ठहर गया। साथमें कमलापति सेठ भी थे। धर्मशालाके बाहर एक उच्च स्थानपर अनेक जिनालय हैं। जिनालयोंके सामने एक सरोवर है। उसके मध्य भागमें एक विशाल जैन मन्दिर है, जिसके दर्शनके लिये एक पुल बना हुआ है। मन्दिरको देखकर पावापुरके जल मन्दिरका स्मरण हो आता है। मन्दिरके बनानेवाले सेठ जवाहरलालजी मामदावाले थे। सामने एक छोटी-सी पहाड़ीपर अनेक जिनमन्दिर विद्यमान हैं। वहाँ पहुँचनेका मार्ग सरोवरके

बाँधपरसे है। पहाड़ीकी दूरी एक फर्लाङ्ग होगी। मन्दिरोंके दर्शनादि कर भव्य पुण्योपार्जन करते हुए संसार स्थितिके छेदका उपाय करते हैं।

यहाँपर हम लोग दो दिन रहे। सागरसे सिंघईजी आदि भी आ गये, जिससे बड़े आनन्दके साथ काल बीता। सिंघईजी ने बहुत कुछ कहा परन्तु मैंने एक न सुनी। मैंने सान्त्वना देते हुए उनसे कहा—'भैया! अब तो जाने दो। आखिर एक दिन तो हमारा और आपका वियोग होगा ही। जहाँ संयोग है वहाँ वियोग निश्चित है। यद्यपि मैं जानता हूँ कि आप मुझसे कुछ नहीं चाहते, केवल यही इच्छा आपकी रहती है कि मेरा काल धर्ममें जावे तथा कोई कष्ट न हो''''परन्तु मैंने एक बार श्रीगिरिराज जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया है, अतः अब आप प्रतिबन्ध न लगाइये''''।' मेरा उत्तर सुनकर सिंघईजीके नेत्रोंमें आँसुओंका संचार होने लगा और मेरा भी गला रुद्ध हो गया, अतः कुछ कह न सका। केवल मार्गके सन्मुख होकर बमौरीके लिये प्रस्थान कर दिया।

: २ :

शामके ५ बजते बजते बमौरी पहुँच गया। यहाँका दरबारीलालजी उत्साही और प्रभावशाली व्यक्ति हैं। यहाँ दो दिन रहकर शाहगढ़ चला गया। यहाँ पर पचीस घर जैनोंके हैं। दो दिन रहा। यहाँके जैनी मृदुल स्वभावके हैं, जब चलने लगा तब रुदन करने लगे। चलते समय यहाँसे पचीस नारियल भेंटमें आये। यहाँसे हीरापुर पहुँचा। यहाँपर छक्कीलाल सिंघई, जो कि द्रोणगिरि पाठशालाके मन्त्री हैं, रहते हैं। बहुत ही सज्जन व्यक्ति हैं। उनसे सम्मति लेकर दरगुवाँ पहुँचा।

यहाँ पर एक जैन पाठशाला है, जो श्रीयुत ब्रह्मचारी चिदा-

नन्दजीके द्वारा स्थापित है। आप निरन्तर उसकी देख-रेख करते रहते हैं। यहींपर आपने एक गुजराती मन्दिर भी निर्माण कराया है और उसके लिये आपने अपना ही मकान दे दिया है। अर्थात् अपने रहने ही के मकानमें मन्दिर निर्माण करा दिया है। आप योग्य व्यक्ति हैं। निरन्तर ज्ञानवृद्धिमें आपका उपयोग लीन रहता है। आपने बुन्देलखण्ड प्रान्तमें पचीस पाठशालाएँ स्थापित करा दी हैं। आपको यदि पूर्ण सहायता मिले तो आप बहुत उपकार कर सकते हैं, परन्तु कोई योग्य सहायक नहीं। आप व्रत भी निरतिचार पालते हैं। आपकी वृद्धा माता हैं, जो सब काम अपने हाथोंसे करती हैं। आपकी गरीबोंपर बड़ी दया रहती है। आप निरन्तर विद्याभ्यास करते रहते हैं। आपकी उदासीनाश्रममें पूर्ण रुचि रहती है। आपके ही प्रयत्नका फल है कि सागरमें जौहरी गुलाबचन्द्रजीके बागमें एक आश्रम स्थापित हो गया है। आपकी प्रकृति उदार है। भोजनमें आपको अणुमात्र भी गृध्नता नहीं है। आपके समागममें दो दिन सानन्द व्यतीत हुए। आपने खूब आतिथ्य सत्कार किया।

यहाँसे श्रीद्रोणगिरिको चल दिये। बीचमें सड़वा गाँव मिला। यहाँ जैनियोंके दस घर हैं। परन्तु परस्परमें मेल नहीं, अतः एक रात्रि ही यहाँ रहे और चार घण्टे चलकर श्रीद्रोणगिरि पहुँच गये। यहाँ पर सुन्दर धर्मशाला है। पण्डित दुलीचन्द्रजी बाजनावालोंने बड़े परिश्रमसे इसका निर्माण कराया था। यहाँपर एक गुरुदत्त पाठशाला चल रही है जिसकी रक्षा श्रीसिंघई कुन्दनलालजी सागर तथा मलहराके सिंघई वृन्दावनदासजी डेवढ़िया करते हैं। पं० दुलीचन्द्रजी बाजनावालोंकी भी चेष्टा इसकी उन्नति में रहती है। श्रीछक्कीलालजी सिंघई हीरापुरवाले इसके मन्त्री हैं। आप प्रति आठवें दिन आते हैं और पाठशालाका एक पैसा भी अपने उपयोगमें नहीं लाते। साथमें घोड़ा लाते हैं

तो उसके घासका पैसा भी आप अपने पाससे दे जाते हैं। आप बड़े नरम दिलके आदमी हैं, परन्तु प्रबन्ध करनेमें किसीका लिहाज नहीं करते।

पं० गोरेलालजी यहींके रहनेवाले हैं, व्युत्पन्न हैं। आप हीके द्वारा पाठशालाकी अच्छी उन्नति हुई है। आप क्षेत्रका भी काम करते हैं, यहाँ पर एक हीरालाल पुजारी भी है। जो बहुत ही सुयोग्य है। जो यात्रीगण आते हैं उनका पूर्ण प्रबन्ध कर देता है। ग्राममें एक मन्दिर है। उसमें देशी पत्थरकी विशाल वेदी है, जिसका श्री सिंघई कुन्दनलालजी सागरने भैयालाल मिस्त्रीके द्वारा निर्माण कराया था। उसमें बहुत ही सुन्दर कला कारीगरने अङ्कित की है। वेदिकामें श्रीऋषभ जिनेन्द्रदेवकी ढाई फुट ऊँची सङ्गमर्मरकी सुन्दर प्रतिमा है जिसके दर्शनसे दर्शकको शान्तिका आस्वाद आ जाता है। यहाँ पर इन्हीं दिनों गोवर्धन भोजक आया था। उसका गाना सुनकर यहाँके क्षत्रिय लोग बहुत प्रसन्न हुए। यहाँ तीन दिन रहे। पश्चात् यहाँसे चलकर गोरखपुरा पहुँचे। यहाँ प्राचीन जैन मन्दिर है। पन्द्रह घर जैनियोंके हैं जो परस्पर कलह रखते हैं।

यहाँसे चलकर घुवारा आये। यहाँपर पाँच जिनमन्दिर हैं। यहाँपर पण्डित दामोदरदासजी बहुत तत्त्वज्ञानी हैं। आप वैद्य भी हैं। यहाँपर परस्परमें कुछ वैमनस्य था। यह एक साधुके आग्रह और मेरी चेष्टासे शान्त हो गया। यहाँसे चलकर बड़गाँव आये और वहाँ चलकर पठा आये। यहाँ पर पं० बारेलालजी वैद्य बहुत सुयोग्य हैं। इनके प्रयाससे अहार-क्षेत्रकी उन्नति प्रतिदिन हो रही है। यहाँसे चलकर अतिशय क्षेत्र पपौरा आ गये। यहाँ पर तीन दिन रहे। यहाँसे चलकर बरमा आये और वहाँसे चलकर दिगौड़ा पहुँचे। यह दिगौड़ा वही है जहाँ कि श्री देवीदास-

जी कविका जन्म हुआ था। आप अपूर्व कवि और धार्मिक पुरुष थे। आपके विषयमें कई किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं—

आप कपड़ेका व्यापार करते थे। एक बार आप कपड़ा बेचने के लिये बछौड़ा गये थे। वहाँ जिनके मकानमें ठहरे थे उनके एक पाँच वर्षका बालक था। वह प्रायः भायजीके पास खेलनेके लिये आ जाता था। उस दिन आया और आध घण्टा बाद चला गया। उसकी माँ ने उसके बदनसे अंगुलियाँ उतारीं तो उसमें उसके एक हाथका चाँदीका कड़ा निकल गया। माँने विचार किया कि भायजी साहबने उतार लिया होगा। वह उसके पास आई और बोली कि 'भायजी ! यहाँ इसका चूरा तो नहीं गिर गया ?' भायजी उसके मनका पाप समझ गये और बोले कि 'हम कपड़ा बेचकर देखेंगे, कहीं गिर गया होगा।' वह वापिस चली गई। आपने शीघ्र ही सुनारके पास जाकर पाँच तोलेका कड़ा बनवाकर बालककी माँको सौंप दिया। माँ कड़ा पाकर प्रसन्न हुई। भायजी साहब बाजार चले गये। दूसरे दिन जब बालककी माँ बालकको अंगुलियाँ पहिनाने लगी तब कड़ा निकल पड़ा। मनमें बड़ी शर्मिन्दा हुई और जब बाजारसे भायजी साहब आये तक कहने लगी कि 'मुझसे बड़ी गलती हुई। व्यर्थ ही आपको कड़ा लेनेका दोष लगाया।' भायजी साहबने कहा–'कुछ हर्ज नहीं। वस्तु खो जाने पर सन्देह हो जाता है। अब यह कड़ा रहने दो।'

एक बारकी बात है, आप ललितपुरसे घोड़ापर कपड़ा लेकर घर जा रहे थे। अटवीके बीचमें सामायिकका समय हो गया। साथियोंने कहा—'एक मील और चलिये। यहाँ घनी अटवी है। इसमें चोरोंका डर है।' भायजी साहब बोले—'आप लोग जाइये। हम तो सामायिकके बाद ही यहाँसे चलेंगे' और घोड़ा परसे कपड़ेका गट्ठा उतारकर घोड़ाको बाँध दिया तथा आप सामायिकमें लिये बैठ गये। इतनेमें चोर आये और कपड़ेके गट्ठे

लेकर चले गये। थोड़ी दूर जाकर चोरोंके दिलमें विचार आया कि हम लोग जिसका कपड़ा चुरा लावे वह बेचारा मूर्तिकी तरह बैठा रहा, मानों साधु हो, ऐसे महापुरुषकी चोरी करना महापाप है। ऐसा विचार कर लौटे और कपड़ेके गट्ठे जहाँसे उठाये थे वहीं रख दिये और कहने लगे कि 'महाराज! आपके गट्ठे रखे हैं। अन्य कोई चोर आपको तंग न करे इसलिए अपना एक आदमी छोड़े जाते हैं।' इतना कहकर वे चोर आगे चले तथा जो लोग भायजी साहबको घनी अटवीमें अकेला छोड़कर आगे चले गये थे उन्हें लूट लिया और पीटा भी। भायजीके पास जो आदमी बैठा था उसने सामायिक पूरी होने पर उनसे कहा कि 'महाराज! अपना कपड़ा संभालो। अब हम जाते हैं'....ऐसी अनेक घटनाएँ आपके जीवनचरित्रकी हैं।

एक घटना यह भी लिखनेकी है कि आप यू० पी० प्रान्तमें एक स्थानपर पढ़नेके लिए गये। वहाँ आपने एक पैसेकी लकड़ीमें बारह माह रोटी बनाई और अन्तमें वह पैसा भी बचा लाये। लोग इसे गल्प समझेंगे पर यह गल्प नहीं। आप बजारसे एक पैसेकी लकड़ी लाते थे, उसमें रोटी बना लेते और कोयला बुझा लेते थे तथा उसे एक पैसामें सुनारको बेच देते थे।

यहाँ पर उनके बनाये देवीविलास आदि ग्रन्थ देखने में आये।

: ३ :

दिगौड़ासे चलकर दुमदुमा आये। 'यहाँ पर बाईजीकी सास की बहनका लड़का गुलाबचन्द्र है। बड़ा सज्जन मनुष्य है। उसका बाप बड़ा भोलाभाला था। जब उसका अन्तकाल आया तब गुलाबचन्द्रने कहा कि 'पिताजी! आपके चिह्नोंसे आपका मरण आसन्न जान पड़ता है।' पिताने कहा—'बेटा! संसार

मरता है, इसमें आश्चर्यकी कौन-सी कथा है ?' गुलाबचन्द्रने कहा कि 'समाधिमरणके लिये सबसे ममता त्यागो।' बाप बड़ा भोला था। बोला—'अच्छा तेरे वचन मान्य हैं।' कुछ देर बाद गुलाबचन्द्र दवाई लाकर बोला—'पिताजी ! औषधि लीजिये।' बाप बोला—'बेटा अभी तूने कहा था कि सबसे ममता छोड़ो। मैंने वही किया। देख, इसीलिये मैं खाटसे उतरकर नीचे बैठ गया। सब कपड़ा छोड़ दिये। केवल धोती नहीं छोड़ी जाती। नंगे होनेमें लज्जा आती है। अब मैं न तो पानी पीऊँगा और न अन्न ही खाऊँगा।' गुलाबचन्द्रने कहा—'पिताजी ! मैंने तो सरल भावसे कहा था। मेरा यह भाव थोड़े ही था कि तुम सब छोड़ दो।' बापने कहा–'आप कुछ कहो, मैं तो सब कुछ छोड़ चुका। अब जमीन पर ही लेटूँगा और भगवानका स्मरण करूँगा।' यह वार्ता ग्रामभरमें फैल गई परन्तु उसने किसीकी नहीं सुनी और दो दिन बाद परमेष्ठीका स्मरण करते हुए निर्विघ्न रूपसे परलोक यात्रा की।

इस गाँवसे चलकर बरुआसागर आ गये और स्टेशनके ऊपर बाबू रामस्वरूपके यहाँ ठहर गये। साथमें कमलापति सेठ भी थे। यहाँपर स्टेशनसे दो फर्लांगकी दूरीपर सर्राफ मूलचन्द्रजीकी दुकान है। दुकानके पास ही एक अट्टालिका पर जिन चैत्यालय है, जिसमें श्रीपार्श्वनाथस्वामीकी मनोज्ञ प्रतिमा है। बाबू रामस्वरूपजीने चैत्यालयको सुसज्जित बना रक्खा है। यहाँसे आध फर्लांग पर एक छोटी-सी पहाड़िया है, जिसके ऊपर सर्राफजीने एक पार्श्वनाथ विद्यालय खोल रक्खा है और जिसके व्ययके लिये झांसीके पाँच कोठे लगा दिये हैं। पहाड़ीके नीचे एक कुआ भी खुदवा दिया है। यहाँसे दो फर्लाङ्गकी दूरी पर एक बाग है जिसमें आम, अमरूद आदि अनेक फल तथा शाकादिकी उत्पत्ति होती है। स्थान सुरम्य तथा जलवायुकी

स्वच्छतासे पठन-पाठनके लिये उपयुक्त है। परन्तु बरुवासागर-वाले महानुभावोंकी उसमें प्रीति नहीं। हाँ, बाबू रामस्वरूपजी की पूर्ण दृष्टि है। बाबू साहबके समागमसे शास्त्रप्रवचनमें बड़ा आनन्द रहता था। सर्राफ मूलचन्द्रजी भी प्रतिदिन आते थे। इनका हमसे हार्दिक प्रेम था।

एक दिन बोले—'आप गिरिराजको जा रहे हैं''''यह सुनकर हमारा दिल टूट जा रहा है। आप ही के स्नेहसे मैंने यह विद्यालय खोला था और आप ही के स्नेहसे इसे निरन्तर खींचता रहता हूँ। मैं आपकी आज्ञाका हमेशा पालन करता हूँ तथा यथाशक्ति और भी दान करनेको तैयार हूँ ''''यदि आप रहें तो। इसके सिवाय एक बात और है। वह यह कि बाईजी हमारे पास एक हजार रुपया इस शर्तपर जमा कर गईं थी कि इसका पाँच रुपया मासिक व्याज भैयाको देते जाना, सो लीजिये और यदि आप रुपया लेना चाहते हैं तो वह भी लीजिये, मुझे कोई आपत्ति नहीं। रुपया ले लेने पर भी मैं पाँच रुपया मासिक भेजता जाऊँगा। आपको मैं अपना मानता हूँ।' मैंने कहा—'मुझे रुपया नहीं चाहिये। बाईजीके भावका मैं व्याघात नहीं कर सकता। मैं पाँच रुपया मासिक व्याजका ही लेनेवाला हूँ। रुपया यहाँकी पाठशालाके नाम जमा करा दीजिये।'

झाँसीके राजमल्लजी साहब भी यहाँ आये। इनका सर्राफके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। सर्राफजीके परम हितैषी और उन्हें योग्य सम्मति देनेवाले थे। बहुत ही सज्जन धार्मिक व्यक्ति थे। इनकी सम्मतिसे सर्राफ मूलचन्द्रजीने झाँसीमें एक मकान ले लिया, जिसका चार सौ रुपया मासिक किराया आता है।

पन्द्रह दिन बरुआसागर रहकर शुभ मुहूर्तमें श्री गिरिराजके लिए प्रस्थान कर दिया। प्रथम दिनकी यात्रा पाँच मीलकी थी, निवारी ग्राममें पहुँचा। साथमें कमलापति और चार जैनी भाई

थे। साथमें एक ठेला था, जिसमें सब सामान रहता था। उसे दो आदमी ले जाते थे। जब थक जाते थे तब अन्य दो आदमी ठेलने लगते थे। मैं तीन मील चला और इतना थक गया कि पैर चलनेमें बिलकुल असमर्थ हो गये। मुझे बहुत ही खेद हुआ और मनमें यह भावना हुई कि 'हे प्रभो! ऐसे किस पापका उदय आया कि मेरी शक्ति एकदम क्षीण हो गई।' हमारे साथ जो जैनी थे उनमेंसे एक बोला कि 'आप इतनी चिन्ता क्यों करते हैं? श्री पार्श्व प्रभु सब अच्छा करेंगे। मालूम होता है, आपने एक मसल नहीं सुनी—साम्हर दूर सिमरिया नियरी।' मैंने कहा—'इसका अर्थ समझाइये।' वह बोला—'पहले जमानेमें इस तरह रेल-मोटरोंका सुभीता न था। साम्हर स्थान माड़वारमें है। वहाँ नमककी झील है। वहाँसे सिमरिया गाँव पाँच सौ मील है। यह गाँव पन्ना रियासतमें है। पहले जमानेमें बैलोंके जरिये व्यापार होता था। साम्हरके एक सेठका सिमरियावालेपर कुछ रुपया आता था। वह उसकी वसूलीके लिये सिमरिया चला। जब गाँवके बाहर आया तब नौकरसे पूछता है कि सिमरिया कितनी दूर है?' नौकरने जवाब दिया—'साम्हर दूर सिमरिया नियरी। यद्यपि यहाँसे साम्हर एक मील है, परन्तु उसके लिए आपने पीठ दे दी है और सिमरियाके सम्मुख हो गये हैं। इससे चार सौ निन्यानवे मील दूर होने पर भी नजदीक है। इसी प्रकार आप गिरिराजके सम्मुख हैं, अतः वह नजदीक है और बरुआ-सागर दूर है।' उसके इस वाक्यको सुनकर मेरेमें स्फूर्ति आ गई और मैंने यह प्रतिज्ञा की—'हे प्रभो पार्श्वनाथ! मैं आपकी निर्वाणभूमिके लिए प्रस्थान कर रहा। जब तक मुझमें एक मील भी चलनेकी सामर्थ्य रहेगी तबतक पैदल चलूँगा, डोलीमें नहीं बैठूँगा।' प्रतिज्ञाके बाद ही एकदम चलने लगा और आध घण्टा बाद निवारी पहुँच गया। वहाँपर एक जैन मन्दिर और

चार घर जैनियोंके है। रात्रिभर रहा। प्रातःकाल भोजन करके मगरपुरके लिए चल दिया।

यहाँपर एक गहोई वैश्य आये। उन्होंने कहा 'आप थोड़ी देर मेरी बात सुनकर जाईये।' मैं रुक गया। आप बोले-'मैं एक बार श्री जगन्नाथजीकी यात्राके लिये जाने लगा तो मेरी माँ बोली—बेटा! तुम्हारे बापने अमुक आदमीका ऋण लिया था। वह उसे दान न कर सके, उसका मरण हो गया। अब तुम पहले उसे अदा करो फिर यात्रासे लिए जाओ, अन्यथा यात्रा सफल न होगी। मैंने माँकी आज्ञाका पालन किया और उस साहूकारके पास गया। साहूकारसे मैंने कहा—भाई! आपका जो रुपया मेरे बापके नामपर हो ले लीजिये। साहूकारने कहा—मुझे नहीं मालूम कितना कर्ज है। मेरे बापने दिया होगा, मैं क्या जानूं? जब मैंने बहुत आग्रह किया तब उसने बही निकाली। मैंने मेरे बापके नामपर जो रुपया निकला वह वह मय ब्याजके अदा किया। साहूकारने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उतना ही रुपया मिलाकर एक मन्दिरमें लगा दिया। यह उस जमानेकी बात है। पर अब यह जमाना आ गया कि रुपया अदा करनेमें अदालतका आश्रय लेना पड़ता है और अन्तमें कलिकाल कहकर सन्तोष करना पड़ता है। अस्तु, आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप जहाँ जावें वहाँ यह उपदेश अवश्य देवें कि पराया ऋण अदा करके ही तीर्थयात्रा आदि धार्मिक कार्य करें। मैंने कहा-'अच्छा।' उसने कहा—'अब आप सानन्द जाईये।'

: ४ :

मैं वहाँसे चलकर मगरपुर पहुँच गया। यहाँ दो जैन मन्दिर और दस घर जैनियोंके हैं। यहाँ अड़कू सिंघईजीके यहाँ ठहरा। आप स्वर्गीय बाईजीके चचेरे भाई थे। बड़े आदरसे तीन

दिन रक्खा। चलते समय सप्रेम एक मील तक पहुँचानेके लिये आये। जब मैं चलने लगा तब आपका हृदय भर आया। वियोग में विषाद न होना कठिन काम है। यहाँसे चलकर टेरका आया। यहाँ पर दो मन्दिर और पन्द्रह घर जैनियोंके हैं। यहाँ पर समाजमें वैमनस्य था वह दूर हो गया।

यहाँसे चलकर मऊरानीपुर आया। यहाँ पर दस विशाल जैन मन्दिर और साठ घर जैनियोंके हैं। प्रायः सभी सम्पन्न हैं। यहाँ पर शैली अच्छी है। कई भाई स्वाध्यायके प्रेमी हैं। मन्दिर-में धर्मशाला है, उसमें सौ आदमी ठहर सकते हैं। यहाँ दो दिन रहकर मऊ चला गया। यहाँ पर मन्दिरोंका समुदाय अच्छा है, परन्तु अब जैनियोंकी न्यूनता है। यहाँ पर वैष्णव लोगोंके भी विशाल मन्दिर हैं। पूजा पाठका प्रबन्ध उत्तम है।

दो दिन रहकर यहाँसे आलीपुरको चला। यह स्थान महा-राज आलीपुरका है। आप क्षत्रिय हैं। आपका महल आलीपुरामें है। यहाँ पर एक दिन ठहरा। यहाँके राज्यका प्रबन्ध बहुत ही उत्तम है। आपके राज्यमें किसानोंसे मालगुजारीका रुपया नहीं लिया जाता। उत्पत्तिके ऊपर कर है। यदि छः मन गल्ला हुआ तो एक मन राजाको देना पड़ता है। यदि किसीको कोई अर्जी करनी पड़ती है तो महाराजके पास जाकर स्वयं निवेदन कर सकता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि यहाँकी प्रजा बहुत आनन्दसे अपना जीवन बिताती है।

यहाँसे चलकर नयागाँव छावनी आ गये और शोभाराम भैयालाल महेवावालोंके यहाँ ठहर गये। यहाँ पर बुन्देलखण्ड राज्योंको देख रेख करनेके लिये एजेण्ट साहब रहते हैं। यहाँसे चलकर महेवा आये। यहाँ पर भैयालालने पूर्ण आतिथ्य सत्कार किया। यह स्थान चरखारी राज्यमें है। यहाँकी प्रजा भी आनन्द से जीवन बिताती है, परन्तु आलीपुरकी बराबरी नहीं कर

सकती ! यहाँ एक दिन रहकर राज्यस्थान छतरपुरमें आ गया। यह स्थान बहुत सुरम्य है। यहाँ पर संस्कृत शास्त्रोंका अच्छा भण्डार है। श्री बिहारीलालजी साहब संस्कृतके उत्तम विद्वान् हुए हैं। आपकी कविता प्राचीन कवियोंके सदृश होती थी। आप श्री भागचन्द्रजी साहबके शिष्य थे। शान्त परिणामी और प्रतिष्ठाचार्य भी थे।

जिन दिनों आप भागचन्द्रजी साहबसे अध्ययन करते थे उस समय आपके साथमें पण्डित करगरलालजो पद्मावती पोरवाल भी अध्ययन करते थे। आप ही के सुपुत्र स्वर्गीय श्रीमान् न्यायदिवाकर पण्डित पन्नालालजी थे। जिनकी प्रतिभाको बड़े बड़े विद्वान् सराहते थे। आप निर्भीक वक्ता थे। वाद करनेमें केशरी थे और असाधारण प्रतिष्ठाचार्य थे। बड़े बड़े राजा आपको सादर बुलाते थे। महाराज छतरपुरने तो आपको अनेक बार बुलाया था। छतरपुरमें जैनियोंकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

गाँवके बाहर एक टेहरी पर पाण्डेजीका मन्दिर है। आजकल वहाँ हिन्दी नार्मल स्कूल है। यहाँ पर मन्दिरोंमें विशाल मूर्तियोंकी न्यूनता नहीं है, परन्तु आजकल शास्त्रप्रवचन भी नहीं होता। यहाँ पर पं० हीरालालजी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। आप चाहें तो समाजका बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं, परन्तु आपका लक्ष्य इस ओर नहीं। प्रथम तो संसारमें मनुष्य जन्म मिलना अति कठिन है। फिर मनुष्य जन्म मिलकर योग्यताकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है। योग्यताको पाकर जो स्वपरोपकर नहीं करते वे अत्यन्त मूढ़ हैं। मूढ़ हैं....यह लिखना आपेक्षिक है, यावत्प्राणी हैं। सब अपने अपने अभिप्रायसे प्रवृत्ति करते हैं, किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि जिस क्रियाके करनेसे अपनी आत्माको कलुषताका सामना करना पड़े तथा धक्का पहुँचे वह कार्य करना अवश्य हेय है। संसार है, इसमें जो न हो वह अल्प है।

यहाँसे चलकर एक दिन राजधानीमें आया। उसका नाम नहीं लिखना चाहता। यहाँ भट्टारकके शिष्य थे जो बहुत ही योग्य एवं विद्वान् थे। आपका राजाके साथ मैत्रीभाव था। एक वर्षा-कालमें पानीका अकाल पड़ा, खेती सूखने लगी। प्रजामें त्राहि त्राहि मच गई। प्रजागणने राजासे कहा—'महाराज! पानी न बरसनेका कारण यह है कि यहाँ पर जैनगुरु भट्टारकका एक चेला रहता है, वह ईश्वरको सृष्टिकर्ता नहीं मानता, परमात्मा निखिल जगत्का नियन्ता है, उसीकी अनुकम्पासे विश्वके प्राणी सुखके पात्र होते हैं। उसीकी अनुकम्पासे प्राणी अनेक आपत्तियों से सुरक्षित रहते हैं, अतः उस भट्टारकके शिष्यको यहाँसे निकाल दीजिये जिससे देशव्यापी आपत्ति टल जावे।' राजाने कहा—'यह तुम लोगोंकी भ्रान्ति है। मनुष्योंके पुण्य-पापके आधीन सुख दुख होता है। भगवान् तो सिर्फ साक्षीभूत हैं। अथवा कल्पना करो कि भगवान् ही कर्ता हैं, परन्तु फल तो जैसा हम लोग पुण्य पाप करेंगे वैसा ही होगा। जैसे हम राजा हैं। हमारी प्रजामें जो चोरी करेगा उसे हम चोरी करनेका दण्ड देवेंगे। यदि चोरी करनेवालेको दण्ड न दिया जायगा तो अराजकता फैल जावेगी इसी तरह ईश्वरको मान लो। जैनगुरुके रहनेसे पानी नहीं बरसा, यह आप किस आधारसे कहते हैं। विवेकसे बात करना चाहिये। आप लोग जानते हैं कि जैनियोंके साधु दिगम्बर होते हैं। ग्रामके बाहर रहते हैं। चौबीस घण्टेमें एक बार ग्राममें आकर भोजन करते हैं। पश्चात् फिर वनमें चले जाते हैं। सबसे मैत्री भाव रखते हैं। वे तो यहाँ हैं नहीं। यह जो हैं भट्टारकके शिष्य हैं, परन्तु वे भी बड़े शिष्ट हैं, विद्वान् हैं, दयालु हैं, सदाचारकी मूर्ति हैं, परिमित परिग्रह रखते हैं, जैनियोंके यहाँ भोजन करते हैं, किसीसे याचना नहीं करते, मेरा उनके साथ स्नेह है, निरन्तर उनके मुखसे आप लोगोंके हित पोषक वचन ही सुननेमें

आते हैं। वे निरन्तर कहते रहते हैं कि महाराज ! ऐसा नियम बनाइये कि जिससे राज्यभरमें सदाचारकी प्रवृत्ति हो जाय। आप सदा मद्य, मांस, मधुके त्यागका उपदेश करते हैं। अनाचार रोकनेके लिये उनका कहना है कि बाजारू औरतें शहर में न रहें। उनकी आजीविकाके लिये कोई कलाभवन बना दिया जावे। मुझे भी निरन्तर यही उपदेश देते हैं कि महाराज ! आप प्रजा-पति हैं और चूँकि पशु भी आपकी प्रजा हैं, अतः इनका भी घात न होना चाहिए। इसलिए आप लोग इनके निकालनेका प्रस्ताव वापिस ले लीजिये...।' महाराज ने बहुत कुछ कहा, परन्तु समुदायने एक नहीं सुनी और कहा—तो हमको आज्ञा दीजिये, हम ही चले जावें।'

महाराजने कहा—'खेद है कि लोगोंके आग्रहसे आज मुझे एक निरपराध व्यक्तिको राज्यसे बाहर जानेकी आज्ञा देकर न्याय-का घात करना पड़ रहा है। एक दरबानसे कहा कि पाण्डेजीसे कह दो—'महाराज ! आप मेरा राज्य छोड़कर अन्य स्थानमें चले जाइये। आपके रहनेसे हमारी प्रजामें क्षोभ रहता है।'

दरबान पाण्डेजीके पास गया और कहने लगा कि 'महाराज ! आपको राजाज्ञा है कि राज्यसे बाहर चले जाओ।' पाण्डेजीने कहा कि—'महाराजसे कह दो कि आपकी आज्ञाका पालन होगा, परन्तु आप एक बार मुझसे मिल जावें।' दरबानने आकर महाराजको पाण्डेजीका संदेश सुना दिया। महाराजने पाण्डेजीके पास जाना स्वीकृत कर लिया।

पाण्डेजीने दरबानके जानेके बाद मन्त्रराजका आराधन किया। महाराज जब पाण्डेजीके यहाँ आनेको उद्यत हुए तब कुछ-कुछ बादल उठे और जब उनके पास पहुँचे तब अखण्ड मूसलाधार वर्षा होने लगी। आपका जब पाण्डेजीसे समागम हुआ तब आपने बहुत ही प्रसन्नता प्रकट की और कहा

कि—'महाराज ! मैं अपनी आज्ञा वापिस लेता हूँ।' पाण्डेजी बोले—'आपकी इच्छा, परन्तु आपने प्रजाके कहे अनुसार राज्यसे बाहर जानेकी आज्ञा तो दे ही दी थी। यह तो विचारना था कि मैं कौन हूँ ? क्या मुझमें पानी रोकनेकी सामर्थ्य है। मुझमें क्या किसीमें यह सामर्थ्य नहीं। जीवन-मरण, सुख-दुख ये सब प्राणियोंके पुण्य-पापके अनुसार होते हैं। तथाहि—

'सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्म्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्यात्पुमान् मरणजीवितदुःखसौख्यम्।'

इस लोकमें जीवोंके जो मरण-जीवन सम्बन्धी दुःख-सुख हैं वे सदाकाल नियमपूर्वक अपने-अपने कर्मोदयसे होते हैं। ऐसा होनेपर भी जो मनुष्य परके मरण, जीवन, सुख और दुःखका कर्ता अपनेको मानता है वह अज्ञान है। अन्यच्च—

'अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य
पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते
मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥'

पूर्व कथित अज्ञानको प्राप्त होकर जो परसे परको सुख-दुःख एवं जीवन-मरन देखते हैं वे अहंकार रसके द्वारा करनेके इच्छुक जीव नियमसे मिथ्यादृष्टि होते हैं और नियमसे आत्मघाती होते हैं। संसारमें जीवन, मरण, सुख और दुःख जो कुछ भी जीवोंके देखा जाता है वह सब स्वकृत कर्मोंके उदयसे होता है। उनका जो अपनेको कर्ता मानते हैं। अर्थात् उनमें राग-द्वेष करते हैं वे अज्ञानी हैं। जैस कोई असावधानीसे बिना देखे मार्ग चल रहा है उसे अकस्मात् पत्थरकी चोट लग गई तो वह पत्थरको इस

भावनासे तोड़ने लगा कि यदि यह पत्थर मार्गमें न होता तो मुझे चोट न लगती। पर वह यह नहीं सोचता कि यदि मैं देखकर चलता तो यह चोट न लगती। और भी कहा है कि—

'वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये
महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
गुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि।'

जब कि वस्तुकी मर्यादा ही ऐसी है तब अन्यपर रोष करना कहाँका न्याय है? संसारमें कौन मनुष्य चाहता है कि मैं धनी न होऊँ, विद्वान् न होऊँ, राजा न होऊँ, परन्तु होना अपने अधीनकी बात नहीं है। जैसा कि कहा है—

'यशःश्रीसुतमित्रादि सर्वं कामयते जगत्।
नास्य लाभोऽभिलाषेऽपि विना पुण्योदयात्सतः'॥
'जरामृत्युदरिद्रादि न हि कामयते जगत्।
तत्संयोगो बलादस्ति सतस्तत्राशुभोदयात्॥'

प्राणीमात्र चाहते हैं कि हमारे यश हो, लक्ष्मी हो, पुत्र हो, मित्र हो; किन्तु पुण्योदयके निमित्त न मिलनेपर कुछ नहीं होता और जरा, मरण, दरिद्रता, मूर्खता जगत्में कोई नहीं चाहता, किन्तु पापकर्मके उदयका निमित्त मिलनेपर नहीं चाहनेपर भी इन अनिष्टकारी पदार्थोंका संयोग होता है...इत्यादि बहुत कुछ दृष्टान्त इस विषयमें हैं, फिर भी आपने अपनी प्रजाके कहनेसे हमको अपना शत्रु बलात्कार समझ लिया। मेरे चातुर्मासमें वहीं रहनेका नियम था। मैं स्वेच्छासे अपने नियमका घात न करता। आप मुझे बलात्कार निकाल देते, यह अन्य बात थी। खेद इस बातका है कि पानी बरसनेसे आपने यह विश्वास कर लिया कि यह करामात पंडेजीकी है। यह भी आपकी धारणा मिथ्या है।

यदि मैं इस बरसानेमें कारण हुआ तो मैं स्वयं विधाता हो गया।

'सुनहु भरत भावी प्रबल विलख कहो मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरण जश अपजश विधिहाथ॥'

अतः इस भ्रान्तिको छोड़ो कि जल बरसानेमें मेरा अतिशय है। मैं भी कर्माक्रान्त हूँ। जैसी आपकी अवस्था है वैसी ही मेरी अवस्था है। इतना अन्तर अवश्य है कि आपकी श्रद्धा डमाडोल (चञ्चल) है और मेरी श्रद्धा अचल है।

आप अपने व्यवहारसे लज्जित न हों। मैं आपको न तो मित्र मानता हूँ और न शत्रु ही। मेरे कर्मका विपाक था, जिससे आपने शत्रु-मित्र जैसा काम किया।'

महाराज बोले—'ठीक है, ऐसा ही होना था। अब इस विषयमें अधिक चर्चा करनेकी आवश्यकता नहीं। मैं आपसे प्रसन्न हूँ और मेरी आजसे यह घोषणा है कि जैनका जब रथ निकले तब उसे आवश्यक बाह्य सामग्री राज्यसे दी जावे।'

इसके बाद पाण्डेजीने सर्व शान्तिके लिये शान्ति-विधान किया। कहनेका अभिप्राय यह है कि पहले इस प्रकारके निर्भीक और गुणी मनुष्य होते थे।

यहाँ तीन दिन रहकर खजराहा क्षेत्रके लिये चल दिये। बीचमें दो दिन रहकर तीसरे दिन खजराहा पहुँच गये।

: ६ :

खजराहाके जैन मन्दिर बहुत ही विशाल और उन्नत शिखर-वाले हैं। एक मन्दिरमें श्रीशान्तिनाथ स्वामीकी सातिशय प्रतिमा विराजमान है, जिसके दर्शन करनेसे चित्तमें शान्ति आ जाती है। यहाँके मन्दिरोंमें पत्थरोंके ऊपर ऐसी शिल्पकला उत्कीर्ण की गई है कि वैसी कागजपर दिखाना भी दुर्लभ है।

मन्दिरके चारों ओर कोट है, बीचमें बावड़ी और कूप है, धर्मशाला है; परन्तु प्रबन्ध नहीं के तुल्य है। क्षेत्रकी रक्षाके लिये न तो कोई भृत्य है न मुनीम। केवल पुजारी और माली रहता है। आस-पास जैनियोंकी संख्या अल्प है। छतरपुरवाले चाहें तो प्रबन्ध कर सकते हैं, परन्तु उनकी इस ओर दृष्टि नहीं। पन्नावालोंको भी इसकी उन्नतिमें कुछ विशेष रुचि नहीं।

यहाँ पर वैष्णवोंके बड़े बड़े विशाल मन्दिर हैं। फाल्गुनमें एक मासका मेला रहता है। दूर दूरसे दुकानदार आते हैं। लाखोंका माल बिकता है। महाराज छतरपुर भी मेलामें पधारते हैं।

यहाँसे चलकर तीन दिन बाद पन्ना पहुँच गए। यहाँ पर बाबू गोविन्दलालजी भी आ गये। आप गयाके रहनेवाले हैं। आपको पचहत्तर रुपया पेन्सन मिलती है। आप संसारसे अत्यन्त उदास हैं। आपने गयाके प्राचीन मन्दिरमें हजारों रुपये लगाये हैं। एक हजार रुपया स्याद्वाद विद्यालय बनारस को प्रदान किये हैं और तीन हजार रुपया फुटकर खर्च किये हैं। आपका समय धर्मध्यानमें जाता है। आप निरन्तर सत्समागममें रहते हैं। यहाँ पर हम लोग सिंघई रामरतनके घर पर ठहर गये। आपके पुत्र-पौत्रादि सब ही अनुकूल हैं। आप आतिथ्यसत्कारमें पूर्ण सहयोग देते हैं। हमको पन्द्रह दिन नहीं जाने दिया। हम लोगोंने बहुत कुछ कहा, परन्तु एक न सुनी।

पन्द्रह दिनके बाद चलकर दो दिनमें पड़रिया आये। यहाँ तीन दिन रहना पड़ा। यहाँ सबसे विलक्षण बात यह हुई कि एक आदमीने यहाँ तक हठ की कि यदि आप हमारे घर भोजन नहीं करेंगे, तो हम अपघात कर लेंगे। अनेक प्रयत्न करने पर यहाँसे निकल पाये और तीन दिनमें सतना पहुँच गये। यहां पर बड़े सत्कारसे रहे। लोग नहीं आने देते थे। अतः सेठ कमलापति

और बाबू गोविन्दलालजीको रेलपर भेज दिया और मैं सामायिकके मिससे ग्रामके बाहर चला गया और वहींसे रीवाँके लिये प्रस्थान कर दिया। बादमें ठेला, जो कि साथ था, आ गया पचास आदमी तीन मील तक आये। सतनामें सिंघई धर्मदासजी एक रत्न आदमी हैं। आप बहुत ही परोपकारी जीव हैं। तीन दिनमें रीवाँ पहुँचे। यहाँ पर दो मन्दिर हैं। श्रीशान्तिनाथ स्वामीकी प्रतिमा अतिमनोज्ञ है। धर्मशाला भी अच्छी है। एक मन्दिरकी दहलान श्रीमहाराजकी रानी साहबाने बनवा दी है।

यहाँ तीन दिन रहकर मिर्जापुरके लिये चल दिये। यहाँसे मिर्जापुर सौ मील है। बीचमें कहीं जैनोंका घर नहीं, अतः भोजनका प्रबन्ध स्वयं करते थे। बारह दिनमें मिर्जापुर पहुँच गये। मार्गकी शोभा अवर्णनीय है। वास्तवमें मिर्जापुर रम्य जिला है। यहाँ पर जैन मन्दिर अति सुन्दर हैं। समैयोंका एक चैत्यालय भी है। वे लोग बहुत सज्जन हैं, परन्तु मन्दिरमें नहीं आते। मैं उनके यहां भोजन करनेके लिए भी गया। उनके घरोंमें धार्मिक प्रवृत्ति है। यहां पर उन हीरालाल सिंघईका घर है जिन्होंने कि कटनीका बोर्डिङ्ग बनवाया था। अब उनके नाती हैं जो कई भाई हैं, परन्तु इनकी धर्ममें उतनी रुचि नहीं, जितनी कि इनके बाप-दादोंकी थी। यहां पर गंगाजीका घाट बहुत सुन्दर बना हुआ है। गंगाके घाट पर ही विन्ध्यवासिनी देवीका मन्दिर है। बहुत दूर-दूरसे भारतवासी आते हैं, परन्तु खेद इस बातका है कि यात्रीगण पण्डोंकी बदौलत देवीको जगदम्बा कहकर भी उसके समक्ष निर्मम छागोंका बलिदान कर देते हैं। संसारमें कषायोंके वशमें जो जो अनर्थ हो, अल्प है।

यहाँसे चलकर चार दिनमें वाराणसी-काशी पहुँच गये और पार्श्वनाथके मन्दिरमें भेलूपुर ठहर गये। यहां पर दो धर्मशालाएँ हैं—एक पञ्चायती है, जिसमें आधी श्वेताम्बरों की ओर

आधी दिगम्बरोंकी है। साँझेकी धर्मशाला होनेसे यात्रीगणोंको कोई सुविधा नहीं। एक धर्मशाला—खड्गसेन उदयराजकी भी है, जिसका बहुभाग दुकानदारोंको किराये पर दे दिया है। मन्दिर दो हैं, दोनों ही उत्तम हैं।

यहाँ पर प्रभुघाटके ऊपर श्री बाबू देवकुमारजी आरा निवासीका बनवाया हुआ सुन्दर घाट है। घाटके ऊपर एक बड़ा सुन्दर महल है, जिसकी लागत कई लाख रुपये होगी। इसी में स्याद्वाद विद्यालय है। यह भी उन्होंने स्थापित किया था और उसकी सहायता आज तक उनके सुपुत्र निर्मलकुमारजी रईस बराबर करते रहते हैं। आप बहुत ही सज्जन हैं। विद्यालयके ऊपर एक सुन्दर छत है, जिसमें हजारों आदमी बैठ सकते हैं। बीचमें एक सुन्दर मन्दिर है, जिसके दर्शन करनेसे महान् पुण्य का बन्ध होता है। मन्दिरके बाद एक छोटा आँगन है। वहाँसे बाहर जानेका मार्ग है। उसके बाद एक छात्रावास है। बगलमें (रसोई घर) है। यहाँसे थोड़ी दूर चलकर रानीघाटपर श्री स्वर्गीय छेदीलालजीके द्वारा निर्मापित सुन्दर मन्दिर है, जो लाखों रुपयेकी लागतका है। मन्दिरके नीचे एक धर्मशाला भी है, जिसमें स्याद्वाद विद्यालयके छात्रगण रहते हैं। मैं भी इसी धर्मशालामें रहकर अध्ययन करता था। यहाँसे तीन मील चलकर शहरके भीतर मैदागिनीमें एक बहुत ही सुन्दर जिन मन्दिर है। एक धर्मशाला भी है, जिनमें यात्रीगण ठहरते हैं। यहाँ पर सब प्रकारकी सुविधा है। यहाँसे थोड़ी दूर पर एक चैत्यालय है, जिसमें हीराकी प्रतिमा है। यहाँसे थोड़े ही अन्तर पर एक पञ्चायती मन्दिर है, जिसमें बहुत जिनबिम्ब हैं। एक चैत्यालय श्रीखड्गसेन उदयराजका भी है।

बनारसमें तीन दिन रहा। इन्हीं दिनोंमें स्याद्वाद विद्यालय

भी गया। वहाँ पठन-पाठनका बहुत ही उत्तम प्रबन्ध है। यहाँके छात्र व्युत्पन्न ही निकलते हैं। विनयके भण्डार हैं। श्रीमान् पण्डित कैलाशचन्द्र जी, जो कि यहाँके मुख्याध्यापक हैं, बहुत सुयोग्य हैं। आप सहृदय व्यक्ति हैं। आपका छात्रोंके ऊपर बहुत स्नेह रहता है। पं० पन्नालालजी चौधरी सुपरिटेन्डेन्ट हैं। आप बहुत पुराने कार्यकर्ता एवं सुयोग्य व्यक्ति हैं।

बाबू हर्षचन्द्रजी वकील इस विद्यालयके अधिष्ठाता हैं और आप ही के काका साहब खजाञ्ची हैं। बाबू बनारसीदास जी अगरवाले इस विद्यालयके अनन्यभक्त थे, परन्तु आप परलोकवासी हो गये। समयकी बलिहारी है कि अब सब छात्रोंकी दृष्टि पाश्चात्य विद्याकी ओर झुक गई है। इसका फल क्या होगा, सो वीर प्रभु जानें। प्रायः सबकी दृष्टि अब इस ओर जा रही है कि शिक्षाकी बात पश्चात् और आजीविकाकी पहले। प्रत्येक संस्थामें अब इसी बातकी मीमांसा रहती है। यहाँसे सिंहपुरी गये।

: ६ :

सिंहपुरी (सारनाथ) में विशाल मन्दिर और एक बृहद् धर्मशाला है, जिसमें दो सौ मनुष्य सुखपूर्वक निवास कर सकते हैं। धर्मशालाके अहातेमें एक बड़ा भारी बाग है। मन्दिरमें इतना विशाल चौक है कि जिसमें पाँच हजार मनुष्य एक साथ धर्म श्रवण कर सकते हैं।

मैं जब दर्शन करके वापिस आ रहा था, तब एक साधु मिला। संन्यासी था। कानमें कुण्डल पहने था। गोरखनाथको माननेवाला था। मुझसे बोला—'मैं दर्शन करना चाहता हूँ।' मैंने उत्तर दिया 'आप सानन्द दर्शन कीजिये।' उसके पास एक झोली थी, जो उसने मेरे पास रख दी। मैंने कहा—'इसमें कुछ

है तो नहीं?' उसने कहा—'फक्कड़के पास क्या होता है? फिर भी आपको संदेह होता है तो देख लीजिये। भयकी बात नहीं मेरे पास गीताकी एक पुस्तक, दो लंगोटियां तथा एक लुटिया है। बश, अब जाऊँ?' मैंने कहा—'आइये।' वह गया और पन्द्रह मिनटमें दर्शन कर वापिस आ गया। मुझसे बोला'—मूर्ति अत्यन्त आकर्षक है। देखनेसे चित्तमें यही भाव आया कि शान्तिका मार्ग इसी मुद्रासे प्राप्त हो सकता है, परन्तु लोग इतने पुण्यशाली नहीं कि उस लाभके पात्र हो सकें। अस्तु, अब मैं जाता हूँ।' मैंने कहा—'मैं दो घण्टा बाद भोजन बनाऊँगा तब आप भोजन करके जाना।' वह बोला—'मैं अभीसे भोजनके लिये नहीं ठहर सकता। आप कष्ट न करिये।' मैंने कहा—'कुछ विलम्ब करिये।' वह ठहर गया। मैंने ओखम नौकरको बुलाया और कहा कि 'एक पाव सत्तू और आध पाव शक्कर इन्हें दे दो।' सुनते ही साथ वह साधु बोला कि 'आप तो दिगम्बर सम्प्रदायके हैं। क्या ऐसा नियम है कि दिगम्बर साधुको छोड़कर अन्य सभी मतके साधु साथमें भोजनकी सामग्री लेकर चलते हैं। जहाँ जाऊँगा वहीं भोजन मिल जावेगा। आप चिन्ता न कीजिये।'

मैंने उसे एक रुपया देनेका प्रयत्न किया। वह बोला कि 'आप निवृत्ति मार्गको दूषित करनेकी चेष्टा करते हैं। मैंने जिस दिन साधुता अंगीकार की उसी दिनसे द्रव्य स्पर्श करनेका त्याग कर दिया, परन्तु खेद है कि आपको यह विश्वास हो गया कि जैन साधुको छोड़कर सभी साधु परिग्रही होते हैं। जैन मतके सिद्धान्तों और अन्य मतके सिद्धान्तोंमें अन्तर है, यह मैं भी जानता हूँ, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि जैन ही त्याग कर सकते हों। आप मुझे लोभी बनाना चाहते हो, यह कहाँ का न्याय है?' मैंने कहा—'आप रेलमें नहीं बैठते?' उसने कहा—'फिर वही

बात ? रेल में या तो पैसे वाला बैठे या जिसे लातें तथा घूसा खाना हो वह बैठे। मैं तो जिस दिनसे साधु हुआ उसी दिनसे सवारियोंका त्याग कर दिया। और कुछ पूछना चाहते हो ?' मैंने कहा—'नहीं।' तो अब जाता हूँ, परन्तु आपसे एक बात कहना चाहता हूँ और वह यह कि 'आप किसीकी परीक्षा करनेकी चेष्टा कदापि न करिये। अपनी परीक्षा कीजिये। यदि आपकी कोई परीक्षा करने लगे तो आप जिस धर्मके सिद्धान्त पर चल रहे हों उसकी परीक्षामें कभी उत्तीर्ण नहीं होंगे, क्योंकि आपके अभिप्रायमें अभी आत्मीय अवगुणोंकी सत्य समालोचना करनेकी रुचि नहीं है। यदि आत्मोत्कर्षकी सत्य रुचि होती तो प्रातःकालका बहुमूल्य समय यों ही न खो देते। इस समय स्वाध्याय कर तत्त्वज्ञानकी निर्मलता करते, परन्तु वह तो दूर रहा, व्यर्थ ही मेरे साथ एक घटिका समय खो दिया। इतनेमें तो मैं दो मील चला जाता और आप दो पत्र स्वाध्यायमें पूर्ण करते। परन्तु अभी वह दृष्टि नहीं। अभी तो परके गुण-दोष विवेचन करनेके चक्रमें पड़े हो। जिस दिन इस विषमताके जालसे मुक्त होओगे उसी दिन स्वकीय कल्याणपथके पथिक स्वयमेव हो जाओगे। यह स्पष्ट बात सुनकर यदि आपको कुछ उद्विग्नता हुई हो, तो मैं जाता हूं। मेरा अभिप्राय आपको खिन्न करनेका नहीं, परन्तु आप अपनी विषम परिणतिसे स्वयं उद्विग्न हो जावें तो इसमें मेरा क्या अपराध है ? अच्छा नमस्ते।' ऐसा कहकर वह चला गया।

मैंने यह विचार किया कि अनधिकार कार्यका यही फल होता है। मन्दिरसे धर्मशालामें आया। भोजन तैयार था, अतः आनन्दसे भोजनकर बुद्धदेवका मंदिर देखनेके लिये चला गया।

जैन मन्दिरसे कुछ ही दूरीपर बुद्धदेवका बहुत ही

सुंदर मंदिर बना है। इस मंदिरके बनवानेवाले श्रीधर्मपाल साधु हैं। ये बौद्धधर्मके बहुत भारी विद्वान् हैं। यहाँ पर बौद्धधर्मानुयायी बहुतसे साधु रहते हैं। मंदिरमें दरवाजेके ऊपर एक साधु रहता है जो बुद्धदेवकी जीवनी बताता है और उनके सिद्धान्त समझाता है। यदि यह व्यवस्था वहाँके जैन मन्दिरमें भी रहती तो आगत महाशयोंको जैनधर्मका बहुत कुछ परिचय होता जाता, परन्तु लोगोंका उस ओर ध्यान नहीं। वे तो सङ्गमर्मरका फर्श और चूना ईंट लगवानेमें ही महान् पुण्य समझते हैं। अस्तु।

सबसे महती त्रुटि तो इस समय यह है कि इस धर्मका माननेवाला कोई सार्वजनिक प्रभावशाली नहीं। ऐसे पुरुषके द्वारा अनायास ही धर्मकी वृद्धि हो जाती है। यद्यपि धर्म आत्मा का स्वभाव है तथापि व्यक्त होनेके लिए कारणकूटकी आवश्यकता होती है। जिस धर्ममें प्राणिमात्रके कल्याणका उपदेश हो और बाह्यमें खाद्य-पेय ऐसे हों कि जिनसे शारीरिक स्वास्थ्य सुरक्षित रहे तथा आत्मपरिणतिकी निर्मलतामें सहकारी कारण हो, फिर भी लोकमें उसका प्रचार न हो....इसका मूल कारण जैनधर्मानुयायी प्रभावशाली व्यक्तिका न होना ही है।

आप जानते हैं कि गृहस्थको मद्य मांस मधुका त्याग करना जैनधर्मका मूल सिद्धान्त है। यह बात प्रत्यक्ष देखनेमें आती है कि मदिरा पान करनेवाले उन्मत्त हो जाते हैं और उन्मत्त होकर जो जो अनर्थ करते हैं, सब जानते हैं। मदिरा पान करनेवालोंकी तो यहाँ तक प्रवृत्ति देखी गई कि वे अगम्यागमन भी कर बैठते हैं। मदिराके नशामें मस्त हो नालियोंमें पड़ जाते हैं। कुत्ता मुखमें पेशाब कर रहा है फिर भी मधुर-मधुर कह कर पान करते जाते हैं। बड़े बड़े कुलीन मनुष्य इसके नशेमें अपना सर्वस्व खो बैठते हैं। उन्हें धर्मकथा नहीं रुचती। केवल वेश्यादि व्यसनोंमें

लीन रह कर इहलोक और परलोक दोनोंकी अवहेलना करते रहते हैं। इसीको श्री अमृतचन्द्र स्वामीने पुरुषार्थसिद्धयुपायमें अच्छी तरह दर्शाया है। लिखते हैं—

'मद्यं मोहयति मनो मोहितचित्तस्तु विस्मरति धर्मम्।
विस्मृतधर्मो जीवो हिंसां निःशङ्कमाचरति॥'

मदिरा मनको मोहित करती है। जिसका चित्त मोहित हो जाता है वह धर्मको भूल जाता है और जो मनुष्य धर्मको भूल जाता है वह निःशङ्क होकर हिंसाका आचरण करता है।

जैनधर्मका दूसरा सिद्धान्त यह है कि मांस भक्षण नहीं करना चाहिये। मांसकी उत्पत्ति जीवघातके बिना नहीं होती। जरा विचारो तो सही कि जिस प्रकार हमें अपने प्राण प्यारे हैं उसी प्रकार अन्य प्राणियोंको क्या उनके प्राण प्यारे न होंगे? जब जरासी सुई चुभ जाने अथवा काँटा लग जानेसे हमें महती वेदना होती है तब तलवारसे गला काटने पर अन्य प्राणियोंको कितनी वेदना न होती होगी? परन्तु हिंसक जीवोंको इतना विवेक कहाँ? हिंसक जीवोंको देखनेसे ही भयका संचार होने लगता है। हाथी इतना बड़ा होता है कि यदि सिंहपर एक पैर रख दे तो उसका प्राणान्त हो जावे, परन्तु वह सिंहसे भयभीत हो जाता है। क्रूर सिंह छलांग मार कर हाथीके मस्तकपर धावा बोल देता है। इसीसे उसको गजारि कहते हैं। मांस खानेवाले अत्यन्त क्रूर हो जाते हैं। उनसे संसारका उपकार न हुआ है, न होगा। भारतवर्ष दयाप्रधान देश था। इसने संसारके प्राणी-मात्रको धर्मका उपदेश सुनाया है। यहाँ ऐसे-ऐसे ऋषि उत्पन्न हुए कि जिनके अवलोकनसे क्रूर जीव भी शान्त हो जाते थे। जैसा कि एक जगह कहा है—

'सारङ्गी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतं
मार्जारी हंसबालं प्रणयपरवशं केकिकान्ता भुजङ्गम् ।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहम् ॥'

जिनका मोह नष्ट हो चुका है, कलुषता शान्त हो चुकी और जो समभावमें आरूढ़ हैं ऐसे योगीश्वरोंका आश्रय पाकर हिरणी सिंहके बालकको अपना पुत्र समझ कर स्पर्श करने लगती है, गाय व्याघ्रके बालकको अपना पुत्र समझने लगती है, बिल्ली हंसके बालकको और मयूरी प्रेमके परवश हुए सर्पको स्पर्श करने लगती है···इस प्रकार विरोधी जन्तु मद रहित होकर आजन्मजात वैर भावको छोड़ देते हैं—सबमें परस्पर मैत्रीभाव हो जाता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि जिनकी आत्मा राग, द्वेष, मोहसे रहित हो जाती है उनके सान्निध्यमें क्रूरसे क्रूर जीव भी शान्तभावको प्राप्त हो जाते हैं इसमें आश्चर्यकी क्या बात है, क्योंकि आत्माका स्वभाव अशान्त नहीं है। जिसप्रकार जलका स्वभाव शीतल है, परन्तु अग्निका निमित्त पाकर गर्म हो जाता है और अग्निका निमित्त दूर होते ही पुनः शीतल हो जाता है उसी प्रकार आत्मा स्वभावसे शान्त है, परन्तु कर्मकलङ्कका निमित्त पाकर अशान्त हो रहा है। ज्यों ही कर्मकलङ्कका निमित्त दूर हुआ त्यों ही पुनः शान्त हो जाता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि यद्यपि सिंहादिक क्रूर जन्तु हैं तो भी उनकी आत्मा शान्त स्वभाववाली है, इसीलिये योगीश्वरोंके पादमूलका निमित्त पाकर अशान्ति दूर हो जाती है। योगियोंके पादमूलका आश्रय पाकर उनकी उपादानशक्तिका विकास हो जाता है, अतः मोही जीवोंको उत्तम निमित्त मिलानेकी आवश्यकता है।

योगी होना कुछ कठिन बात नहीं। परन्तु हम राग, द्वेष और

मोहके वशीभूत होकर निरन्तर अपने-पराये गुण-दोष देखते रहते हैं। वीतराग परिणतिका, जो आत्माका स्वभाव है, अमल नहीं करते। यही कारण है कि आजन्म दुःखके पात्र रहते हैं। जिन्होंने राग, द्वेष, मोहको जीत लिया उनकी दशा लौकिक मानवोंसे भिन्न हो जाती है। जैसा कि कहा है—

'एकः पूजां रचयति नरः पारिजातप्रसूनैः
क्रुद्धः कण्ठे क्षिपति भुजगं हन्तुकामस्ततोऽन्यः।
तुल्या वृत्तिर्भवति च तयोर्यस्य नित्यं स योगी
साम्यारामं विशति परमज्ञानदत्तावकाशम्॥'

'जिस महानुभाव योगीकी ऐसी वृत्ति हो गई है कि कोई तो विनय पूर्वक पारिजातके पुष्पोंसे पूजा कर रहा है और कोई क्रुद्ध होकर मारनेकी इच्छासे कण्ठमें सर्प डाल रहा है, परन्तु उन दोनोंमें ही जिसकी सदा एकसी वृत्ति रहती है वही योगीश्वर समभावरूपी आराममें प्रवेश करता है। ऐसे समभावरूपी क्रीडावनमें ही केवलज्ञानके प्रकाश होनेका अवकाश है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि जहाँ आत्मामें निर्मलता आजाती है वहाँ शत्रु-मित्रभावकी कल्पना नहीं होती। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे शत्रु मित्रके स्वरूपको नहीं समझते हैं, क्योंकि वह तो ज्ञानका विषय है। परन्तु मोहका अभाव होनेसे उनके शत्रु-मित्रकी कल्पना नहीं होती। इस समय ऐसे महापुरुषोंकी विरलता ही क्या, अभाव ही है, इसीलिये संसारमें अशान्तिका साम्राज्य है। जिसके मुखसे सुनो, 'परोपकार करना चाहिये' यही बात निकलती है, परन्तु अपनेको आदर्श बनाकर परोपकार करनेकी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती। जब तक मनुष्य स्वयं आदर्श नहीं बनता तब तक उसका संसारमें कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता।

यही कारण है कि अनेक प्रयत्न होने पर भी समाजकी उन्नति नहीं देखी जाती।

जैनधर्मका तीसरा सिद्धान्त मधुत्याग करना है। मधु क्या है? अनन्त सम्मूर्छन जीवोंका निकाय है, मक्खियोंका उच्छिष्ट है। परन्तु क्या कहें जिह्वालम्पटी पुरुषोंकी बात? उन्हें तो रसास्वादसे मतलब, चाहे उसकी एक बूँदमें अनंत जीवोंका संहार क्यों न हो जाय। जिनमें जैनत्वका कुछ अंश है, जिनके हृदयमें दयाका कुछ संचार है उनकी प्रवृत्ति तो इस ओर स्वप्नमें भी नहीं होनी चाहिये। यह कालका प्रभाव ही समझना चाहिये कि मनुष्य दिन प्रति-दिन इन्द्रियलम्पटी होकर धार्मिक व्यवस्थाको भंग करते जाते हैं और जिसके कारण समाज अवनत होती जा रही है। राजाओंके द्वारा समाजका बहुत अंशोंमें उत्थान होता था, परन्तु इस समयकी बलिहारी। उनका आचरण जैसा हो रहा है वह आप प्रजाके आचरणसे अनुमान कर सकते हैं। जैनियोंमें यद्यपि राजा नहीं, तो भी उनके समान वैभवशाली अनेक महानुभाव हैं और उनके सदृश अधिकांश प्रजावर्ग भी है। इसकी विशेष समालोचना आप लोग स्वयं कर सकते हैं।'''इस तरहके अनेक विकल्प उठते रहे। सिंहपुरीमें तीन दिन रहा।

: ७ :

सिंहपुरीसे चलकर मोगलसरायके पास एक शिवालयमें रात्रिके समय ठहर गये। स्वाध्याय द्वारा समयका सदुपयोग किया, प्रातःकाल वहाँसे चल दिये और मोगलसरायसे चार मील की दूरीपर एक धर्मशालामें ठहर गये। भोजनादिसे निवृत्त होकर जब चलने लगे तब बहुत बारिस हुई। मार्गमें बड़ा कष्ट पाया। पांच मील चलकर एक स्कूलमें ठहर गये। मास्टर साहब

बहुत सज्जन पुरुष थे। उन्होंने स्कूल खाली करा दिया, धान्यका पियाल मँगा दिया तथा सर्व प्रकारका सुभीता कर दिया। हम लोगोंने उनके साथ पुष्कल धर्मचर्चा की। आप जैनधर्मके सिद्धान्तोंकी प्रशंसा करने लगे।

यहाँसे आठ दिन बाद हम लोग सकुशल डालमियानगर पहुँच गये। यह नगर सोनभद्र नदीके तट पर बसा हुआ है। यहाँ पर श्रीरामकृष्णजी डालमिया, जो कि भारतवर्षके गण्यमान्य व्यापारियोंमें प्रमुख हैं, निवास करते है। इसीसे यह नगर 'डालमिया नगर' इस नामसे प्रसिद्ध हो गया है। आपकी सुपुत्री रमारानी हैं जो कि आंग्लविद्यामें विदुषी है। विदुषी ही नहीं, दयाकी मूर्ति है। आपके सौजन्यका प्रभाव साधारण जनतापर अच्छा है। आपकी वेषभूषा साधारण है। आपको भूषणोंसे कुछ भी प्रेम नहीं। निरंतर ज्ञानार्जनमें ही अपना समय लगाती हैं। आपका सम्बन्ध श्रीमान् साहु शान्तिप्रसादजी नजीबाबादवालोंके साथ हुआ है। आपका कुल जैनियोंमें प्रसिद्ध है। आप पाश्चात्य-विद्याके पण्डित ही नहीं, जैनधर्मके महान् श्रद्धालु भी हैं। आपके प्रयत्नसे यहाँ एक जैन मन्दिर स्थापित हो गया है। आप प्रतिदिन उसमें यथासमय धर्मकार्य करते हैं। आपकी माता बहुत धर्मात्मा हैं। उनके नामसे आपकी धर्मपत्नीने छह लाख रुपया दानमें निकाला है। आपके दो पुत्र हैं। एकका नाम अशोक और दूसरेका नाम आलोक। इनकी शिक्षाके लिये आपने श्रीमान् नेमिचन्द्रजी एम० ए०, जो कि श्रीमान् पं० कुन्दनलालजी कटनीके सुपुत्र हैं, रख छोड़ा है। उन्हींकी देख-रेखमें बालकोंकी शिक्षा होती है। श्री चिरजीवी अशोक बहुत ही अल्पवयमें एन्ट्रेस पास कर चुका है।

एक दिनकी बात है—आलोक बच्चा, जो छः वर्षका होगा, हमसे कहने लगा—'आप जानते हैं हमारे बड़े भाईका नाम

अशोक क्यों पड़ा ?' मैंने कहा–'जैसे लोकमें नाम रख लेते हैं वैसे ही आपके भाईका नाम रख लिया होगा।' आलोक कहने लगा—'नहीं, इसमें कुछ विशेष रहस्य है। यदि आपको समय हो तो कहूँ।' मैंने कहा—'आनन्दसे कहिये।' वह कहने लगा—'हमारे माता-पिताके कोई सन्तान न थी, इससे उन दोनोंके हृदयमें कुछ उद्विग्नता रहती थी और कुछ शोक भी। जब इस बालकका जन्म हुआ तब हमारे माता पिताको अपूर्व आनन्द हुआ। उनका सब शोक नष्ट हो गया, इसलिए उन्होंने इसका अशोक नाम रख लिया। यह बालक चन्द्रवत् बढ़ने लगा और आज एन्ट्रेंसमें पढ़ता है। बहुत ही सुयोग्य है। ऐसा पुण्यशाली है कि इसे सुयोग्य शिक्षक श्री नेमिचन्द्र जी एम० ए०, जो कि अत्यन्त सदाचारी और निपुण हैं, मिल गये।' मैंने कहा—'यह तो तुमने अच्छा कहा, परन्तु यह तो बताओ कि तुम्हारा नाम आलोक क्यों पड़ा।' वह बोला—'इसमें भी कुछ रहस्य है—जिस दिन मेरा जन्म हुआ, उस दिन दीपमालिका थी। नगर भरमें प्रकाशपुञ्ज व्याप्त था, इससे पिताजीने मेरा नाम आलोक रख लिया।' मैंने कहा—'बहुत ठीक, परन्तु यह तो बताओ कि आपकी माताका नाम रमादेवी क्यों हुआ ?' बालक बोला—'इनके वैभवसे ही इनका रमादेवी नाम सार्थक है।' फिर अपने आप बोला—'अब शायद आप यह पूछेंगे कि पिताजीका नाम शान्तिप्रसाद क्यों हुआ ?' मैंने कहा—'हाँ।' उसने उत्तर दिया–'जिनके अशोक और आलोकसे सुपुत्र हों, रमासी सुशीला और विदुषी गृहिणी हो, फिर भला वे शान्ति के पात्र न हों तो कौन होगा ?'

मैं बालककी तार्किक बुद्धिसे बहुत प्रसन्न हुआ। यह सब सामग्री अच्छे निमित्त मिलनेसे श्रीशान्तिप्रसादजीको प्राप्त हुई है जो कि विशेष पुण्योदयमें सहायक है। वर्तमानमें भी आप परो-

पकारादि कार्योंमें अपने समयका सदुपयोग करते हैं। आपको विशेष कार्य था, इसलिये आप कलकत्ता चले गये। मैं यहाँ पर एक दिन रहा।

: ८ :

डालमियानगरसे चलकर औरंगाबाद ठहरा। यहाँपर बाबू गोविंदलालजी आ गये तथा एक दिनके लिए बाबू कन्हैयालाल जी भी आ पहुँचे। आप बहुत ही शिष्ट हैं। जब तक गया नहीं पहुँचे तब तक आपका एक आदमी साथ बना रहा।

यहाँसे चम्पारन पहुँचे। यहाँ पर कई घर खण्डेलवालोंके हैं जो कि उत्तम आचरणवाले हैं। यहाँ पर एक बहुत ही सुन्दर मन्दिर है। यहाँके निवासियोंमें परस्पर कुछ वैमनस्य था, जो प्रयत्न करनेसे शान्त हो गया। यहाँ से गयाके लिए प्रस्थान कर दिया। मार्गमें कर्मनाशा नदी मिली। उसका जल मनुष्य उपयोगमें नहीं लाते। लोगोंकी यह श्रद्धा है कि इसका जल स्पर्श करनेसे पुण्य क्षय होता है। आगे चलकर एक पुनपुनगङ्गा मिली। लोकमें इसका महत्त्व बहुत है। इसके विषयमें लोगोंकी श्रद्धा है कि इसमें स्नान करनेसे पितृलोगोंको शान्ति मिलती है।

यहाँसे चलकर दो दिनमें शेरघाटी और वहाँसे चलकर दो दिनमें गया पहुँच गये। श्रीयुत बाबू कन्हैयालालजीके यहाँ ठहरे। आपने बहुत ही आतिथ्य-सत्कार किया। यहाँ पर बाबू गोविन्दलालजी, चिदानन्दजी त्यागी तथा बालचन्द्रजी त्यागी बबीनावाले आ गये। यहाँ दो मन्दिर हैं—एक चौकमें और एक प्राचीन गयामें। प्राचीन गयाका मन्दिर बहुत प्राचीन है। तीन सौ वर्षका है। काठका काम बहुत सुन्दर है। बाबूगोविन्दलालजी साहब इसका प्रबन्ध करते हैं। एक पुजारी मन्दिरकी पूजा करता है। यहाँपर एक धर्मशाला सेठ सूरजमल्लजीकी है, जिसमें महाराजाओंसे

लेकर साधारण मनुष्य तक ठहर सकते हैं। वर्तमानमें दस लाख लागतकी होगी। प्रबन्ध उत्तम है।

यहाँ से पाँच मील बौद्ध गयाका मन्दिर है जो बहुत प्राचीन है। यहाँ पर बुद्धदेवने तपश्चर्या कर शान्तिलाभ किया था। बहुत शान्तिका स्थान है। मंदिर भी उन्नत है। पहले इसकी जो कुछ भी व्यवस्था रही हो, परन्तु आज उस मंदिरके स्वामी गयाके महन्त हैं। मूर्तिकी दशा वैष्णव सम्प्रदायके अनुसार हो गई है और पूजा भी उसी सम्प्रदायके अनुसार होने लगी है। यहाँ बौद्ध लोग बहुत आते हैं, तिब्बत, चीन, जापान आदिके भी यात्री आते हैं और बुद्धदेव के दर्शनकर दीपावली लगाते हैं। 'गयामें श्राद्ध करनेसे बीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं'....ऐसी किम्ब-दन्ती प्रसिद्ध है। जो भी हो, लोग तो कल्याणकी भावनासे दान करते हैं। लाखों रुपया प्रतिवर्ष यहाँ दानमें आता है, परन्तु जैसा आता है वैसा ही चला जाता है। पहले यहाँ चौदह सौ घर पण्डों के थे, परन्तु अब कम हो गये है। दो सौ घरसे अधिक न होंगे।

यहाँ एक संस्कृत विद्यालय है जिसमें आचार्य परीक्षा तब पढ़ाई होती है। व्याकरण, न्याय, मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, साहित्य आदि शास्त्रोंका पठन-पाठन होता है। एक पाठशाला जैनियोंकी भी है, जिसमें नित्यनियमपूजा, छहढाला, द्रव्य-संग्रह तथा सूत्रजी तक पढ़ाई होती है। यहाँके जैनी प्रायः सम्पन्न हैं। नवीन मन्दिरकी प्रतिष्ठा बड़ी धूमधामसे हुई थी। उस समय मन्दिरको एक लाखकी आय हुई थी, परन्तु उस रुपयेका उपयोग केवल बाह्य कार्योंमें हुआ। एक तो २५०००) का रथ बना। दूसरे उसकी साजसजावटकी सामग्री खरीदी गई। इसी तरह शेष रुपया व्यय हो गए।

यहाँ पर पाठशालाके लिये भी पचीस हजार रुपयाका चन्दा हुआ था, परन्तु उसका अभी तक योग्य रीतिसे उपयोग नहीं हो सका। यहाँ पर धर्मकी रुचि अच्छी है। कई घरोंमें शुद्ध भोजन होता है। आचार-विचार अच्छा है। यहाँ पतासीबाई एक आदर्श महिलारत्न हैं। आपकी रुचि निरन्तर व्रत पालन और स्वाध्यायमें लीन रहती हैं। हृदयकी अत्यन्त कोमल हैं। शिक्षा प्रचारके लिये बहुत कुछ दान करती रहती हैं। यहाँ एक पुस्तकालय बहुत सुन्दर है, जिसमें सब तरहके ग्रन्थ और प्रचीन वस्तुओं का संग्रह है। यहाँसे चल कर बीचमें बड़े-बड़े सुन्दर दृश्य देखनेके लिये मिले। एक धनुवा-भलुआका वन मिला जो बारह मील विस्तृत है। बीचमें एक राजाका मकान बना है। वह स्थान धर्मसाधनके लिये अति उत्तम है, परन्तु वहाँ राजा साहब केवल आरण्य पशुओंका घात करने के लिये आते हैं। यही पुरुषार्थ आज कल इस पुण्यक्षेत्रमें रह गया है। आगे चल कर एक निर्मल पानीका झरना मिला, जिसका जल इतना उष्ण था कि खौलते हुए जलसे भी कहीं अधिक था। सौ गजके बाद एक कुण्डमें जब वह जल पहुँचा था तब स्नान करने के योग्य होता था। इस जलमें स्नान करनेसे खाज दाद आदि रोग निवृत हो जाते हैं। लोगोंका कहना तो यहाँ तक है कि इससे सब प्रकारके चर्मरोग दूर हो जाते हैं। यहाँ से चल कर आठ दिन बाद श्री गिरिराज पहुँच गये। अपूर्व आनन्द हुआ। मार्गकी सब थकावट एक दम दूर हो गई।

गिरिराजकी वन्दना

उसी दिन श्री गिरिराजकी यात्राके लिये चल दिये। पर्वतराजके स्पर्शसे परिणामोंमें शान्तिका उदय हुआ। श्री कुन्थुनाथ

स्वामीकी टोंक पर पूजन की। अनन्तर वन्दना करते हुए दस बजे श्री पार्श्वनाथ स्वामीके मन्दिरमें पहुँचे। आष्टाह्निक पर्व था, इससे बहुत यात्रीगण वहाँ पर थे। एक घण्टा तत्त्वचर्चा होती रही। सबको यही लालसा रही कि कब ऐसा अवसर आवे कि हम लोग भी दैगम्बरी मुद्रा धारण कर संसार बन्धनको छेदें। आत्माका स्वभाव ही ऐसा है कि वह स्वतन्त्रताको चाहता है। परतन्त्रता आत्माकी परिणति नहीं। वह तो अनादि अज्ञानताके प्रभावसे चली आरही है। उसके द्वारा इसकी जो जो दुर्गति हो रही है वह सर्व अनुभवगम्य है। जीव जो जो पर्याय पाता है उसीमें निजत्व मानकर चैन करने लगता है।

इन सब उपद्रवोंका मूल कारण अज्ञानता है यह सब जानते हैं, परन्तु इसको दूर करनेका प्रयास नहीं करते। बाह्य पदार्थोंको दुःखका कारण जान उनसे दूर रहनेकी चेष्टा करते हैं, परन्तु वे पदार्थ तो भिन्न हैं ही—स्वरूपसे सर्वथा जुदे हैं, और इसका कुछ भी सुधार बिगाड़ नहीं कर सकते। यह जीव केवल आत्मीय अज्ञानसे ही उन्हें सुख तथा दुःखका कारण मान लेता है। कामला रोगवाला श्वेत शङ्खको पीत मान लेता है पर वास्तव में वह पीला नहीं। यह तो उसके नेत्रका ही दोष है। हम लोग उस अज्ञानकी निवृत्तिका तो प्रयत्न करते नहीं, केवल पर पदार्थोंमें गुण-दोषकी कल्पना करके जन्म खो देते हैं। यह सब मोहकी महिमा है।....इस प्रकार सब लोग विचार करनेमें अपने समयका सदुपयोग कर रहे थे कि इतनेमें एक त्यागी महाशय बोल उठे—'मध्याह्नकी सामायिकका समय हो गया।' सब त्यागी-मण्डलने वहीं श्री पार्श्वप्रभुके चरणमूलमें सामायिक की। पश्चात् वहाँसे चलकर तीन बजे मधुवन आगये। भोजन कर आराम किया। सायंकाल चबूतराके ऊपर सामायिक आदि करके मन्दिरजीमें शास्त्रप्रवचन सुना।

ईसरीमें उदासीनाश्रम

शास्त्र प्रवचनके अनन्तर सबके मुखकमलसे यही ध्वनि निकली कि संसार बन्धनसे छूटनेके लिये यहाँ रहा जाय और धर्मसाधनके लिये यहाँ एक आश्रम खोला जावे। उसीमें रह कर हम सब धर्मसाधन करें। इस गोष्ठीमें श्रीमान् बाबू सखीचन्द्रजी, श्रीसेठी चम्पालालजी गया, श्री रामचन्द्रजी बाबू गिरिडीह, श्री भोंरीलालजी सेठी हजारीबागरोड, श्री बाबू कन्हैयालालजी गया, बाबू गोविन्दलालजी गया, बाबू सूरजमल्लजी पटना, सेठ कमलापतिजी बरायठा, श्री पं० पन्नालालजी मैनेजर तेरापन्थी कोठी तथा बाबू घासीरामजी ईसरी आदि महानुभाव थे। सबकी सम्मति हुई कि ईसरीमें एक उदासीनाश्रम खोला जावे। इसके लिये दो सौ रुपया मासिकका चन्दा हुआ।

कुछ देर बाद सेठी चम्पालालजी गयाने बाबू सूरजमल्लजी से कहा—'आपने कहा था कि मैं स्वयं एक आश्रम बनवाऊँगा, अब आप क्यों नहीं बनवाते ?' पहले तो उन्होंने आनाकानी की। पश्चात् कहा—'यदि आप लोग मुझसे आश्रमका मकान बनवाना चाहते हैं तो मैं इसमें किसीका चन्दा न लूंगा, अकेला ही इसे चलाऊँगा।' सब लोगोंने हर्षध्वनिके साथ स्वीकार किया।

उन्होंने एक बड़ी भारी जमीन खरीद कर उसमें आश्रमकी नींव डाली और पच्चीस हजार रुपये लगाकर बड़ा भारी आश्रम बनवा दिया, जिसमें पच्चीस ब्रह्मचारी सानन्द धर्म साधन कर सकते हैं। आश्रम ही नहीं एक सरस्वतीभवन भी दरवाजेके ऊपर बनवा दिया और निजके धर्मसाधनके लिए एक मजला मकान पृथक् बनवाया। इतना ही नहीं, आश्रमकी रक्षाके लिये कलकत्ताका एक बड़ा मकान, जिसका दो सौ रुपया मासिक

भाड़ा आता है, लगा दिया और उसका विधिवत् ट्रष्ट भी कर दिया।

वर्तमानमें छः उदासीन उसमें रहते हैं। सब तरहके धर्म-साधनका सुभीता है। श्री भौंरीलालजीके पिता और बाबू गोविन्दलालजी अपने खर्चसे रहते हैं। श्री भौंरीलालजीके पिता प्रेमसुखजीकी देख-रेखमें आश्रम सानन्द चलने लगा। आश्रमवासी त्यागी अपना काल निरन्तर धर्मसाधनमें लगाते हैं। श्रीयुत् प्यारेलाल भगतजी इसके अधिष्ठाता हैं। आप इन्दौर आश्रमके भी अधिष्ठाता हैं। सालमें दो बार आते हैं। शान्त स्वभाव और दयालु हैं। आपके द्वारा राजाखेड़ामें बड़ी भारी पाठशाला चल रही है। उसका संचालन भी आपके ही द्वारा होता है। सालमें एक बार या दो बार आप वहाँ जाते हैं। कल-कत्ताके बड़े बड़े सेठ आपके अनुयायी हैं। बाबू सखीचन्द्रजी कैसरेहिन्द आपसे धर्मकार्योंमें पूर्ण सम्मति लेते थे। श्रीमान् सर सेठ हुकमचन्दजीकी धर्मगोष्ठीमें आप प्रमुख हैं। आपके विषय में अधिक क्या लिखूँ? इतना ही बस है कि आप मेरे जीवनके प्राण हैं।

कुछ दिनके बाद यहाँ पर श्री पतासीबाई गया और कृष्णा-बाई कलकत्ता आकर धर्मसाधन करने लगीं। आपके साथ साथ आगरावाली बाईयाँ भी थीं। इन बाइयोंमें श्री पतासीबाई गया-वाली बहुत विवेकवती हैं। आपको शास्त्रज्ञान बहुत ही उत्तम है। आप विरक्त हैं, निरन्तर स्वाध्यायमें काल लगाती हैं। प्रति दिन अतिथिको दान देनेमें आपकी प्रवृत्ति रहती है। आपके द्वारा गयाकी स्त्रीसमाजमें बहुत ही सुधार हुआ है। आपके प्रयत्नसे वहाँ स्त्रीशिक्षाके लिये पन्द्रह हजार रुपया हो गया है। आपने दो हजार रुपया स्याद्वाद विद्यालय बनारसको दिये

हैं। केवल सौ रुपया वार्षिक सूदका लेती हैं। मेरी आपने बाईजी की तरह रक्षा की है।

इसी तरह कृष्णाबाई भी उत्तम प्रकृति की हैं। आपको गोम्मटसारका बोध है। सामायिकमें चित्रमूर्तिकी तरह स्थिर बैठी रहती हैं। एक बार भोजन करती हैं। दो धोतियाँ तथा ओढ़ने बिछानेके लिए दो चद्दर रखती हैं। भयंकर शीत कालमें एक ही चद्दरके आश्रय पड़ी रहती हैं। निरन्तर अपना समय स्वाध्यायमें बिताती हैं। साथमें इनके एक ब्राह्मणी है जो बहुत ही विवेकवाली है। अब आप ईसरीसे श्री महावीरको चली गई हैं। वहाँ आपने एक मुमुक्षु महिलाश्रम खोला है। आपके पास जो द्रव्य था वह भी उसीमें लगा दिया है। उसका संचालन भी स्वयं करती हैं। जो विधवाएँ उसमें पढ़नेके लिये आती हैं उन्हें वैधव्यदीक्षा पहले लेना पड़ती है।

ईसरीमें जो भी बाईयाँ हैं, सभी संसारसे विरक्त हैं। कभी कभी यहाँ समाज प्रख्यात श्री चन्दाबाई भी आरासे आ जाती हैं। आपके विषयमें क्या लिखूँ, आप तो जगत्प्रख्यात ही हैं। जैनियोंमें शायद ही कोई हो जो आपके नामसे परिचित न हो। आपका काल निरन्तर स्वाध्यायमें जाता है। आप लगातार दो दो माह तक यहाँ रहती हैं। तत्त्वचर्चामें अतिनिपुण हैं। व्याख्यानमें आपके समान स्त्री समाजमें तो दूर रही पुरुष समाज में भी विरले हैं। आपका स्वभाव अत्यन्त कोमल है। आपके साथ श्री निर्मल बाबूकी माँ भी आती हैं। आपकी निर्ममता अवर्णनीय है। आप निरन्तर गृहस्थीमें रहकर भी जलमें कमलकी तरह निर्लेप रहती हैं।

कुछ दिनके बाद धन्यकुमारजी भी सपत्नीक यहाँ आ गये। आपका निवासस्थान बाढ़ था। आप बहुत ही संयमी हैं। स्त्री पुरुष दोनों ही ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हैं। अब दोनों साथ-साथ

पूजन करते हैं तब ऐसा मालूम होता है मानों भाई बहिन हों। आपका भोजन बड़ा सात्त्विक है। आपने कई पुस्तकोंकी रचना की है। निरन्तर पुस्तकावलोकन करते रहते हैं। मेरे साथ आपका बहुत स्नेह है आपका कहना था कि ईसरी मत छोड़ो, अन्यथा पछताओगे, वही हुआ।

संसारमें गृहस्थभार छोड़ना बहुत कठिन है। जो गृहस्थ भार छोड़कर फिर गृहस्थोंको अपनाते हैं उनके समान मूर्ख कौन होगा ? मैंने अपने कुटुम्बका सम्बन्ध छोड़ा। माँ बाप मेरे हैं नहीं। एक चचेरा भाई है, उससे सम्बन्ध नहीं। घर छोड़नेके बाद श्री बाईजीसे मेरा सम्बन्ध हो गया और उन्होंने पुत्रवत् मेरा पालन किया। मैं जब कभी बाहर जाता था तब बाईजीकी मातातुल्य ही स्मृति आ जाती थी। उनके स्वर्गारोहण के अनन्तर मैं ईसरी चला गया। वहाँ सात वर्ष आनन्दसे रहा। इस बीचमें बहुत कुछ शान्ति मिली।

यह ईसरी है

श्रीमान् सखीचन्द्रजी कैशरेहिन्दसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था। आप बहुत ही धार्मिक व्यक्ति थे। प्रतिदिन जिनेन्द्रदेवका पूजन करते थे। स्वाध्याय तो प्रायः अहोरात्रि ही करते रहते थे। तत्त्वचर्चासे आपको बहुत प्रेम था। आपने अपना अन्तिम जीवन धार्मिक कार्योंमें ही बितानेका दृढ संकल्प कर लिया था, इसलिए आपने निमियाघाटमें एक अच्छा बंगला बनवाया और उसीमें अधिकतर रहने लगे। बंगलामें चैत्यालय भी स्थापित करा लिया। आपकी धर्मपत्नी निरन्तर पूजा करती हैं। यद्यपि आप वैष्णवकी कन्या हैं तथापि जैनधर्मसे आपका अटूट अनु-

राग है। यदि कोई त्यागी व्रती आ जावे तो उसके आहारादि की व्यवस्था आपके यहाँ अनायास हो जाती है।

आपके दो सुपुत्र हैं। दोनों ही सज्जन और सुशील हैं। श्री सखीचन्द्रजी साहबकी एक बहिन है जो बहुत ही धर्मात्मा और उदार हैं। आप विधवा हैं। निरन्तर धर्मसाधनमें आपका काल जाता है। मैं भी प्रायः सालमें तीन मास निमियाघाट रहता था। यहाँसे श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी यात्रा बड़ी सुगमता से हो जाती है। डाक बंगला तक सड़क है, जिसमें रिक्सा भी जा सकता है। बहुत ही मनोरम दृश्य है। बीचमें चार मीलके बाद एक सुन्दर पानीका झरना पड़ता है। यहाँ पर पानी पीनेसे सब थकावट चली जाती है। यहाँका जल अमृतोपम है। यदि यहाँ कोई धर्मसाधन करे तो झरनाके ऊपर एक कुटी है, परन्तु ऐसा निर्मम कौन है जो इस निर्वाणभूमिका लाभ ले सके। अथवा साधनोंके अभावमें कोई उत्साह भी करे तो क्या करे ? एक अन्य मतका साधु यहाँ पर रहता था। आठ दिन बाद निमियाघाट आता था। श्री सखीचन्द्रजी उसकी भोजनव्यवस्था कर देते थे। थोड़े दिन बाद वह परलोकयात्रा कर गया।

निमियाघाटमें यदि कोई रहे तो यहाँ धर्मसाधनके लिये आरावालोंकी एक उत्तम धर्मशाला है। दुकानदार भी यहाँ रहते हैं, जिससे भोजनादि सामग्रीका भी सुभीता है। परन्तु यहाँ कोई रहता नहीं। उसका कारण है कि उदासीनाश्रम ईसरीमें ही है, अतः जो त्यागी आते हैं वे वहीं रहते हैं।

श्री प्रेमसुखजी बहुत सज्जन धर्मात्मा हैं। आपका कुटुम्बसे मोह नहीं। एक बार अष्टान्हिका पर्वमें आपको ज्वर आ गया। चार दिन तक आप बराबर मन्दिर जाते रहे, फिर सामर्थ्य नहीं रही। हजारीबागरोडसे आपके भाई लड़का बहु आदि सब आगये। सबने आपकी वैयावृत्य की पर आपने किसीसे

ईसरीमें विचार-मग्न

मोह नहीं किया। आपके समाधिमरणमें श्री लाला सुमेरु-चन्द्रजी जगाधरीवाले, मैं तथा अन्य त्यागिगण बराबर संलग्न रहे। अन्तमें आपने शान्तिपूर्वक प्राणोंका विसर्जन किया। पाँच सौ रुपया दान कर गये।

इसी प्रकार यहाँ पर एक जगन्नाथ बाबा भिवानीवाले रहते थे। बहुत धार्मिक और कुशल व्यक्ति थे। मेरेसे आपका घनिष्ठ स्नेह था। जब आप बीमार पड़े तब मुझसे बोले अब मेरा बचना कठिन है, मुझे धर्म सुनाओ। मैं सुनाता रहा। आश्रमके त्यागी भी बराबर धर्म सुनाते रहे। अन्तमें निर्वाण अमावस्याके दिन आप बोले कि 'लाडू उत्सव करके जल्दी आओ।' मैंने कहा—'पश्चात् चला जाऊँगा।' आप बोले—'नहीं, जल्दी जाओ और जल्दी ही आजाओ।' मैं महावीर स्वामीको निर्वाण पूजा कर वापिस आगया। आप बोले—'गुल-बनपसाका काढ़ा लाओ।' मैं काढ़ा बना लाया। बाबा बोले—'जाओ।' मैंने उठा कर काढ़ा पिलाया। आप बोले-'अब न बचेंगे।' 'णमो अरिहंताणं' शब्दका उच्चारण किया। पश्चात् पेशावको बैठे। पेशावके बाद बिस्तर पर आये। दोनों हाथ मस्तकसे लगाये, इतनेमें ही आपके प्राण पखेरु उड़ गये। आपके पास जो द्रव्य था वह आश्रमके लिये दे गये। इसी तरह यहाँपर श्यामलालजी त्यागीके पिताका समाधिमरण हुआ। आपका मरण इस रीतिसे हुआ जिस रीतिसे प्रायः उत्तम पुरुषोंका होता है। आप प्रातःकाल बैठे थे, कुल्ला किया और परमेष्ठीका नाम लिया। लड़केने कहा—'बोलते क्यों नहीं?' बस आपका प्राण निकल गया। इसी तरह बाबा लालचन्द्रजीका भी यहाँ समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ। वास्तवमें यह स्थान समाधिके लिये अत्यन्त उपयुक्त है।

लाला सुमेरुचन्द्रजी बड़े धर्मात्मा हैं। आप जगाधरी (पंजाब)

के रहनेवाले हैं। आपके एक भाई थे, जिनका अब स्वर्गवास हो गया है। दो सुपुत्र हैं। एकका नाम मुन्नालाल और दूसरेका नाम सुमतिप्रसाद है। दोनों ही शीलस्वभाववाले हैं। आपके बड़े सुपुत्र एक बार मेरे पास आये और बोले 'मुझे कुछ व्रत दीजिये।' मैंने कहा—'सबसे महान् व्रत ब्रह्मचर्य है (ब्रह्मचर्यसे मेरे तात्पर्य स्वदारसन्तोषसे है)।' आपने पहले स्वीकार करते हुए कहा—'यह तो गृहस्थोंका मुख्य कर्तव्य ही है। इसमें कोई महत्त्वका कार्य नहीं, कुछ और ही दीजिये।' मैंने कहा—'अष्टमी, चतुर्दशी, तीनों समय अष्टाह्निकामें और भाद्रमासके सोलहकारणमें ब्रह्मचर्यसे रहो।' आपने सहर्ष स्वीकार किया। अनन्तर मैंने कहा—'न्यायसे धनार्जन करना चाहिये।' यह भी आपने स्वीकृत किया। किन्तु आप बोले कि 'ऐसा निकृष्ट समय है कि जिसमें न्यायसे धनार्जन करना कठिन हो गया है। ऐसे-ऐसे कानून बन गये हैं कि जिनमें प्रजाकी स्वीकारताका अंश भी नहीं है। बिना रिश्वत दिये एक स्थानसे स्थानान्तर माल ले जाना दुर्लभ है। और कथा छोड़िये, स्टेशन पर बिना घूस दिये टिकट मिलना कठिन है। यह भी जाने दीजिये, बिना चोरीके पेट भर अन्न मिलना कठिन हो गया है। तनको वस्त्र मिलना दुर्लभ है। बहुत कहाँ तक कहें? यदि अतिथिको भोजन कराते हैं तो उसमें भी चोरीका दोष आता है। अस्तु, हम यथायोग्य इसका पालन करेंगे।'

आपने अपने निर्वाहके लिये एक मकानका किराया और पैंसठ सौ रुपया नकद रक्खे हैं। आप प्रायः सालमें छः मास मेरे सम्पर्कमें रहते हैं। आपकी प्रकृति बहुत ही उदार है।

साथ ही इन दोनों भाइयोंने आठ वर्षकी अवस्थासे ही प्रतिदिन अपने पिताजीके साथ श्री भगवत्पूजन और शास्त्रस्वाध्याय करना प्रारम्भ किया था, जिसका संस्कार बराबर बना चला आ

रहा है। इन्होंने सात व्यसन और रात्रिभोजनका भी त्याग कर दिया है। तथा ये मूलगुणोंका बराबर पालन करते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि ये सदाचारी गृहस्थ हैं और निरन्तर दानधर्म करते रहते है।

त्यागीवर्गमें पं० मौजीलालजी सागर बहुत ही विरक्त और सुबोध हैं। आपने त्यागी लोगोंके लिये एक अच्छी कोठरी बनवा दी है। एक कोठरीमें सङ्गमर्मरका पर्श बाबू गोविन्दलालजी गयावालोंने जड़वा दिया है। पं० पन्नालालजी मैनेजर निरन्तर आश्रमकी देख-भाल करते हैं। गयावाले सेठी चम्पालालजी भी समय समय पर यहाँ आते हैं। श्री खेतसीदासजी गिरिडीहवाले भी कभी कभी लगातार एक मास पर्यन्त रहकर धर्म साधनमें उपयोग लगाते हैं। गिरडीहवाले रामचन्द्र बाबु भी यहाँ पर सकुटुम्ब रहकर धर्मसाधन करते हैं। नवादासे भी श्री लक्ष्मीनारायण सेठी यहाँ आकर धर्म साधन करते थे। सासनीवाले सेठ भी यहाँ आकर महीनों धर्म धाधन करते थे। और भी बहुतसे भाई यहाँ आकर धर्म साधन करनेमें अपना सौभाग्य समझते हैं।

यहाँ पर श्रीयुत बैजनाथजी सरावगी रांचीवालोंने एक बहुत ही सुन्दर धर्मायतन बनवाया है। उसमें एक मुनीम बराबर रहता है। एक बाग भी उसमें लगाया है तथा प्राचीन चैत्यालय को मन्दिररूपमें परिवर्तित कर दिया है। मन्दिरमें सङ्गमर्मरका फर्श जड़वा दिया है। इतना ही नहीं, आप प्रायः निरन्तर आया करते हैं। प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीके उपवासके बाद त्यागियों की पारणा आप ही की ओरसे होती है। इसके अतिरिक्त भी आपकी ओरसे आश्रमके लिये पर्याप्त सहायता मिलती है। पार्श्वनाथ शिक्षामन्दिरके आप सभापति भी हैं।

यह शिक्षामन्दिर पहले कोडरमामें था; परन्तु श्रीमान् पं०

कस्तूरचन्द्रजीने उसे ईसरीमें परिवर्तित कर दिया है। पं० कस्तूर-चन्द्रजी उसकी उन्नतिमें निरन्तर उद्योग करते रहते हैं। पचीस छात्र शिक्षा पाते हैं। कुछ सराक जातिके भी बालक हैं। यदि अच्छी सहायता मिले तो सराक जातिके एक सौ छात्र अध्ययन कर सकते हैं, परन्तु समाजकी दृष्टि अभी इस ओर नहीं। शिक्षा मन्दिरका एक निजका बोर्डिंग और विद्यालय भवन भी है। एक जलाशय भी है। दो अध्यापक निरन्तर अध्ययन कराते हैं।

उदासीनाश्रममें सेठ तुलाराम गजराज वच्छराजजीने भी एक सुन्दर भवनका निर्माण कराया है। उसमें धर्मसाधन करनेके लिये कोई भी व्यक्ति निवास कर सकता है। सेठ लोगोंने स्वयं धर्मसाधन करनेके अभिप्रायसे इसका निर्माण कराया था, परन्तु परिग्रह पिशाचके आवेगमें कुछ नहीं कर सके।

कृष्णाबाईने भी यहाँ एक श्राविकाश्रमकी नीव डाली थी, परन्तु, परस्परके विचार विनिमयसे आपका चित्त खिन्न हो गया। इससे आपने आश्रमका विचार स्थगित कर दिया और यहाँसे उदास होकर मारवाड़ चली गई। वहाँसे श्री महावीर क्षेत्रमें मुमुक्षु महिलाश्रमकी स्थापना कर दी तथा अपने पासकी सब सम्पत्ति उसीमें लगा दी। प्रारम्भमें श्री पं० नन्हेंलालजी शास्त्री उसमें अध्यापक थे। दस पन्द्रह बाईयाँ उसमें धर्मसाधन करती हुई शिक्षा प्राप्त करती हैं।

यहाँ पर वर्षाकालमें प्रायः धर्मसाधन बड़े आनन्दसे होता है। सामने दिखनेवाले हरे-भरे गिरिराजकी ऊँची चोटियों पर जब श्यामल घनघटा छा जाती है तब बड़ा ही मनोरम मालूम होता है।

मेरठ प्रान्तसे लाला हुकमचन्द्रजी सलावावाले, जो कि तत्त्व-विद्यामें उत्तम ज्ञान रखते हैं, प्रायः भाद्रमासमें आ जाते हैं।

लाला त्रिलोकचन्द्रजी खतौली, पं० शीतलप्रसादजी शाहपुर, लाला मंगलसेनजी मुबारिकपुर तथा लाला हरिश्चन्द्रजी सहारनपुर भी जब कभी आजाते हैं। आप सब तत्त्वविद्याके प्रेमी और निर्मल परिणामोंके धारक हैं। आप लोगोंके शुभागमनसे तत्त्व-चर्चामें पूर्ण आनन्द रहता है। कभी-कभी श्रीमान् चांदमलजी राँची व श्रीमान् बाबू कन्हैयालालजी बजाज गयावाले भी आजाते हैं। यहाँ पर उपयोग अच्छा लगता है। मकानसे बाहर निकलते ही श्री पार्श्वनाथकी टोंकके दर्शन होने लगते हैं, जिससे भावनाएँ निरन्तर निर्मल रहती हैं। स्वाध्यायमें भी अच्छा उपयोग लगता है, परन्तु बड़े आदमियोंको अभी एकान्तवास का स्वाद नहीं आया। परिग्रहसे विरक्ति महान् पुण्यशाली जीवके ही हो सकती है। इस पिशाचने संसारको चक्रमें ला रक्खा है। परिग्रहके भारसे बड़े-बड़े महापुरुष संयमके लाभसे वंचित रह जाते हैं।

यह स्थान मोक्ष प्राप्तिके लिये अद्वितीय है। आश्रमसे बाहर गिरिराजकी ओर जाइये, अटवी लग जाती है। पत्थरोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं। उनपर बैठकर मनुष्य ध्यानादि कर सकते हैं। कोई उपद्रव नहीं, मनुष्योंका संचार नहीं, हिंसक जन्तु गिरि-राजमें अवश्य ही निवास करते होंगे, पर आज तक किसीका घात नहीं सुना गया। यह सब कुछ है, परन्तु ऐसे निर्मम मनुष्य नहीं आते, जो आत्मचिन्तन कर कुछ लाभ न लेवें।

दम्भसे बचो

मुखसे कथा करना अन्य बात है और कार्यमें परिणत करना अन्य बात है। हम अन्यकी बात नहीं कहते, स्वयं इस कार्यके करने में असमर्थ रहे। इससे सिद्ध होता है कि कल्याणका मार्ग

निमित्तमें नहीं, उपादान कारणकी भी आवश्यकता है। क्षेत्रको सम्यक् प्रकार उत्तम बनाकर यदि कृषक बीज वपन न करे तो अन्नकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, घास फूस हो जाना अन्य बात है। हम लोग निमित्त कारणोंकी आयोजनामें सब पुरुषार्थ लगा देते हैं पर उपादान कारणकी ओर दृष्टि नहीं देते। आवश्यकता इस बातकी है कि अन्तस्तत्त्वकी निर्मलताके जो बाधक कारण हैं उन्हें दूर किया जावे। वास्तविक बाधक कारण क्या हैं इस ओर दृष्टि नहीं देते। हम लोग निमित्त कारणोंको ही बाधक मानते हैं, इससे उन्हींको दूर करनेकी चेष्टा करते हैं। मैं स्वयं की कथा कहता हूँ—'जब श्री बाईजी जीवित थीं तब मैं निरन्तर यही मानता था कि यदि बाईजी न होतीं तो मैं भी आत्मकल्याणके मार्गमें निर्विघ्न लग जाता।' बाईजीका कहना था कि 'बेटा! अभी तुम जैनधर्मका मर्म नहीं समझते।'

मैं एक दिन जोर देकर बोला—'बाईजी! मैं तो अब त्यागी होना चाहता हूँ। कोई किसीका नहीं, सब स्वार्थके सगे हैं, इतने दिन व्यर्थ गये, अब मैं जाता हूँ।' बाईजी बोलीं—'बेटा मैं नहीं रोकती, बड़ी प्रसन्नता है कि तुम आत्मकल्याणके मार्गमें जानेका प्रयत्न करते हो, परन्तु खेद इस बातका है कि तुम बात बहुत करते हो पर करनेमें कायर हो। मनुष्य वह है जो कार्य करनेकी बात न निकाले और अन्य मनुष्य उसके कार्यको देखकर अनुमान करें कि इनके इस कार्यके करनेका अभिप्राय था। हमने तुम्हारा तीस वर्ष पोषण किया और कभी इस बातकी इच्छा नहीं रक्खी कि वृद्धावस्थामें तुम हमारी वैयावृत्य करोगे। अब हमारी अवस्था शिथिल हो गई, अतः उचित तो यह था कि प्रतिदिन हमको शास्त्रप्रवचन सुनाते सो वह तो दूर रहा और अनधिकार चेष्टाकी बात करते हो कि हम त्यागी होते हैं। त्यागी जो होता है वह किसीसे रागद्वेष नहीं करता, शान्तचित्तसे आत्मकल्याणके मार्गमें लग जाता है। तुम हमसे पृथक

होकर जहाँ जाओगे वहाँ ही अपना काल गल्पवादमें लगाओगे। यदि वास्तवमें त्यागधर्मका स्वाद लेना चाहते हो तो सर्व प्रथम अपने अभिप्रायको निर्मल बनानेका प्रयत्न करो। पश्चात् रागादि शत्रुओंको जीतो। जैसे हमसे स्नेह छोड़ते हो वैसे अन्यसे न करना। हमने तुम्हारा कौन-सा अकल्याण किया है कि जिससे डर कर तुम रागभावके गये बिना ही विरक्त होते हो। इसके माने त्याग नहीं। इसका अर्थ तो यह है कि अब बाईजीकी वृद्धावस्था हो गई, अतः इनकी वैयावृत्य करनी पड़ेगी। वह न करना पड़े, इसलिये चलो त्यागी बन जाओ। इस प्रकारका छल कल्याणमार्गका साधक नहीं। इसका नाम त्याग नहीं, यह तो द्वेष है। अथवा तुम्हारी जो इच्छा, सो करो, परन्तु स्वांग न बनाना। जैनधर्ममें स्वांगको प्रतिष्ठा नहीं, परिणामोंकी निर्मलताकी प्रतिष्ठा है। अतः पहले परिणामोंको पवित्र बनाओ, सच्चा त्याग इसीका नाम है। जब अन्तरङ्ग से रागकी कृशता होती है तब बाह्य वस्तु स्वयमेव छूट जाती है। सब पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं, केवल हम अपने रागसे उनमें इष्ट तथा द्वेषसे अनिष्ट की कल्पना कर लेते हैं। यह हम भी जानते हैं, परन्तु अभी हमारा राग नहीं गया इससे तुम्हारे ऊपर करुणा आती है कि इसका त्याग दम्भमें परिणत न हो जावे। यदि बेटा! तुममें राग न होता तो तुम्हारे इष्ट व अनिष्टमें हर्ष विषाद न होता। अस्तु, हमारी तो यह सम्मति है कि जिस त्यागसे शान्ति लाभ न हो वह त्याग नहीं, दम्भ है। तुम्हारी इच्छा जो हो, सो करो, होगा वही जो होना है। हमारा कर्तव्य था, सो उसे पूर्ण किया।'

मैं सुनकर चुप रह गया और जो विचार थे उन्हें परिवर्तित कर दिया। वास्तवमें त्याग तो कषायके अभावमें होता है सो तो था नहीं। इस प्रकार अनेक बार उपदेश देकर उन्होंने मुझे

दम्भवृत्तिसे बचाया। इससे उचित तो यह है कि हम लोगोंको अन्तरङ्गसे त्याग करना चाहिये। लौकिक प्रतिष्ठाके लिए जो त्याग करते हैं वे राखके लिये चन्दन जलाते हैं। वास्तवमें यह मनुष्य मोहके उदयमें नाना कल्पनाएँ करता है, चाहे सिद्धि एककी भी न हो।

मलेरिया

ईसरीमें निरन्तर त्यागीगणोंका समुदाय रहता है, भोजनादिकका प्रबन्ध उत्तम है। आश्रमसे थोड़ी दूरी पर ग्रांटरोड है, जहाँ भ्रमण करनेका अच्छा सुभीता है। यहाँ पर निरन्तर त्यागियो, क्षुल्लकों और कभी-कभी मुनिमहाराजोंका भी शुभागमन होता रहता है। यहाँसे गिरिडीह पास है। बीचमें बराकट नदी मिलती है। उसके तटपर श्वेताम्बर सम्प्रदायका एक सुन्दर मन्दिर बना हुआ है। एक धर्मशाला भी है। एकान्त स्थान है। यदि कोई धर्मध्यानके लिये रहना चाहे तो सब प्रकारकी सुविधाएँ हैं।

नदीके दूसरे तट पर श्री रामचन्द्र बाबूका बंगला बना हुआ है। एक बार हम, चम्पालाल सेठी, बाबू गोविन्दलालजी तथा बाबा जगन्नाथप्रसादजी आदि एक दिन यहाँ रहे थे। वहीं पर एक चैत्यालय भी है। आनन्दसे धर्मध्यानमें काल गया, परन्तु कर्मका विपाक प्रबल है, बहुत दिन नहीं रह सके।

यहाँसे गिरिडीह गये। धर्मशालामें निवास किया। मैं बाबू राधाकृष्णके बंगलामें ठहरा। यहाँ पर धर्मशालामें जो जिनालय है वह बहुत ही मनोज्ञ है। एक चैत्यालय श्रीमान् ब्रह्मचारी खेतसीदासका है। ऊपर चैत्यालय और नीचे सरस्वतीभवन है। बाबू रामचन्द्रजीका धर्मप्रेम सराहनीय है। आपके यहाँ भोज-

नादिकी व्यवस्था शुद्ध है। कोई भी अतिथि आनन्दसे कई दिन रह सकता है। खेतसीदासजी ब्रह्मचारी बहुत ही धार्मिक व्यक्ति हैं। आप एक बार भोजन करते हैं और उसी समय पानी पीते हैं तथा प्रतिदिन सैकड़ों कंगालोंको दान देते हैं। इसी तरह बाबू कालूरामजी भी योग्य व्यक्ति हैं। आपके यहाँ भी प्रतिदिन अनेक गरीबोंको पकी खिचड़ी आदिका भोजन मिलता है। बाबू रामचन्द्रजीके यहाँ भी प्रतिदिन गरीबोंको भोजन दिया जाता है.... गिरिडीहके श्रावकोंमें यह विशेषता देखी गई।

हम चार माह यहाँ रहे। बड़े निर्मल परिणाम रहे। बनारस विद्यालयके लिए यहाँसे पाँच हजार रुपयाका दान मिला। यदि कोई अच्छा प्रयास करे तो अनायास यहाँसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। यहाँसे फिर ईसरी आगया और यहाँ आनन्दसे काल जाने लगा।

यहाँसे हजारीबागरोड गया। श्री सेठी भोंरीलालजीके यहाँ ठहरा। यहाँ पर कई घर श्रावकोंके हैं, दो मन्दिर हैं, पूजा-प्रक्षाल समय पर होता है, स्वाध्याय भी होता है, शास्त्र प्रवचनमें अच्छी-मनुष्य संख्या हो जाती है। यहाँसे फिर ईसरी आगया।

एक बार यहाँपर श्रीमान् चम्पालालजी सेठी आये। ये बहुत ही तेज प्रकृतिके आदमी थे, गोम्मटसार जीवकाण्ड और स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा कण्ठस्थ थी, निरन्तर स्वाध्यायमें काल लगाते थे, व्रत नियम भी पालते थे, आप स्वतन्त्र रहते थे। एक बार आप त्यागी मोहनलालजीके पास चले गये। उन्हें आते देख कर आश्रमके अधिष्ठाता श्री खेमचन्दजी बहुत बिगड़े। श्री चम्पालालजी सेठी चुप रहे, परन्तु जब सायंकाल हम भ्रमणके लिये आ रहे थे तब श्री खेमचन्दजी अधिष्ठाता हमारे साथ थे और श्री चम्पलालजी भी भ्रमणके लिये गये थे। परस्पर वार्ता हो रही थी। इतनेमें चम्पालालजी बोले—'क्यों अधिष्ठाताजी !

आपने भगतजीके लिये मेरी यह शिकायत लिखी है कि चम्पा-लाल सेठी आश्रममें आता है तथा इसके आनेसे आश्रमके उदासीनोंमें उद्दण्डताका संचार होनेकी आशङ्का है ? क्या मैं मार्गसे इतना च्युत हूँ कि मेरे सहवाससे आश्रमवासी अमार्गमें लग जावेंगे ? खेदकी बात है आपने विवेकसे काम नहीं लिया। मैं बहुत दिनसे आपकी हरकतको देखता हूँ, वास्तवमें आपमें मनुष्यता नहीं।' श्री खेमचन्द्रजी बोले—'आपको वचन संभाल कर बोलना चाहिए। यदि आपके सदृश मैं व्यवहार करूँ तो आप आग-बबूला हो जावेंगे। आप विद्वान् हैं, गोम्मटसारके ज्ञाता हैं, परिणामोंकी निर्मलताका भी कुछ ख्याल रखना चाहिये।'

फिर क्या था सेठीजीका पारा सौ डिगरी हो गया। दोनोंमें परस्पर बहुत कुछ विसंवाद हो गया। यदि मैं न होता तो संभव था परस्परमें अत्यन्त कलहाग्नि बढ़ जाती। वचनोंमें लड़ाई रही, काय तक नहीं पहुँची। इस घटनासे मेरा चित्त बहुत खिन्न हुआ। यहाँ तक कि दूसरे दिनसे मलेरिया आ गया और इतनी तेजीके साथ आया कि १०५ डिग्रीतक तापमान हो जावे। वह मलेरिया पाँच वर्ष तक नहीं गया। असातोदयमें ऐसे ही निमित्त मिलते हैं। श्री खेमचन्द्रजीके व्यवहारसे मैं भी असंतुष्ट था।

यहाँ पर श्रीमान् बाबा भागीरथजी थे, जो हमारे चिर-परिचित थे। उनकी मेरे ऊपर पूर्ण अनुकम्पा थी। वे निरन्तर उपदेश देते थे कि भाई जो अर्जन किया है उसे भोगना ही पड़ेगा। ज्वरके वेगकी प्रबलतासे खाना-पीना सब छूट गया। जब ज्वरका वेग आता था तब कुछ भी स्मरण नहीं रहता था। श्री कृष्णाबाईने उस समय बहुत सहायता की तथा श्री बाबू धन्य-कुमारजीने मिट्टीका प्रयोग किया। इन सबकी निरन्तर यही भावना रहती थी यह शीघ्र नीरोग हो जावें, परन्तु असाताके तीव्रोदयमें कुछ नहीं हो सका।

सागरसे सिंघईजी व उनकी गृहिणी आगई। गयासे श्री कन्हैयालालजी आ पहुँचे। साथमें कविराज भी लाये। कविराज बहुत ही योग्य थे। उन्होंने अनेक उपचार किये। परन्तु मैंने औषधिका त्याग कर दिया था, अतः जो औषधि मेरे रोगके निवारणके लिये दी जाती थी, मैं उसे लेकर पश्चात् फेंक देता था। वैद्यसे मैंने कहा कि अभी मेरे तीव्र असातोदय है, अतः आपकी औषधि निष्फल होगी। वैद्यराज बहुत ही आस्तिक थे। उन्होंने कहा—'अच्छा' और दो दिन रहकर चले गये।

उन्हीं दिनों दक्षिण देशके एक मन्त्रशास्त्री भी वहीं थे। उन्होंने कहा—'चिन्ता मत करो। हम एक मन्त्र लिखकर बाँधे देते हैं, तुम्हारा ज्वर चला जावेगा।' मैंने कहा—'आपके मन्त्रमें शक्ति है इसमें मुझे शङ्का नहीं। परन्तु मेरे तीव्र पापोदय है, अतः मेरा रोग अभी कुछ दिन रहेगा, आप व्यर्थ ही अपयश न लीजिये।' वह बोले—'आपको जैन मन्त्रकी श्रद्धा नहीं।' मैंने कहा—'भगवन्! ऐसे वाक्य श्री मुखसे न निकालिये। मुझे श्रद्धा है, परन्तु अभी तीव्र उदयमें दुःख भोगना ही पड़ेगा। मुझे तो इतनी श्रद्धा है कि शायद आपको भी उतनी न होगी। एक बार मुझे बड़ी शिरोवेदना हुई। मैंने श्री पार्श्वप्रभुका स्मरणकर उसे शान्त कर लिया। एक दिनकी बात है—यहीं पर एक कलकत्ताकी बाई थी। उसे हिस्ट्रिया रोग था; अचानक वह गिर पड़ी। जब होशमें आई तब मैंने कहा कि तुम पार्श्वनाथ स्वामीकी टोंकके सामनेसे दर्शन करो और प्रार्थना करो कि हे प्रभो! अब हमें यह रोग बाधा न करे। इतनी ही हमारी प्रार्थना है। उसने हमारे कहे अनुसार आचरण किया और उसी दिनसे उसकी मूर्च्छा बन्द हो गयी। एक वर्ष बाद मिली। हमने पूछा—अब तुम्हें आराम है? वह बोली कि उस दिनसे सानन्द रहती हूँ। कहनेका तात्पर्य यह है कि मुझे श्रद्धा तो है परन्तु तीव्र उदयका फल

भोगना ही पड़ेगा। इसीसे न तो मैं औषधि खाना चाहता हूँ और न मन्त्रादि विधिका प्रयोग करना चाहता हूँ।'

मन्त्रशास्त्री बहुत नाराज हुए तथा जब मुझे एक सौ पाँच डिग्री ज्वर हो गया तब एक मन्त्रको कपड़ेमें लपेटकर मुझसे बाँध दिया। मुझे कुछ भी पता नहीं चला। चार घन्टा ज्वरमें बेहोश रहता था। श्री कृष्णाबाई और पतासीबाई माताकी तरह गीली पट्टी शिरपर रखती थीं। इस प्रकार चार घन्टाकी वेदना सहता हुआ कालक्षेप करने लगा। लोग पाठ पढ़ते थे, पर मुझे पता नहीं कि क्या हो रहा है? वैशाखका मास था, सूरज भी तपता था, पानीकी तृषा अत्यन्त रहती थी, परन्तु इतनी बेचैनी रहनेपर भी अन्तरङ्गमें परम पावन जैनधर्मकी श्रद्धा अचल रहती थी।

श्री कन्हैयालालजी गयावालोंने सभी दरवाजोंमें खसकी टट्टियाँ लगवा दी थीं, दिनभर उनपर पानीका छिड़काव होता था, रात्रिको बराबर दो आदमी पंखा करते थे, पर शान्ति नहीं मिलती थी।

श्री बाबाजी महाराज कहते थे कि 'यह सब कर्मविपाक है, धैर्य धारण करो, व्यग्रताका अंश भी मनमें न लाओ, इसे तो ऋणकी तरह अदा करो, मनुष्य जन्ममें ही संयमकी योग्यता होती है उसका घात मत करो, संयम कर्मकी निर्जरामें कारण है, यह जो तुम्हारा उपचार है, इस पदके योग्य नहीं, असंयमी मनुष्योंके योग्य है।'

मैंने कहा—'महाराज! मैं क्या करूँ? मेरे वशकी बात जो थी सो मैंने की। मैं औषध तक नहीं खाता और न किसीसे यह कहता हूँ कि ये उपचार किये जावें। किन्तु उपचार होनेपर बाह्य वेदनामें कुछ शमन होता है, अतः इनमें मेरी अरुचि भी नहीं। मैं आपकी बात मानता हूं। आखिर, आप भी तो चाहते

हैं कि इसका रोग शीघ्र मिट जावे यह क्या मोह नहीं है ? दिनमें कई बार मेरी नवज देखते हैं तथा कुछ विषाद भी करते हैं।'

बाबाजीने कहा कि 'इसका यह अर्थ नहीं कि हमें विषाद हो। परन्तु हमारा कर्त्तव्य है कि तुम्हें शान्ति पहुँचावें, अतः हमारा तीन बार आना योग्य है, अन्यथा तुम्हें यह आकुलता हो जावेगी कि जब बाबाजी ही हमारी सुध नहीं लेते तब अन्य कौन लेगा ? इसी दृष्टिसे हम तुम्हारी वैयावृत्य करते हैं। साथ ही यह चरणानुयोगका मार्ग भी है कि महापुरुषोंकी वैयावृत्य करना चाहिये। वैयावृत्य तो अन्तरङ्ग तप है, कर्मनिर्जराका खास कारण है। इसका अर्थ मत लो कि मेरा तेरेमें मोह है। परन्तु वह भी नहीं। अभी तो हम पञ्चम गुणस्थानवर्ती ही हैं, क्या साधर्मी जीवसे मोह नहीं करना चाहिये ? विशेष क्या कहें ? तुम शान्तभावसे सहन करो, रोग शमन हो जावेगा, आतुर मत होओ।' मैंने कहा—'महाराज ! मुझे मलेरिया बहुत सताता है, अतः मेरा विचार है कि ईसरी छोड़कर हजारीबाग चला जाऊँ।' उन्होंने कहा—'अच्छा जाओ, अन्तमें यहीं आना होगा'।

जानेकी शक्ति न थी, अतः डोलीकर हजारीबाग चला गया। वहाँ पर एक बाग में सत्तर रुपया भाड़ा देकर ठहर गया। ग्राम-वालोंने अच्छी वैयावृत्य की। यहाँका पानी अमृतोपम था। डेढ़ मास रहा, फिर ईसरी आ गया।

श्री बाबा भागीरथजीका समाधिमरण

वर्षाके बाद बाबाजीका शरीर रुग्ण हो गया। फिर भी आप अपने धर्म कार्यमें कभी शिथिल नहीं हुए। औषधि सेवन नहीं

किया। कृष्णाबाईने अच्छी वैयावृत्य की। न जाने क्यों बाबाजी हमसे वैयावृत्य न कराते थे। जिस दिन आपका देहावसान होने लगा उस दिन दस बजे तक शास्त्र-स्वाध्याय सुना। अनन्तर हम लोगोंको आज्ञा दी कि भोजन करो। हमने भोजन करके सामायिक की। पश्चात् कृष्णाबाईने बुलाया कि शीघ्र आओ। हम गये तो क्या देखते हैं कि बाबाजी भूमि पर एक लगोटी लगाये पड़े हुए हैं। आपकी मुद्रा देखनेसे ऐलकका स्मरण होता था। हम लोग बाबाजीके कर्णोंमें णमोकर मन्त्र कहते रहे। पाँच मिनट बाद आँखसे एक अश्रुबिन्दु निकला और आप सदाके लिये चले गये। मुद्रा बिलकुल शान्त थी। मेरा हृदय गद्गद हो गया। शीघ्र ही बाबाजीको श्मसान ले गये और एक घण्टाके बाद आश्रममें आगये। उस दिन रात्रिमें बाबाजीकी ही कथा होती रही।

ऐसा निर्भीक त्यागी इस कालमें दुर्लभ है। जबसे आप ब्रह्मचारी हुए, पैसाका स्पर्श नहीं किया। आजन्म नमक और मीठाका त्याग था। दो लंगोट और दो चद्दर मात्र परिग्रह रखते थे। एक बार भोजन और पानी लेते थे। प्रतिदिन स्वामि-कार्तिकेयानुप्रेक्षा और समयसारके कलशोंका पाठ करते थे। स्वम्भूस्तोत्रका भी निरन्तर पाठ करते थे। आपका गला बहुत ही मधुर था। जब आप भजन कहते थे तब जिस विषयका भजन होता उस विषयकी मूर्ति सामने आजाती थी। आपका शास्त्र प्रवचन बहुत ही प्रभावक होता था। आप ही के उत्साह और सहायतासे स्याद्वाद विद्यालयकी स्थापना हुई थी। आपने सहस्रों रुपये विद्यालयको भिजवाये। भोजनकी कथा आप कभी नहीं करते थे। आपकी प्रकृति अत्यन्त दयालु रूप थी।

आप मुझे निरन्तर उपदेश देते थे कि इतना आडम्बर मत कर। एक बारकी बात है। मैंने कहा—'बाबाजी! आपके सदृश

हम भी दो चद्दर और लंगोट रख सकते हैं इसमें कौन-सी प्रशंसाकी बात है ?' बाबाजी महाराज बोले—'रख क्यों नहीं लेते ?' मैं बोला—'रखना तो कठिन नहीं है, परन्तु जब बाजारमेंसे निकलूँगा तब लोग क्या कहेंगे ? इससे लज्जा आती हैं।' बाबाजीने हँसकर कहा—'बस, इस बलपर त्यागी बनना चाहते हो। अरे ! त्याग करना सामान्य मनुष्योंका कार्य नहीं है। एक दिन घोड़ेको नाल बँध रहे थे। उन्हें देखकर मेंढकी बोली—हमको भी नाल बाँध दो। विचारो, यदि मेंढकीको नाल बाँध दिये जावें तो क्या वह चल फिर सकेगी ? अतः अभी तुम इसके पात्र नहीं। हाँ, यह मैं अवश्य कहूँगा कि एक दिन तू भी त्यागी बन जायगा, तूँ सीधा है। अच्छा है अब इसी रूप रहना। तूँ इतना सरल है कि तुझे पाँच वर्षका बालक भी बाजारमें बेंच सकता है। तेरा भाग्य अच्छा था कि तुझे बाईजी मिल गईं। उन्होंने तेरेको पुत्रवत् पाला, उनकी वैयावृत्य करना।' वह एक बातका निरन्तर उपदेश देते थे कि 'जो नहीं लीना काळका तो दीना कोटि हजार।' और भी बहुतसे उपदेश उनके थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि जो कुछ थोड़ा बहुत मेरे पास है वह उनहीके समागमका फल है...इस प्रकार बाबाजीके गुण गाते हुए रात्रि पूर्ण की।

ईसरीसे गया फिर पावापुर

सागरवालोंका तीव्र आग्रह था कि सागर आओ, इसलिये सागरके लिये प्रस्थान कर दिया। १२ मील बगोदरा तक ही पहुँच पाये कि बड़े वेगसे ज्वर आ गया। छः घण्टा बाद ज्वरका वेग कम हुआ। बगोदराके बँगलामें रात्रि व्यतीत की। वहाँसे चलकर हजारीबाग रोड आ गये। यहाँ पर श्री भौंरीलालजीके घर दो दिन ठहरे। आपने अच्छी तरह उपचार किया। स्वास्थ्य

अच्छा हो गया। वहीं पर श्री रामचन्द्र सेठी गिरीडीवालोंका कुटुम्ब आ गया। बहुत ही आग्रह पूर्वक आपने कहा कि 'क्यों इस पवित्र स्थानको छोड़ते हो?' परन्तु मैंने एक न सुनी, चल दिया। मार्गमें अनेक उत्तम दृश्य देखनेके लिये मिले। आठ दिन बाद गया पहुँच गया।

यहाँ पर बाबू कन्हैयालालजी तथा चम्पालालजी सेठी आदिने गया रोकनेका बहुत आग्रह किया। मैंने कहा कि 'एक बार सागर जानेका दृढ़ निश्चय है।' लोगोंने कहा—'आपकी इच्छा।' मैंने कहा—'तीन दिन बाद चला जाऊँगा।' तीन दिनके बाद एकदम पैरके अंगूठामें दर्द हो गया। इतना दर्द हुआ कि चलने में असमर्थ हो गया, अतः लाचार होकर मैं स्वयं रह गया। सागरसे जो लेनेके लिये आये थे वे अगत्या लौटकर सागर चले गये।

पैरके अँगूठेका इलाज होने लगा। सत्तर रुपयामें एक बोतल तेल बनवाया तथा एक वैद्यराजने बहुत ही प्रेमके साथ औषधि की। एक मासके उपचारसे अँगूठामें आराम हो गया। अनन्तर गया रहनेका ही विचार हो गया।

वर्षाकाल गयामें सानन्द बीता। सब लोगोंकी रुचि धर्ममें अत्यन्त निर्मल हो गई। मैं तो विशेष त्यागी और पण्डित नहीं, परन्तु मेरा आत्मविश्वास है कि जो मनुष्य स्वयं पवित्र है उसके द्वारा जगत्का हित हो सकता है।

यहाँसे मैंने कार्तिक वदी दोजको लोगोंसे सम्मति लेकर श्री वीरप्रभुकी निर्वाणभूमिके लिये प्रस्थान किया। दस मील तक जनता गई। वहीं पर श्रीमान् जानकीदास कन्हैयालालजीकी ओरसे प्रीतिभोज हुआ। वहाँ चलकर कई दिन बाद नवादा पहुँच गये। यहाँ पर श्री लक्ष्मीनारायणजी साहब बहुत धर्मात्मा

सज्जन हैं। उनके आग्रहसे दो दिन रहा। आपके दो सुपुत्र हैं। बहुत ही सुयोग्य हैं। एक पुत्र सुगुणचन्द्र प्रान्तीय खण्डेलवाल सभाके मन्त्री हैं। आपके हृदयमें जातिसुधारकी प्रबल भावना है। आप प्राचीन विचारोंके नहीं, नवीन सुधार चाहते हैं। साथ में धार्मिक रुचि भी आपकी उत्तम है।

यहाँसे श्री गुणावाजी गये। यहाँपर एक मन्दिर बहुत ही सुन्दर है। चारों तरफ ताड़के वृक्षोंका वन है। बीचमें बहुत सुन्दर कूप है। प्रातःकाल जब पंक्तिबद्ध ताड़वृक्षोंके पत्रोंसे छनकर बाल दिनकरकी सुनहली किरणें मन्दिरकी सुधाधवलित शिखर पर पड़ती हैं तब बड़ा सुहावना मालूम होता है। मन्दिरमें एक शुभ्रकाय विशाल मूर्ति है। मन्दिरसे थोड़ी दूरपर एक सरोवर है। उसमें एक जैन मन्दिर है। मन्दिरमें श्री गौतम स्वामीका प्रतिबिम्ब है।

यहाँ थक गया, अत: यह भाव हुआ कि यहीं निर्वाण लाडूका उत्सव मनाना योग्य है। सायंकाल सड़कपर भ्रमण करनेके लिये गया। इतनेमें दो भिखमंगे मांगनेके लिए आये। मैं अन्दर जाकर लाडू लाया और दोनोंको दे दिये। मैंने उनसे पूछा कि 'कहाँ जाते हो?' उन्होंने कहा—'श्री महावीर स्वामीके निर्वाणोत्सवके लिये पावापुर जाते हैं।' मैंने कहा—'तुम्हारे पैर तो कुष्टसे गलित हैं, कैसे पहुँचोगे?' उन्होंने कहा—'श्री वीर प्रभुकी कृपासे पहुँच जावेंगे। उनकी महिमा अचिंत्य है। उन्हींके प्रतापसे हमें वहाँ एक वर्षका भोजन मिल जाता है। उन्हींके प्रतापसे हमारा क्या, प्रान्त भरके लोगोंका कल्याण होता है। महावीरस्वामीका अचिन्त्य और अनुपम प्रताप है। अहिंसाका प्रचार आपके ही प्रभावका फल है। यदि इस युगके आदिमें श्री वीर प्रभुका अवतार न होता तो सहस्रों पशुओंके बलिदानकी प्रथा न रुकती। संसार महा-

भयानक है। इसमें नाना मतोंकी सृष्टि हुई, जिनसे परस्परमें अनेक प्रकारकी विचार विभिन्नता हो गई। धर्मका यथार्थ स्वरूप कहनेवाला तो वीतराग सर्वज्ञ ही है। वीतरागता और सर्वज्ञता कोई अलौकिक वस्तु नहीं। मोहका तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका अभाव होते ही आत्मामें वीतरागता और सर्वज्ञता दोनों ही प्रकट हो जाते हैं, अतः ऐसी आत्माके द्वारा जो कुछ कहा जाता है वही धर्म है।'

भिखमंगोंके मुँहसे इतनी ज्ञानपूर्ण बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने कहा—'भाई! तुम्हें इतना बोध कहाँ से आया?' वे बोले—'आप जैन होकर इतना आश्चर्य क्यों करते हो? समझो तो सही, जो आपकी आत्मा है वही तो मेरी है। केवल हमारे और आपके शरीरमें अन्तर है। मेरा शरीर कुष्ट रोगसे आक्रान्त है। आपका शरीर मेरे शरीरकी अपेक्षा निर्मल है। वैसे इस विषयमें विशेष रीतिसे मीमांसा की जावे तो जैसा आपका शरीर हाड़ मांसादिका पिण्ड है वैसा ही मेरा भी है। एतावता हम बुरे और आप अच्छे हैं यह कोई नहीं कह सकता। हम भिखमंगे हैं और आप देनेवाले हैं इससे आप महान् और हम जघन्य हैं यह भी कोई अविनाभावी नियम नहीं, क्योंकि हमने अपनी कषाय भिक्षा माँग कर शान्तकी और आपने भिक्षा देकर अपनी कषायका शमन किया। आप श्री पावापुरजी जाकर महावीर स्वामीका पूजन विधान कर उत्सव करेंगे और हम भिखमंगे उनका नामस्मरण करते हुए उत्सव मनावेंगे। एतावता आप उत्कृष्ट और हम जघन्य रहे यह भी कोई नियम नहीं। उत्सव द्वारा आपकी यही तो भावना है कि हम संसार बन्धनसे छूटें। नामस्मरण से हमारी भी यही मनोऽभिलाषा है कि हे प्रभो! इस वर्ष भोजनके संकटसे बचें। आखिर दुःखका मूल जननी आकांक्षा जिस प्रकार मेरे भीतर है उसी प्रकार आपके

भीतर भी है। वह निरपेक्षता जो कि वास्तवमें आत्माको बन्धनसे छुड़ानेवाली है, न आपके है और न हमारे। वचनकी कुशलतासे चाहे आप भले ही मनुष्योंमें निरपेक्ष बननेका प्रयत्न करें, परन्तु भीतरसे जैसे हो आप स्वयं जानते हो। आप लोग प्रतिष्ठाके लोलुपी हो. भला यथार्थ पदार्थ कहाँ तक कहोगे ? इस लोकैषणाने जगन्मात्रको व्यामोहके जालमें फँसा दिया।'....इतना कह कर वह फिर बोला—'यदि और कोई प्रश्न शेष रह गया हो तो पूछिये, मैं यथाशक्ति उत्तर दूँगा।'

मैंने फिर प्रश्न किया—'भाई! आपकी यह अवस्था क्यों हो गई ?' वह बोला—'मेरी यह अवस्था मेरे ही दुराचारका परिणाम है। मैं एक उत्तम कुलका बालक था। मेरा विवाह बड़े ठाट-बाटसे हुआ था। स्त्री बहुत सुन्दर और सुशील थी, परन्तु मेरी प्रकृति दुराचारमयी हो गई। फल यह हुआ कि मेरी धर्मपत्नी अपघात करके मर गई। कुछ ही दिनोंमें मेरे माता-पिताका स्वर्गवास हो गया और जो सम्पत्ति पासमें थी वह वेश्याव्यसनमें समाप्त हो गई। गर्मी आदिका रोग हुआ। अन्तमें यह दशा हुई जो आपके समक्ष है, परन्तु क्षेत्र पर जानेसे अब मेरी श्रद्धा जैनधर्मके प्रवर्तक अन्तिम तीर्थंकरमें हो गई। उन्हींके स्मरणसे मैं सानन्द जीवन व्यतीत करता हूँ, अतः आप आनन्दसे यात्राको जाईये और निरपेक्ष प्रभुका निर्वाणोत्सव करिये, जिससे हम लोगोंकी अपेक्षा कुछ विशेषता हो। यद्यपि हम भी निरपेक्ष ही प्रभुका स्मरण करते हैं तो भी हमारी बात कौन माननेवाला है। मत मानों, फल तो परिणामोंकी जातिका होगा। कुष्टादि होनेसे हमारे परिणाम निर्मल न हों और आप लोगोंके हैं यह कोई राजाज्ञा नहीं। अब मैं आपको आशीर्वाद देता हूँ कि वीरप्रभु आपका कल्याण करें।' इतना कह कर उन दोनोंने श्री पावापुरका मार्ग लिया।

वीर निर्वाणोत्सव

उन लोगोंके 'वीरप्रभुकी कृपासे पहुँच जावेंगे' वचन कानोंमें गूँजते रहे। जब कि अपाङ्ग लोग भी वीरप्रभुके निर्वाणोत्सवमें सम्मलित होनेके लिये उत्सुकताके साथ जा रहे हैं तब मैं तो अपाङ्ग नहीं हूँ। रही थकावटकी बात सो वीरप्रभुकी कृपासे वह दूर हो जायगी...इत्यादि विचारोंसे मेरा उत्साह पुनः जागृत हो गया और मैंने निश्चय कर लिया कि पावापुर अवश्य पहुँचूँगा।

रात्रि गुणावा ही में बिताई। प्रातःकाल होते ही श्री वीरप्रभुका स्मरण कर चल दिया और नव बजे श्री पावापुर पहुँच गया। भोजनादि कर धर्मशालामें सो गया। दोपहरके दो बजे बाद आगत महाशयोंके समक्ष श्री वीरप्रभुका गुणगान करने लगा। यह वही भूमि है जहाँ पर वीरप्रभुका निर्वाणोत्सव इन्द्रादि देवोंके द्वारा किया गया था। हम सब लोग भी इसी उद्देश्यसे आये हैं कि उन महाप्रभुका निर्वाणोत्सव मनावें। यद्यपि श्री वीरप्रभु मोक्ष पधार चुके हैं। संसारसे सम्बन्ध विच्छेद हुए उन्हें अढ़ाई हजार वर्षके लग-भग हो चुका, फिर भी इस भूमि पर आनेसे उनके अनन्त गुणोंका स्मरण हो आता है, जिससे परिणामोंकी निर्मलताका प्रयत्न अनायास सम्पन्न हो जाता है। परमार्थसे वीरप्रभुका यही उपदेश था कि यदि संसारके दुःखोंसे मुक्त होनेकी अभिलाषा है तो जिस प्रकार मैंने परिग्रहसे ममता त्यागी, ब्रह्मचर्य व्रतको ही अपना सर्वस्व समझा, राज्यादि बाह्य सामग्रीको तिलाञ्जलि दी, माता-पिता आदि कुटुम्बसे स्नेह त्याग दैगम्बरी दीक्षाका अवलम्बन लिया। बारह वर्ष तक अनवरत द्वादश प्रकारका तप तपा, दश धर्म धारण किये, द्वाविंशति परिषहों पर विजय प्राप्त की, क्षपकश्रेणीका आरोहण कर मोहका

नाश किया, और अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त क्षीणकषाय गुणस्थानमें रह कर इसीके द्विचरम समयमें दो और चरम समयमें चौदह प्रकृतियोंका नाश किया एवं केवलज्ञान प्राप्त किया इसी प्रकार सबको करना चाहिये। यदि मैं केवल सिद्ध परमेष्ठीका ही स्मरण करता रहता तो यह अवस्था न होती, वह स्मरण तो प्रमत्त गुणस्थानकी ही चर्चा थी। मैंने परिणामोंकी उत्तरोत्तर निर्मलतासे ही अर्हन्त पद पाया है, अतः जिन्हें इस पदकी इच्छा हो वे भी इसी उपायका अवलम्बन करें। यदि दैगम्बरी दीक्षाकी योग्यता न हो तो देशविरत ही अंगीकार करो तथा देशविरतकी योग्यता न हो तो श्रद्धा तो रक्खो। जिस किसी भी तरह बने इस परिग्रह पापसे अवश्य ही आत्माको सुरक्षित रक्खो। परिग्रह सबसे महान् पाप है। मोक्षमार्गमें सबसे अधिक मुख्यता दृढ़ श्रद्धाकी है। इसके होने पर ही देशव्रत तथा महाव्रत हो सकते हैं। इसके बिना उनका कुछ भी महत्त्व नहीं होता। पूँजीके बिना व्यापार नहीं होता। दलाली भले ही करो, अतः आज हम सबको आत्माकी सत्य श्रद्धा करना चाहिये।'

सुनकर कई महाशयोंने कहा कि 'हमको वीर प्रभुके परम्परा उपदेशमें वास्तविक श्रद्धा है, परन्तु शक्तिकी विकलतासे व्रतादि धारण नहीं कर सकते। हाँ, यह नियम करते हैं कि अन्यायादि कार्योंसे बचेंगे।' एक आदमी बोला कि 'अब ऐसा समय आ गया है कि न्यायसे भोजन मिलना भी कठिन हो गया है। जैसे, मैं अपनी कहानी सुनाता हूँ—मेरे अभक्ष्यका त्याग है। बाजारमें अनाज मिलता नहीं। कंट्रोलकी दूकानसे मिलता है सो वहाँ यद्वा तद्वा चावल और गेहूँ मिलते हैं जो कि चरणानुयोग शास्त्रके अनुकूल नहीं। गेहूँ घौंधा और चावल जीवराशिसे भरे रहते हैं। यदि उन्हें खाता हूँ तो अभक्ष्य भोजन करना पड़ता है और नहीं खाता हूँ तो उतनी शक्ति नहीं कि जिससे निराहार रह सकूँ।

अन्तमें लाचार होकर ब्लेक मार्केटसे बहु कीमतमें अनाज लाकर भोजन करना पड़ता है जो कि राजाज्ञाके विरुद्ध है....ऐसी अवस्थामें क्या किया जावे ? अन्तमें यही संतोष करना पड़ता है कि यह पञ्चम काल है। इसमें जब तक यह विदेशी लोग राजा रहेंगे तब तक प्रजाके धनको चूसेंगे और राज्यके जो अन्य कार्यकर्तागण होंगे वे भी कुटिल हृदयवाले होंगे। प्रजाको नहीं सुनेंगे। केवल स्वोदर पोषण करना ही उनका लक्ष्य रहेगा। प्रजा चाहे जहन्नुममें जावे। अथवा इन्हें क्यों दोष दिया जावे ? सबसे महान् अपराध तो राजाका ही है, क्योंकि प्रजा हमेशा राजाका अनुकरण करती है। किसी नीतिकारने अक्षरशः सत्य कहा है—

'राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा ॥'

अर्थात् राजा यदि धर्मात्मा है तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है, राजा पापी होता है तो प्रजा भी पापी होती है और राजा सम होता है तो प्रजा भी सम रहती है।

यह कालिकाल है। इसमें राजा विषयी और अविवेकी हो गये। राजा लोग अपनी विषयाभिलाषाकी पूर्तिके लिये प्रजाका कष्ट नहीं देखते और न अविवेकके कारण वे अच्छे बुरेकी पहिचान ही रखते हैं। खल मनुष्य अपनी चापलूसी द्वारा राजवल्लभ बन जाते हैं पर न्यायनीतिसे चलनेवाले सज्जन सदा अप्रिय बने रहते हैं। एक कविने इन अविवेकी राजाओं और उनके कर्मचारियोंकी अन्तर्व्यवस्था एक अन्योक्ति द्वारा बहुत सुन्दर रीतिसे कही है—

'रे रे रासभ भूरिभारवहनात् कुग्रासमश्नासि किं
राजाश्वावसतिं प्रयाहि चणकाभूसान् सुखं भक्षय।
ये ये पुच्छभृतो हया इति वदन् तत्राधिकारे स्थितः
राजा तैरुपदिष्टमेव मनुते सत्यं तटस्थाः परे ॥'

एक आदमी गर्दभसे कहता है कि हे गर्दभ! तुम इतना भारी बोझा ढोकर भी खराब खाना क्यों खाते हो? गर्दभ पूछता है तो क्या खाऊँ? अच्छा कहाँसे पाऊँ? आदमी कहता है कि तुम राजाके घोड़ोंकी शालामें चले आओ। वहाँ आनन्दसे चनेका भूसा खाना। गर्दभ बोला—घोड़ोंकी शालामें प्रवेश कैसे पा सकेंगे? आदमीने कहा—वहाँका जो अधिकारी है उनसे घोड़ोंकी परिभाषा बना रक्खी है कि जिस जिसके पूँछ हो वह घोड़ा है, तुम्हारे पूँछ है ही, क्यों डरते हो? गर्दभने कहा—अधिकारी बेवकूफ है पर राजा तो नहीं? जब राजा मुझे देखेगा तो पीटकर निकाल देगा। आदमीने कहा—नहीं, राजा स्वयं कुछ नहीं देखता। अधिकारी लोग जो कुछ कह देते हैं वह उसे मान लेता है। गर्दभ ने कहा—अच्छा, राज-दरबारमें और भी तो लोग रहते हैं, सभी तो मूर्ख नहीं होंगे। आदमीने कहा—सबको क्या लेना देना? सब लोग तटस्थ हैं........कहनेका तात्पर्य यह है कि उस राजाके यहाँ अच्छे बुरेकी कुछ भी रीझ-बूझ नहीं है।

अतः जहाँ तक बने श्रद्धा तो निर्मल ही रक्खो, अन्य कार्य यथाशक्ति करो। प्राण जावें तो भले ही जावें परन्तु श्रद्धा को न बिगाड़ो। आप लोग यह न समझें कि मैं देशव्रतकी उपयोगिता नहीं समझता हूँ, खूब समझता हूँ और मेरे पञ्च पापका त्याग भी है। व्रतरूपसे भले ही न हो, परन्तु मेरी प्रवृत्ति कभी भी पापमयी नहीं होती। मेरी स्त्री भी व्रतोंका पालन करती है। वह भी कुछ-कुछ स्वाध्याय करती है। जब हम दोनोंका सम्बन्ध हुआ था तब हम दोनोंने यह नियम किया था कि चूँकि विवाहका सम्बन्ध केवल विषयाभिलाषाकी पूर्ति के लिये नहीं है। किन्तु धर्मकी परिपाटी चलानेवाली योग्य सन्तानकी उत्पत्तिके लिये है, अतः ऋतु कालके अनन्तर ही विषय सेवन करेंगे और वह

भी पर्वके दिन छोड़ कर। साथ ही यह भी नियम किया था कि जब हमारे दो सन्तानें हो जावेंगी तबसे विषय वासनाका बिलकुल त्याग कर देवेंगे। दैवयोगसे हमारे एक सन्तान चौबीस वर्षमें हुई है और दूसरी बत्तीस वर्षमें। अब आठ वर्ष हो गये तबसे मैं और मेरी धर्मपत्नी दोनों ही ब्रह्मचर्यसे रहते हैं। इस समय मेरी आयु चालीस वर्षकी और मेरी धर्मपत्नीकी छत्तीस वर्षकी है। ये मेरे दोनों बालक बैठे हैं तथा यह जो पासमें बैठी है, धर्मपत्नी है। अब हम दोनोंका सम्बन्ध भाई-बहिनके सदृश है। आप लोग हम दोनोंको देखकर यह नहीं कह सकेंगे कि ये दोनों स्त्री-पुरुष हैं। यदि आप लोग अपना कल्याण चाहते हो तो इस व्रतकी रक्षा करो। मेरी बात मानों, जब सन्तान गर्भमें आजावे तबसे लेकर जब तक बालक माँका दुग्धपान न छोड़ देवे तबतक भूलकर भी विषय सेवन न करो। बालकके समक्ष स्त्रीसे रागादिमिश्रित हास्य मत करो। बालकोंके सामने कदापि स्त्रीसे कुचेष्टा मत करो, क्योंकि बालकोंकी प्रवृत्ति माता-पिताके अनुरूप होती है, अतः ऐसा निर्मल आचरण करो कि तुम्हारी सन्तान वीर बने। मेरी समझसे वीरप्रभुके निर्वाणोत्सव देखनेका यही फल है।'

इस तरह आपकी रामकहानी सुनकर कई लोग गद्-गद् हो गये और कहने लगे कि हम यही अभ्यास करेंगे।

वास्तवमें देखा जाय तो बहुत अयोग्य सन्तान की अपेक्षा अल्प ही योग्य सन्तान उत्तम होती है। आज भारतवर्षमें ४० करोड़ आदमी हैं। यदि उनमें ४० ही निरपेक्ष होते तो भारतका कभीका उत्थान हो जाता। मेरे कहनेका यह तात्पर्य नहीं कि भारतमें विज्ञानी नहीं, पण्डित नहीं, बैरिस्टर नहीं, धनिक नहीं, राजा नहीं, शूर नहीं; हजारोंकी संख्यामें होंगे। परन्तु जिन्हें निरपेक्ष कहते हैं उनकी गिनती अल्प ही होगी।

इस समय सबसे प्रमुख तथा चालीस कोटि ही जनताका नहीं अपितु समस्त विश्वका हित चाहनेवाले गाँधी महात्माके सदृश यदि कुछ नररत्न यहाँ और होते तो क्या भारतका उत्थान असंभव था। श्रीयुत पं जवाहरलाल नेहरू, देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद, सरदार बल्लभभाई पटेल तथा आचार्य कृपलानी आदि बहुतसे नररत्न भारतवर्षमें हैं, जिनके पुरुषार्थसे ही आज हम भारतवर्षको आत्मीय समझने लगे हैं। स्वराज्यके दर्शन हमें इन्हीं लोगोंके प्रयत्नसे हुए हैं। अस्तु, यह तो लौकिक स्वराज्य की बात रही, इससे भी अधिक आवश्यकता हमें वास्तविक स्वराज्यकी है। उसके लिये हमें विषयकषायोंको त्यागनेकी आवश्यकता है। जिस प्रकार भारतको स्वतन्त्र करनेके लिये महात्मा गाँधी आदि महापुरुष कटिबद्ध रहे और पं० नेहरू आदि कटिबद्ध हैं उसी प्रकार आत्माको स्वतन्त्र करनेके लिए श्री शान्ति-सागर जी महाराज दिगम्बराचार्य दक्षिण देशवासी तथा श्री सूर्यसागर जी महाराज दिगम्बराचार्य उत्तर प्रान्तवासी कटिबद्ध हैं। वास्तविक स्वराज्यके मार्गदर्शक आप ही हैं, आपके उप-देशसे हजारों मनुष्य धर्ममार्गमें दृढ़ हुए हैं।

आचार्य-युगल तो अपने कर्तव्यमें निरत हैं, परन्तु गृहस्थों का लक्ष्य अपने कर्तव्यकी पूर्तिमें जैसा चाहिये वैसा नहीं है— अभी बहुत त्रुटि है। प्राचीन संस्कृतिकी रक्षा करनेवाला ऐसा एक भी आयतन अबतक नहीं बन सका है कि जिसमें प्रतिवर्ष कमसे कम बीस तो दिग्गज विद्वान् निकलें। एक भी ऐसा विद्यालय नहीं जहाँ सभी विषयोंकी शिक्षा दी जाती हो। जैनियों में एक स्याद्वाद विद्यालय ही ऐसा है जो सर्व विद्यालयोंके केन्द्र-स्थानमें है, परन्तु उसमें आज तक एक लाख रुपयेका कोष नहीं हो सका! अतः यही कहना पड़ता है कि पञ्चमकाल है, इसमें ऐसे उत्कृष्ट धर्मकी वृद्धि होना कठिन है। इत्यादि ऊहापोह हम

लोगोंमें होता रहा। निर्वाणोत्सवके दिन यहाँ बहुत भीड़ हो जाती है। जलमन्दिरमें ठीक स्थान पानेके लिये लोग बहुत पहलेसे जा पहुँचते हैं और इस तरह सारी रात मन्दिरमें चहल-पहल बनी रहती है। हम लोगोंने भी श्री महावीर स्वामीका निर्वाणोत्सव आनन्दसे किया।

राजगृहीमें धर्मगोष्ठी

पावापुरसे चलकर राजगृही आये। पञ्च पहाड़ीकी वन्दना की। यहाँका चमत्कार विलक्षण है—पर्वतकी तहलटीमें कुण्ड हैं, पानी गरम है और जिनमें एक ही बार स्नान करनेसे सब थकावट निकल जाती है। अधिकांश लोग पहले दिन तीन पहाड़ियोंकी और दूसरे दिन अवशिष्ट दो पहाड़ियोंकी वन्दना करते हैं। विरले मनुष्य पाँचों पहाड़ियोंकी भी वन्दना एक ही दिनमें कर लेते हैं। पहाड़ियोंके ऊपर सुन्दर सुन्दर स्थान हैं, परन्तु हम लोग उनका उपयोग नहीं करते, केवल दर्शन कर ही चले आते हैं।

मैं तीन मास यहाँ रहा। प्रातःकाल सामायिक करनेके बाद कुण्डोंपर जाता था और वहीं आधा घंटा तक स्नान करता था। वहीं पर बहुतसे उत्तम पुरुष आते थे। उनके साथ धर्मके ऊपर विचार करता था। अन्तमें सबके परामर्शसे यही सच निकला कि धर्म तो आत्माकी निर्मल परिणतिका नाम है। यह जो हम प्रवृत्तिमें कर रहे हैं, धर्म नहीं है। मन वचन कायके शुभ व्यापार हैं। जहाँ मनमें शुभ चिन्तन होता है, कायकी चेष्टा सरल होती है, वचनोंका व्यापार स्वपरको अनिष्ट नहीं होता वह सब मन्द कषायके कार्य हैं। धर्म तो वह वस्तु है जहाँ न कषाय है और न मन वचन कायके व्यापार हैं। वास्तवमें वह वस्तु वर्णनातीत है। उनके

होते ही जीव मुक्तिका पात्र हो जाता है। मुक्ति कोई अलौकिक पदार्थ नहीं। जहाँ दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है वहीं मुक्तिका व्यवहार होने लगता है। किसीने कहा है—

'सुखमात्यन्तिकं यत्र बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
तं वै मोक्षं विजानीयाद् दुष्प्राप्यमकृतात्मभिः॥'

हम लोगोंके जो प्रयास हैं वे दुःखनिवृत्तिके लिये हैं। दुःख किसीको इष्ट नहीं। जब दुःख होता है तब आत्मा बेचैन हो उठती है। उसे दूर करनेके लिये जो जो प्रयत्न किये जाते हैं वे प्रायः हम सबको अनुभूत हैं। यहाँ तक देखा गया है कि जब अत्यन्त दुःखका अनुभव होता है और जीव उसे सहनेमें असमर्थ हो जाता है तब विष खाकर मर जाता है। लोकमें यहाँ तक देखा गया है कि मनुष्य कामवेदनाकी पीड़ामें पुत्री, माता और भगिनीसे भी सम्पर्क कर लेता है। यहाँ तक देखा गया है कि उच्च कुलके मनुष्य भंगिनके संसर्गसे भंगी तक हो हो जाते हैं।

एक ग्राम मदनपुर है जो मेरी जन्मभूमिसे चार मील है। वहाँ एक भंगिन थी। उसका सम्पर्क किसी उच्च कुलके मनुष्यसे हो गया। पुलिसवालोंने उसपर मुकद्दमा चलाया। जब वह अदालत में पहुँची तब मजिस्ट्रेटसे बोली कि 'इसे क्या फँसाते हो? मेरे पास एक घड़े भर जनेऊ रखे हैं, किस किसको फँसाओगे? मेरा सौन्दर्य देखकर अच्छे अच्छे जनेऊधारी पैरोंकी धूलि चाटते थे और मैं भी ऐसी पापिन निकली कि जिसने अपना नाश तो किया ही साथमें सहस्रोंको भी नष्ट कर दिया।' इससे सिद्ध होता है कि आत्मा दुःखकर वेदनामें सदसत्‌के विवेकसे शून्य हो जाता है, अतः दुःखनिवृत्ति ही पुरुषार्थ है। दुःखोंका मूल कारण इच्छा है। इसका त्याग ही सुखका

जनक है। इच्छाकी उत्पत्ति मोहाधीन है। मोहमें यह आत्मा अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मीयत्वकी कल्पना करता है। जब आत्मीय पदार्थको अपना मान लिया तब उसके अनुकूल पदार्थों में राग और प्रतिकूल पदार्थोंमें द्वेष स्वयं होने लगता है, अतः हमारी गोष्ठीमें यही चर्चाका विषय रहता था कि इस शरीरमें निजत्वबुद्धिको सबसे पहले हटाना चाहिए। यदि यह हट गई तो शरीर के जो सम्बन्धी हैं उनसे सुतरां ममताबुद्धि हट जावेगी।

इस शरीरके जनक मुख्यतया माता और पिता हैं। पिताकी अपेक्षा माताका विशेष सम्बन्ध रहता है, क्योंकि वह ही इसके पोषण करनेमें मुख्य कारण है। जब यह निश्चय है कि यह शरीर हमारा नहीं, क्योंकि इसकी रचना पुद्गलोंसे है। माताका रज और पिताका वीर्य, जो कि इसकी उत्पत्तिमें कारण हैं, पौद्गलिक हैं। आहारादि जिनसे कि इसका पोषण होता है, पौद्गलिक हैं, जिस कर्मके उदयसे इसकी रचना हुई वह भी पौद्गलिक है, तथा इसकी वृद्धिमें जो सहायक हैं वे सब पौद्गलिक हैं....तब इसे जो हम अपना मानते थे वह हमारी अज्ञानता थी। आज आगमाभ्यास, सत्समागम और कर्मलाघवसे हमारी बुद्धिमें यह आगया कि हमारी पिछली मान्यता मिथ्या थी। हम लोगोंको इससे ममताभाव छोड़ देना ही कल्याण पथ है।

कोई यह कहता था कि कि इस व्यर्थके वितण्डावादसे कुछ सार नहीं निकलता। जब यह निश्चय हो गया कि यह शरीर पर है, पौद्गलिक है और हम चेतन हैं, हमारा इसके साथ कोई भी वास्तविक सम्बन्ध नहीं। जो सम्बन्ध औपचारिक हैं वे बने ही रहेंगे, उनसे हमारी क्या हानि? अतः हमें उचित है कि हम अपनी आत्मामें जो राग-द्वेष होते हैं उनसे तटस्थ रहें, उन्हें अपनानेका अभिप्राय त्याग दें।

इस प्रकार प्रतिदिन हमारे साथ आगन्तुक महानुभावोंकी चर्चा होती रहती थी। वहाँसे आकर मन्दिरजीमें भी शास्त्र-प्रवचन करता था।

श्रीयुत महाशय नन्दलालजी सरावगी जो कि बहुत सज्जन हैं और जिन्होंने यहाँ एक बंगला बनवाया है तथा कभी-कभी यहाँ आकर धर्मसाधनमें अपना समय बिताते हैं। आपका घराना बहुत ही धार्मिक है। आपके स्वर्गीय पिताजीने स्याद्वाद विद्यालय बनारसको ५०००) एकबार कलकत्तामें दान दिया था। आपकी कोठी कलकत्तामें हैं। आप बड़े-बड़े आफिसोंमें दलालीका काम करते हैं। यहाँ पर और भी अनेक कोठियाँ है। एक कोठी श्रीयुक्त कालूरामजी मोदी गिरेडीवालोंने भी बनवाई है।

इस प्रकार तीन मास मैं यहाँ रहा। यहाँका जलवायु अत्यन्त स्वच्छ है। हरी-भरी पहाड़ियोंके दृश्य, विलक्षण कुण्ड और प्राकृतिक कन्दराएँ सहसा मनको आकर्षित कर लेती हैं। विपुलाचलका दृश्य धर्मशालासे ही दिखाई देता है। यहाँ पहुँचते ही यह भाव हो जाता है कि यहाँ श्री वीर भगवान्‌का समवसरण जब आकाशमें भरता होगा और चारों ओरसे जब मनुष्य, विद्याधर तथा देवगण उसमें प्रवेश करते होंगे तब कितना आनन्द न होता होगा? भगवान्‌की जगत् कल्याणकारिणी दिव्यध्वनिसे यहाँकी द्यावा-पृथ्वी गुञ्जित रही होगी। यह वही स्थान है जहाँ महाराज श्रेणिक जैसे विवेकी राजा और महारानी चेलना जैसी पतिव्रता रानीने आवास किया था। विपुलाचल पर दृष्टि जाते ही यह भाव सामने आ जाता है कि भगवान् महावीर स्वामीका समवसरण भरा हुआ है, गौतम गणधर विराजमान हैं और महाराज श्रेणिक नतमस्तक होकर उनसे विविध प्रश्नोंका उत्तर सुन रहे हैं। अस्तु यहाँसे पैदल यात्रा करते हुए हम ईसरी आगये, मार्गमें उत्तम-उत्तम दृश्य मिले।

गिरीडीहका चातुर्मास

जब हजारीबाग आया तब ग्रामसे बाहर चार मील पर रात्रि हो गई। सड़क पर ठहरनेके लिये कोई स्थान नहीं था, केवल एक धर्मशाला थी जो कि कलकत्तामें रहनेवाले एक मेहतरने बनवाई थी। चूँकि वह मेहतरकी बनवाई थी इससे साथके लोगोंने उसमें ठहरनेमें एतराज किया। मैंने कहा—'भाईयो! धर्मशाला तो ईंट चूनाकी है। इसमें ठहरनेसे क्या हानि है? इतनी घृणा क्यों? आखिर वह भी तो मनुष्य है और उसने परोपकारकी दृष्टिसे बनवाई है। क्या उसको पुण्यबन्ध नहीं होगा? बनवाते समय उसके तो यही भाव रहे होंगे कि अमुक जातिका शुभपरिणाम करे तभी पुण्यबन्ध हो। जिसके शुभ-परिणाम होंगे वही पुण्यका पात्र होगा। जब कि चारों गतियोंमें सम्यग्दर्शन हो सकता है तब पञ्चलब्धियाँ होने पर यदि भंगीको सम्यग्दर्शन हो जावे तो कौन रोकनेवाला है? जरा विवेकसे काम लो। जिसके अनन्त संसारका नाश करनेवाला सम्यग्दर्शन हो जावे और पुण्यजनक शुभ परिणाम न हो...यह बुद्धिमें नहीं आता।' एक बोला—'हम यह कुछ नहीं जानते, किन्तु लोक-व्यवहार ऐसा नहीं कि भंगीकी धर्मशालामें ठहरा जावे।' मैंने कहा—'किसी भंगीने चार आमके पेड़ मार्गमें लगा दिये। हम लोग घामसे पीड़ित होते हुए उस मार्गसे निकलें और छायामें बैठना ही चाहते हों कि इतनेमें कोई कह उठे कि ए मुसाफिर? ये पेड़ भंगीने लगाये हैं तब क्या हम उनकी छायाको त्याग देंगे?' हमारे साथके आदमी बोले—'वर्णीजी! लोकमर्यादाका लोप मत करो।' मैंने कहा—'भैया! लोकमर्यादा इसीको कहते हैं कि हम अस्पतालकी दवाईयाँ खावें, जहाँकी प्रत्येक कार्यकी सफाई करनेवाले यही भंगी होते हैं, जहाँकी औषधियाँ मांस और

मदिरासे भरी रहती हैं, जहाँ ताकतवर औषधमें प्रायः मछलीका तेल दिया जाता है और जहाँ अण्डोंके स्वरसका योग औषधियोंके साथ किया जाता है। आपके सामने तो बनी हुई स्वच्छ दवाई आती है इससे कुछ पता नहीं चलता, पर किसी डाक्टरसे उसके उपादान और बनानेकी प्रक्रियाको पूछो और वह सच सच बतलावे तो रोमाञ्च उठ आवें, शरीर सिहर जावे। होटलोंमें खावें जहाँ कि उच्छिष्टका कोई विचार नहीं रहता....इन सब कार्योंमें लोकमर्यादा बनी रहती है, पर एक भंगीके पैसेसे बनी हुई धर्मशालामें ठहरनेसे लोकमर्यादा नष्ट हुई जाती है, याने यहाँ की पृथ्वी ही अशुद्ध हो गई !'

बहुत कहाँ तक कहें उस धर्मशालामें ठहरना किसीने स्वीकार नहीं किया। अन्तमें एक ग्राममें जाकर एक कृषकके मकानमें ठहर गये। कृषक बहुत ही उत्तम प्रकृतिका था। उसने आंगन खाली कर दिया तथा एक मकान भी। हम लोगोंने आनन्दसे रात्रि बिताई। प्रातःकाल सरिया (हजारीबाग रोड) आ गये। यहाँ पर अपने परिचित भोंरीलाल जी सेठीके यहाँ ठहरे। बहुत ही प्रेमसे रहे। यहाँसे दो दिनमें फिर ईसरी पहुँच गये।

सेठ कमलापति, तपसी स्वामी दामोदर, सोहनलाल जी तथा बाबू गोविन्दलालजी, जो पुराने साथी थे, आनन्दसे मिल गये। श्रीयुत बाबू धन्यकुमारजी आरावाले भी मिल गये। आपके धर्मपत्नीका हमसे बहुत ही स्नेह रहता है। श्री मक्खनलालजी सिंघई छपरावाले भी यहाँ धर्मसाधनके लिए आये। आपका तीन सुपुत्र हैं, घरके सम्पन्न हैं, शास्त्र सुननेका आपको बहुत ही प्रेम है, सुबोध भी हैं।

इस प्रकार यहाँ आनन्दसे दिन बीतने लगे। चार मासके बाद गिरीडीमें चातुर्मासके लिए चले गये। मदन बाबू बड़े प्रेमसे ले गये। पहले दिन चिरकी रहे। यहाँसे गिरिराजकी यात्रा कर

फिर यहीं आ गये। यहाँसे बराकट गये। यहाँ पर श्वेताम्बर धर्मशाला बहुत सुन्दर है। बीचमें मन्दिर है। उसीमें सानन्द रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल चलकर गिरेडी पहुँच गये। यहाँ पर सुखसे काल बीतने लगा। बाबा राधाकृष्णके बँगलामें ठहरे। यहाँ पर दो मन्दिर हैं। एक तेरापंथी आम्नायका है। उसमें श्री ब्रह्मचारी खेचरदासजी पूजन करते हैं। दूसरा मन्दिर बाबू रामचन्द्र मदनचन्द्रजीका है। यह मन्दिर बहुत ही सुन्दर है। मन्दिरके नीचे एक महती धर्मशाला है, दो कूप हैं। बहुत ही निर्मल स्थान है। यहाँके प्रत्येक गृहस्थ स्नेही हैं।

जहाँ मैं ठहरा था उनके भाई कालूरामजी मोदी थे, जो बहुत ही सम्पन्न थे। उनसे मेरा विशेष प्रेम हो गया। वह निरन्तर मेरे पास आने लगे। यहाँ पर बाबू रामचन्द्रजी बहुत ही सुयोग्य हैं। मन्दिरका हिसाब आपके ही पास रहता है। लोगोंकी बड़ी शङ्का थी। उनसे मैंने कहा कि 'मन्दिरका हिसाब कर देना आपकी सन्तानको लाभदायक होगा।' आपने एक मासके अन्दर हिसाब दे दिया। लोगोंकी शंका दूर हो गई। आपकी कीर्ति उज्ज्वल हो गई। मदन बाबू बहुत प्रसन्न हुए। श्री रामचन्द्र बाबू भी बहुत ही प्रसन्न हुए। आपके भतीजे जग्गू भाई बहुत ही योग्य व्यक्ति थे। पर अब न मदन बाबू हैं और न जग्गू बाबू। दोनों ही स्वर्गधाम सिधार चुके हैं। आपके वियोगसे श्री रामचन्द्र बाबूको बहुत कुछ वेदना हुई, परन्तु संसारका यही स्वभाव है।

यहाँ श्री मोदी कालूरामजीके भ्राता बालचन्द्रजी बहुत सुयोग्य तथा विचारक व्यक्ति हैं। आप हिन्दी भाषाके उत्तम लेखक हैं। आपने एक मारवाड़ी इतिहास बड़े प्रयत्नसे लिखा है। उसमें मारवाड़ियोंके उत्थान और पतनका अच्छा दिग्दर्शन कराया है।

यहाँ पर स्याद्वाद विद्यालयको अच्छी सहायता प्राप्त हुई। यह

से चलकर बराकटमें रहनेका मेरा विचार था, परन्तु भावी बात बड़ी प्रबल होती है।

सागरकी ओर

द्रोणगिरिसे सिंघई वृन्दावनजीने हीरालाल पुजारी को भेजा। उसने जो जो प्रयत्न किये वे हमारे बुन्देल-खण्ड प्रान्तमें आनेके लिए सफल हुए। हीरालालने कहा कि 'अब तो देशका मार्ग लेना चाहिये।' मैंने कहा—'वह देश अब कुछ करता धरता है नहीं, क्या करें?' उसने कहा—'सिंघई वृन्दावनने कहा है कि वर्णीजी जो कुछ कहेंगे, हम करेंगे।' मैंने कहा—'अच्छा।' मनमें यह विकल्प तो था ही कि एक बार अवश्य सागर जाकर पाठशालाको चिरस्थायी किया जाय। यही बीज ऐसे पवित्र स्थानसे मेरे पृथक् होनेका हुआ। वास्तवमें शिक्षाप्रचारकी दृष्टिसे बुन्देलखण्डकी स्थिति शोचनीय है। लोग रथ आदि महोत्सवोंमें तो खर्च करते हैं पर इस ओर जरा भी ध्यान नहीं देते। शिक्षा-प्रचारकी दृष्टिसे अनेक प्रयत्न हुए, पर अभी तक चाहिये उतनी सफलता नहीं मिली है। यद्यपि इस दृष्टिसे हमने बुन्देलखण्डमें जाकर वहाँकी स्थिति सुधारनेका विचार किया, पर परमार्थसे देखा जाय तो हमसे बड़ी गलती हुई कि पार्श्व प्रभुके पादमूलका त्याग कर 'पुनर्मूषको भव' का उपाख्यान चरितार्थ किया। उपा-ख्यान इस प्रकार है—एक साधुके पास एक चूहा था। एक दिन एक बिल्ली आई। चूहा डर गया। डरकर साधु महाराजसे बोला—भगवन्! 'मार्जाराद् बिभेमि', साधु महाराजने आशीर्वाद दिया 'मार्जारो भव', इस आशीर्वादसे चूहा बिलाव हो गया। एक दिन बड़ा कुत्ता आया, मार्जार डर गया और साधु महाराजसे बोला—'प्रभो! शुनो बिभेमि', साधु महाराजने आशीर्वाद दिया

'श्वा भव'। अब वह मार्जार कुत्ता हो गया। एक दिन वनमें महाराजके साथ कुत्ता जा रहा था। अचानक मार्गमें व्याघ्र मिल गया। कुत्ता महाराजसे बोला—'व्याघ्राद् बिभेमि' महाराजने आशीर्वाद दिया 'व्याघ्रो भव',अब वह व्याघ्र हो गया। जब व्याघ्र तपोवनके सब हरिण आदि पशुओंको खा चुका, तब एक दिन साधु महाराजके ही ऊपर झपटने लगा। साधु महाराजने पुनः आशीर्वाद दे दिया 'पुनरपि मूषको भव'।

यही अवस्था हमारी हुई। शिखरजीमें (ईसरी में) सानन्द धर्म साधन करते थे, किन्तु लोगोंके कहनेमें आकर फिरसे सागर जानेका निश्चय कर लिया। इस पर्यायमे हमसे यह महती भूल हुई, जिसका प्रायश्चित फिरसे वहीं जानेके सिवाय अन्य कुछ नहीं। चक्रमें आ गया।

हीरालालने बहुत कुछ कहा कि बुन्देलखण्डी मनुष्योंका स्थान स्थान पर अपमान होता है। इससे मुझे कुछ स्वदेशाभिमान जागृत हो गया और वहाँके लोगोंका कुछ उत्थान करनेकी मानता उठ खड़ी हुई। जब मैं चलने लगा तब गिरीडीहकी समाजको बहुत ही खेद हुआ। खेदका कारण स्नेह ही था। श्री कालूरामजी मोदी और बाबू रामचन्द्रजीका कहना था कि ये सब संसारके कार्य हैं। होते ही रहते हैं। मानापमान पुण्य-पापोदय में होते हैं। दूसरेके पीछे आप अपना अकल्याण क्यों करते हैं? पर मनमें एक बार सागर आनेकी प्रबल भावना उत्पन्न हो चुकी थी, अतः मैंने एक न सुनी।

मार्ग में

ईसरीसे प्रस्थान करनेके समय सम्पूर्ण त्यागीवर्ग एक मील तक आया। सबने बहुत ही स्नेह जनाया तथा यहाँ तक कहा—

'पछताओगे।' परन्तु मुझ मूढ़ने एक न सुनी। बाबू धन्यकुमार जी बाढ़वालोंने भी बहुत समझाया. परन्तु मैंने एककी न सुनी और वहाँसे चलकर दो दिन बाद हजारीबागरोड आ गया। यहाँ पर दो दिन रहा। बाद कोडरमा पहुँच गया। यहाँ पर चार दिन तक नहीं जाने दिया। यहाँ पण्डित गोविन्दरायजी हैं जो बहुत ही सज्जन हैं, सुबोध हैं। आपकी धर्मपत्नी सागर की लड़की हैं। आपके सुपुत्र भी पढ़नेमें बहुत योग्य हैं। यहाँ श्री जगन्नाथप्रसादजीने पच्चीस सौ रुपया दान देकर एक औषधालय खुलवाया है। यहाँसे चलकर रफीगञ्ज आये। दो दिन ठहरे। यहाँपर मन्दिर बन रहा था, उसके लिये पाँच हजार रुपया का चन्दा हो गया। यहाँसे चलकर औरंगाबाद आया। यहाँ पर गयावाले श्री दानूलालजी सेठीका बड़ा मकान है, उसीमें ठहरे। आनन्दसे दिन बीता। रात्रिको रामधुन सुनी। रामधुन-वाले ऐसे मग्न हो जाते हैं कि उनको अपने शरीरकी भी सुध बिसर जाती है। यहाँसे चलकर कुछ दिन बाद डालमियानगर आ गये। यहीं पर श्रीमान् साहु शान्तिप्रसादजी साहब रहते हैं। आप बहुत ही सुयोग्य और धार्मिक व्यक्ति हैं। यहाँ पर आपके कई कारखाने हैं—शक्कर मिल, सिमेन्ट मिल, कागज मिल आदि। आपके विषयमें पहले लिख आया हूँ। आपने छः लाख रुपयेसे अपनी स्वर्गीय माताकी स्मृतिमें भारतीय ज्ञानपीठ संस्था खोली है, जिसका कार्यालय बनारसमें है और उसके प्रबन्धकर्ता पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य हैं। आपके द्वारा अनेकों छात्रोंको मासिक छात्रवृत्ति मिलती है। भारतवर्षीय जैन परिषद्‌की जो विशेष उन्नति हुई है वह आपकी ही उदारताका फल है। आपके प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी हैं जो इंग्लिश तथा अन्य विषयके भी एम. ए. हैं। आपकी धर्मपत्नी ग्रेजुएट हैं। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल और दयालु है।

श्री शान्तिप्रसादजीके धार्मिक कार्योंमें शुभ सम्मतिदाता बाबू अयोध्याप्रसादजी गोयलीय हैं, जो एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। आपकी सम्मतिसे अनेक धर्मकार्योंमें प्रगति हो रही है। आप अनेकान्त पत्रके कितने ही वर्ष प्रबन्धक रह चुके हैं। अब पुनः आपने उस पत्रको अपने हाथमें अपनाया है, इसलिए संभव है पत्रकी विशेष उन्नति होगी। पत्रके सम्पादक श्री पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार हैं। यदि कोई श्रीमान् इनके संकलित साहित्यको प्रकाशित करता तो बहुत नवीन वस्तु देखनेमें आती, परन्तु श्रीमानोंकी दृष्टि अभी इस ओर झुकी नहीं। श्री मुख्तार साहबको दो कार्यकर्ता अत्यन्त कुशल मिले हैं। जिनमें एक तो श्री पण्डित दरबारीलालजी न्यायाचार्य हैं, जिन्होंने न्यायदीपिका आदि कई ग्रन्थोंको नवीन पद्धतिसे मुद्रित कराया है। दूसरे पण्डित श्री परमानन्दजी शास्त्री हैं जो अतीव कर्मठ व्यक्ति हैं। यदि आपका कार्यालय बनारस जैसे स्थानमें होता तो जनताका बहुत ही उपकार होता।

साहु शान्तिप्रसादजी अत्यन्त सादी वेषभूषामें रहते हैं। मैं जिस दिन वहाँसे चलनेवाला था उस दिन बिहारके गवर्नर आपके यहाँ आये थे। बहुत ही धूमधाम थी, परन्तु आप उसी वेषमें रहे जिसमें कि प्रति दिन रहते थे। जो जो वस्तुएँ आपके यहाँ बनती थीं उनकी एक प्रदर्शनी बनाई गई थी। आपके छोटे पुत्रने मुझसे कहा—'चलो आपको प्रदर्शनी दिखावें।' मैं साथ हो गया। सर्व प्रथम कागजकी बात आई. वहाँ कुछ बाँस पड़े थे। वह बोला—'समझे, यह बाँस है। इसके छोटे छोटे टुकड़े कर बुरादा तैयार किया जाता है। फिर लुगदी तैयार की जाती है। फिर उसमें सफेदी डालकर उसे सफेद बनाया जाता है।' तात्पर्य यह कि उसने बड़ी सरलतासे कागज बनानेकी पूरी प्रक्रिया शुरूसे अन्त तक समझा दी। इसी प्रकार सीमेन्ट तथा शक्कर आदि

बननेकी व्यवस्था अच्छी तरह समझा दी। मैं बालककी बुद्धिकी तीव्रता देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। ऐसे होनहार बालक अन्यत्र भी सुरक्षित रहते हैं। ऐसी ही बुद्धि उनकी होती है। बल्कि किन्हीं किन्हीं को इनसे भी अधिक होती है, परन्तु उन्हें कोई निमित्त नहीं मिलता। मैं चार दिन वहाँ रहा, आनन्दसे समय बीता। आपने एक गाड़ी और एक मुनीम साथ कर दिया जो सागर तक पहुँचा गया था। आपने बहुत कहा—'सागर मत जाओ।' परंतु उदयके समक्ष कुछ न चली। वहाँसे चलकर दस दिन बाद बनारस आ गया।

चालीस मील पहलेसे बाबू रामस्वरूपजी बरुआसागरसे आ गये। बनारस सानंद पहुँच गये। वहाँ पर स्याद्वाद विद्यालय है। उसका उत्सव हुआ। चार हजार रुपयाका चंदा हो गया। पं० कैलाशचन्द्रजी प्रधानाध्यापक हैं जो बहुत योग्य व्यक्ति हैं। पं० फूलचंद्रजी सिद्धांतशास्त्री भी यहीं रहते हैं। कटनीसे पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री और सागरसे पं० मुन्नालालजी रांघेलीय तथा श्री पूर्णचन्द्रजी बजाज भी आ गये। छात्रोंके व्याख्यान अत्यन्त रोचक हुए। यहाँ पर श्री गणेशप्रसादजी व श्री मधुसूदनजी बड़े सज्जन हैं। बाबू हर्षचन्द्रजी स्याद्वादविद्यालयके अधिष्ठाता हैं और बाबू सुमतिलालजी मंत्री। दोनों ही व्यक्ति बहुत योग्य तथा उत्साही हैं। परन्तु हम एक दम ही अयोग्य निकले कि संस्कृत विद्याका केन्द्र त्यागकर 'पुनर्मूषको भव' की कथा चरितार्थ करनेके लिये सागरको प्रस्थान कर दिया और बनारसकी हद छोड़नेके बाद दसमी प्रतिमाका व्रत पालने लगे।

चार दिनके बाद मिर्जापुर पहुँच गये। वहाँ पर दो दिन रहे। पश्चात् दस दिनमें रीवाँ पहुँच गये। यहाँ पर श्री शान्तिनाथ स्वामीकी मूर्ति दर्शनीय है। यहाँसे चलकर तीन दिनमें सतना पहुँचे। यहाँ पर श्रीमान् धर्मदासजीके आग्रह विशेषसे

चार दिन रहना पड़ा। आपने एक हजार एक रुपया यह कह कर दिया कि आपकी जहाँ इच्छा हो वहाँके लिये दे देना। यहाँ से चलकर पड़रिया आये। यहाँ पर चार दिन ठहरे। पश्चात् यहाँसे चलकर पन्ना आगये। तीन दिन रहे। यहाँसे चन्दननगर आये। यहाँ पर पानीका प्रकोप रहा, अतः बड़ी कठिनतासे खजराहा पहुँचे। यह अतिशय क्षेत्र प्राचीन एवं कलापूर्ण मन्दिरोंके समुदायसे प्रसिद्ध है। यहाँ शान्तिनाथ स्वामीकी मूर्ति बहुत ही मनोज्ञ है, बीस फुटसे कम न होगी। यहाँके विषयमें पहले लिख चुके हैं।

यहाँसे चलकर चार दिन बाद छतरपुर आगये। यहाँ पर संस्कृत जैन साहित्य भण्डार और प्राचीन प्रतिमाएँ बहुत हैं, परन्तु वर्तमानमें उनकी व्यवस्था सुन्दर नहीं। यहाँ पर चौधरी हीरालालजी राजमान्य हैं, प्रतिष्ठित भी हैं तथा समाजमें उनका आदर भी है। उनका लक्ष्य क्या है वे जानें, परन्तु वह पुरुषार्थ करें तो इस प्रान्तका बहुत कुछ सुधार हो सकता है। यहाँसे कई मंजल तयकर देवरान पहुँचे। यहाँ पर लम्पू सिंघई बड़े सज्जन थे। आतिथ्य सत्कार अच्छा किया। प्रायः उनके यहाँ दो या चार जैनी आते ही रहते हैं। व्यवहारपटु भी हैं। हमें आशा थी कि द्रोणगिरि पाठशालाको विशेष सहायता करेंगे, परन्तु कुछ भी न किया। विद्याका रसिक होना कठिन है। यहाँसे चलकर मलहरा आये। यहाँपर वृंदावन सिंघई अत्यन्त उदार और कुशल व्यापारी हैं। बड़े आदरसे रक्खा। एक दिन मोदी बालचन्द्रजीने भी रक्खा। यहाँ पर स० सि० सोनेलालजी वैद्य वैद्यक और शिष्टाचारमें निपुण हैं। यहाँसे चार मील श्री द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र है, वहाँ पहुँच गये। मेलाका अवसर था, इससे भीड़ प्रायः अच्छी थी। गुरुदत्त पाठशालाका उत्सव हुआ। सिंघईजी सभापति हुए। मन्त्री मलैया बालचन्द्रजी बी० एस० सी० ने बहुत ही मार्मिक व्याख्यान दिया। उसे श्रवण कर दस हजार एक रुपया सिंघई

वृन्दावनने, ५००१) सिंघई कुन्दनलालजीने और ३००) के अन्दाज अन्य लोगोंने चन्दा दिया। १०००१) स्वयं मलैया बालचन्द्रजीने भी दिये। मेला सानन्द हुआ। इसके बाद आगन्तुक महाशय तो चले गये। हमने सानन्द क्षेत्रकी वन्दना की। क्षेत्र बड़ा ही निर्मल और रम्य है। पहाड़से नीचेकी ओर देखने पर शिखरजीका दृश्य आँखोंके सम्मुख आ जाता है। पर्वतके सामने एक विपुल नदी बह रही है तो एक पूर्वकी ओर भी बह रही है। दक्षिणकी ओर एक बृहत्कुण्ड भरा हुआ है, जो पहाड़की तलहटीसे निकला है। यदि कोई पर्वतकी परिक्रमा करना चाहे तो दो घण्टामें कर सकता है और डेढ़ घण्टामें वन्दना कर सकता है। पहाड़ पर श्री प्यारकुँवरजी सेठानीने (धर्मपत्नी सेठ कल्याणमलजी इन्दौरने) एक उत्तम कुटी बनवा दी है, जिसके अन्दर एक देशी पत्थरका बड़ा भारी चबूतरा बनवाया है, जिसमें तप करते हुए ऋषियोंके चित्र अङ्कित हैं, जिन्हें देखकर चित्तमें शान्ति आ जाती है। क्षेत्रके विषयमें विशेष वर्णन पीछे लिखा जा चुका है। इसी द्रोणगिरिमें एक रामबगस फौजदार था। आपका प्राकृत और संस्कृतमें अच्छा अभ्यास था। आप वैद्य भी थे। आपके बनाये पचीसों भजन हैं। आपके द्वारा क्षेत्रकी शोभा थी। आपका प्रवचन भी अच्छा होता था। आपके स्वर्गारोहणके बाद आपके सुपुत्र कमलापति भी क्षेत्रका कार्य संभालते रहे। आपका भी स्वर्गवास हो गया। वर्तमानमें आपके दो सुपुत्र हैं। एकका नाम मोतीलाल और दूसरेका नाम पन्नालाल है। आप लोग भी गृहस्थीका भार संभालते हुए जातिसुधारमें बहुत भाग लेते हैं, परन्तु यह ऐसा प्रान्त है कि विधाता भी साक्षात् आ जावे तो यहाँके लोग उसे भी चक्रमें डाल देवें। संसारमें बालविवाहकी प्रथाका अन्त हो हो गया, परन्तु यहाँ पर यह रूढ़ि अपवाद रूपसे है। यहाँ श्री पं० गोरेलालजी शास्त्री और इन दोनों महानुभावोंने इस प्रथाका अंत

करनेके लिए अत्यन्त प्रयत्न किया, परन्तु कर नहीं सके। जल-विहारमें ५००) तक लगा देवेंगे, परन्तु प्रसन्नतासे विद्यादानमें पाँच रुपया न देवेंगे!

यहाँ अधिकतर लोग जैनधर्मके श्रद्धालु हैं, परन्तु लोग उन्हें अपनाते नहीं। न जानें लोगोंने जैनधर्मको क्या समझ रक्खा है। पहले तो वह किसी व्यक्तिविशेषका धर्म नहीं। जो आत्मा मोहादिसे छूट जावे उसीमें उसका विकास हो जाता है। जैसे सूर्यका विकाश किसी जातिकी अपेक्षा प्रकाश नहीं करता। एवं धर्म किसी जातिविशेषकी पैतृक सम्पत्ति नहीं। जो भी आत्मा विपरीत अभिप्रायकी मलिनतासे कलङ्कित न हो उसी आत्मामें इस धर्मकी उत्पत्ति हो जाती है। हम लोगोंने जैनधर्मकी व्यापकताका घात कर रक्खा है। यह भी एक कथन शैली है कि धर्म तो प्रत्येक आत्मामें शक्तिरूपसे विद्यमान रहता है। जब जिसके विकासमें आ जावे वह तभी धर्मात्मा बन जाता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि यदि कोई जैनधर्मके अनुकूल प्रवृत्ति करे तो उसे दृढ़ करना चाहिए। इस प्रान्तमें ब्रह्मचारी चिदानन्दजीने अधिक जागृति की है। यहाँसे चलकर हम गोरखपुर होते हुए घुआरा आये। यह ग्राम बहुत बड़ा है। पाँच जिनालय हैं, पचास घर जैनियोंके हैं, जिनमें पण्डित दामोदर बहुत ही सुयोग्य हैं, धनाढ्य भी साथ ही प्रभावशाली भी हैं। आपकी ग्राममें अच्छी मान्यता है। यहाँ पर स्वर्गीय छतारे सिंघईके दो पुत्र थे। उनमें एकका तो स्वर्गवास हो गया। उसके तीन सुपुत्र हैं। तीनों ही व्यापारमें कुशल हैं। दूसरे पुत्र प्यारेलालजी हैं, बहुत ही योग्य हैं। एक सेठ भी ग्राममें हैं जो बहुत योग्य हैं। इसी तरह अन्य महानुभाव भी अच्छी स्थितिमें हैं। यदि यह लोग पूर्ण शक्तिसे काम लेवें तो एक विद्यालय यहाँ चल सकता है। परन्तु इस ओर अभी दृष्टि नहीं है।

यहाँसे चलकर बाराग्राम आये। ग्राममें तीन घर जैनियोंके

हैं। मन्दिर बना रहे हैं, परन्तु उत्साह नहीं। यहाँसे चलकर नौमटोरिया आये। यहाँपर पाँच जिनालय और जैनियोंके पचीस घर हैं। कई सम्पन्न हैं। तीन दिन ठहरा। एक पाठशाला भी स्थापित हो गई है। यहाँसे चलकर अदावन आये। यहाँपर एक मन्दिर बन रहा है—अधूरा पड़ा है यहाँके ठाकुर बड़े सज्जन हैं। उन्होंने सब पञ्चायतको डाँटा और मन्दिरके लिये पर्याप्त चन्दा करवा दिया। यहाँसे चलकर किसुनपुरा बसे। वहाँसे चलकर जासोंड़ेमें भोजन किया और शामको बरायठा पहुँच गये।

सेठ कमलापतिजी यहींके हैं। उन्हींके मकानपर ठहरे। आपके सुपुत्रोंने अच्छा स्वागत किया। यहाँपर सेठ दौलतरामजी अच्छे धनाढ्य हैं। इनकी त्यागियोंके प्रति निरन्तर सहानुभूति रहती है। इन्होंके यहाँ भोजन हुआ। इनके उद्योगसे एक पाठशाला हो गई है। पं० पद्मचन्द्रजी उसमें पैंतीस रुपया माहवारपर अध्यापक हुए हैं। ये सेठ कमलापतिके द्वितीय पुत्र हैं। विशारद द्वितीय खंड तक इन्होंने अध्ययन किया है। सुबोध हैं। विशेष विद्वान् हो जाते, परन्तु सेठजीकी बड़ी अनुकम्पा हुई कि विवाह कर दिया, अतः ये अगाड़ी न बढ़ सके। इसी तरह इस प्रान्तके माँ-बाप आत्मीय बालकोंकी उन्नतिके शत्रु बनते हैं। उनके पढ़ानेमें एक पैसा व्यय करना पाप समझते हैं। भाग्यसे स्कूल हुआ तो बालक किसी तरह चार क्लास हिन्दी पढ़ लेते हैं, बारह वर्षमें गृहस्थ बन जाते हैं, छोटीसी बहू घरमें आ जाती है, सासू आनन्दमें डूब जाती है, पश्चात् जब वह कुछ काल पाकर बड़ी हो जाती है तब उससे सब कराना चाहती है, बाल्य विवाहके दोषसे बहू कमजोर हो जाती है, जब काममें आलस्य करती है तब वही सास उसे नाना अवाच्योंसे कसती हैं, ताना मारती है तथा शारीरिक वेदना देती है। फल यहाँ तक देखा गया है कि कई अबलाएँ वेदना और वचनोंकी यातना न

सह सकनेके कारण कूपमें डूबकर मर जाती हैं। इन रूढ़ियोंका मूल कारण स्त्रीसमाजमें योग्य शिक्षाकी न्यूनता है।

यहाँसे चलकर दो मील एक अहीरोंकी पल्ली थी, वहीं ठहर गये। वहाँ थोड़ी दूरपर एक सुन्दर नदी बहती हैं। वहाँ सायं-कालके समय शौचक्रिया करनेके लिये गये। घाटके ऊपर उन्नत वृक्ष समुदाय था। वहींपर आनन्दसे बैठ गये और मनमें यही भावना उत्पन्न हुई कि ऐसा ही स्थान ध्यानके योग्य होता है। एक घण्टा सामायिकक्रिया कर स्थानपर आ गये। इतनेमें गाड़ी-वान कहता है कि 'चकाकी हाल उतर गई है, अतः मैं बरायठा जाता हूँ और वहाँसे दूसरी गाड़ी लाता हूँ। आप निश्चिन्त होकर सोइये।' इसी बीच जिसके घरपर ठहरे थे वह गृहपति आ गया और हमसे बोला—'वर्णीजी, इस गाड़ीवानको जाने दीजिये। जिसने गाड़ी भेजी उसने जान बूझकर रद्दी गाड़ी भेजी। यह लोग बड़े कुशल होते हैं। इनकी मायाचारी आप क्या जानें? हम इनके किसान हैं। इनके हथकंडोंसे परिचित हैं। आज इनकी बदौलत हम लोगोंकी यह दशा हो गई है कि तनपर कपड़ा नहीं, घरमें दाना नहीं। पर परमात्मा सबकी फिक्र रखता है। ऐसा कानून बना कि इनकी साहूकारी मिट्टीमें मिल गई। कर्जोंकी बीसों वर्षकी किश्तें हो गईं। खैर, इस चर्चासे क्या लाभ? मेरी घरकी गाड़ी है वह आपको सागरतक पहुँचा आवेगी। क्या आप मेरी इस नम्र प्रार्थनाको स्वीकार न करेंगे। इन लोगोंके द्वारा तो आप ६०० मील आ गये। बीस मील यदि मेरे द्वारा भी सेवा हो जावे तो मैं भी अपने जन्मको सुफल समझूँ?' मैंने कहा—'आप लोग किसानहैं, खेतोंका काम अधिक रहता है।' इस पर वह बोला—'अच्छा, आप इसी गाड़ीसे जाईये।' इसके अनन्तर उसने कहा—'कुछ उपदेश दीजिये।' मैंने कहा—'अच्छा आप कूड़ा वगैरहमें आग न लगाइये तथा परस्त्रीका त्याग करिये।'

वह बोला—'न लगावेंगे, न लगते देख खुश होवेंगे। परस्त्रीका त्याग वगैरह शब्द तो हम नहीं जानते पर यह अवश्य जानते हैं कि जो हमारी स्त्री है वही भोगने योग्य है। जब हम अत्यन्त व्याकुल होते हैं तब उसके साथ विषय सेवन करते हैं। इसीसे आजतक हमारा शरीर नीरोग है।' उसने अपने पुत्रको बुलाकर उससे भी कहा कि 'बेटा! वर्णीजी जो व्रत देते हैं उसका पालन करना तथा कभी वेश्या स्त्रीके नाचमें न जाना और वर्णीजीका कहना है कि रोज राम नामकी माला जपना।' अन्तमें वह बोला—'कुछ दुग्ध पान करेंगे?' मैंने कहा—'मैं एक बार ही भोजन और पानी लेता हूँ।' वह आश्चर्यके साथ चुप रह गया।

अनन्तर हम सो गये। प्रातःकाल चलकर पाटन आये। यहाँ पर दस घर जैनियोंके होंगे। यह ग्राम पं० मुन्नालालजी रांधेलीयका है। आपका मन्दिर भी यहीं है। यहाँपर बण्डासे पचीस जैनी आ गये। यहाँके जैनियोंने सबके भोजनका प्रबन्ध किया। विनैकावाले सिंघई भी आये तथा विनैका चलनेके लिये बहुत आग्रह किया, परन्तु हम लोग बण्डाको प्रस्थान कर गये। दूसरे दिन बण्डा पहुँचे। सादर स्वागत हुआ। दो दिन रहे।

सागरका समारोह

यहाँसे सागरके लिये प्रस्थान कर दिया। बीचमें करांपुर भोजन हुआ। यहाँ सागरसे मलैया शिवप्रसादजी साहब तथा सिंघई राजारामजी, सिंघई होतीलालजी आदि मिलनेके लिये आये। यहाँसे चलकर बहेरिया ग्राममें रात्रि बितायी। यहाँ भी बहुतसे मनुष्य मिलने आये। प्रातःकाल होते होते गमरिया नाके-पर पचास मनुष्य आ गये और कचहरीतक पहुँचते पहुँचते

हजारों नर-नारी आ पहुँचे। बैण्ड बाजा तथा जुलूसका सब सामान साथ था। छावनीमेंसे घूमते हुए जुलूसके साथ श्री मलैयाजीके हीरा आइल मिल्स पहुँचे। इन्होंने बड़ा ही स्वागत किया। अनन्तर कटरा बाजार आये यहाँपर गजाधरप्रसादजी ने, जो कि खजानेमें क्लर्क हैं, घरके दरवाजेके समीप पहुँचनेपर मंगल आरतीसे स्वागत किया। अनन्तर सिंघई राजाराम मुन्नालालजीने बड़े ही प्रेमके साथ स्वागत किया। पश्चात् श्री गौराबाई जैन मन्दिरकी वन्दना की। यहाँपर मूर्तियाँ बहुत मनोज्ञ हैं तथा सरस्वतीभवन भी विशाल है, जिसमें पाँच सौ आदमी सानन्द शास्त्र श्रवण कर सकते हैं। यहाँपर जन समुदाय अच्छा है। इतना स्थान होनेपर भी संकीर्णता रहती है। इस मन्दिरमें अवसर आने पर धर्म प्रभावनाके कार्य बड़े उत्साहके साथ सम्पन्न होते रहते हैं। यहाँसे जुलूसके साथ बड़ा बाजार होते हुए मोराजी भवनमें पहुँच गये।

मार्गमें पच्चीसों स्थानोंपर तोरणद्वार तथा वन्दनवारे थे। मोराजीकी सजावट भी अद्भुत थी। वहाँ चार हजार मनुष्यों का समुदाय था। बड़े ही भावसे स्वागत किया। आगत जनताको अत्यन्त हर्ष हुआ। बाहरसे अच्छे अच्छे महाशयोंका शुभागमन हुआ था। श्रीमान् पं० देवकीनन्दनजी साहब कारञ्जा, श्रीमान् पण्डित जीवन्धरजी साहब इन्दौर, श्रीमान् वाणीभूषण पं० तुलसीरामजी काव्यतीर्थ बड़ौत, श्रीमान् पं० कस्तूरचन्द्रजी ईसरी, श्रीमान् ब्र० पं० कस्तूरचन्द्रजी नायक जबलपुर तथा स्थानीय श्रीमान् पण्डित दयाचन्द्रजी प्रधानाध्यापक, श्रीमान् साहित्याचार्य पं० पन्नालालजी साहब साहित्याध्यापक, श्रीमान् पं० माणिकचन्द्रजी साहब शास्त्री, श्रीमान् पं० लक्ष्मणप्रसादजी "प्रशान्त" तथा श्रीमान् पं० चन्द्रमौलिजी शास्त्री सुपरिन्टेन्डेन्ट आदि अनेक विद्वान् महानुभावोंका जमाव था। जबलपुर आदिसे

धनिक वर्ग भी पधारे थे। जैसे श्रीमान् सेठ वेणीप्रसादजी तथा श्रीमान् सेठ रामदासजी आदि। यह सब सज्जन महाशय आनन्द से धर्मशालामें रहकर उत्सवकी शोभा बढ़ा रहे थे।

रात्रिको सभा हुई, जिसमें आगत विद्वानोंके उत्तमोत्तम भाषण हुए। पं० देवकीनन्दनजीका भाषण बहुत ही मार्मिक हुआ। इसके बाद वाणीभूषणजीका व्याख्यान हुआ। विद्यालयको अच्छी सहायता हो गई। साठ हजार संस्कृत विद्यालयको मिल गये। ग्यारह हजार रुपयोंमें मेरी माला मलैयाजीने ली तथा चालीस हजार रुपये आपने हाईस्कूलकी बिल्डिंगको दिये। इसी प्रकार महिलाश्रमका भी उत्सव हुआ। उसके लिये भी पन्द्रह हजार रुपयेकी सहायता मिल गई। खुरईसे श्रीमान् गणपतिलालजी गुरहा, जो कि एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, इस उत्सवमें पधारे थे। क्रमशः मेलाका कार्यक्रम समाप्त हुआ। आगत लोग अपने अपने घर चले गये। सात वर्षके बाद आनेपर मैंने देखा कि सागर समाजने अपने कार्योंमें पर्याप्त प्रगति की है। मेरे अभावमें उन्होंने महिलाश्रम खोलकर बुन्देलखण्डकी विधवाओंका संरक्षण तथा शिक्षाका कार्य प्रारम्भ किया है तथा जैन हाईस्कूल खोलकर सार्वजनिक सेवाका केन्द्र बढ़ाया है। संस्कृत विद्यालय भी अधिक उन्नतिपर है। साथ ही और भी स्थानीय पाठशालाएँ चालू की हैं। मुझे यह सब देखकर प्रसन्नता हुई। सात सौ मीलकी लम्बी पैदल यात्राके बाद निश्चित मंजिलपर पहुँचनेसे मैंने आपको भारहीनसा अनुभव किया।

सागरके अञ्चलमें

सागर ही नहीं, इससे सम्बद्ध ग्रामोंमें भी लोगोंके हृदयमें शिक्षाके प्रति प्रेम जागृत होने लगा था। खुरईमें भी वहाँकी

समाजने श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुलकी स्थापना कर ली थी। उसका उत्सव था, जिसमें श्रीमान् पं० देवकीनन्दनजी, सिद्धान्तके मर्मज्ञ पं० बंशीधरजी इन्दौर तथा मुन्नालालजी समगौरया आदि विद्वान् पधारे थे। कारंजासे श्रीमान् समन्तभद्रजी क्षुल्लकका भी आगमन हुआ था। मैं भी पहुँचा, बहुत ही समारोहके साथ गुरुकुलका उद्घाटन हुआ। रुपया भी लोगोंने पुष्कल दिया। विशेष द्रव्य देनेवाले श्री स० सिं० गणपतिलालजी गुरहा तथा श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमारजी हैं। ऋषभकुमारजीने गुरुकुलको बिल्डिंग बनवा देनेका वचन दिया। इस अवसरपर भेलसाके प्रसिद्ध दानवीर श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी पधारे थे। आपने गुरुकुलको अच्छी सहायता दी। आजकल जो धवल आदि ग्रंथोंका उद्धार हो रहा है उसका प्रथम यश आपको ही है।

खुरईसे चलकर ईसरवाराके प्राचीन मन्दिरके दर्शन करनेके लिये गया। एक दिन रहा। वहींपर हल्लाहल ज्वर आ गया। एक सौ पाँच डिग्री ज्वर था, कुछ भी स्मृति न थी। पता लगते ही सागरसे सिंघईजी आ गये। साथमें श्री ब्रह्मचारी चिदानन्दजी भी थे। मुझे डोलीमें रखकर सागर ले आये। मुझे कुछ भी स्मरण न था। दस दिन बाद स्वास्थ्य सुधरा। यह सब हुआ। परन्तु भीतरकी परिणतिका सुधार नहीं हुआ, इससे तात्त्विक शान्ति नहीं आई।

सुखपूर्वक सागरमें रहने लगे। चातुर्मास यहींका हुआ। भाद्रमासमें अच्छे अच्छे महानुभावोंका संसर्ग रहा। सहारनपुरसे श्री नेमिचन्द्रजी वकील, उनके बड़े भाई रतनचन्द्रजी मुख्तार, जो कि करणानुयोगका अच्छा ज्ञान रखते हैं, पण्डित शीतलप्रसादजी, पण्डित हुकुमचन्द्रजी सलावा जिला मेरठ तथा श्री त्रिलोकचन्द्रजी खतौली आदि सज्जन पधारे। आपके सहवाससे तात्त्विक चर्चाका अच्छा आनन्द रहा। गुजरात प्रान्तसे भी

मोहनभाई राजकोट तथा ताराचन्द्रजी आदि सज्जन पधारे। एक महाशय अहमदाबादसे भी पधारे। इस प्रकार चातुर्मास आनन्दसे बीता।

इसके बाद श्री पं० चन्द्रमौलिजी, जो कि सत्तर्क विद्यालयके सुपरिन्टेन्डेन्ट थे, पटना ग्राम ले गये। बीचमें ढाना मिला। यहाँ पर स्वर्गीय कन्छेदीलालजी चौधरीके सुपुत्र रहते हैं, जो धनाढ्य हैं, परन्तु परिणामोंके अति लुब्ध हैं। बड़े दबावमें आकर एक बोरा गेहूँ पाठशालाको वार्षिक दान किया। फिर पटना पहुँचे। यह गाँव रहली तहसीलमें है। यहाँपर बाबूलालजी बहुत सज्जन हैं। एक पाठशाला है, जिसमें पं० जानकीप्रसाद अध्यापक अध्ययन कराते हैं। पाठशालाका उत्सव हुआ। दो हजार चार सौका स्थायी फण्ड पाठशालाका हो गया। यहाँसे रहली गये। नदीके ऊपर यह नगर बसा हुआ है। उस पार पटनागञ्ज है, जहाँ जैनधर्मके बड़े बड़े मन्दिर बने हुए हैं। मन्दिरोंमें नन्दीश्वर द्वीपकी रचना है। मन्दिरोंकी पूजाके लिये एक गाँव लगा हुआ है, जिसका हिसाब किताब पचासों वर्षसे श्री दयाशन्द्रजी बजाजके पास चला आरहा है। वह हिसाब आपने सहर्ष पञ्चोंके अधीन कर दिया। आगेके लिये श्री सिंघई लक्ष्मणप्रसादजी हरदीवाले इसके प्रबन्धक हुए। नियमानुसार कमेटीका चुनाव हो गया।

यहाँसे चलकर हरदी आया और सिंघई श्री लक्ष्मणप्रसादजी के यहाँ ठहरा। आपका स्वास्थ्य एक वर्षसे अच्छा नहीं था। आपने एक वर्षके लिये ब्रह्मचर्यव्रतकी प्रतिज्ञा ली तथा मेरी मूँगाकी मालासे णमोकार मन्त्रका जाप्य किया। आपका स्वास्थ्य सुधरने लगा। आपके यहाँ जो अतिथि आता है उसका स्वागत बड़े उत्साह और भक्तिसे होता है। आप बड़े तेजस्वी हैं। गाँव भर में आपकी धाक है। हम जितने दिन रहे, बराबर दिन रात

रोशन चौकी बजती थी। किसी प्रकारकी त्रुटि देखनेमें नहीं आई। आप इस गाँवके जमींदार हैं। यदि कोई विद्वान् आपके यहाँ रहे तों आप सौ रुपया मासिक देनेको उत्सुक हैं। बड़ी कठिनाई-से आपके यहाँसे चलकर गढ़ाकोटा आये।

यह गाँव प्राचीन है। यहाँ बड़े बड़े वैभवशाली मनुष्य हो गये हैं। यहाँका चौधरी घराना बहुत प्रसिद्ध था। अब भी एक मोहल्ला उसी नामसे पुकारा जाता है। यहाँपर श्री पन्नालाल वैशाखिया बड़े धर्मात्मा थे। उनकी धर्मपत्नी मुलाबाई थी। उसके पास एक दुकान, मकान, एक आठ तोले सोनेकी टकावर और एक चाँदीका थाल था। कुछ रुपया सागरमें भी जमा थे। इन्दौरमें उसका स्वर्गवास हो गया। वह बड़ी सज्जन धर्मात्मा विदुषी महिला थी। उसने अन्तिम समय श्री भगतजी आदिके समक्ष एक कागजमें यह लिख दिया कि मेरा जो धन है वह वर्णी जीके पास भेज दिया जावे। उनकी इच्छा हो, सो करें। यह तो उस स्वर्गीया बाईका अभिप्राय था, परन्तु उसके कुटुम्बियोंने जो पहलेसे ही पृथक् थे, उसकी दुकान और मकानपर कब्जा कर लिया और हमसे बोले कि नालिश कर लो! मेरे पास उसका जो कुछ था वह मैंने वहाँकी पाठशालाके मन्त्रीको दे दिया और कहा कि वह तो दान कर गई पर इन्हें बलात्कार छीनना है, ले लें। परन्तु फल उत्तम न होगा। पापके परिणामोंमें कभी भी सुख नहीं होता। इस प्रकार व्यवस्था कर वहाँसे नैनागिरिके मेलाको चला गया। मेला अच्छा हुआ। पाठशालाको दश हजार रुपयेके लग-भग रुपया इकट्ठा हो गया। यह क्षेत्र बहुत ही रम्य है। यहाँपर छोटीसी पहाड़ी है। उसपर अनेक मन्दिर हैं। पन्द्रह मिनटमें धर्मशालासे पहाड़पर पहुँच जाते हैं। एक घण्टामें मन्दिरोंके दर्शन हो जाते हैं। यहाँ एक पुराना मन्दिर है, जिसमें प्राचीन कालकी बहुत सुन्दर मूर्ति है। मन्दिरोंके दर्शन कर नीचे आइये

तब एक सरोवर है, जिसके मध्यमें सेठ जवाहरलाल मामदावालों ने एक मन्दिर बनवाया है, जिसे देखकर पावापुरके जल मन्दिर का स्मरण हो आता है। इसके दर्शन करनेके बाद एक बड़ा भारी मकान मिलता है जो कि श्रीमान् मलैया शिवप्रसाद शोभाराम बालचन्द्रजी सागरका बनवाया हुआ है और जिसमें पचास छात्र सानन्द विद्याध्ययन कर सकते हैं। इस क्षेत्रपर श्री स्वर्गीय दौलतराम वर्णी पाठशाला है, जिसमें बीस छात्र अध्ययन करते है। श्री स्वर्गीय दौलतरामजी वर्णी एक बहुत ही विद्वान् महात्मा थे। आपके विषयमें पहले बहुत कुछ लिख आया हूँ। इनका समाधिमरण इसी क्षेत्रपर हुआ था। आपके गुरु श्री बाबा शिवलालजी थे, जो बड़े ही तपस्वी थे। आपके विषयमें भी पहले बहुत कुछ लिख आया हूं,। फिर भी पाठकोंको आपके तपश्चरणकी एक बात सुनाना चाहता हूँ। वह इस प्रकार है—श्री मुरलीधर गोलापूर्व अमरमऊके रहनेवाले थे। बादमें नागपुर चले गये। वहाँपर उन्होंने एक हजार रुपया पैदा कर लिया। वह पुराण लिखते थे और बड़ी विनयके साथ लिखते थे। एक बार उन्हें सर्दी हो गई। उन्होंने नाक छिनकी तो नाकका कुछ पानी दवातमें गिर गया। उन्होंने लोभवश वह स्याही नहीं फेंकी। उसीसे लिखते रहे। अन्तमें उनके यह भाव हुए कि लिखनेमें बड़ा कष्ट होता है और बड़े परिश्रमसे एक दिनमें एक रुपयाका लिख सकते हैं। चलो सट्टामें रुपया लगा देवें, कुछ दिनमें एक हजारके दस हजार रुपये हो जावेंगे। लालचमें पड़कर उन्होंने एक हजार रुपया गँवा दिये। अन्तमें दुखी होकर सहारनपुर चले गये। वहाँ लाला जम्बूप्रसादजीके यहाँ रहे। अन्तमें खुरजा आ गये। वहाँपर उनकी एक माँ, जो अन्धी थी, उनके साथ रह गई। खुरजामें उन्हें सब प्रकारकी सुविधा थी। वहाँके प्रसिद्ध स्वर्गीय सेठ उनकी सब सहायता करते थे। मैं भी उन दिनों खुरजामें

ही अध्ययन करता था। श्रीमुरलीधरजीको कुष्ट हो गया। मैंने एक दिन कहा—'भाई साहब! इसकी दवा नहीं करते।' आप बोले—'मेरे इसी जन्मका फल है।' मैंने पूछा—'क्या बात है?' तब आपने सब कहानी सुनाई। वही मुरलीधर जब बमराना आये, तब बाबा शिवलालजीने कहा—'भैया! अनर्थ तो बहुत हो गया, परन्तु कुछ चिन्ताकी बात नहीं। इस मन्त्रका स्मरण करो और परिणामोंकी निर्मलता रखो। यदि आपकी धर्ममें श्रद्धा है तो छः मासमें आपका रोग चला जावेगा। ॐ नमो भगवतेऽर्हते केवलिने इत्यादि मन्त्रका जाप्य करो और छः मासको नमक त्यागो।' साथ ही सेठजीसे कहा कि इनकी वैयावृत्य करनेमें ग्लानि न करना। दैवयोगसे श्री मुरलीधर बाबाका छह मासमें कुष्ट चला गया। बाबा शिवलालजीकी तपस्याका चमत्कार देखनेवाले अबतक हैं। आपका स्वर्गवास रतलाममें हुआ था। यह एक अप्रासङ्गिक बात आ गई। अस्तु, नैनागिरिके आस-पास जैनियोंकी बसती अच्छी है तथा सम्पन्न घर बहुत हैं। परन्तु इस ओर उनकी रुचि विशेष मालूम नहीं होती, अन्यथा यहाँ एक अच्छा विद्यालय चल सकता है।

नैनागिरिसे चलकर शाहपुर आया। बीचमें बंडा मिला। यहाँ भी पाठशालाके लिये एक हजार पाँच सौ रुपये होगये। शाहपुरके आदमी उत्साही बहुत हैं। यहाँ पुष्पदन्त विद्यालयको पूर्वका द्रव्य मिलाकर बीस हजार रुपयेका फण्ड हो गया। विद्यालयके सिवा यहाँपर एक चिरोंजाबाई कन्याशालाके नामसे महिला पाठशाला भी खुल गई। इसकी स्थापनाका श्रेय श्री पतासीबाई गयाको है। आपकी प्रवृत्ति इतनी निर्मल है कि देखनेसे प्रशम मूर्तिका दर्शन हो जाता है। आप स्वयं दान देती हैं और अन्यसे प्रेरणा कर दिलाती हैं। आपने पाँच सौ मनुष्य एवं स्त्रियोंके बीच व्याख्यान देकर सबके मनको कोमल बना दिया,

जिससे कुछ ही समयमें पचास रुपया मासिकका चन्दा हो गया।

अनन्तर पटनागञ्जके मन्दिरोंके दर्शनके लिए आये। जो कि रहली ग्रामकी नदीके ऊपर हैं। यहाँ पर तीन दिन रहे, फिर दमोहको चले गये। वहाँसे श्री कुण्डलपुर गये। यहाँपर परवार सभाका उत्सव था, जिसमें बड़ी बड़ी स्पीचें हुईं। कुछ लोग तो यहाँतक जोशमें आये कि एक लाख रुपया इकट्ठा कर एक बृहत् शिक्षासंस्था स्थापित करना चाहिए। जोशमें आकर सबने इस बातकी प्रतिज्ञा की, पर अन्तमें कुछ भी नहीं हुआ। धीरे धीरे सबका जोश ठण्डा हो गया।

कटनीमें विद्वत्परिषद्

कुण्डलपुरसे चलकर कटनी आये। मार्ग विषम तथा जंगलका था, अतः कुछ कष्ट हुआ। यहाँ एक मास रहे। विमानजी थे, जिससे अच्छा समारोह हुआ। भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्का प्रथम अधिवेशन हुआ, जिसमें अनेक विद्वान् पधारे थे। अध्यक्ष श्रीमान् पं० बंशीधरजी साहब थे, जो कि अपूर्व प्रतिभाशाली हैं। आपको धर्मशास्त्रका अगाध बोध है। आपकी प्रवचनशैली अत्यन्त रोचक है। आपके व्याख्यानका जनतापर अपूर्व प्रभाव पड़ता है। विद्वानोंमें श्री पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री प्रधानाध्यापक स्याद्वाद विद्यालय काशी भी थे। आपका व्याख्यान बहुत ही मर्मस्पर्शी और इतिहासकी गवेषणापूर्ण होता है। आपने अचेलक धर्मपर एक बहुत ही उत्तम पुस्तक लिखी है। श्रीमान् पं महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य भी पधारे थे, जो आजकल साहु शान्तिप्रसादजी द्वारा बनारसमें स्थापित भारतीय ज्ञानपीठके प्रधान कार्यकर्ता हैं। मथुरासे पण्डित राजेन्द्रकुमारजी, जो कि दिगम्बर भारतीय संघमें मंत्री हैं, आये थे। आपके द्वारा

जैनधर्मका कितना विकास हुआ, यह जैनीमात्र जानते हैं। आप बहुत ही कर्मठ व्यक्ति हैं। मथुरामें संघभवन, सरस्वतीसदन आदि आपके ही प्रयत्नसे निर्मित हुए हैं। आप शास्त्रार्थ करनेमें अत्यन्त कुशल हैं तथा संघ संचालन करनेमें आपकी बहुत ख्याति है। आपका संघ थोड़े ही समयमें दि० जैन महासभा और दि० जैन परिषद्के समान प्रख्यात हो गया। सागरसे श्री पं० दयाचन्द्रजी साहब, जो कि जैन सिद्धांतके अच्छे वक्ता हैं और समस्त धर्मग्रन्थ जिन्हें प्रायः कण्ठस्थ हैं, आये थे। तथा बनारससे पण्डित फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री भी, जो कि करणानुयोगके निष्णात और मर्मज्ञ पण्डित हैं, आये थे। आप तो विद्वत्परिषद्के प्राण ही हैं। यदि यह परिषद् परस्पर प्रेमपूर्वक कार्य करती रही तो इसके द्वारा समाजका बहुत कुछ कल्याण हो सकता है और जो 'मैं, तू' के चक्रमें पड़ गई तो क्या होगा सो भविष्यके गर्भमें है।

यहाँ पर तीन दिन परिषद्की बैठकें हुईं, धर्मकी बहुत प्रभावना हुई तथा एक बात नवीन हुई कि पण्डित महाशयोंने दिल खोलकर परिषद्के कोषको स्थायी सम्पत्ति इकट्ठी कर दी। आशा है कि यदि यह विद्वद्वर्ग इस तरह उदारता दिखाता रहा तो कुछ समयमें ही परिषद् वास्तवमें परिषद् हो जावेगी। परिषद्को अच्छी सफलता मिली। यदि कोई दोष देखा तो यही कि अभी परस्परमें निरेसठपनाकी त्रुटि है। जिस दिन यह पूर्ण हो जावेगी उस दिन परिषद् जो चाहेगी कर सकेगी। असम्भव नहीं, परन्तु कालकी आवश्यकता है। इस श्लोककी ओर ध्यान देनेकी भी आवश्यकता है—

> 'अयं परो निजो वेति गणना लघुचेतसाम्।
> उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥'

इसमें अर्ध श्लोक तो हेय है और अर्ध ग्राह्य है। आशा है

ये लोग स्वयं विवेचक हैं, शीघ्र ही इसे अपनावेंगे। जिस दिन इन महाशयोंने अपनी प्रवृत्तिमें इसे तन्मय बना लिया उस दिन जगत्का उद्धार करना कोई कठिन काम नहीं, क्योंकि जगत्का उद्धार वही कर सकता है जो अपना उद्धार कर ले। अन्यथा सहस्रों हुए हैं और होंगे। जैसे हुए वैसे न हुए। मेरी श्रद्धा है कि जिस महानुभावने ज्ञान द्वारा आत्मीय कल्याण न किया उसका ज्ञान तो भारभूत ही है। अन्धेकी लालटेनके सदृश उस ज्ञानका उसे कोई लाभ नहीं। मेरा ऐसा कहना नहीं कि सब ही की यह प्रवृत्ति है। बहुतसे महानुभाव ऐसे भी हैं कि स्व-पर कल्याणके लिए ही उनका ज्ञान है, किन्तु जिनका न हो उन्हें इस ओर लक्ष्य देना उचित है। अस्तु, जो हो, वे लोग जानें या वीर प्रभु जानें, किन्तु मुझे तो पण्डितोंके समागमसे बहुत ही शान्ति मिली और इतना विपुल हर्ष हुआ कि इसकी सीमा नहीं। हे भगवन्! जिस प्रान्तमें सूत्र पाठके लिये दस या बीस ग्राममें कोई एक व्यक्ति मिलता था, वह भी शुद्ध पाठ करनेवाला नहीं मिलता था, आज उन्हीं ग्रामोंमें राजवार्तिकादि ग्रन्थोंके विद्वान् पाये जाते हैं। जहाँ गुणस्थानोंके नाम जाननेवाले कठिनतासे पाये जाते थे, आज वहाँ जीवकाण्ड और कर्मकाण्डके विद्वान् पाये जाते हैं। जहाँ पर पूजन पाठका शुद्ध उच्चारण करनेवाले न थे आज वहाँ पञ्चकल्याणकके करानेवाले विद्वान पाये जाते हैं। जहाँ पर लोगोंको 'जैनी नास्तिक हैं' यह सुननेको मिलता था आज वहीं पर यह शब्द लोगोंके द्वारा सुननेमें आता है कि जैनधर्म ही अहिंसा धर्मका प्रतिपादन करनेवाला है, इसके बिना जीवका कल्याण दुर्लभ है। जहाँ पर जैनी पर से वाद करनेमें भयभीत होते थे आज वहीं पर जैनियोंके बालक, पण्डितोंसे शास्त्रार्थ करनेके लिये तैयार हैं। इत्यादि व्यवस्था देखकर ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो आनन्दसागरमें मग्न न हो जावे। आज सब ही लोग जैनधर्मका अस्तित्व स्वीकार करने

लगे हैं। सभी मतावलम्बी इस धर्मका गौरव स्वीकृत करने लगे हैं। इसका श्रेय इन विद्वानोंको ही तो है तथा साथ ही हमारे दानी महाशयोंको भी है जिनके कि द्रव्यदानसे यह मण्डली बन गई। कल्पना करो यदि श्री धन्यकुमार सिंघई और सकल पञ्च इस समारोहकी आयोजना न करते तो यह सौभाग्य जनताको प्राप्त होता। हम तो जनताको भी धन्यवाद देते हैं कि उसने इस दृश्यको देखा। यदि जनता न आती तो व्याख्यानोंका अरण्य-रोदन होता। अपने अपने अधिकारोंका सबने उपयोग किया। हीरा बहुमूल्य वस्तु है, परन्तु सुवर्ण यदि उसे अपने हृदयमें स्थान न दे तो उसकी क्या महिमा? मोती उत्तम जातिके हों, पर यदि उन्हें सूतमें गुम्फित न किया जावे तो हार संज्ञा नहीं पा सकते। इत्यादि कहाँ तक कहा जावे? कटनीका यह समारोह बहुत ही प्रभावनाकारक हुआ। मेरी तो यह श्रद्धा है कि यदि ऐसे समारोह किये जावें तो जैनधर्मका अनायास प्रचार हो जावे, क्योंकि स्वामी समन्तभद्रने कहा है कि

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना॥'

विद्वानोंके साथ ही कई त्यागी महाशय भी पधारे थे, अतः उनसे भी त्यागके महत्वकी प्रभावना हुई, क्योंकि स्वामी अमृतचन्द्र सूरिने लिखा है कि—

'आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपोजिनपूजाविद्यातिशयैश्च जिनधर्मः॥'

व्याख्यानोंका अच्छा प्रभाव रहा। व्याख्यानदाताओंमें पं० राजेन्द्रकुमारजी मंत्री भारतीय जैन संघ मथुरा, पं० कैलाश चन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री काशी, पं० जगन्मोहनलालजी कटनी श्रीयुत् कर्मानन्दजी शास्त्री सहारनपुर जो कि पहले आर्यसमाज के दिग्गज एवं शास्त्रार्थकेशरी थे तथा सागर विद्यालयकी पंडित

मंडली आदि प्रमुख थे। हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध लेखक श्री जैनेन्द्रकुमारजीका भी अपूर्व भाषण हुआ। मथुरासे संघके सभी विद्वान् आये थे। उन महाशयोंके द्वारा लोकोत्तर प्रभावना हुई। तथा देहलीनिवासी सर्व विदित पं० मक्खनलालजीका बहुत ही सफल व्याख्यान हुआ। आपने कन्या विद्यालयके लिये दिल हिलानेवाली अपील की, जिससे चौंतीस हजारका चन्दा हो गया। इस चन्दामें कटनी समाजने पूर्ण उदारताका परिचय दिया। पन्द्रह हजार रुपए तो अकेले सिं० धन्यकुमारजी ने दिये तथा शेष रुपये कटनी समाजके अन्य प्रमुख व्यक्तियोंने दिये। एतदर्थ कटनी समाज धन्यवादका पात्र है।

इसी अवसरपर कुँवर नेमिचन्द्रजी पाटनी भी, जो कि किसनगढ़ मिलके मैनेजर हैं, पधारे थे। आप बहुत ही सज्जन और विद्वान् हैं। विद्वान् ही नहीं संसारसे विरक्त हैं। आपके पिताका नाम श्री सेठ मगनमल्लजी है, जिनकी आगरामें प्रख्यात धार्मिक सेठ श्री भागचन्द्रजीके साझेमें बड़ी भारी दुकान है। श्री सेठ हीरालालजी पाटनी आपके चाचा हैं, जिन्होंने किसन-गढ़में छह लाख रुपयाका दान किया है और जिसके द्वारा वहाँ की संस्थाएँ चल रही हैं। आप तीन दिन रहे। आपके समागम से भी मेलाकी पूर्ण शोभा रही। सागर तथा जबलपुरसे गण्य-मान व्यक्ति भी पधारे थे।

मैं श्री सिंघई धन्यकुमारजीके बंगलामें; जो कि गाँवसे लगभग एक मीलपर एक रमणीय उद्यानमें है, ठहरा था। आपकी माँ बहुत ही सज्जन हैं। आपके दो चचेरे भाई हैं। परस्पर प्रेम बहुत है। मेरा तो इस कुटुम्बसे चालीस वर्षसे सम्बन्ध है। इनके द्वारा सदा मेरे धर्म साधनमें कोई बाह्य त्रुटि नहीं होने पाती। एक बार जब ये गिरिराजकी यात्राके लिये गये तब मैं ईसरीमें धर्मसाधन करता था। आपकी मातेश्वरीने मेरा निमन्त्रण

किया और अन्तमें जब भोजन कर मैं अपने स्थानपर आने लगा तब आपने बड़े आग्रहके साथ कहा कि आजीवन मेरा निमन्त्रण है। मैंने बहुत कुछ निषेध किया, परन्तु एक न चली। जब मैंने दसमी प्रतिमा ले ली तभी आपका निमन्त्रण पूर्ण हुआ।

यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है जिसे पढ़कर मनुष्य बहुत सी कल्पनाएँ करेंगे। बहुतसे यह कहेंगे कि वर्णीजी को चरणानुयोगका कुछ भी बोध नहीं और इसे मैं स्वीकार भी करता हूँ। बहुतसे कहेंगे दयालु हैं और बहुतसे कहेंगे कि मानके लिप्सु हैं। कुछ भी कहो, पर बात यह है—मैं भोजन कर बागमें जा रहा था। बीचमें एक वृद्धा शिरके ऊपर घासका गट्ठा लिये बेचने जा रही थी। एक आदमीने उस घासका साढ़े तीन आना देना कहा। बुढ़ियाने कहा–'चार आना लेवेंगे।' वह साढ़े तीन आनासे अधिक नहीं देता था। मुझसे न रहा गया। मैंने कहा–'भाई घास अच्छी है, चार आना ही दे दो।' बेचारी बुढ़िया खुश होकर चली गई। उसके बाद स्टेशनके फाटक पर आया। वहाँ पर बुड्ढा ब्राह्मण सत्तूका लोंदा बनाये बैठा था। मैंने कहा—'बाबाजी सत्तू क्यों नहीं खाते ?' वह बोला—'भैया पानी नहीं है।' मैंने कहा—'नलसे ले आओ।' वह कहने लगा—'नल बन्द हो गया है।' मैंने कहा—'कूपसे लाओ।' वह बोला—'डोरी नहीं है।' मैंने कहा—'उस तरफ नल खुला होगा, वहाँसे लाओ।' बुड्ढेने कहा—'सत्तूको छोड़कर कैसे जाऊँ ?' मैंने कहा—'मैं आपके सामानकी रक्षा करूँगा। आप सानन्द जाईये।' वह उस पार गया, परन्तु वापिस आकर बोला कि वहाँ भी पानी नहीं मिला। मैंने कहा—'मेरे कमण्डलुमें पानी है, जो स्वच्छ है और आपके पीनेके योग्य है।' उसने प्रसन्नतापूर्वक जल ले लिया और आशीर्वाद देकर कहने लगा कि 'यदि भारतवर्ष में यह भाव हो जावे तो इसका उत्थान अनायास ही हो जावे।'

जब मेला पूर्ण होनेको आया और जब मैं जबलपुरवालोंके आग्रह वश कटनीसे चलने लगा तब वहाँकी समाजको बहुत ही क्षोभ हुआ, परन्तु क्या करूँ ? पंडित कस्तूरचन्द्रजी ब्रह्मचारीने, जो कि जबलपुरके प्रसिद्ध पण्डित ही नहीं, वक्ता भी हैं, मुझे अपने चक्र में फँसा लिया, जिससे मन न होनेपर भी कटनीसे प्रस्थान करना पड़ा। प्रस्थानके समय बहुतसे भाईयोंने व्रत-नियम लिये।

जबलपुरके साथी

जब जबलपुर पहुँचा तब साथमें ब्र० चिदानन्दजी तथा ब्र० क्षेमसागरजी थे, जो कि अब क्षुल्लक दशामें हैं। श्रीमान् पं० मनोहरलालजी ब्रह्मचारी भी थे, जो कि टुमटुमा रियासत टीकमगढ़के निवासी हैं। न्यायतीर्थ तथा शोलापुरके शास्त्री हैं। आपके दो विवाह हुए थे। जब दूसरी पत्नीका स्वर्गवास हो गया तब आप संसारसे उदास हो गये। आपने अपने छोटे भाईके पास सब परिग्रह छोड़ कर केवल दो हजार रुपयेका परिग्रह रक्खा। रक्खा अवश्य, परन्तु उससे भी निरन्तर उदास रहने लगे और उसे भी बरुआसागरके पार्श्वनाथ विद्यालयमें दान देकर तथा पाँच सौ रुपया श्री मूडबिद्रीकी यात्राके लिये रख अष्टमी प्रतिमाके धारी हो गये। आपकी प्रतिभा बहुत ही विशाल है। आपका प्रवचन बहुत रोचक होता है। श्रोतागण गद्गद् हो जाते हैं। आपका स्वभाव शान्त है। आप मेरे साथ जबलपुरमें बहुत दिन रहे। एक दिन आपने कहा कि 'मेरा विचार है कि कुछ परोपकार करूँ।' इसी समय ब्रह्मचारी चम्पालालजी भी वहाँ थे। आपका मुझसे बड़ा स्नेह था। आपको जीवकाण्ड तथा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रायः कण्ठस्थ थे। शास्त्रप्रवचन

भी घण्टों पर्यन्त करते थे। श्री मनोहरलालजीसे भी आपका पूर्ण स्नेह था। आप पहले इन्दौरके उदासीनाश्रममें थे। फिर कुछ दिन ईसरी भी रहे। इन दोनों महानुभावोंके सिवाय श्री ब्र० सुमेरुचन्द्रजी जगाधरीवाले भी साथ थे। आप बहुत ही विरक्त हैं। जातिके अग्रवाल हैं। आपके दो सुपुत्र हैं। लाखों की सम्पत्ति उनके पास छोड़कर आप त्यागी हुए हैं। आपने अपने परिग्रहमें एक मकान जिसका कि भाड़ा तीस रुपया मासिक आता है तथा पाँच हजार नकद ही रक्खे हैं। आपको धर्मसे अत्यन्त प्रेम है। निरन्तर स्वाध्यायमें रत रहते हैं। आपका भी विचार हुआ कि जीवनमें कुछ परोपकार करना चाहिये। इस प्रकार ये तीनों रत्न जबलपुरसे प्रस्थान कर हस्तिनागपुर गये। वहाँ आप लोगोंने उत्तरप्रान्तमें धार्मिक शिक्षाके प्रसारकी आवश्यकता बतलाई, जिसे सुनकर लोग प्रभावित हुए। वहाँसे आप लोग सहारनपुर गये और वहाँ श्रीयुत नेमिचन्द्रजी वकील तथा उनके भाई रतनचन्द्रजी मुख्त्यार साहबके सहकारसे लाला जिनेश्वरदासजीने दस हजार रुपया स्थायी तथा दो सौ रुपया मासिक देना स्वीकृत किया। इसी प्रकार और भी बहुतसे लोगों ने चन्दा देना स्वीकार किया। जिसके फलस्वरूप श्री गुलाल-बागमें गुरुकुल की स्थापना हो गई।

लाला हरिश्चन्द्रजी, जो कि सहारनपुरके ही रहने वाले हैं; इस गुरुकुलका संचालन करते हैं। आप बड़े निःस्वार्थ तथा सेवाभावी पुरुष हैं। बालब्रह्मचारी हैं। दो वर्ष तक सागर विद्यालय में भी आननेरी सुपरवाइजरका काम किया। आपके प्रबन्धसे सम्पूर्ण छात्रमण्डली प्रसन्न रहती थी। आजकल आप षट्रसोंके त्यागी हैं तथा सब प्रकारके फलोंका त्याग कर रक्खा है। केवल अनाज और पानी ही आपका भोजन है। फिर भी शक्ति क्षीण नहीं। आप उदार भी बहुत हैं। हजारों रुपये कमाते हैं और

परोपकारमें व्यय कर देते हैं। आपके संचालकत्वमें सहारनपुरका गुरुकुल अच्छी उन्नति कर रहा है। मुझे विद्यायतन देखकर बहुत हर्ष होता है। वास्तवमें विद्या ही मनुष्यके कल्याण की जननी है। और खासकर वह विद्या जो कि स्वपरभेद-विज्ञान-की उत्पादिका है।

जबलपुरमें गुरुकुल

जबलपुरमें एक विशेष बात यह हुई कि वहाँ दिगम्बर जैन परिषद्के अधिवेशनका भी आयोजन हुआ। प्रायः आठ हजार जनता एकत्र हो गई। परिषद्में इतना जनसमुदाय कभी नहीं हुआ होगा। साहु शान्तिप्रसादजी उसके अध्यक्ष थे। सोलह घोड़ोंकी बग्घीमें उनका स्वागत किया। बहुत ही शानदार उत्सव हुआ। समयकी परिस्थितिके अनुसार सुधार भी बहुत अंशोंमें हुआ।

श्रीमती लक्ष्मी रमादेवी स्त्रीसमाजकी सभानेत्री थीं। आपके विचार भी स्त्रीसमाजके सुधार पक्षमें है। आप पाश्चात्य विद्यामें ग्रेजुयेट हैं। धार्मिक भावनाएँ भी आपकी उच्चतम हैं। परिषद्का कार्य सब प्रकारसे उत्तम रहा। यों तो संसारके कार्योंमें दृष्टि-कोणकी अपेक्षा कुछ न कुछ त्रुटि रहती ही है। तीन दिन बाद आप डालमियानगरको प्रस्थान कर गये। आप बहुत ही उदार प्रकृतिके हैं। चलते समय मुझे पाँच हजार रुपया दे गये और यह कह गये कि आपको बालकोंकी ओरसे दानके लिये हैं। मैंने जबलपुर पञ्चायतसे प्रवचनके समय यह निवेदन किया कि यदि आप दस हजार रुपया मिला देवें तो पन्द्रह हजार रुपया का स्थायी फण्ड हो जावे और उसके ब्याजसे एक पण्डित सर्वदा

प्रवचनके लिये रह जावे। लोगोंने सहर्ष स्वीकारता दे दी और एक विद्वान् भी उस कार्यके लिये रख लिया गया। इस तरह जबलपुरमें अपूर्व उत्सव हो गये।

कुछ दिन बाद एक अपूर्व घटना हुई और वह है स्थानीय समस्त मन्दिरोंकी एक सामूहिक संगठित व्यवस्था। मुझे जहाँ तक विश्वास है कि ऐसी व्यवस्था भारतवर्षमें जैनमन्दिरोंके द्रव्य की कहीं भी नहीं है। वहाँ पर अकस्मात् पण्डिता चन्दाबाई जी, जो कि जैन समाजके प्रसिद्ध जीवोंमेंसे हैं, पधारीं। बाईजीके विषयमें यद्यपि मैं पहले कुछ लिख चुका हूँ, फिर भी उनके जीवनकी विशेषताएँ पुनः कुछ लिखनेको प्रेरित करती हैं। इस समय आप महिला समाजमें अद्वितीय हैं। आपका त्याग प्रशस्त है। आप सप्तम प्रतिमा पालती हैं। प्रतिवर्ष एक मास किसी धर्मतीर्थ पर जाती हैं या दो मास मुनिसमागममें रहती हैं। मैं तो जब तक ईसरी रहा तबतक प्रायः प्रतिवर्ष दो मास तक वहाँ रहती रहीं। एक दो अतिथियोंको भोजन देकर आपका भोजन होता है। आपका जो बाला-विश्राम आरामें है वह सर्व विदित है। आपका घराना अत्यन्त प्रसिद्ध है। वर्तमानमें श्रीयुत रईस निर्मलकुमार चक्रेश्वरकुमारजी प्रसिद्ध हैं। ये दोनों आपकी जेठानीके पुत्र हैं। आपके जेठ स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी थे, जिनका आरामें बड़ा भारी सरस्वतीभवन है। बनारसमें प्रभुघाट पर आप ही के मन्दिरके नीचे स्याद्वाद विद्यालय है, जिसमें आचार्य परीक्षातक पठन-पाठन होता है। दो हजार रुपये मासिकसे अधिक उसका व्यय है। आज तक उसका ध्रौव्य फण्ड एक लाख भी नहीं हुआ। यह हम लोगोंकी गुणग्राहकताका परिचय है। स्याद्वाद विद्यालयका जो मकान है वह वर्तमान युगमें चार लाखमें भी नहीं बनेगा। यह बात चन्दाबाईके सम्बन्धसे आ गई।

हाँ तो सौभाग्यवश उक्त बाईजीका जबलपुरमें शुभागमन हुआ। जबलपुरकी समाजने योग्य रीतिसे आपका सत्कारादि किया तथा शास्त्रप्रवचन सुना। एक दिन आपका व्याख्यान भी हुआ, जिसमें आपने मन्दिरोंकी द्रव्य विषयक व्यवस्था पर बहुत कुछ कहा। आपका व्याख्यान इतना प्रभावक रहा कि जनता उमड़ पड़ी। श्री पण्डित राजेन्द्रकुमारजी मथुराने भी इस विषयमें पहले बहुत कोशिश की थी। प्रायः बीजारोपण हो चुका था, परन्तु श्री चन्दाबाईजीके प्रवचनामृत भाषणसे आज वह अंकुरित हो गया। नियमानुसार मन्त्री, कोषाध्यक्ष आदि सब अधिकारी चुने गये। इस प्रकार यह महान् कार्य किया तो अन्य लोगोंने पर हमको फोकटमें यश मिल गया।

चातुर्मास बड़ी शान्ति और आनन्दके साथ व्यतीत हुआ। इसी के बीच यहाँ विद्वत्परिषद्का नैमित्तिक अधिवेशन भी हो गया, जिसमें पं० बंशीधरजी, पं० देवकीनन्दनजी आदि अनेक विद्वान महानुभाव पधारे थे।

सतनावाले स्वर्गीय धर्मदासजी एक विलक्षण पुरुष थे। आपने मढ़ियाजीके मेले पर प्रस्ताव किया कि यहाँ पर गुरुकुल होना चाहिये और उसके लिए दस हजार मैं स्वयं दूँगा। फिर क्या था ? जबलपुर समाजने एक लाखकी पूर्ति कर दी। अगहन मासमें उसका उत्सव हुआ। पण्डित वर्ग आया। सौ रुपया मासिक श्री सिं० धर्मदासजीने दिया तथा अन्य लोगोंने भी यथाशक्ति चन्दा लिखाया, जिससे तीन सौ रुपया मासिकसे अधिक चन्दा कार्य चालू करनेके लिये हो गया। रही गुरुकुलके मकानकी बात सो उसके लिये पंचोंने यह स्वीकार किया कि मन्दिरोंके धनसे पचास हजार रुपया देकर गुरुकुलका भवन बनवा दिया जावे। निश्चयानुसार मढ़ियाजीमें मकानका कार्य प्रारम्भ हो गया। वहीं पर श्री चौधरी सुरखीचन्द्रजीने नवीन

मन्दिर बनवानेका निश्चय किया। बड़े समारोहके साथ विधि-विधान पूर्वक दोनोंकी नींव भरनेका मुहूर्त हुआ। पचहत्तर हजार रुपया तो गुरुकुलके भवनमें लग चुके हैं। लगभग पचीस हजार रुपया और लगेंगे। इस प्रकार जबलपुरमें गुरुकुलका कार्य चलने लगा। उसमें इस समय तैतालीस छात्र शिक्षा पा रहे हैं। तीन पण्डित, एक अँग्रेजी मास्टर, दो रसोइया तथा एक चपरासी इत्यादि कर्मचारी हैं। एक हजार रुपया मासिक व्यय हो रहा है। जबलपुरकी जनता बहुत श्रद्धालु है, परन्तु यहाँ कार्यकर्ता नहीं। यदि कोई चतुर कार्यकर्ता मिले तो यहाँ अच्छे अच्छे कार्य अनायास चल सकते हैं।

मैं यहाँपर दो वर्ष रहा, दस त्यागी रहे, अनेक लोगोंका आवागमन रहा पर किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं पाई गई। यहींपर ब्रह्मचारी खेमचन्द्रजीने क्षुल्लक दीक्षा ली, जो क्षेमसागरके नामसे प्रसिद्ध हैं। जबलपुर बड़ा चतुर शहर है। यहाँपर प्रायः सभी विद्वान् आते रहते हैं। वहाँका राजनैतिक क्षेत्र भी अच्छा है। श्री सेठ गोविन्ददासजी, जो कि केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य हैं, यहींके हैं। आप बहुत प्रौढ़ परोपकारी हैं। आपके करोड़ोंकी सम्पत्ति है। आपका वैभव महाराजाओंके सदृश है। फिर भी आपने देशहितके लिये उस वैभवकी कुछ भी परवाह नहीं की। आप देशहितके लिये कई बार कारागारके मेहमान हुए और आजकल तो देशहितके कार्यमें आपके चौबीस घंटे जाते हैं। आपका व्याख्यान कई बार महावीर जयन्तीके समय मैंने भी सुना। बहुत अच्छा बोलते हैं। अहिंसा धर्ममें आपकी पूर्ण श्रद्धा है।

श्रीयुत पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र भी यहींके हैं, जो कि आजकल नागपुरमें प्रान्तीय कौंसिलके उच्चतम पदपर हैं। आप राजनैतिक विद्वान् हैं। आपकी प्रतिभाके बलसे जबलपुरमें सदा शान्ति रहती है। आप केवल राजनीतिके ही पण्डित नहीं हैं,

उच्चकोटिके साहित्यकार भी हैं। आपने रामायणके समान कृष्णायन बनाया है, जो कि एक अद्वितीय पुस्तक है। इतना ही नहीं दर्शनशास्त्रमें भी आपका पूर्ण प्रवेश है। एक बार आपके सभापतित्वमें आजाद हिन्द फौजवालोंकी सहायता करने बावत व्याख्यान थे, मुझे भी व्याख्यानका अवसर मिला। यद्यपि मैं तो राजकीय विषयमें कुछ जानता नहीं, फिर भी मेरी भावना थी कि हे 'भगवन्! देशका संकट टालो। जिन लोगोंने देशहितके लिये अपना सर्वस्व न्योछावर किया उनके प्राण संकटसे बचाओ। मैं आपका स्मरण सिवाय क्या कर सकता हूँ? मेरे पास त्याग करनेको कुछ द्रव्य तो है नहीं, केवल दो चद्दरें हैं। इनमेंसे एक चद्दर मुकद्दमेकी पैरवी के लिये देता हूँ और मनसे परमात्माका स्मरण करता हुआ विश्वास करता हूँ कि यह सैनिक अवश्य ही कारागृहसे मुक्त होंगे।'

मैं अपनी भावना प्रकट कर बैठ गया। अन्तमें वह चादर तीन हजारमें नीलाम हुई। पण्डित द्वारकाप्रसादजी इस प्रकरण से बहुत ही प्रसन्न हुए। इस तरह जबलपुरमें सानन्द काल जाने लगा।

शहरका कोलाहलपूर्ण वायुमण्डल पसन्द न आनेसे मैं मढ़ियाजीमें सुखपूर्वक रहने लगा। गुरुकुल भी वहीं चला गया। इन्दौरसे ब्र० फूलचन्द्रजी सोगानी आये। आपने गुरुकुलकी व्यवस्था रखनेमें बड़ा परिश्रम किया, परन्तु अन्तमें आप चले गये। फिर जमुनाप्रसादजी पनागरवाले सुपरिन्टेन्डेन्ट बनाये गये। इनकी देखरेखमें गुरुकुलकी व्यवस्था चलने लगी। आजकल पं० दयाचन्द्रजी, जो पहले बीनामें थे, प्रधानाध्यापक हैं तथा पं० प्रकाशचन्द्रजी, जो पहले बड़नगरमें थे, सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। काम अच्छा चल रहा है। गुरुकुलके अधिष्ठाता श्रीमान् पण्डित जगन्मोहनलालजी हैं।

ब्र० मनोहरलालजी तथा ब्र० चम्पालालजी सेठी भी सहारनपुरमें गुरुकुलकी व्यवस्था कर जबलपुर वापिस लौट आये। आप लोगोंके कई बार प्रवचन हुए, जिन्हें जनता रुचिपूर्वक श्रवण करती थी।

जबलपुरसे सागर फिर द्रोणगिरि

जबलपुरसे चित्त ऊबा तो कटनी चला गया। यहाँ १ मास रहा। विद्वत्परिषद्के समय जो ३४०००) का दान हुआ था वह सब वसूल हो गया, जिससे वहाँकी संस्थाओंकी व्यवस्था ठीक हो गयी। कटनीसे चलकर विलंरी आया। यह पहले बड़ा भारी नगर था, पर आजकल उजाड़ हो गया है। यहाँपर बहुत ही सुन्दर प्राचीन मन्दिर बावड़ी तथा मठ हैं। यहाँ बाबूलालजी बहुत ही भद्र प्रकृतिके मनुष्य है। वही मुझे यहाँ लाये। दो दिन रहा। आम सभा हुई। श्री पन्नालालजी काव्यतीर्थ भी यहाँ पर आये। आपने बहुत ही रोचक भाषण दिया, जिसे श्रवणकर हिन्दू मुसलमानोंमें परस्पर अमिट प्रेम हो गया। यहाँसे चलकर सिहोरा पहुँचा। यहाँपर एक मन्दिर केवल पत्थरका बहुत सुन्दर बना हुआ है। उसमें संगमर्मरकी एक बहुत ऊँची वेदी बनी है। यहाँसे गोसलपुर, फिर पनागर और पश्चात् जबलपुर आगया। तीन मास फिर रहा। गुरुकुलका जो रुपया लेना बाकी था वह एक दिनमें आ गया। यहाँपर बहुत ही सुखपूर्वक दिन गये, परन्तु उपयोगकी चञ्चलताने फिर मनको स्थिर नहीं रहने दिया।

यहाँ से चलकर पाटन आया और पाटनसे कोनी क्षेत्र आया। यह अतिशय क्षेत्र है। एक पहाड़की तलहटीमें सुन्दर मन्दिर बने हैं। पास ही नदी बहती है। पाटनसे तीन चार मील

है। नदी पार कर आना पड़ता है। बहुत ही रमणीक और शान्ति-प्रद स्थान है। मेलाका समय था। यहाँ पर दो दिन रहा। इस वर्ष गत वर्षकी अपेक्षा आदमी कम आये। यदि समीपवर्ती लोग अच्छा ध्यान दें तो क्षेत्रकी बहुत कुछ उन्नति हो सकती है। यहाँसे छः सात दिन चलकर दमोह आ गया। पाँच दिन ठहरा। लोगोंने सादर रक्खा। सवासौ रुपया मासिक स्वध्याय मन्दिर के लिये चन्दा हो गया। परन्तु व्यवस्था कुछ नहीं हो सकी। यद्यपि सेठ लालचन्द्रजी तथा सेठ गुलाबचन्द्रजी यहाँ पर बहुत ही प्रतिष्ठित हैं। परन्तु अभी आपकी दृष्टि इस ओर नहीं। धन्य है उन महानुभावोंको जिनका कि द्रव्य परोपकारमें व्यय होता है। यहाँ पर सेठ लालचन्द्रजीकी धर्मपत्नीके परिणाम अति निर्मल हैं। परन्तु सेठजीकी आज्ञाके बिना उन परिणामोंके अनुसार कार्य करनेमें असमर्थ हैं। जब मैं वहाँसे चलने लगा तब वह खोजयखेरी तक आई और बहुत ही विषाद प्रकट किया। उसका अन्तरङ्ग भाव दान करनेका है। सम्भव है कोई समय पाकर उसकी भावना फलवती हो जावे।

दमोहसे चलकर सदगुवां आये। यहाँ रात्रिभर निवास कर पथरिया आ गए। दो दिन रहे। यहाँ डाक्टर मोतीलाल जैन हैं और शाहपुरवाले पूर्णचन्द्रजी भी रहते हैं। उनके उद्योगसे तीस रुपया मासिक चन्दा हो गया और एक पाठशालाकी व्यवस्था हो गई। ग्राम अच्छा है। यदि यहाँके मनुष्य चाहें तो पाठशाला के लिये कुछ रुपया स्थायी हो सकते हैं। परन्तु हृदयकी उदारता नहीं है।

यहाँसे चलकर शाहपुर आ गया। यह ग्राम तो प्रसिद्ध है और इसके विषयमें पहले बहुत कुछ लिख आया हूं। यहाँ पाँच दिन रहे। अबकी बार यहाँ एक बात अपूर्व हुई। वह यह कि लोगोंके ऊपर विद्यालयका जो रुपया बकाया था वह एक

चन्दामें वसूल हो गया और कन्याशालाके लिये नवीन चन्दा हो गया।

शाहपुरसे चलकर पड़रिया ग्राम आये। यहाँ पर एक लुहरी-सेन का घर है जो बहुत ही सज्जन है। लोग उसे पूजन करनेसे रोकते हैं। बहुत विवादके बाद उसे पूजनकी खुलासी कर दी गई। यहाँसे चलकर सानौदा आये। यहाँ सात आठ घर जैनियोंके हैं। मन्दिर खपरैल है। कुछ कहा गया, जिससे नवीन मन्दिर बननेके लिये दो हजार रुपयाके लगभग चन्दा हो गया। यहाँ से चलकर बहेरिया आ गये। एक जमींदारकी दहलानमें ठहर गये। यहाँ पर सागरसे पचासों मनुष्य आये, बहुत स्नेहपूर्वक कुछ देर रहे। अनन्तर सागर चले गये। हमने आनन्दसे रात्रि व्यतीत की और प्रातःकाल चलकर दस बजे सागर पहुँच गये। हजारों मनुष्योंकी भीड़ थी। शहरकी प्रधान सड़कें वन्दन-मालाओं और तोरणद्वारासे सुसज्जित की गई थीं

शान्तिनिकुञ्जमें पाँच छः दिन सुख पूर्वक रह कर यहाँसे बरखेरा गये। जिस समय सागरसे चलने लगे उस समय नर-नारियोंका बहुत समारोह हुआ। स्त्रियोंने रोकनेका बहुत ही आग्रह किया। मैंने कहा—'यदि सागर समाज महिलाश्रमके लिये एक लाख रुपया देनेका वायदा करे तो हम सागर आ सकते हैं' स्त्रीसमाजने कहा कि 'हम आपके वचनकी पूर्ति करेंगे।'

बरखेरा सागरसे चार मील है। स्वर्गीय सिंघई बालचन्द्रजी का ग्राम है। उनके भतीजे सिंघई बाबूलालजीने उस ग्रामकी अच्छी उन्नति की है। एक बढ़िया बंगला बनवाया है। यहाँ एक दिन ठहरे और यहीं भोजन किया। यहाँसे भोजन करनेके बाद कर्रापुर चले गये। साथमें श्रीमान् क्षुल्लक क्षेमसागरजी महाराज व ब्रह्मचारी चिदानन्दजी थे। यहाँ पर दो दिन रहे। पाठशालाके

लिये दो हजार रुपयाके लगभग स्थायी द्रव्य हो गया। तथा एक भाईने तीन सौ आदमियोंको भोजन कराया।

यहाँसे चलकर बण्डा आ गये। आनन्दसे दो दिन रहे। यहाँ स्वाध्यायकी अच्छी प्रवृत्ति है। प्राचीन ग्राम है। तहसील है। सौ घर जैनियोंके हैं। परन्तु परस्पर सौमनस्य नहीं। एक औषधालय है, परन्तु स्थाई द्रव्य नहीं है। फिर भी मासिक चन्दा अच्छा है। यहाँ पर जो वैद्य हैं, बहुत योग्य हैं। श्रीयुत चन्द्रमौलि शास्त्रीके सम्बन्धी हैं। यहाँसे सात मील चलकर दलतपुर आ गये। दो दिन रहे। यहाँसे चार मील चलकर हरावनके स्कूलमें रात्रि भर ठहरे। यहाँसे दस मील चलकर एक नदीके तट पर ठहर गये। यहाँ पर दो चौका शाहगढ़से और एक चौका दलपतपुरसे राजकुमारका आ गया। क्षुल्लक महाराज का निरन्तराय आहार हुआ। हम लोगोंका भी आनन्दसे भोजन हो गया। भोजन करते समय यह भावना हुई कि आज यदि दिगम्बर मुनियोंका आहार होता तो महान् पुण्यबन्धका निमित्त था। यहाँ भोजनके बाद सामायिक की और फिर वहाँसे चलकर शाहगढ़ पहुँच गये। यह प्राचीन नगर है। पहले यहाँ पर क्षत्रियोंका राज्य था। बहुतसे भग्नावशेष अब तक पाये जाते हैं। यहाँ पर तीन जैन मन्दिर हैं—दो शिखरवाले और एक गुजराती है। पचास घर जैनियोंके होंगे, जो प्रायः सम्पन्न हैं। सिंघई किशनप्रसादजी कई लाखके धनिक हैं। नम्र और योग्य हैं, परन्तु द्रव्यके अनुरूप दान नहीं करते। यदि आप चाहें तो एक संस्था स्वयं चला सकते हैं। परन्तु उस ओर दृष्टि नहीं। दूसरा घराना सेठोंका है। बहोरेलाल सेठ बहुत वृद्ध हैं, फिर भी शरीर इतना बलिष्ठ है कि यदि अच्छे आदमीका हाथ पकड़ लें तो उसे छुड़ाना कठिन हो जावे। आपको सुपारी खानेका बड़ा व्यसन है। अब तो वृद्ध हैं, परन्तु युवावस्थामें दस तोला सुपारी खाना आपको

कठिन बात नहीं थी। आप जब पुरानी बातें सुनाते हैं तब लोग आश्चर्यमें पड़ जाते हैं। पुराने समयमें एक रुपये का जितना घी मिलता था अब एक रुपयेका उतना भूसा मिलता है। उनकी बात छोड़िये मेरी बाल्यावस्थामें एक रुपयेका जितना घी आता था उतना अब चावल नहीं मिलता। अस्तु, दूसरे सेठ प्यारेलालजी हैं। यह नवयुवक हैं। विद्याके प्रेमी हैं। यदि इसके पास द्रव्य पुष्कल होती तो एकाकी विद्यालयको चलाते। यहाँ एक भूरे जैन रहता है जो बहुत ही योग्य व्यक्ति है। चौबीस घण्टे वैयावृत्यमें तत्पर रहता है। निर्लोभ बहुत है। गरीबोंकी सहायता का भी इसका परिणाम रहता है। सदाचारी है। यहाँपर तीन दिन रहे। यहाँसे सात मील चलकर हीरापुर आये। यहाँ पर जैनियोंके पन्द्रह घर हैं। यहाँका मन्दिर बहुत ही मनोज्ञ है। दो खण्डवाली एक धर्मशाला है, जिसमें सौ आदमी ठहर सकते हैं। यहाँ पर लोगोंमें परस्पर प्रेम नहीं। यहाँसे चलकर दरगुवाँ आये। यही बाबा चिदानन्दजी की जन्मभूमि है। एक दिन रहे। यहाँसे तीन मील चलकर सड़वा आये। सतीशचन्द्रके यहाँ भोजन हुआ। यहाँसे पाँच मील चलकर द्रोणगिरि क्षेत्र पर पहुँच गये। मलहराके छात्रोंने स्वागत किया। छात्रोंमें चि० बिहारीलाल और लक्ष्मणप्रसाद नामक दो छात्र बहुत ही सुशील और होनहार दिखे। साथमें पं० मोहनलालजी प्रधानाध्यापक गुरुकुल मलहरा और पं० गोरेलालजी प्रधानाध्यापक पाठशाला द्रोणगिरि थे।

सागरमें शिक्षण-शिविर

मेलाका समय था, अतः सिंघई कुन्दनलालजी तथा बालचन्द्रजी मलैया पहलेसे ही मौजूद थे। सागरसे विशेष जनता

नहीं आई थी। मलहरासे सिंघई वृन्दावनदासजी नहीं आ सके, इससे मेरे मनमें कुछ अशान्ति रही। इस प्रान्तमें यह आदमी बहुत ही निपुण है। दान देनेमें शूर है। यहाँ पर उनका बनवाया एक सरस्वतीभवन है। अपने जीवनमें उन्होंने एक गजरथ भी चलाया है, परन्तु साथमें यह बात है कि मामूली आदमीके बहकावेमें नहीं आते, इसलिये लोग उनसे प्रेम नहीं करते। आपके दो सुपुत्र हैं। मलहरासे श्री मोदी बालचन्द्रजीके सुपुत्र श्री बाबूलालजी भी आये जो कि बहुत ही सुयोग्य व्यक्ति और संस्थाके शुभचिन्तक हैं, अतः आप द्रोणप्रान्तीय जैन गुरुकुल मलहरा और पाठशाला द्रोणगिरिके उपमन्त्री चुने गये। स० सि० सोनेलालजीके सुपुत्र श्री जवाहरलालजी भी आये, जो कि बहुत ही योग्य समाज सेवक हैं। मेलेके समय क्षेत्र और पाठशाआके कार्यों के सिवाय इन्होंने मेलेकी व्यवस्थामें भी पूर्ण सहयोग दिया। घुवारासे बहुत जनता आई। वैद्यरत्न सिंघई दामोदरदासजी वैद्य भी आये, जो कि बहुत चतुर और कवि हैं। आसपासकी जनताकी उपस्थिति अच्छी थी। दूसरे दिन पाठशालाका वार्षिकोत्सव हुआ। क्षुल्लक क्षेमसागरजीका केशलोंच हुआ। अनन्तर श्री बालचन्द्रजी मलैयाने, जो कि शिक्षा-विभागके मन्त्री हैं, पाठशालाकी रिपोर्ट सुनाई तथा पाठशालाकी रक्षाके लिए अपील की। मैंने समर्थन किया। दस हजार एक रुपया श्री सिंघई कुन्दनलालजीने एकदम प्रदान किया तथा इतना ही श्री बालचन्द्रजी मलैयाने दिया। सिंघई वृन्दावनजीके न होनेपर भी उनके सुपुत्रने दो हजार कहा। मैंने कहा पाँच हजार एक कह दीजिये। उसने हँसकर स्वीकारता दी। इसके बाद पाँच सौ एक रुपया स० सिं० दामोदरदासजी घुवारावालोंने दिये तथा फुटकर चन्दा भी तीन हजार रुपयाके लगभग हो गया। पश्चात् सन्ध्या समय सन्निकट होनेसे यह कार्य स्थगित हो गया। अन्त-

में रात्रि आ गई। शास्त्र-प्रवचन पण्डित गोरेलालजीका हुआ, जो कि बहुत उत्तम रहा।

मेला विघट गया। सब मनुष्य अपने अपने घर चले गये। हम, ब्रह्मचारी चिदानन्दजी तथा श्री क्षेमसागरजी क्षुल्लक सतपारा, जो कि द्रोणगिरिसे एक मील है, श्री हीरालाल पुजारीके साथ, आये। यह ग्राम अच्छा है। यहीं पर मेरे मामा रहते थे। गामवालोंने बड़े हाव-भावसे रक्खा। द्रोणगिरि पाठशालाके लिये सौ रुपयाके अन्दाज चन्दा हो गया। वहाँसे छह मील चलकर भगवां आये। यहाँ पर दो दिवस रहे। ग्राम अच्छा है। तहसील है। यहाँ पर जो तहसीलदार हैं वह बहुत ही योग्य हैं। उन्होंने बड़े प्रभावके साथ पाठशालाका चन्दा करवाया। दो हजार रुपया हो गया। इतनी आशा न थी, परन्तु लोगोंने शक्तिको उल्लङ्घ कर दान दिया। इस चन्दा होनेमें विलम्ब नहीं लगा। यहाँसे चलकर गोरखपुरा आये। यहाँ भी ग्रामीण पाठशालाको एक सौ रुपयाके करीब चन्दा हो गया। यहाँसे चलकर घुवारा आये। यह ग्राम बहुत बड़ा है। यहाँ पर कई सरोवर हैं। तीस घर जैनियोंके होंगे। पाँच मन्दिर हैं। यहाँ पर एक मूर्ति बहुत ही मनोज्ञ है जो एक हजार वर्ष पहलेकी होगी। प्रायः यहाँके सभी जैनी सम्पन्न हैं। सबकी धर्ममें रुचि है। श्री महावीर जयन्तीका उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया गया। पाठशालाके लिये अपील की गई। तीन हजार रुपयाके अन्दाज चन्दा हो गया। तीस रुपया मासिकका पण्डित बुलानेकी व्यवस्था हुई। यहाँ मनुष्य बहुत विवेकी और साक्षर हैं। स० सि० पण्डित दामोदरदासजी बहुत सुयोग्य हैं। आपका ज्योतिष विद्यामें भी अच्छा प्रवेश है। यहाँ पर तीन दिन रहे। यहाँसे भोंयरा ग्राम आये, पर एक दिन रहे। यहाँ एक महाशयने यहाँ तक भाव दिखाये कि यदि कोई पण्डित महाशय आवें तो मैं उनके भोजनका खर्च और दस

रुपया मासिक दूँगा। यहाँसे चलकर फिर द्रोणगिरि आगए।

द्रोणगिरिसे घनगुवाँ आये। यह अच्छा ग्राम है। इस ग्रामके ही काव्यतीर्थ, साहित्यशास्त्री पं० लक्ष्मणप्रसाद 'प्रशांत' हैं, जो कि एक अच्छे प्रतिभाशाली कवि हैं और आजकल सागर विद्यालयमें अध्यापक हैं। यहाँसे चलकर दरगुवाँ आये। एक दिन रहे। एक पाठशाला स्थापित हो गई। यहाँसे चलकर हीरापुर आगये। यहाँ पर दो दिन रहे। पाँचसौ रुपयाका चन्दा पाठशालाको हो गया। ग्राम बहुत अच्छा है। यहाँकी पाठशालाके लिये, श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजीके प्रयत्नसे गिरीडीह जिला हजारीबाग की स्त्रीसमाजने दस सौ अस्सी रुपया भिजवाये, जिससे चालीस रुपया मासिकका विद्वान् पढ़ानेके लिये आ गया। यहाँसे चार मील चलकर तिगोड़ा ग्राम आ गये। यहाँके मनुष्योंमें परस्पर चालीस वर्षसे वैमनस्य चल रहा था। वह शान्त हो गया और पाठशालाके लिये दो हजारसे अधिकका चन्दा हो गया। पाठशाला भी प्रारम्भ हो गई। यहां पर एक सिंघैनजी हैं, जो बहुत वर्षोंसे पृथक् थीं। इनके पति सिंघई हजारीलालजी बहुत प्रतापी थे। कई वर्ष हुए तब आपका स्वर्गवास हो गया। उनकी धर्मपत्नी सिंघैनने भी अपने घरको सम्यक् रक्षा की, परन्तु जातिसे सम्बन्ध न रक्खा। आज उनका भी चित्त जातिसे सम्बन्ध करनेका हो गया और पञ्चोंने उसे सहर्ष स्वीकार किया। सिंघैनकी आयु सत्तर वर्षकी है, परन्तु हृदयकी निर्मल नहीं। एकाकी हैं, अतएव स्वतन्त्र हैं। स्वतन्त्रता ही बाधक है। मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति करनेवाले जो महापुरुष हैं वे भी जब आचार्योंकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति करते हैं तब गृहस्थोंको तो किसी-न-किसी महापुरुषके अधीन रहना उचित ही है। आजकल जैनियोंमें मनुष्य स्वतन्त्र हो गये हैं। किसीके अधीन नहीं रहना चाहते। इसीसे इनके आचरण मलीन हो गये हैं। जैनियोंमें सबसे मुख्य पहले

पानी छानकर पीते थे, देवदर्शनका नियम रखते थे, रात्रिभोजन नहीं करते थे। परन्तु अब यह सब व्यवहार छूटता जाता है। नाना कुतर्क कर लोग शिथिल पक्षका पोषण करते हैं। नब्बे फीसदी अभक्ष्य भोजन करने लगे हैं। सौमें नब्बे आदमी अस्पतालकी औषध सेवन करते हैं। बाजारकी मिठाई, पान तथा सोडावाटर तो साधरण बात हो गई है। वेष-भूषाका प्रायः एकदम बदल गया है। स्त्रीवर्ग इतना सुकुमार प्रकृतिका बन गया है कि हाथसे पीसना कूटना पाप समझता है। शहरोंमें तो इसीकी प्रशंसा समझी जाती है कि स्त्री हाथसे पीसे नहीं, केवल ऊपरी स्वच्छताका ध्यान रक्खे तथा वस्त्रोंको प्रतिदिन साबुन लगाकर स्वच्छ रक्खे, पनचक्कीका आटा पिसावे, पानी आदि स्वयं न लावे। कहाँ तक लिखें, सब आचारोंकी भ्रष्टताका मूल कारण प्रमाद है, जिसे शहरवालोंने अपना लिया है। जहाँ प्रमाद है वहाँ कुशल कार्योंमें सुतरां अनादर होता है और यही प्राणियोंके अकल्याणको पोषण करनेवाला है। अस्तु, जो होना है वह अनिवार्य है।

यहाँसे चलकर मड़देवरा आये। यहाँ एक पाठशाला है। बाबा चिदानन्दजीकी माँ का यही निवास है। यहाँसे चार मील चलकर शाहगढ़ आ गये। यहाँ तीन दिन रहे। पाठशालाके लिये लगभग दो हजार रुपयोंका चन्दा हो गया। यहाँपर मंगली सिंघई बहुत चतुर थे। यहाँपर सागरसे सेठ भगवानदासजी बीड़ीवाले, श्री मुन्नालालजी वैशाखिया, तथा पं० मुन्नालालजी समगौरया मोटरसे आये और यह निश्चय करके गये कि सागरमें विद्वत्परिषद्की ओरसे जो शिक्षण-शिविर चल रहा है उसमें आप अवश्य पधारें। मैंने भी जानेका निश्चय कर लिया, क्योंकि मैं स्वभावतः विद्वानोंके समागमका प्रेमी हूँ।

शाहगढ़से चलकर पाँच मीलपर एक ग्राममें रह गये। गर्मीके

दिन थे, अतः बहुत गर्मी पड़ती थी। दोपहरको बड़ी बेचैनी रही। रात्रिको कुछ निद्रा आई। यहाँसे छः मील चलकर कोटके ग्राम आये। सानन्द दिन बीता। यहाँपर भी बहुत गर्मी थी। यहाँसे प्रातःकाल चलकर रुरावन आ गये। यहींपर भोजन हुआ। पश्चात् चलकर दलपतपुर आ गये। यहाँपर सिंघई राजकुमारके यहाँ भोजन किया। यहाँ पाठशालाके लिए पच्चीस सौ रुपयाके अन्दाज चन्दा हो गया। एक महाशयने पन्द्रह सौ रुपया दिये। यहींपर पं० बंशीधरजी सिद्धान्तशास्त्री इन्दौरवाले आये थे। आपके समागमसे चित्त प्रसन्न हुआ। आपके साथ सिंघई डालचन्द्रजी सागर भी थे। यहींपर कान्तिलालजी नागपुरवाले भी आये थे। आप पैदल आये थे। उस समय आप रेलवेके सिवाय अन्य किसी वाहनपर नहीं बैठते थे और अब तो वह भी छोड़ दी है। आपको जैनधर्मकी अकाट्य श्रद्धा है। यहाँसे चलकर हम लोग बीचमें ठहरते हुए सागर आ गये। पहलेकी भाँति अनेक महाशय गाजे-बाजेके साथ लेनेके लिए दो मील दूर तक आये। सागरमें शिक्षण-शिविर चल रहा था, जिसमें पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री बनारस, पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य बनारस, पं० राजेन्द्रकुमारजी मथुरा, ज्योतिषाचार्य पं० नेमिचन्द्रजी आरा, सिद्धान्तशास्त्री पं० फूलचन्द्रजी बनारस, पं० देवकीनन्दनजी व्याख्यानवाचस्पति इन्दौर आदि अनेक विद्वान् पधारे थे। पं० बंशीधरजी साहब भी पधारे थे। पर वे कार्यवश मेरे सागर आनेके पूर्व ही इन्दौर चले गये थे। प्रातःकाल सामूहिक व्यायाम होता था। फिर स्नान तथा पूजनके बाद शास्त्रप्रवचन होता था, जिसमें आगत विद्वानोंके सिवाय नगरके समस्त प्रतिष्ठित पुरुष सम्मिलित होते थे। मध्याह्नोपरान्त शिक्षणपद्धतिकी शिक्षा दी जाती थी। रात्रिको तत्त्वचर्चा तथा व्याख्यानसभा होती थी। शिक्षणशिविर एक माहतक चालू रहा, जिसकी पूर्ण व्यवस्था पन्नालालजी साहित्या-

चार्यने बड़ी तत्परताके साथ की थी। मैं अन्त कालमें पहुँचा था। मेरे समक्ष चार दिन ही शिक्षणशिविरका कार्यक्रम चला। इन्हीं चार दिनोंमें विद्वत्परिषद्‌की कार्यकारिणीकी बैठक हुई। 'संजद' पदकी चर्चा हुई, जिसमें श्री पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीका तेरानवें सूत्रमें 'सजद' पदकी आवश्यकतापर मार्मिक भाषण हुआ और उन्होंने सबकी शंकाओंका समाधान भी किया। इसमें श्री पं० वर्द्धमानजी सोलापुरने अच्छा भाग लिया था। अन्तमें सब विद्वानोंने मिलकर निर्णय दिया कि धवल सिद्धान्तके तेरानवें सूत्रमें 'संजद' पदका होना आवश्यक है। जब शिक्षणशिविरका अन्तिम दिन आया तब सागर समाजने सादर स्वागत कर समस्त विद्वानोंका आभार माना और यह भावना प्रकट की कि फिर भी हम लोगोंके ऐसे सौभाग्य उदयमें आवें, जिससे आप लोगोंका समागम पुनः प्राप्त हो। अन्तिम दिन रात्रिके समय कटरा बाजारमें आमसभा हुई, जिसमें आगत विद्वानोंके सारगर्भित भाषण हुए। दूसरे ही दिन बाहरके विद्वान् अपने अपने स्थानों पर चले गये। एक माह तक एक साथ रहनेके कारण उनमें परस्पर जो सौहार्द्र उत्पन्न हो गया था उसके फलस्वरूप सबके हृदय बिछुड़नेके समय गद्‌गद् थे।

सागरमें सर सेठ हुकुमचन्द्रजीका शुभागमन

१८ जून सन् १९४६ की रात्रिको मोटर द्वारा श्रीमान् राज्य-मान्य, सब विभवसम्पन्न सर सेठ हुकुमचन्द्रजीका शुभागमन हुआ। आपके साथ श्रीमान् ब्र० प्यारेलालजी भगत, पं० देवकीनन्दनजी, पं० बंशीधरजी, पं० जीवन्धरजी तथा अन्य

त्यागी महाशय भी थे। सभी अतिथि स्वागतके साथ वर्णी भवनमें ठहराये गये। १९ जूनको प्रातःकाल जब मैं शान्ति-निकुञ्जसे विद्यालयमें आया तब सेठजी साहब बड़ी प्रसन्नतासे मिले व निश्चित कार्यक्रमके अनुसार आज शास्त्र-प्रवचन भी चौधरनबाईके मन्दिरमें हुआ। मन्दिर स्थानीय जैन जनतासे खूब भरा हुआ था। प्रवचनका ग्रन्थ समयसार था। मैंने 'सुद-परिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबन्धकहा' इस गाथापर प्रवचन किया। प्रवचन चल ही रहा था कि सेठजी बीचमें बोल उठे—'महाराज! मुझे प्रवचन सुनकर अपार आनन्द हुआ है। सागरकी जनता बड़ी भाग्यशाली है, जो निरन्तर ऐसे प्रवचन सुना करती है। मैं पहले मय बाल-बच्चोंके आनेवाला था, पर घरमें तबियत खराब हो जानेसे नहीं आ सका। आप एक बार इन्दौर अवश्य पधारें।' मैंने सरल भावसे उत्तर दिया कि इस वर्ष तो समय थोड़ा रह गया है, आगामीके लिये भगतजीके साथ चर्चा करके कहूँगा पर मैं आपसे एक ऐसा काम कराना चाहता हूँ जो आजतक किसीने न किया हो। पं० देवकीनन्दनजीने कहा कि 'ज्ञान और अर्थका संयोग तो होने दीजिये, सब कुछ हो जायगा।' इस पर सेठजी तथा समस्त जनता हँस पड़ी। अपराह्णमें गोष्ठी हुई, जिसमें पं० दयाचन्द्रजी, पं० बंशीधरजी, पं० देवकीनन्दनजी, पं० जीवन्धरजी आदिके मुखसे अपूर्व तत्त्वचर्चा हुई।

'आज सर सेठ साहबकी पचहत्तरवीं जन्म गाँठ है' यह जानकर सागरकी जनतामें अपूर्व आनन्द छा गया। लाउडस्पीकरके द्वारा समस्त नगरमें जन्मगाँठके उत्सवकी घोषणा की गई। फलस्वरूप आठ बजते बजते विद्यालयके प्रांगणमें कई हजारकी भीड़ उपस्थित हो गई। श्री भगतजीकी अध्यक्षतामें उत्सवका कार्यक्रम शुरू हुआ। जिसमें समागत एवं स्थानीय विद्वानोंने सेठजीके गुणों पर प्रकाश डालते हुए आपके प्रति मंगलकामना

की। सेठजीने अपनी लघुता बतलाते हुए सारपूर्ण वक्तव्य दिया और अन्तमें यह प्रकट किया कि 'मैं पचीस हजार रुपया की रकम वर्णीजीकी इच्छानुसार दानके लिये निकालता हूँ।' सेठजीकी इस दानशीलताकी प्रत्येक नागरिक प्रशंसा कर रहा था। २० जूनको प्रातःकाल पुनः उसी मन्दिरमें शास्त्रप्रवचन हुआ। आज कलकी अपेक्षा अधिक भीड़ थी। अपराह्णमें तीन बजेसे गत दिनकी तरह पुनः तत्त्वचर्चाका कार्य प्रारम्भ हुआ। प्रायः सभी विद्वानोंको दस-दस मिनटका समय देकर तत्त्वका यथार्थ स्वरूप प्रतिपादन करनेकी व्यवस्था की गई थी। कितनी ही अश्रुतपूर्व शैलियोंके द्वारा तत्त्वका प्रतिपादन हुआ। सेठजी घड़ी पर दृष्टि डाले हुए समयकी सुन्दर व्यवस्था बनाये हुए थे। दस मिनट हुए नहीं कि सेठजीने वक्ताको सचेत कर दिया।

आज ही रात्रिके आठ बजेसे सेठजीके सम्मानके लिये कटरा बाजारमें आमसभा बुलाई गई थी। सेठजी एक बड़े जुलूसके साथ सभास्थान पर लाये गये। श्रीमान् मलैया शिवप्रसादजीकी अध्यक्षतामें सभाका कार्यक्रम शुरू हुआ। प्रथम ही पं० पन्नालालजीने संस्कृतके सुन्दर पद्यों द्वारा सेठजी तथा अन्य आगन्तुक ब्रह्मचारियों एवं विद्वानोंका अभिनन्दन किया। अनन्तर मुन्नालालजी समगौराने सेठजीके जीवनपर प्रकाश डाला। फिर जैन समाज तथा स्थानीय संस्थाओंकी ओरसे मानपात्र समर्पित किये गये। श्री भैयालाल सर्राफ वकील तथा मौलवी चिरागुद्दीन साहबने सेठजीके विषयमें अजैन जनताकी ओरसे पर्याप्त सम्मान प्रकट किया। अनन्तर मानपत्रोंके उत्तरमें सेठजीने अपनी लघुता बतलाते हुए स्थानीय संस्थाओंके लिये पच्चीस सौ रुपयेके दानकी और भी घोषणा की। २१ जूनको प्रातःकाल मन्दिरमें पहुँचते ही मैंने सागर समाजसे कहा कि 'यदि आप लोग सेठजीके पच्चीस हजार रुपया अपने विद्यालय

को चाहते हो तो अपने पच्चीस हजार रुपया और मिलाइये, अन्यथा मैं प्रान्तकी अन्य संस्थाओंको वितरण कर दूँगा।' सुनते ही सागर समाजने चन्दा लिखाना शुरू कर दिया जिससे लगभग ¾ रकम उसी समय भरी गई। आज सेठजीका भी भाषण हुआ। आपने कहा कि 'दानका द्रव्य कभी व्यर्थ नहीं जाता। मैंने अपने जीवनमें अनेक बार अनुभव कर देखा है।' आप आज ही एक बजे दिनको अपने समस्त साथियोंके साथ इन्दौरके लिए प्रस्थान कर गये। जाते समय सागर समाजने हार माला आदि से आपका सत्कार किया। इस प्रकार तीन दिन तक आपके शुभागमनसे सागरमें काफी चहल-पहल रही। आपका परिचय मैं क्या लिखूँ, सब जैन समाज आपसे परिचित है। पर इतना अवश्य लिखना चाहता हूँ कि आप प्रति दिन प्रातःकाल दो घण्टा तत्त्वचर्चा करते हैं और उसमें श्रीमान् पं० बंशीधरजी सिद्धान्तशिरोमणि, श्रीमान् पं० देवकीनन्दनजी व्याख्यान-वाचस्पति, न्यायके मार्मिक पण्डित जीवन्धरजी तथा श्रीमान् त्यागी परमविवेकी प्यारेलालजी भगत आदि त्यागी वर्ग सम्मिलित रहते हैं। इस समय यदि जैन जातिके धनाढ्य महोदय आपका अनुसरण करें तो जैनधर्मका अनायास विकास हो जावे।

सागरसे प्रस्थान

चातुर्मासका समय निकट था, अतः मैं सागरमें ही रह गया। आनन्दसे वर्षाकाल बीता। भाद्रमासमें लोगोंका समुदाय अच्छा रहता था। किसी प्रकारकी चिन्ता मनुष्योंको नहीं थी, क्योंकि चन्दा माँगनेका प्रयास नहीं किया गया था। यह कई बार अनुभव कर देखा गया है कि जहाँ चन्दा माँगा वहाँ समस्त

कलाओंका अनादर हो जाता है। यद्यपि द्रव्य परपदार्थ है, इसके त्यागनेका जो उपदेश देता है वह परमोपकारी है। द्रव्य में जो लोभ है वह मूर्च्छा है, जो मूर्च्छा है वह परिग्रह है और परिग्रह ही सब पापों की जड़ है, क्योंकि बाह्य परिग्रह ही अन्तरङ्ग मूर्च्छाका जनक है। और अन्तरङ्ग परिग्रह ही संसारका कारण है, क्योंकि अन्तरङ्ग मूर्च्छाके बिना बाह्य पदार्थोंका ग्रहण नहीं होता। यही कारण है कि भगवान्ने मिथ्यात्व, वेद, राग, हास्यादि षट् और चार कषाय इन्हें ही परिग्रह माना है। जब तक इनका सद्भाव है तब तक ही यह जीव परवस्तु को ग्रहण करता है इसमें सबसे प्रबल परिग्रह मिथ्यात्व है। इसके सद्भावमें ही शेष परिग्रह बलिष्ठ रहते हैं। जैसे कि मालिकके सद्भावमें कूकर बलशाली रहता है। इतना बलशाली कि सिंह पर भी टूट पड़ता है। परन्तु मालिकके अभावमें एक लाठीसे पलायमान हो जाता है, अतः जिन्हें आत्मकल्याणकी अभिलाषा है उन्हें द्रव्य त्यागका उपदेश देनेवालोंको अपना परम हितैषी मानना चाहिये। नीतिका वाक्य भी है कि 'तन्मित्रं यन्निवर्त्तयति पापात्' अर्थात् मित्र वही है जो पापसे निवृत्त करे। विचार कर देखा जावे तो लोभ ही पापका पिता है। उससे जिसने मुक्ति दिलाई उससे उत्तम हितैषी संसारमें अन्य कौन हो सकता है? परन्तु यहाँ तो लोभको गुरु मानकर हम लोग उसका आदर करते हैं। जो लोभ-त्यागका उपदेश देता है उससे बोलना भी पाप समझते हैं। तथा उसका अनादर करनेमें भी संकोच नहीं करते। जो हो, यह संसार है। इसमें नाना प्रकार, के जीवोंका निवास है। कषायोदयमें नाना प्रकारकी चेष्टाएँ होती हैं। जिन महानुभावोंके उन कषायोंका अभाव हो जाता है वे संसार-समुद्रसे पार हो जाते हैं। हम तो कषायोंके सद्भावसे यही ऊहापोह करते रहते हैं और यही करते करते एक दिन सभीकी आयुका अवसान हो जाता है। अनन्तर जिस पर्याय

में जाते हैं उसीके अनुकूल परिणाम हो जाते हैं। 'गङ्गामें गङ्गादास और जमुनामें जमुनादास' की कहावत चरितार्थ करते हुए अनन्त संसारकी यातनाओंके पात्र होकर परिभ्रमण करते रहते हैं। इसी परिभ्रमणका मूल कारण हमारी ही अज्ञानता है। हम निमित्त कारणको संसार-परिभ्रमणका कारण मानकर साँपकी लकीर पीटते हैं, अतः जिन जीवों को स्वात्महित करना इष्ट है उन्हें आत्म-निहित अज्ञानताको पृथक् करनेका सर्व प्रथम प्रयास करना चाहिये। उन्हें यही श्रेयोमार्गकी प्राप्तिका उपाय है।

क्षमावणीके दिन विद्यालयके प्रांगणमें श्रीजिनेन्द्रदेवके कलशाभिषेकका आयोजन हुआ। स्थानीय समाजकी उपस्थिति अच्छी थी। महिलाश्रमके लिये कुछ लोगोंने दान देना स्वीकृत किया। उसके बाद आश्विन वदी चौथको मेरी जयन्तीका उत्सव लोगोंने किया। उसी दिन श्री क्षुल्लक क्षेमसागरजी और श्री क्षुल्लक पूर्णचन्द्रजीके केशलोंच हुए। दोनों ही महाशयोंने घास की तरह अपने केश उखाड़ कर फेंक दिये। देखकर लोगोंके हृदय गद्गद् हो गये। अनन्तर श्री सेठ भगवानदासजी बीड़ीवालोंकी अध्यक्षतामें सभा हुई, जिसमें अनेक विद्वानोंके भाषण हुए। इसी समय सिंघैन फूलाबाईने एक हजार रुपया विद्यालयको और एक हजार रुपया महिलाश्रमको दिये। यह स्वर्गीय सिंघई शिवप्रसाद-जीकी विधवा पुत्रवधू है। इसने अपनी प्रायः सारी सम्पत्ति तथा मकान महिलाश्रमको पहले ही दान कर दिया था। धर्मसाधन करती हुई जीवन व्यतीत करती है। सिंघई रेवारामजीने भी महिलाश्रमको पाँच हजार रुपया देना स्वीकृत किया। इसके पहले आप अपनी सम्पत्तिका बहुभाग महिलाश्रमको प्रदान कर चुके थे तथा उसीसे उस संस्थाका जन्म हुआ था।

इस प्रकार सागरमें बड़ी ही शान्तिमें दिन गये। यद्यपि वहाँ हमें सब प्रकारकी सुविधा मिली तो भी वहाँसे जानेकी भावना

उत्पन्न हो गई और उसका कारण यह रहा कि वहाँके लोगोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। कुटुम्बवत् स्नेह बढ़ने लगा, जो कि त्यागीके लिए बाधक है। भोजनके विषयमें लोगोंने मर्यादाका अतिक्रमण करके भी संतोष नहीं लिया। हम भी उनके चक्रमें आते गये। अन्ततोगत्वा यही भावना मनमें आई कि अब सागर से प्रस्थान करना चाहिए।

प्रस्थानके विरोधी श्री मुन्नालालजी वैशाखिया, सेठ भगवानदासजी तथा सिंघई कुन्दलालजी आदि बहुत सज्जनगण थे। स्त्रीसमाज सबसे अधिक विरोधी थी। यहाँ जिस दिन श्री भगवानदासजीके यहाँ भोजन था, उस दिन आपने कहा कि आप जो चाहें वह मैं करनेके लिये प्रस्तुत हूँ। अब आपको इस वृद्ध अवस्थामें भ्रमण करना उचित नहीं है। उसी दिन एक हजार रुपया आपने स्याद्वाद विद्यालय बनारसको दिये तथा तीन हजार रुपया महिलाश्रम सागरको प्रदान किये। इसी प्रकार बहुत आदमियोंका विचार था कि वर्णीजी यहीं रहें। परन्तु मुझे तो शनैश्चरग्रह लगा था, जिससे मैं हजारों नरनारियोंको निराश कर आश्विन सुदी तीज सं० २००४ को सागरसे चल पड़ा।

दमोहमें कुछ दिन

सागरसे चलकर बहेरिया ठहरा और वहाँसे सानोदा व पड़रिया ठहरा। पड़रियामें एक दस्सा भाई हैं। उन्होंने मन्दिरके लिये चौदह सौ रुपया नगद दिये। अनन्तर शाहपुर पहुँचा। यहाँ चार दिन रहा। यहाँ पर मनुष्योंमें सुमति है। यह लोग चाहें तो पाठशाला क्या बृहद् विद्यालय भी चला सकते हैं। यहाँ श्रवाई सिंघईजी बहुत सज्जन हैं। आपके यहाँ दो बार पञ्च

सागरसे प्रस्थान करते हुए
पूज्य वर्णीजी

कल्याणक हो चुके हैं। एक पञ्चकल्याणकमें गजरथ भी चला था। आपके कोई सन्तान नहीं। यदि आप चाहें तो पाठशालाके सब छात्रोंको सन्तान बना सकते हैं। केवल चित्तवृत्तिको बदलना है, परन्तु कोई बदलनेवाला प्रबल होना चाहिये। लोगोंने कहा कि यदि आप यहाँ चातुर्मास करें तो पाठशालाके लिये पचास हजार रुपयाका ध्रौव्यफण्ड हो सकता है।

इधर एक बात विशेष हुई। यहाँ एक चर्मकार है। तीन वर्ष पहले हमने उससे कहा था कि 'भाई मांस खाना छोड़ दो।' उसने छोड़ दिया तथा शाहपुरके सम्पूर्ण चर्मकारोंमें इस बातका प्रचार कर दिया कि मृत पशुका मांस नहीं खाना चाहिये। बहुतोंने जीव हिंसाका भी त्याग कर दिया।

यहाँसे चलकर पथरिया आये। यहाँ एक दिन रहे। श्री पूर्णचन्द्रजीके यहाँ भोजन किया। वहाँसे चलकर सदगुवाँ आये। यहाँ एक रात्रि रहे। श्री कपूरचन्द्रजीके यहाँ भोजन किया। यहाँसे चलनेके बाद दमोह पहुँचे। ग्रामके बाहर कई भद्र महाशय लेनेके लिये आये। सेठ लालचन्द्रजीके घर पर सानन्द ठहरे। आप बहुत ही सज्जन हैं। आपकी धर्मपत्नी भी कोमल प्रकृतिकी हैं। आपके यहाँ आपकी धर्मपत्नीकी बहिनका लड़का निर्मल रहता है, जो बहुत ही पटु और भद्र है। प्रतिदिन एक घण्टा दर्शन और स्वाध्याय करता है। हमारी प्रतिदिन एक घण्टा वैयावृत्य करता रहा। सेठजी बहुत विवेकी हैं। आपने पचीस हजार रुपया दान किया और यह कहा कि मैं जहाँ अच्छा कार्य देखूँगा वहाँके लिये दे दूँगा। जिस दिन दान किया उसी दिनसे आठ आना प्रतिशत व्याज देना स्वीकृत किया तथा यह भी प्रतिज्ञा की कि पाँच वर्षके अन्दर इस द्रव्यको घरमें न रक्खूँगा। आपकी धर्मपत्नीने नवीन स्थापित स्वाध्याय मन्दिरके लिए एक हजार रुपया दिया है तथा सेठजीने एक हजार एक रुपया

स्याद्वाद विद्यालय बनारसको तथा एक हजार एक रुपया वर्णीचेयर हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसको देना स्वीकृत किया।

एक दिन सेठजी अपनी धर्मपत्नीसे बोले—'हमारा विचार तो वर्णीजीके पास रहनेका है, घरको आप संभालो।' धर्मपत्नी ने उत्तर दिया—'घर अपना हो तो संभालें! आप ही तक तो घर था। जब आप इतने निर्मम हो रहे हैं तब मुझे न घरसे स्नेह है, न इस नश्वर द्रव्य तथा हाड-माँसके पिण्ड इस शरीरसे ममत्व है। मैं आपसे पहले ही त्यागनेको प्रस्तुत हूँ।' सेठजी श्रवण कर गद्गद् हो गये। मैं भी आश्चर्यमें पड़ गया। मनमें आया कि इस कालमें बाह्य निमित्तोंके अभाव हैं, अन्यथा अब भी बहुत मनुष्य गृहवास त्यागनेको सन्नद्ध हैं। यहाँ और भी कई मनुष्य चाहते हैं कि यदि समागम मिले तो हम लोग उस समागमसे आत्मशान्तिका लाभ लें, परन्तु वही दुर्लभ है।

यहाँ पर इन्हीं दिनोंमें पं० मुन्नालालजी समगौरया सुपरिन्टेन्डेन्ट जैन विद्यालय सागरसे आये। दो दिन रहे। आपके व्याख्यानोंको जनताने रुचिपूर्वक सुना। सागरसे निकलनेवाले जैन प्रभातके कई ग्राहक हुए। कितने ही महाशयोंने सागर विद्यालयको एक एक दिनका भोजन दान दिया। सिद्धान्तशास्त्री पं० फूलचन्द्रजी बनारस भी आये थे। उन्हें वर्णी ग्रन्थमालाके लिये ढाई सौ रुपयाके अन्दाज प्राप्त हो गया।

यहाँ एक नन्हेंलालजी त्यागी जबलपुरवाले हैं। उनका अच्छा आदर है। आप ही प्रतिदिन शास्त्र-प्रवचन करते हैं।

मैं यहाँसे यह विचार कर सद्गुवां चला गया कि दीपावली रेशन्दीगिरिकी करूँगा। परन्तु वहाँ पहुँचनेपर विचार बदल गया, जिससे फिर दमोह पहुँच गया। इतनेमें ही पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी, पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य, पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ तथा पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री बनारस आ गये,

जिससे बहुत ही आनन्दसे वीर निर्वाणोत्सव हुआ। आप लोगोंके परिश्रमसे वहाँकी सब संस्थाओंका केन्द्रीकरण हो गया तथा समाजमें परस्पर अतिसौमनस्य हो गया। सेठ गुलाबचन्द्रजी ने, जो कि समाजमें धनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, इस एकीकरणको बहुत ही उत्तम माना और कहा कि मेरे पास मन्दिरोंका जो हिसाब है, समाज चाहे तो उसे अभी ले ले। परन्तु समाजने आप ही को कोषाध्यक्ष रक्खा। श्री राजाराम बजाज तथा अभानाके रहने-वाले श्री खूबचन्द्रजी साहबने भी इस कार्यमें समयोचित खूब परिश्रम किया।

यहाँकी नवयुवक पार्टीने एक जैन हाईस्कूल खोलनेका दृढ़ संकल्प किया। समाजने उसमें यथाशक्ति योगदान दिया। आशा है आगामी वर्षसे यह कार्य प्रारम्भ हो जावेगा तथा पण्डितजी-के मिलनेपर स्वाध्यायमन्दिरका कार्य भी शुरू हो जावेगा।

संसारकी दशा प्रत्येक कार्यमें अन्यत्व भावनाका पाठ पढ़ाती है। जिन पण्डित महाशयोंका संयोग हुआ था वह वियोगरूप हो गया और मैं भी समाजसे पृथक् होकर सद्गुवाँ आगया।

बुन्देलखण्डका पर्यटन

सदगुवाँसे भोजन कर चला और नोरू सो गया। वहाँसे सात मील चलकर किदरय आया। भोजन किया। यहाँ लोगोंपर मन्दिरका रुपया आता था, कहा गया तो पाँच मिनटमें तीन सौ पचहत्तर रुपया आ गया तथा परस्परका वैमनस्य दूर होकर सौमनस्य हो गया। यहाँसे पाँच मील चलकर सूखा आये। यहाँ चित्रकूटका एक साधु था, जो साक्षर था और मन्दकषायी भी था। कुछ चर्चा हुई। रामायणका ज्ञाता था। 'ईश्वरकी कृपासे सब

कार्य होते हैं, हम करनेवाले कौन ?' ऐसी उसकी मान्यता थी। वस्तुतः इस मान्यतामें तथ्य नहीं। हाँ, इतना अवश्य है कि अहंकारकी वासना मिट जाती है। कालान्तरमें ऐसे प्राणियोंका कल्याण हो सकता है। उसने यह कहा कि 'आप लोग तो जैनातिरिक्त मतानुयायी साधुओंको नहीं मानते हो, मत मानो। परन्तु हमारा तो आपसे कोई द्वेष नहीं। मेरा तो आप पर अपने साधुओंके सदृश ही प्रेम है।' मैं उसकी यह प्रवृत्ति देख बहुत असमंजसमें पड़ गया। हम लोग तो अन्य साधुको देखकर शिष्टाचारको तिलाञ्जलि दे देते हैं। जब तक किसीके साथ सज्जनताका व्यवहार नहीं किया जावे तब तक उसकी उस धर्मसे, जिससे कि जगत्‌की रक्षा होती है, कैसे प्रेम हो सकता है ? धर्म तो आत्माका राग-द्वेष-मोह रहित परिणाम है। हम लोग यहाँ तक अनुचित बर्ताव करते हैं कि अन्य साधुओंके साथ सामान्य मनुष्योंके समान भी व्यवहार करनेमें संकोच करते हैं। यदि किसीने उनसे कह दिया कि महाराज ! सीताराम, तो लोग उसे मिथ्यादृष्टि समझने लगते हैं। मैं कटनीके प्रकरणमें घास-वाली बुढ़िया और सत्तूवाले ब्राह्मणका जिक्र कर आया हूँ। उस समय मेरी वैसी प्रवृत्ति देख साथवाले त्यागी कहने लगे—'वर्णी-जी ! आप चरणानुयोगकी आज्ञा भंग करते हैं। उपवासके दिन ऐसी क्रिया करना अनुचित है।' मैंने कहा—'आपका कहना सर्वथा उचित है परन्तु मैं प्रकृतिसे लाचार हूँ तथा अन्तरङ्गसे आप लोगोंके सामने कहता हूँ कि यद्यपि मेरी दशमी प्रतिमा है, परन्तु उसके अनुकूल प्रवृत्ति नहीं। उसमें निरन्तर दोष लगते हैं। फिर भी स्वेच्छाचारी नहीं हूँ। मेरी प्रवृत्ति पराये दुःखको देखकर आर्द्र हो जाती है। यही कारण है कि मैं विरुद्ध कार्यका कर्ता हो जाता हूँ। मुझे उचित तो यह था कि कोई प्रतिज्ञा न लेता और न्यायवृत्तिसे अपनी आयु पूर्ण करता। परन्तु अब जो

व्रत अङ्गीकार किया है उसका निरतिचार पालन करनेमें ही प्रतिष्ठा है। इसका यह अर्थ नहीं कि लोकमें प्रतिष्ठा है, प्रत्युत आत्माका कल्याण इसीमें है। लोकमें प्रतिष्ठाकी जो कामना है वह तो पतनका मार्ग है। आजकल आत्माका संसारमें जो पतन हो रहा है उसका मूल कारण यही लौकिक प्रतिष्ठा है। जिस प्रकार आत्मा द्रव्य पुद्गलादिकोंसे भिन्न है उसी प्रकार स्वकीय आत्मा परकीय आत्मासे भिन्न है। आत्माका किसी अन्य आत्मासे मेल नहीं। हमने सिर्फ मोहवश नाता जोड़ रक्खा है। माता-पिताको अपनी उत्पत्तिका कारण मान रक्खा है। यह जो पर्याय है इसका उन्हें कारण मान रात्रि-दिन मोही हो संकल्प-विकल्पोंके जालमें फँसे रहते हैं। माता-पिता उपलक्षण हैं। पुत्र, पुत्री, कलत्र, भ्रात्रादिके सम्बन्धसे आकुलित होकर आत्मीय आत्मातत्त्वकी प्रतीतिसे वञ्चित रहते हैं और जब आत्मतत्त्वकी प्रतीति नहीं तब सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्रकी कथा दूर रहे।'

यहाँसे चलकर सुरईके गाँव आया। यहाँपर आठ घर जैनियोंके हैं। ग्राम बहुत सुन्दर है। यहाँ पाठशाला स्थापित हो गई। यहाँसे चलकर श्री सिद्धक्षेत्र नैनागिरि आ गये। यहाँ आठ दिन रहे। यहींपर राजकोटमें श्रीयुत् सेठ मोहन भाई घिया आये थे। आप बहुत ही सज्जन हैं। आपकी जैनधर्ममें गाढ़ श्रद्धा है। आपकी धार्मिक रुचि बहुत ही प्रशंसनीय है। बहुत ही उदासीन हैं। आपके घरमें एक चैत्यालय है, जिसका प्रबन्ध आप ही करते हैं। आपके प्रतिदिन पूजाका नियम है। आपका व्यवहार अति निर्मल है। आपके साथ ताराचन्द्रजी ब्रह्मचारीका घनिष्ठ सम्बन्ध है। कुछ दिन रहकर आप तो गिरिराजकी यात्राके लिये चले गये। पर ब्र० ताराचन्द्रजी हमारे साथ रहे।

क्षेत्र पर एक पाठशाला है, जिसमें पं० धर्मदासजी न्यायतीर्थ अध्यापक हैं। बहुत ही सुयोग्य हैं। परन्तु पाठशालामें स्थायी फंड

की न्यूनता है। इस ओर अभी इस प्रान्तकी समाजका लक्ष्य नहीं। यहाँसे सात मील चलकर बमौरी आये। श्रीमान् क्षुल्लक क्षेमसागरजी यहींके हैं। आपका कुटुम्ब सम्पन्न है। एक पाठशाला भी चलती है। कई महाशय अच्छे सम्पन्न हैं। श्री दरबारीलालजी व्या उत्साही और प्रभावशाली व्यक्ति हैं। नैनागिरि क्षेत्रके यही मंत्री हैं, राज्यमान्य भी हैं और उदार भी हैं। परन्तु विद्याकी उन्नतिमें तटस्थ हैं। यहाँसे तीन मील चलकर सुनवाहा आये। यहाँ जैनियोंके बीस घर हैं। एक पाठशाला भी तीस रुपया मासिकके व्ययसे चला रहे हैं। यहाँसे चलकर बकस्वाहा पहुँचे। यह पन्ना रियासतकी तहसील है। यहाँ पच्चीस घर जैनियोंके होंगे। दो मन्दिर हैं। एक परवारोंका और एक गोलापूर्वोंका। यहाँके जैनी प्रायः सम्पन्न हैं। पाठशालाके लिये पाँच हजार रुपयाका चन्दा हो गया। चन्दा होना कठिन नहीं, परन्तु काम करना कठिन है। देखें, यहाँ कैसा काम होता है। यहाँ तीन दिन रहे। एक बात विलक्षण हुई। वह यह कि एक जैनीका बालक गाय ढीलनेके लिये गाँवके बाहर जाता था। गायके साथ उसका बछड़ा भी था। बालकने बछड़ेको एक मामूली लाठी मार दी, जिससे वह मर गया। गाँवके लोगोंने उसे जातिसे बाह्य कर दिया, परन्तु बहुत कहने सुननेपर उसे जातिमें सम्मिलित कर लिया।

यहाँसे चलकर फिर बमौरी आये और एक दिन वहाँ रहकर खटौरा आ गये। यहाँ पर श्री भैयालालजी कक्कू बहुत ही धर्मात्मा जीव हैं। आपने दो बार पञ्चकल्याणक किये हैं और हजारों रुपये विद्यादानमें लगाए हैं। तीर्थयात्रामें आपकी अच्छी रुचि है। यहाँसे चलकर दलपतपुर आ गए। आनन्दसे दिन बीता। यहाँ पर स्वर्गीय जवाहर सिंघईके भतीजे और नाती बहुत ही योग्य हैं। यहाँ एक पाठशाला भी चलती है। दलपतपुरसे

दुलचीपुर और वहाँसे बरायठा आये। यहाँ चालीस घर गोलापूर्व समाजके हैं। कई घर अत्यन्त सम्पन्न हैं। सेठ दौलतराम धिया बहुत योग्य हैं। पाठशालामें पं० पद्मकुमारजी विशारद अध्यापक हैं।

यहाँ जो पुलिस दरोगा हैं वे जातिके ब्राह्मण हैं। बहुत ही सज्जन हैं। आपने बहुत ही आग्रह किया कि हमारे घर भोजन करिए। परन्तु अभी हम लोगोंमें इतनी दुर्बलता है कि किसीको जैनी बनानेमें भय करते हैं। आपने प्रसन्न होकर कहा कि हम दस रुपया मासिक देते हैं। आपकी जहाँ इच्छा हो वहाँ व्यय करें। जब मैंने बरायठासे प्रस्थान किया तब चार मील तक साथ आये।

रात्रिको हँसेरा ग्राममें बस रहे। यहाँ पर हमारी जन्मभूमि के रहनेवाले हमारे लंगोटिया मित्र सिंघई हरिसिंहजी आ गए। बाल्यकालकी बहुतसी चर्चा हुई। प्रातःकाल मड़ावरा पहुंच गए। लोगोंने आतिथ्यसत्कारमें बहुत प्रयास किया। पश्चात् श्री नायक लक्ष्मणप्रसादजीके अतिथि-गृहमें ठहर गया। साथमें श्रीचिदानन्दजी, श्रीसुमेरचन्द्रजी भगत तथा श्री क्षुल्लक क्षेमसागरजी महाराज थे। यहीं पर सागरसे समगौरयाजी आ गए। उनकी जन्मभूमि यहाँ पर है। हम यहाँ तीन दिन रहे। यहीं पर एक दिन तीन बजे श्रीमान् पं० बंशीधरजी इन्दौर आ गये। आपका रात्रिको प्रवचन हुआ, जिसे श्रवण कर श्रोता लोग मुग्ध हो गए। मैं तो जब जब वे मिलते हैं तब तब उन्हींके द्वारा शास्त्र-प्रवचन सुनता हूँ। विशेष क्या लिखूँ? आप जैसा मार्मिक व्याख्याता दुर्लभ ही है। आपका विचार महरौनी गाँवके बाहर उद्यानमें शान्तिभवन बनानेका है, परन्तु महरौनीवाले अभी उतने उदार नहीं। वे चाहते हैं कि प्रान्तसे बन जावे, परन्तु जब तक स्वयं बीस हजार रुपयाका स्थायी प्रबन्ध न करेंगे तब तक अन्यत्रसे द्रव्य मिलना

असम्भव है। यहीं पण्डितजीकी जन्मभूमि है। यदि आपकी दृष्टि इस ओर हो जावे तो अनायास कार्य हो सकता है, परन्तु पञ्चम काल है। ऐसा होना कुछ कठिन-सा प्रतीत होता है। मड़ावरामें पण्डितजी तथा समगौरयाजीके अथक परिश्रमसे पाठशालाका जो चन्दा बन्द था वह लग गया और यहाँके मनुष्योंमें परस्पर जो मनोमालिन्य था वह भी दूर हो गया। यहाँ तीन दिन रह कर श्रीयुत स्वर्गीय सेठ चन्द्रभानुजी के सुपुत्रके आग्रहसे सादूमल आ गया। यहाँ स्व० सेठ चन्द्रभानुजीका महान् प्रताप था। सेठ जीके समयसे ही यहाँ एक पाठशाला चल रही है। जीर्ण होनेके कारण उसका भवन गिर पड़ा था, जिससे प्राचीन संस्थाके कार्यमें रुकावट आने लगी थी। प्रयत्न करनेपर ग्रामवासियोंसे चार हजार दो सौ पचास रुपयाके लगभग चन्दा हो गया। पाठशाला में पं० शीलचन्द्रजी न्यायतीर्थ अध्यापक हैं। जो बहुत ही व्युत्पन्न और शान्त प्रकृतिके विद्वान् हैं। यहाँ मेरे भोजनके उपलक्ष्यमें श्री हजारीलालजी रूपचन्द्रजी टढ़ैया ललितपुरवालोंने सागर विद्यालयको ढाई सौ रुपया देनेकी घोषणा की। मैं यहाँ चौबीस घण्टे रहा।

यहाँसे चलकर सैदपुर आया। यहाँ भी चौबीस घंटा रहा। ब्र० चिदानन्दजीके प्रयत्नसे स्थानीय पाठशालाके लिए एक हजार रुपयाके वचन मिले।

सैदपुरसे महरौनी आया। यहाँ मेरे आनेके दो दिन पूर्व कुछ प्रमुख व्यक्तियोंमें भयंकर झगड़ा हो गया था, जिससे वातावरण बहुत अशान्त था। परन्तु प्रयत्न करनेसे सब प्रकारकी शान्ति हो गई। रात्रिको आमसभा हुई, जिसमें मेरे सिवाय श्री ब्र० मनोहर-लालजी, पं० गोविन्दरायजी तथा समगौरयाजीके सार्वजनिक भाषण हुए।

तीन दिन रहनेके बाद कुम्हैड़ी पहुँचा। जब यहाँके लिये आ

रहा था तब मार्गमें सड़क पर एक सज्जन बोले कि 'महाराज आपका कुम्हेड़ी जाना व्यर्थ है। वहाँ के श्रीमन्त बरग्याजी पर आपका प्रभाव नहीं पड़ेगा। वे चिकने घड़े हैं।' सुनकर क्षु० सुमेरुचन्द्रजीने उत्तर दिया कि 'हम लोगोंको किसी पर प्रभाव नहीं डालना है और न किसीका धन चाहिये। हमारा कार्य लोगोंको धर्ममार्ग दिखाना है। फिर उनकी इच्छा। हम किसी पर कोई जबर्दस्ती नहीं करते।' परन्तु जब इस गाँवमें पहुँचा तो बरग्याजीकी आत्मा पर बहुत प्रभाव पड़ा। दस मिनटकी चर्चामें ही श्री चन्द्रभानजी बरग्या गद्गद् होकर बोले कि 'महाराज! मैं बहुत दिनसे उलझनमें पड़ा था कि अपनी सम्पत्ति का कैसा उपयोग करूँ। मेरी सिर्फ दो लड़कियाँ हैं। पुत्र कोई नहीं है। परन्तु आज वह उलझन सुलझी हुई दिखती है। मैं निश्चय करता हूँ कि अपनी सम्पत्तिको चार भागोंमें बाँट दूँगा। दो हिस्से दोनों पुत्रियों और रिश्तेदारोंको, एक हिस्सा स्वयं निजके लिये और एक हिस्सा धर्मकार्योंके लिये रखूँगा।' हम सबने बरग्याजीके निर्णयकी सराहना की। मध्याह्नके दो बजेसे साढ़े चार बजे तक एक आमसभा हुई, जिसमें भाषणोंके अनन्तर बरग्याजीका निर्णय सबको सुनाया गया। लोगोंसे पता चला कि उनके पास दो-तीन लाखकी सम्पत्ति है। रात्रिको एक नवीन पाठशालाका उद्घाटन हुआ।

कुम्हेड़ीके बाद गुढ़ा और नारायणपुर होते हुए श्री अतिशय क्षेत्र अहार पहुँचा। यहाँ अगहन सुदी बारससे चौदस तक क्षेत्र का वार्षिक मेला था। टीकमगढ़से हिन्दी साहित्यके महान् विद्वान् श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी तथा बाबू मिथिलाप्रसाद जी बी० ए०, एल० एल० बी०, शिक्षामंत्री, श्री कृष्णानन्दजी गुप्त तथा बाबू यशपालजी जैन आदि महानुभाव भी पधारे थे। अहार क्षेत्रका प्राकृतिक सौन्दर्य अवर्णनीय है। वास्तवमें पहाड़ों

के अनुपम सौन्दर्य, बाग-बगीचों, हरे-भरे धानके खेतों एवं चौकों लम्बे विशाल तालाबसे निकलकर प्रवाहित होनेवाले जल-प्रवाहोंसे अहार एक दर्शनीय स्थान बन गया है। उस पर संसार को चकित कर देनेवाली पापट जैसे कुशल कारीगरकी कर-कलासे निर्मित श्री शान्तिनाथ भगवान्‌की सातिशय प्रतिमाने तो वहाँके वायुमण्डलको इतना पवित्र बना दिया है कि आत्मामें एकदम शान्ति आ जाती है।

मिडिल स्कूल खोलने के लिए यदि जैन समाज आधा व्यय देना स्वीकार करे तो आधा राज्यकी ओरसे दिलानेका आश्वासन श्री बाबू मिथिलाप्रसादजी शिक्षामंत्रीने दिया। यहाँकी संस्थाको छह हजार रुपया तथा क्षेत्रको पाँच सौ रुपयाकी नवीन आय हुई। मेलामें जैन-अजैन जनताकी भीड़ लगभग दस हजार थी। तीन दिन तक खूब चहल-पहल रही। यहाँके मंत्री श्री बारेलाल वैद्य पठा हैं, जो उत्साही जीव हैं। पाठशालामें पं० प्रेमचन्द्रजी अध्यापक हैं। श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी तथा यशपालजीके प्रयत्नसे प्राचीन प्रतिमाओंको रखनेके लिए एक सुन्दर भवन बन गया है। परवारभूषण ब्र० फतेचन्द्रजी नागपुरवालोंने भी क्षेत्रकी उन्नतिमें काफी काम किया है।

वहाँसे चलकर पठा आया। यहाँपर सेठ चिम्मनलालजी ब्रह्म-चारी हैं, जो सम्पन्न हैं। परन्तु गृहवाससे विरक्त हैं। यहाँ आप के धर्मगृहमें रहे। एक दिन बाद पपौराजी आ गया। इस क्षेत्र की चर्चा पहले विस्तारसे कर आए हैं। यहाँ दो दिन निवास कर टीकमगढ़ आया। यहाँ अनेक जिनालय और लगभग दो सौ घर श्रावकोंके हैं। प्रायः सब सम्पन्न हैं। ये लोग यदि चाहें तो पपौरा विद्यालयकी उन्नति हो सकती है, परन्तु इनकी इस ओर विशेष दृष्टि नहीं। वहाँसे चलकर बानपुर गया। यहाँपर गाँवके बाहर प्राचीन मन्दिर हैं। एक सहस्रकूट चैत्यालय भी है, परन्तु

गाँव [illegible] और ज्यादा नहीं। गाँवमें भी बहुत बड़े-बड़े मन्दिर हैं। इस ओर भी विशेष लाभ नहीं। वहाँसे चलकर मँडई आया। यहाँपर श्री नाथूरामजी बहुत ही सुयोग्य और सम्पन्न व्यक्ति हैं। यहाँका सराफ घराना भी प्रसिद्ध है। इस घरानेमें कल्याणचन्द्रजी[1] बहुत ही योग्य और उदार महाशय हो गये हैं। इनका राज्यमें अच्छा आदर था। नाथूरामजीने साहार विद्यालयको एक हजार रुपया प्रदान किया था। ये अभी थोड़े दिन हुए सागर आये थे। तब इन्होंने मुझसे कहा था कि यदि आप पपौरा पधारें तो मैं पपौरा विद्यालयको पच्चीस हजार रुपया लिखवाऊँगा। इसमें क्या रहस्य है, मैं नहीं समझा। परन्तु ये बहुत उदार हैं। सम्भव है, स्वयं विशेष दान करें। इन्होंने यहाँ द्वितीय प्रतिमाके व्रत लिए। इनके पचासों एकड़ भूमि है। उससे जो आय होती है, परोपकारमें जाती है। अभी टीकमगढ़में अन्नका बहुत कष्ट था तब इन्होंने सैकड़ों मन चावल भेजकर प्रजामें शांति स्थापित करानेमें सहायता की थी। इनके उद्योगसे गाँवमें एक पाठशाला भी स्थापित हो गई है। मेरा भोजन इन्हींके घर हुआ था। यहाँसे चलकर अतारा आया। यह वह स्थान है जहाँ पर मैंने श्री स्वर्गीय मोतीलालजी वर्णीके साथ रह कर जैनधर्मका परिचय प्राप्त किया था। यहाँ पर एक मन्दिरमें प्राचीन कालका एक भोंहरा है। उसमें बहुत ही मनोहर जिन प्रतिमाएँ हैं, जो अष्ट प्रातिहार्य सहित हैं। मुनिप्रतिमा भी यहाँपर हैं। श्री पं० मोतीलालजी वर्णी पाठशालाके लिए एक मकान दे गये हैं और उसके सदा स्थिर रहनेके लिए द्रव्य भी दे गये हैं। यद्यपि उनके भतीजे

---

1. ये पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्रीके बहनोई थे। पण्डितजीकी बहिन अभी भी जीवित हैं। वृद्ध होने पर भी उत्साह, बुद्धि तथा धर्मभावनामें [illegible] प्रतीत होता है।

सम्पन्न हैं। वे स्वयं उसे चला सकते हैं, परन्तु गाँवके पञ्चोंमें परस्पर सौमनस्य नहोनेसे पाठशालाका द्वार बंद है। वहाँ दो दिन रहनेके बाद श्री स्वर्गीया धर्ममाता चिरौंजाबाईजीके गाँव आया। यहाँकी जनताने बड़े ही स्नेह पूर्वक तीन दिन रक्खा। वहाँसे चलकर सतगुवाँ आया। एक दिन रहा। फिर बमोरी होता हुआ पृथ्वीपुर आया। यह सम्पन्न बस्ती है, परन्तु परस्पर सौमनस्यके अभावमें धर्मका विशेष कार्य न हुआ। यहाँसे चलकर बरुआ-सागर आ गया। बीचमें चिदानन्द ब्रह्मचारीका समागम छूट गया था। वे यहाँ आ मिले। यहाँ पर बाबू रामस्वरूपजीके यहाँ सानन्दसे रहने लगा। इस प्रकार बुन्देलखण्डके इस पैदल पर्यटनसे आत्मामें अपूर्व शान्ति आई।

बरुवासागरमें विविध समारोह

इस प्रकार टीकमगढ़से भ्रमण करता हुआ बरुआसागर आ पहुँचा और स्टेशनसे कुछ ही दूर बाबू रामस्वरूपजी ठेकेदारके नवीन भवनमें ठहर गया। बाबू साहबसे मेरा बहुत कालसे परिचय है। परिचयका कारण इनकी निर्मल और भद्र आत्मा है। यह वही बरुआसागर है जहाँ पर मेरी आयुका बहुत भाग बीता है। यहाँकी आब-हवा बहुत ही सुन्दर है। यहाँ पर श्री स्वर्गीय मूलचन्द्रजी द्वारा एक पार्श्वनाथ विद्यालय स्थापित हुए १५ वर्ष हो चुके हैं। यहाँकी प्राकृतिक सुषमा निराली है। सुरम्य अटवी के बीचों-बीच एक छोटीसी पहाड़ी है। उसके पूर्व भागमें बहुत सुन्दर बाग है, उत्तरमें महान् सुरम्य सरोवर है, पश्चिममें सुन्दर जिनालय और दक्षिणमें रमणीय अटवी है। पहाड़ी पर विद्यालय

और छात्रावासके सुन्दर भवन बने हुए हैं। स्थान इतना सुन्दर है कि प्रत्येक देखनेवाला प्रसन्न होकर आता है।

पार्श्वनाथ विद्यालयके सभापति श्री राजमलजी साहब हैं, जो कि बहुत ही योग्य व्यक्ति हैं। आपके पूर्वज ललितपुरके थे, पर आप वर्तमानमें झाँसी रहते हैं। बड़े कुशल व्यापारी हैं। आपके छोटे भ्राता चाँदमलजी साहब हैं, जो बहुत ही योग्य हैं और जैनधर्ममें अच्छा बोध भी रखते हैं। आपका एक बालक वकील है। उसकी भी धर्ममें अच्छी रुचि है। इस पाठशालाके मन्त्री श्री गुलाबलालजी वकील हैं। आपका निवास बरुआसागर है। आप नायकवंशके हैं तथा बहुत उद्योगी हैं। आपने वकालत छोड़कर कृषिमें बहुत उन्नति की है। यदि इस उद्योगमें निरन्तर लगे रहे तो बहुत कुशल हो जावेंगे। वकील होने पर भी वेषभूषा बहुत साधारण रखते हैं। आपमें कार्य करनेकी क्षमता है। यदि थोड़ा समय परोपकारमें लगा देवें तो एक नहीं अनेक पाठशालाओंका उद्धार आप कर सकते हैं। आपके पिता बालचन्द्र नायक हैं, जो बहुत सज्जन धर्मात्मा हैं। आप उस प्रान्तके सुयोग्य पञ्च हैं। यद्यपि अब वृद्ध हो गये हैं तथापि धार्मिक कार्योंमें कभी शिथिल नहीं होते। इसी प्रकार विद्यालयके कार्यकर्ता गयासीलाल चौधरी हैं। आप भी बहुत चतुर व्यक्ति हैं। आप निरन्तर पूजा तथा स्वाध्याय करते हैं। कुशल व्यापारी हैं। आपके कई भतीजे अत्यन्त चतुर हैं। आपने आष्टाह्निका पर्वमें होनेवाले उत्सवके समय पाठशालाको एक सहस्र स्थायी द्रव्य दिया तथा एक कमरा छात्रावासके लिये भी बनवा दिया। आप जितना समय व्यापारमें देते हैं, यदि उसका दसवाँ भाग भी विद्यालयको देने लगें तो उसकी उन्नति सहज ही हो सकती है। यहाँपर श्री स्वर्गीय अजमेरा कन्हैयालालजी अन्योंमें कुशल व्यापारी थे। उनके वर्तमानमें अनेक सुपुत्र हैं। वे भी पाठशालाको अच्छी सहायता करते रहते

हैं। यहाँसे छः मीलपर एक खिसनी ग्राम है। वहाँपर श्री सिंघई छोटेलालजी बड़े धर्मात्मा हैं। आपकी धर्ममाता ने १००१) बरुवासागरकी पाठशालाको अभी दिये और एक हजार पहले भी दिये थे। पाठशालाका उत्सव इन्हींकी अध्यक्षतामें हुआ था। आपने दस रुपये मासिक सदैवके लिये पाठशालाको देना स्वीकृत किया। आप बहुत ही योग्य तथा मिष्टभाषी व्यक्ति हैं। आपसे सर्व जनता प्रसन्न रहती है।

जब लोगोंके स्वभाविक अनुरागने मुझे आगे जानेसे रोक दिया तब मैंने बरुवासागरके आस-पास ही भ्रमण करना उचित समझा। फलतः मैंने मगरपुर गया। यहाँपर स्वर्गीय बाईजी के भाई कामताप्रसाद रहते थे। यहीं पर श्रीरामभरोसेलालजी सिंघई रहते हैं, जो बहुत ही योग्य धार्मिक व्यक्ति हैं। आप व्यापारमें अतिकुशल हैं। साथ ही स्वाध्यायके प्रेमी भी हैं। स्वाध्यायप्रेमी ही नहीं, गोलालारे जातिके कुशल पञ्च भी हैं। आप प्रान्तीय गोलालारे सभाके सभापति भी रह चुके हैं। आपको जाति उत्थानकी निरन्तर चिन्ता रहती है। आपका भोजन-पान शुद्ध है। आपने बरुवासागर विद्यालयको १००१) दिया। आपके दो सुपुत्र हैं। दोनों ही सदाचारी हैं। यहीं स्वर्गीय बाईजीके दूसरे भाई स्वर्गीय अक्कूलालजी सिंघई रहते थे। आप बड़े उदार थे तथा बरुवासागर विद्यालयको निरन्तर सहायता करते थे।

मगरपुरसे दुमदुमा गया। यह वही दुमदुमा है जहाँके पण्डित दयाचन्द्रजी जैन संघ मथुरामें उपदेशक हैं। आप योग्य व्यक्ति हैं। आपके घरपर शुद्ध भोजनकी व्यवस्था है। यहाँके श्रीमान् मनोहरलालजी वर्णी हैं, जो आजकल उत्तर प्रान्तमें रहते हैं और निष्णात विद्वान् हैं। आपके द्वारा सहारनपुरमें एक गुरुकुलकी स्थापना हो गई है। यदि आप उसमें अपना पूर्ण उपयोग लगा देवें तो वह संस्था स्थायी हो सकती है। आप

प्रत्येक कार्यमें उदासीन रहते हैं पर यह निश्चित है कि उपयोगकी स्थिरताके बिना किसी भी कार्यका होना असम्भव है। चाहे वह लौकिक हो और चाहे पारलौकिक अथवा दोनोंसे परे हो। अस्तु, जो हो, उनकी वे जानें।

इधर-उधर भ्रमण कर पुनः बरुआसागर आ गया। बरुआसागर विद्यालयके विषयमें एक बात विशेष लिखनेकी रह गई। वह यह कि स्वर्गीय मूलचन्द्र जीके सुपुत्र स्वर्गीय श्रेयान्सकुमार, जो कि बहुत ही होनहार युवक थे, जब सागर गये, तब मुझसे बोले कि आप बरुआसागर आवें और जिस दिन आप बरुआसागरसे परे दुमदुमा आजावेंगे उसी दिन मैं दश सहस्र रुपया बरुआसागर विद्यालयको दान कर दूँगा। परन्तु आप उसी वर्ष परलोक सिधार गये। आपकी धर्मपत्नी हैं, जो बड़ी ही सज्जन है। होनहार बालक भी हैं।

यहाँपर पाठशालाके जो मुख्याध्यापक पं० मनोहरलालजी हैं वे तो उसके मानों प्राण ही है। आप निरन्तर उसकी चिंता रखते हैं। मामूली वेतन लेकर भी आपको संतोष है। आपने अथक परिश्रम कर झाँसीवाले नन्हूमल्लजी जैन अग्रवाल लोइयासे पाठशालाके लिये पचास सहस्रका मकान दिला कर उसे अमर बना दिया। लोइयाजीने इसके सिवाय छात्रावासका एक कमरा भी बनवा दिया है और मैंने पाठशालाके लिये जो एक घड़ी दी थी वह भी इन्होंने ग्यारह सौ रुपयेमें ली थी। आपका स्वभाव अति सरस और मधुर है। आप परम दयालु हैं, संसारसे उदास रहते हैं और निरन्तर धर्म-कार्यमें अपना समय लगाते हैं।

बाबू रामस्वरूपजीके विषयमें क्या लिखूँ? वे तो विद्यालयके जीवन ही हैं। वर्तमानमें उसका जो रूप है वह आपके सत्प्रयत्न और स्वार्थत्यागका ही फल है। आप निरन्तर स्वाध्याय करते हैं, तत्त्वको समझते भी हैं, शास्त्रके बाद आध्यात्मिक भजन इतनी

ही तन्मयतासे कहते हैं। आपकी धर्मपत्नी ज्वालादेवी हैं, जो बहुत चतुर और धार्मिक स्वभावकी हैं, निरन्तर स्वाध्याय करती हैं, स्वभावकी कोमल हैं। आपका एक सुपुत्र नेमिचन्द्र एम० ए० है, जो स्वभावका सरल मृदुभाषी और निष्कपट है, विद्याव्यसनी भी है। परन्तु व्यापारकी ओर उसका लक्ष्य नहीं। इलाहाबाद रहता है। जब तक मैं ईसरी रहा तब तक प्रतिमास आपके यहाँसे एक कुप्पी अठपहरा घी पहुँचता रहा। श्री ज्वालादेवीने दो हजार एक विद्यालयको दिये तथा एक कमरा भी बनवा दिया। एक हजार एक विद्वत्परिषद्को भी दिये। इसके सिवाय धीरे धीरे फाल्गुन शुक्ल वीर नि० २४७४ का अष्टाह्निका पर्व आ गया। उस समय आपने बड़ी धूमधामसे सिद्धचक्र विधान कराया, जिससे धर्मकी महती प्रभावना हुई। इसी उत्सवके समय त्यागी सम्मेलन भी हुआ, जिसमें ५० त्यागी महाशय पधारे थे। सम्मेलनका कार्यक्रम प्रभावोत्पादक था। प्रातःकाल ४ बजे प्रार्थना होती थी। अनन्तर एक त्यागी महाशय का संक्षिप्त भाषण होता था। फिर सब सामूहिक रूपमें बैठ कर सामायिक करते थे। शारीरिक क्रियाओंसे निवृत्त होनेके बाद आठ बजेसे शास्त्रप्रवचन होता था। मध्याह्नमें भोजनोपरान्त सब सामूहिक रूपसे सामायिक करते थे। फिर कुछ तत्त्वचर्चा या भाषण आदि होते थे और संध्याके समय भी पूर्ववत् सामायिक तथा भाषण होते थे। भारतवर्षीय दि० जैन व्रती सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन भी श्री भगत सुमेरुचन्द्र जी जगाधरीके सत्प्रयत्नसे इसी समय हुआ था। आप उत्साही त्यागी हैं। ३३ वर्षकी अवस्थासे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर रहे हैं।

इसी त्यागी सम्मेलनके आकर्षणसे गयासे श्री विदुषी पतासीबाईजीका भी शुभागमन हुआ था। आपकी व्याख्यान शैली बहुत मार्मिक है। आपके प्रभावसे श्री समाजने हजारों

रुपया दानमें दिये तथा बरुवासागरमें एक कन्या पाठशाला भी स्थापित कर दी।

इसी समय विद्वत्परिषद्का अधिवेशन भी हुआ, जिसमें पं० कैलाशचन्द्रजी बनारस, व्याख्यानभूषण तुलसीरामजी बड़ौत, प्रशमगुण पूर्ण पं० जगन्मोहनलालजी कटनी, पं० राजेन्द्रकुमारजी मथुरा, प्रशममूर्ति पं० दयाचन्द्रजी सागर तथा पं० चन्द्रमौलिजी आदि विद्वान् पधारे थे। श्रीमान् सिद्धान्तमहोदधि पं० वंशीधरजी इन्दौरका भी शुभागमन हुआ था। परन्तु अचानक आपका स्वाध्य खराब हो जानेके कारण जनता आपकी मार्मिक तत्त्व-विवेचनासे वञ्चित रही।

इसी अवसर बाबू रामस्वरूपजी तथा उनकी सौ० धर्मपत्नी ज्वालादेवीने दूसरी प्रतिमाके व्रत प्रसन्नतापूर्वक लिए और कोयला आदिके जिस व्यापारसे आपने लाखों रुपये अर्जित किये थे उसे व्रतोंके अनुकूल न होनेसे सदाके लिए छोड़ दिया। सब लोगोंको बाबू साहबके इस त्यागसे महान् आश्चर्य हुआ। मैंने भी मिति फाल्गुन सुदी सप्तमी २४७४ को प्रातःकाल श्री शान्तिनाथ भगवान् की साक्षीमें आत्मकल्याणके लिए क्षुल्लकके व्रत लिये। मेरा दृढ़ निश्चय है कि प्राणीका कल्याण त्यागमें ही निहित है।

इसी अष्टाह्निका पर्वके समय यहाँके पार्श्वनाथ विद्यालयका वार्षिक अधिवेशन भी हुआ, जिसमें श्रीमान् बाबू हरविलासजी आगराने २००१), श्रीमान् सेठ ख्यालीरामजीने १००१), श्रीमान् गयासीलालजी चौधरी बरुवासागरने १००१), श्रीमान् सेठ जानकीप्रसाद सुन्दरलालजीने १२५१), श्रीमान् नन्हूमल्लजी अग्रवाल झाँसीने ११०१), श्रीमान् सिं० छोटेलालजी खिसनीने १००१), श्रीमान् सिं० भरोसेलालजी मगरपुरने १००१), श्री गोमती देवी ताजगंज आगराने ५०१), श्री दुर्गादेवी लाला कैलाश-चन्द्र अग्रवालकी माहेश्वरी आगराने ५०१) और श्री श्रेयांसकुमार-

जीको धर्मपत्नी-ललिताबाई बरुवासागरने ५०१) एकमुश्त दिये। इसके सिवा फुटकर चन्दा भी हुआ। सब मिलाकर २५०००) के लगभग विद्यालयका ध्रौव्यफण्ड होगया। इस प्रकार विद्यालय स्थायी हो गया। मुझे भी एक शिक्षायतनको स्थिर देख अपार हर्ष हुआ। वास्तवमे ज्ञान ही जीवका कल्याण करनेवाला है, परन्तु यह पञ्चम कालका ही प्रभाव है कि लोग उससे उदासीन होते जा रहे हैं।

इस प्रान्तमें इतने द्रव्यसे कुछ नहीं होता। यह प्रान्त प्रायः अशिक्षित है। यहाँ तो पाँच लाखका फण्ड हो तब कुछ हो सकता है, पर वह स्वप्न है। अस्तु, जो भगवान् वीरने देखा होगा, सो होगा। यहाँसे प्रस्थान कर झाँसीकी ओर चल पड़े।

बरुवासागरसे सोनागिरि

बरुवासागरसे चलकर वेत्रवती नदी पर आये। स्थान बहुत ही रम्य है। साधुओंके ध्यान योग्य है। परन्तु साधु हों तब न। हम लोगोंने साधुओंका अनुकरण कर रात्रि बिताई। पश्चात् झाँसी आये। सेठ मक्खनलालजीके बंगले पर ठहरे। आप बहुत ही योग्य हैं। यहाँ तीन दिन रहे। आनन्दसे काल गया। आपके यहाँ दो दिन सभा हुई। जनता अच्छी आई। आपने एक पीली कोठी और उसीसे मिली हुई मन्दिरकी जमीन लेकर एक कला-भवन खोलनेकी घोषणा कर दी और उसके चलानेके लिए तीन सौ मासिक सर्वदाके लिए दान कर दिया। साथ ही लगे हाथ उसकी रजिष्ट्री भी करा दी।

यहाँसे चलकर दो दिन बीचमें ठहरते हुए दतिया आगए और यहाँसे चलकर श्रीसोनागिरिजी आगए। पर्वतकी तलहटीमें

मथुरावालोंकी धर्मशालामें ठहर गये। ऊपर जाकर मन्दिरोंकी वन्दना की। मन्दिर बहुत ही मनोज्ञ तथा विस्तृत हैं। यहाँ पर मन्दिरोंमें तेरापन्थी और बीसपन्थी आम्नायके अनुसार पूजा होती है। प्रातःकाल पर्वतके ऊपर वन्दनाको गये। मार्ग बहुत ही स्वच्छ और विस्तृत है। प्रत्येक मन्दिर पर क्रमांक पड़े हुए हैं तथा जिन भगवान्‌का नाम लिखा हुआ है, जिससे यात्रियों के वन्दना करनेमें कठिनाई नहीं आती। पर्वतके मध्यमें श्री चन्द्रप्रभ स्वामीका महान् मन्दिर बना हुआ है। इसका चौक बड़ा ही विस्तृत है। उसमें पाँच हजार मनुष्य सुख पूर्वक बैठ सकते हैं, मन्दिरके बाहर बड़ा भारी चबूतरा है और इसके बीचमें उत्तुङ्ग मानस्तम्भ बना हुआ है। उसमें मार्बलका फर्श लगानेके लिये एक प्रसिद्ध सेठने पचास हजार रुपया दिये हैं। यहाँ पर्वतपर बहुत ही स्वच्छता है। इसका श्रेय श्री गप्पूलालजी लश्करवालोंको है। श्रीमान् सेठ बैजनाथजी सरावगी कलकत्ता वालोंने क्षेत्रके जीर्णोद्धारमें बहुत सी सहायता स्वयं की है और अन्य धर्मात्मा बन्धुओंसे कराई है। आप विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। स्वयं वृद्ध हैं, परन्तु युवकोंसे अधिक परिश्रम करते हैं। किसी प्रकार जैनधर्मकी उन्नति हो, इसकी निरन्तर चिन्ता बनी रहती है। प्रतिदिन जिनेन्द्रदेवकी अर्चा करते हैं तथा दूसरोंको भी जिनेन्द्र भगवान्‌की अर्चा करनेकी प्रेरणा करते हैं। जिस प्रान्तमें जाते हैं वहाँ जो भी संस्था होती है उसे पुष्ट करनेके अर्थ स्वयं दान देते हैं तथा अन्य बन्धुओंसे प्रेरणा कर संस्थाको स्थायी बनानेका प्रयत्न करते हैं। पर्वत पर आपके द्वारा बहुत कुछ सुधार हुआ है। इस समय सोनागिरिमें भट्टारक श्री हरीन्द्रभूषणजीके शिष्य भट्टारक हैं। यहाँ पर कई धर्मशालाएँ हैं। जिनमें एक साथ पाँच हजार यात्री ठहर सकते हैं।

यहाँ पर एक पाठशाला भी है, परन्तु उस ओर समाजका विशेष लक्ष्य नहीं। पाठशालासे क्षेत्रकी शोभा है। क्षेत्र कमेटीको पाठशालाकी उन्नतिमें पूरा सहयोग देना चाहिये। समाज तथा देशका उत्थान शिक्षासे ही हो सकता है। क्षेत्र पर आनेवाले बन्धुओंका कर्तव्य है कि वे पाठशालाकी ओर विशेष ध्यान दें। शिक्षासे मानवमें पूर्ण मानवताका विकास होता है। समाज यदि चाहे तो पाठशालाको चिन्तामुक्त कर सकती है। आज-कल पन्द्रह छात्र हैं। श्री रतनलालजी पाटनी जिस किसी प्रकार संस्थाको चला रहे हैं। उनका प्रयत्न सराहनीय है। श्री स्वर्ण-गिरिके दर्शन कर आत्माको अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ।

चैत सुदी ५ सं० २००५ का दिन था, आज प्रातःकाल श्री लश्करके मन्दिरमें प्रवचन हुआ। शंका-समाधान भी हुआ, परन्तु अधिकांशमें कुतर्कसे अधिकतर समाधान और शंकाएँ की जाती हैं। जो हो, सबसे विशिष्ट आज जो बात हुई वह यह है—आज श्री क्षुल्लक क्षेमसागरजी महाराज झाँसीसे आये। आपने कहा कि मैं आपके साथ नियमसे सोनागिरि क्षेत्र आता। परन्तु आपके संघके जो मैनेजर हरिश्चंद्रजी हैं उन्होंने यह कहा कि 'वर्णीजीका यह कहना है कि आप चार आदमीसे अधिकका प्रबन्ध मत करना। उनमें आप नहीं आते। अतः आप मत चलो, हम आपका प्रबन्ध नहीं कर सकेंगे।'

मैं बोला—'मैंने हरिश्चन्द्रजीसे यह बात अवश्य कही थी, परन्तु उसका यह आशय न था जो लगाया गया। संभव है श्री हरिश्चन्द्रजी का भी वह आशय न हो जो कि महाराजने अवगत किया हो। अथवा कुछ हो मूल पर आओ। मेरा यह आशय अवश्य था कि यह प्रकृतिसे भद्रताकी अवहेलना करते हैं। सम्भव है इनके सम्पर्कसे मैं अपनी दुर्बलताको नहीं छिपा सकूँ, अतः इनका जाना मुझे इष्ट न था, इसलिए मैंने हरिश्चन्द्रजीसे कह दिया।

वास्तवमें हरिश्चन्द्र कोई दोषभाक् नहीं, दोषभाक् तो मैं ही हूँ। अस्तु यह सर्वथा माननीय सिद्धान्त है कि परका संसर्ग सुखद नहीं...यह जानकर भी मैं इस संसर्गोंसे भिन्न नहीं रहता। फल इसका यह प्रत्यक्ष ही है।

अन्तरङ्गसे ज्ञानको निर्मल बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। ज्ञानकी निर्मलता तभी होगी जब इन परपदार्थोंका सम्पर्क छूट जावेगा और इनका सम्पर्क तभी छूटेगा जब यह दृढ़तम निश्चय हो जावेगा कि कोई पदार्थ किसीका न तो कर्ता है, न धर्ता है और न हर्ता है। सब पदार्थ अपने स्वरूपमें लीन हैं। श्रीयुत महानुभाव कुन्दकुन्द स्वामीने कर्तृकर्म अधिकारमें लिखा है—

> 'जो जम्हि गुणो दव्वे सो अण्णम्हि ण संकमदि दव्वे।
> सो अण्णमसंकतो कह तं परिणामए दव्वं ॥'

इस लोकमें जो पदार्थ हैं वे चाहे चेतनात्मक हों, चाहे अचेतनात्मक वे सब चेतन द्रव्य और चेतन गुण अथवा अचेतन द्रव्य और अचेतनगुणोंमें ही रहते हैं। यही वस्तुकी मर्यादा है। इसका संक्रमण नहीं हो सकता।

महावीर जयन्ती

सोनागिरि
चैत्र शुक्ल १३ वीराब्द २४७४

श्री महावीर स्वामीका जन्म संसारमें अद्वितीय ही था। अर्थात् इस कलिकालके उद्धारके लिए वे ही अन्तिम महापुरुष हुए। उनके पहले २३ तीर्थंकर और भी हुए, जिनके द्वारा एक कोड़ाकोड़ी सागर पर्यन्त धर्मकी प्रभावना रही। जिस आत्मामें धर्मका उदय

होता है वह अपने कर्तव्य पथको समझने लगता है। जैसे सूर्योदय कालमें नेत्रवान् पुरुष मार्ग प्राप्त कर अपने-अपने अभीष्ट कार्योंकी सिद्धिके लिए प्रयत्नशील हो जाते हैं। एवं श्री तीर्थप्रभु-मार्तण्डका उदय पाकर भव्याब्ज विकसित हो जाते हैं। भव्य-कमलोंमें विकसित होनेकी शक्ति है। उसका उपादान कारण वे स्वयं हैं, परन्तु उस विकासमें निमित्त श्री वीर प्रभु हुए। यही कारण है कि आज भी हमलोग उन १००८ वीर प्रभुका स्मरण करते हैं। परन्तु केवल स्मरण मात्रसे हम संसारकी यातनाओंसे मुक्त नहीं हो सकते। उनके दिखलाये हुए मार्गका अवलम्बन करनेसे ही हम उनके अनुयायी हो सकते हैं। लाखों रुपयोंका व्यय करनेपर भी हम श्री वीर प्रभुका उतना प्रभाव दिखानेमें समर्थ नहीं हो सकते जितना कि उनके द्वारा प्रतिपाद्य अहिंसाको पालन करनेसे दिखा सकते हैं। यदि हम सच्चे अन्तरङ्गसे श्री वीरके उपासक हैं तो हमें आजसे यह नियम हृदयङ्गम करना चाहिये कि हम अपनी आत्माको हिंसा दोषसे लिप्त न होने देवेंगे तथा आजके दिनसे किसी भी प्राणीके प्रति मन, वचन, कायसे दुःख न होने देनेका प्रयत्न करेंगे एवं कमसे कम एक दिनकी आय परोपकारमें लगावेंगे। साथ ही इस दिन मन, वचन, कायसे सब पापोंका त्याग करेंगे और उस त्यागमें ब्रह्मचर्य व्रतकी पूर्ण रक्षा करेंगे। इस दिनका ऐसा निर्मल आचार होगा कि जिसे देख अन्यके परिणाम दयापरक हो जावेंगे। अहिंसाकी परिभाषा करनेमें ही चतुरता दिखलानेकी चेष्टा न होगी। किन्तु उसके पालनमें अनुराग होगा। यदि हम अन्तरङ्गसे अहिंसाके उपासक हो गए तो अनायास ही हमारी यातनाएँ पलायमान हो जावेंगी। हम यह चेष्टा करते हैं कि संसारमें अहिंसा धर्मका प्रचार हो, चाहे हममें उसकी गन्ध भी न हो। सर्वोत्तम मार्ग तो यह है कि हम अपनी प्रवृत्तिको अति निर्मल बनानेका प्रयत्न करें। श्री

महावीर स्वामीके जीवनचरितसे यही शिक्षा लेनी चाहिये कि हम पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंसे अपनेको सुरक्षित रखें। आत्मामें अनन्त शक्ति है। प्रत्येक आत्मामें वह है, परन्तु हम तो इतने कायर हो गये हैं कि अपनी परिणतिको दुर्बल समझ ऊपर चढ़नेकी कोशिश ही नहीं करते।

एक स्वप्न

सोनागिरि

आजके दिन पर्वत पर शयन किया। रात्रिको सुन्दर स्वप्न आया, जिसमें सर सेठ हुकमचन्द्रजीसे बातचीत हुई। आपको धोती दुपट्टा लेते हुए देखा। आप पूजनके लिए जा रहे थे। मैंने आपसे कहा कि 'आप तो स्वाध्यायके महान् प्रेमी हैं पर इस समय पूजनको जा रहे हैं, स्वाध्याय कब होगा? मेरी इच्छा थी कि आपके समागममें पण्डितों द्वारा शास्त्रका मार्मिक तत्त्व विवेचन किया जावे। परन्तु आपको तो पूजन करना है, इससे अवकाश नहीं। अच्छा, मैं भी आपकी पूजन देखूँगा और पुण्य लाभ करूँगा। आप सदृश आप ही हैं।'

सर सेठ साहबने मुसकराते हुए कहा कि 'मैं पूजन कर अभी तैयार होता हूँ।'

मैंने कहा—'यह सब हुआ। आपने आजन्म पण्डितोंका समागम किया है और स्वयं अनुभव भी किया है। पुण्योदयसे सब प्रकारकी सामग्री भी आपको सुलभ है, किन्तु क्या इस बाह्य विभवको अपना मानते हैं? नहीं, के[illegible] सरायका सम्बन्ध है। अथवा

'ज्यों मेलेमें पंथी जन मिल [illegible] नेह धरते।
ज्यों तरुवर पर रैन बसेरा पंछी आ करते॥'

यह सब ठाठ कर्मज है...यह भी उपचार कथन है। वस्तुतः न यह ठाठ है और न वे ठाठ हैं। केवल हमारी मोहकी कल्पना उसे यह रूप दे रही है। वस्तु तो सब भिन्न-भिन्न ही हैं; केवल हमारी कल्पनाओंने उन्हें निजत्व रूप दे रक्खा है। जिस दिन यह निजत्वकी कल्पना मिट जावेगी उसी दिन आत्माका कल्याण हुआ समझो, क्योंकि जब जीवके सम्यग्दर्शन हो जाता है तब 'मिच्छत्तहुण्ड' इत्यादि ४१ प्रकृतियाँ तो बँधती ही नहीं। जो पूर्वकी सत्तामें बैठी हैं, यद्यपि उनका उदय आवेगा तो भी उस प्रकारका बन्ध करनेमें समर्थ नहीं। अस्तु, जो शत्रु अभी सत्तामें स्थित है उसे क्या कम समझते हो? बड़ेसे-बड़े महापुरुष भी उसके उदयमें अपना वास्तविक प्रभाव प्रकट नहीं कर सके। बलभद्रसे महापुरुष भी जब मृत कलेवरको छः मास लिये घूमते रहे तब अन्य अल्प शक्तिवाले मोही जीवोंकी कथा क्या है?' सेठजी कुछ बोलना ही चाहते थे कि मेरी निद्रा भंग हो गई—स्वप्न टूट गया।

दिल्लीयात्राका निश्चय

ग्रीष्मकालका उत्ताप विशेष हो गया था, अतः यह विचार किया कि ऐसी तपोभूमिमें रह कर आत्मकल्याण करूँ। मनमें भावना थी कि श्री स्वर्णगिरिमें ही चतुर्मास करूँ और इस क्षेत्रके [illegible]न्तिमय वातावरणमें रहूँ। क्षेत्रके मैनेजर श्री दौलतरामजीने ठहरन[illegible]दिकी अति सुन्दर व्यवस्था की थी, जिससे यहाँ सब प्रकारकी आ[illegible] था। श्री मनोहरलालजी वर्णी तथा बाबू रतनचन्द्रजी सहारनपुर [illegible]ले गये थे। उनके कुछ समय बाद समाजके उत्साही विद्वान् पं० [illegible]न्द्रमौलिजी शास्त्री सोनागिरि आये

उत्तर-भारतकी पदयात्रा करते हुए

और सथमें पं० भैयालालजी भजनसागरको भी लेते आये और देहली चलनेके लिये प्रेरणा करने लगे। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि मुझे यहाँसे अन्यत्र न जाना पड़े। परन्तु पं० चन्द्रमौलिजीने प्रबल प्रेरणा की और देहली जाकर तथा श्री लाला राजकृष्णजीसे मिलकर एक डेप्युटेशन लाये। डेप्युटेशनमें श्रीमान् लाला राय सा० उलफतरायजी, लाला हरिश्चन्द्रजी, लाला जुगलकिशोरजी कागजी, लाला नेमिचन्द्रजी जौहरी, लाला रघुवीरसिंहजी बिजलीवाले तथा संघके प्रधानमंत्री पं० राजेन्द्रकुमारजी आदि थे। इसी समय बनारससे पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य तथा पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री भी आ गये। इन सबने देहली चलनेका हार्दिक अनुरोध किया। इससे जैनधर्मके प्रचारका विशेष लाभ दिखलाया, जिससे मैंने देहली चलनेकी स्वीकृति दे दी। मार्गमें संघकी सब व्यवस्था करनेके लिये लाला राजकृष्णजीने पं० चन्द्रमौलिजीको निश्चित किया। पं० चन्द्रमौलिजी बहुत ही योग्यता और तत्परताके साथ सब प्रकारकी व्यवस्था करते हैं। मार्गमें सभा आदिका आयोजन भी करते हैं। ये होनहार विद्वान् हैं। समाज ऐसे नवयुवक विद्वानोंको यदि कार्य करनेका अवसर प्रदान करे तो विशेष लाभ हो सकता है।

लश्करकी ओर

वैशाख वदि ४ सं० २००६ को प्रातःकाल सोनागिरिसे चलकर चाँदपुर आ गये। यह ग्राम अच्छा है। कुल तीन सौ घर यहाँ पर हैं। उनमें सौ घर यादवंशी क्षत्रिय, पचीस घर गहोई वैश्य, पचास घर ब्राह्मण और शेष घर इतर जातिवालोंके हैं। यहाँ पर एक स्कूल है। उसमें ठहर गये।

स्कूलका मास्टर बहुत उत्तम प्रकृतिका था। उसने गर्मीके प्रकोपके कारण अपने ठहरनेके मकानमें ठहरा दिया और आप स्वयं गर्मीमें ऊपर ही ठहर गया। बहुत ही शिष्टताका व्यवहार किया तथा एक बहुत ही विलक्षण बात यह हुई कि मास्टर साहबने समाधितन्त्र सुनकर बहुत ही प्रसन्नता प्रकट की। उसकी श्रद्धा जैनधर्ममें हो गई और उसने उसी दिनसे समाधितन्त्रका अभ्यास प्रारम्भ कर दिया तथा उसी दिनसे दिवस भोजन एवं पानी छान कर पीनेका नियम ले लिया। इसके सिवा उसने सबसे उत्तम एक बात यह स्वीकृत की कि गर्भमें बालक आनेके बाद जब तक बालक पाँच या छः मासका न हो जावे तब तक ब्रह्मचर्यसे रहना। साथमें यह निश्चय भी किया कि मेरी गृहस्थी जिस दिन योग्य हो जावेगी उस दिनसे धर्मसाधन करूँगा। बहुत ही निर्मल प्रकृतिका आदमी है। प्रातःकाल जब मैं ग्रामसे चलने लगा तब एक मील सड़क तक साथ आया। बहुत आग्रह करनेके बाद वापिस गया।

यहाँसे चार मील चलकर डबरा आ गये। श्री माणिकचन्द्र हजारीलालजी की दुकान पर ठहर गये। हजारीलालजी चार भाई हैं। परस्परमें इनके सौमनस्य है। इनके पिता भी जीवित हैं। इनके पिताके दो धर्मपत्नी हैं। दोनों ही बहुत सज्जन हैं। अतिथिके आनेपर इसकी पूर्ण वैयावृत्य करनेमें तत्पर रहते हैं। यहाँ इनकी दुकान अच्छी चलती है। यहाँ पर मन्दिर नहीं है, अतः उसकी स्थापनाके लिये इनके भाई फूलचन्द्रजी पूर्ण प्रयत्न कर रहे हैं।

वैशाख वदि ५ को यहाँ सभा हुई, जिसमें आपने श्री मन्दिर जीके लिए एक हजार एक रुपया दिये। समाजने भी यथायोग्य दान दिया। एक महाशयने तो यहाँ तक उत्साह दिखाया

कि केवल मन्दिर ही नहीं पाठशाला तथा धर्मशाला भी बनना चाहिये। यह सब हुआ, परन्तु एक भाईके पास मुट्ठीका रुपया था। वह कहते थे कि 'भाई ऐसा न हो कि यह कार्य जिस प्रकार अनेक बार चिट्ठा होकर भी नहीं हुआ उसी प्रकार फिर भी न हो।' इसी चर्चामें ही सभा समाप्त हो गई। वैशाख वदि ६ को भी सभा हुई, परन्तु उसमें भी विशेष तत्त्व न निकला। अनन्तर वैशाख वदि ७ को पुनः सभा हुई, जिसमें श्री चिदानन्दजी ब्रह्मचारीने प्रभावक भाषण दिया। उसका बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा और चन्दा हो गया। बाबाजीने दोपहरको जाकर सब रुपये वसूल कर दिये।

अनन्तर यह विचार आया कि श्रीलालजी सेठ जैसवालका मकान पैतालीस सौ रुपयामें ले लिया जावे। यह विचार सबने स्वीकृत किया तथा उसीकी बगलमें लाला रामनाथ रामजीने अपनी जमीन दे दी, जो कि सत्तर फुट लम्बी और पचवन फुट चौड़ी थी। पश्चात् फिर भी परस्परमें मनोमालिन्य हो गया। अन्तमें श्रीलालने कहा कि मन्दिर तो बनेगा ही और मुझे जो रुपये मिले हैं वे इसी मन्दिरमें लगा दूँगा। बहुत देर तक यही बातचीत होती रही, परन्तु अन्तमें पुनः विवाद हो गया।

मैंने मध्यस्थ रहते हुए कहा कि 'जो हो अच्छा है। मेरा सबसे स्नेह है आपकी इच्छा हो, सो करें।' प्रातःकाल अष्टमीको सभा हुई, जिसमें एक अग्रवाल महानुभावने, जो कि बाजार कमेटीके सदस्य थे, बहुत ही प्रयत्न किया तथा आदेश भी दिया कि मन्दिरको चन्दा हो जाना चाहिये, परन्तु कुछ नहीं हुआ। अन्तमें निराश होकर लोग उठ गये। हम भी निराश होकर चले आये। उस दिन भोजनमें उपयोग नहीं लगा, अतः पानी लेकर ही संतोष किया। उसका प्रभाव अच्छा पड़ा। फल यह हुआ कि

श्रीलालजी आदि रात्रिके आठ बजे आये और उन्होंने यह निश्चय किया कि हमको जो रुपये मिले हैं वे सब मन्दिर बनानेमें लगा देवेंगे, आप निश्चिन्त होकर शयन करिये। हम लोग मन्दिर बना कर ही रहेंगे तथा सङ्गमर्मरकी वेदिका मन्दिरमें लगायी जावेगी। श्री लालजीने कहा कि हमारे पास जो कुछ सम्पत्ति है वह प्रायः इसी काममें आवेगी। अभी कुछ नहीं कहते, समय पाकर सब कार्य हो जाते हैं। अधीर होनेकी आवश्यकता नहीं। कार्यसिद्धि कारणकूटके आधीन है। अधीरता तो सामग्रीमें बाधक है, अतः हम लोग आपको विश्वास देते हैं कि आर्द्र मास तक नियमसे मन्दिर बन जावेगा और यदि दिल्लीसे आपका प्रस्थान इस प्रान्त में हुआ तो आप स्वयं दर्शन करेंगे। विशेष क्या कहें ? आपसे हमारा प्रेम हो गया है। अर्थात् न जाने आपके उदासीन भावोंके प्रभावसे हम आपसे उदास न होकर इसके विरुद्ध आपको अपना स्नेही मानने लगे हैं। इसका अर्थ यह है कि उदासीनता वस्तु संसार बन्धनको ढीला करनेवाली है और स्नेह संसारका जनक है यह ठीक है, परन्तु आपमें जो हमारा स्नेह है उसका यही तो अर्थ है कि जो वस्तु आपको इष्ट है वही हमें प्रिय है। तब जो उदासीनता आपको इष्ट है वही हमको भी इष्ट है, अतः हम भी प्रायः उसीके उपासक हुए। मतलब यह है कि आपको यहाँ मन्दिर निर्माण इष्ट है। वह हमें भी सुतरां इष्ट है, अतः आप निश्चिन्त होकर शयन करिये, विशेष क्या कहें ? पश्चात् वे लोग अपने अपने घर चले गये और मैं भी सो गया।

रात्रिको स्वप्नमें क्या देखता हूँ कि संसारमें जो भी पदार्थ है वह चाहे चिदात्मक हो, चाहे अचिदात्मक, उसकी सत्ता चिदात्मक द्रव्य और चिदात्मक गुण तथा अचिदात्मक द्रव्य और अचिदात्मक गुणमें ही रहेगी। यदि चिदात्मक पदार्थ है तो चिदात्मक द्रव्य और चिदात्मक गुणमें रहेगी तथा अचिदात्मक

पदार्थ है तो अचिदात्मक द्रव्य और अचिदात्मक गुणमें ही रहेगी। हम व्यर्थ ही कर्ता बनते हैं। अमुकको यह कर दिया, अमुकको वह कर दिया, यह सब हमारी मोहकी कल्पना है। जब तक हमारी ये कल्पनाएँ हैं तभी तक संसार है और जब तक संसार है तभी तक नाना यातनाओंके पात्र हैं। जिन्हें इस संसार की यातनाओंसे अपनी रक्षा करना है वे इन मोहजन्य कल्पनाओं को त्यागें। न कोई किसीका कल्याण करनेवाला है और न कोई किसीका अकल्याण करनेवाला है। कल्याण और अकल्याणका कर्ता जीव स्वयं है। जहाँ आत्मा इन अनात्मीय पदार्थोंसे अपने अस्तित्वको भिन्न जान लेता है वहाँ उनके संग्रह करनेका अनुराग स्वयमेव त्याग देता है और उनके प्रतिपक्षी पदार्थोंमें द्वेष भी इसका सहज ही छूट जाता है।

अनादि कालसे इस आत्माका अनात्मीय पदार्थोंके साथ संसर्ग चला आ रहा है और संसर्गके एक क्षेत्रावगाही होनेसे उन दोनोंमें अभेदबुद्धि हो रही है। जो चेतन पदार्थ है वह तो दीखता नहीं और जो अचेतन पदार्थ है वही दीखता है। परंच इन्द्रिय इसके ज्ञानकी साधक हैं, उनके द्वारा स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द इनका ही तो बोध होता है। यद्यपि जाननेवाला जीव द्रव्य है, परन्तु वह इतना निर्बल हो गया है कि बिना पौद्गलिक द्रव्येन्द्रियके आलम्बनके देखनेमें असमर्थ रहता है। जिसकी द्रव्येन्द्रिय विकृत हो जाती है वह नहीं जान सकता। जैसे आँख फूट जावे तो आभ्यन्तर भावेन्द्रियका सद्भाव रहनेपर भी ज्ञानोत्पत्ति नहीं होती। अथवा जिनकी बाह्य नेत्रेन्द्रिय दुर्बल हो जाती है वह चश्माका आश्रय लेकर देखते हैं। यथार्थमें देखता नेत्र ही है, परन्तु चश्माके आश्रय बिना बाह्य नेत्र देखनेमें असमर्थ रहता है। इसी प्रकार द्रव्येन्द्रियके विकृत होनेपर आभ्यन्तर इन्द्रिय स्वकीय कार्य करनेमें असमर्थ रहती है। इसी

तरह ज्ञाता-द्रष्टा आत्मा यद्यपि स्वयं ज्ञायक है, परन्तु अनादि कालीन कर्मोंसे मलीमस होनेके कारण अपने आपको वेदन करने में असमर्थ है, अतः मन इन्द्रियके आश्रय बिना न तो अपनेको जान सकता है और न 'यह उपादेय है, यह हेय है' इसे भी जाननेमें समर्थ रहता है। अब यदि आत्मा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अवस्थाको प्राप्त हुआ है तो अपने स्वरूपको जानो, देखो तथा उसीमें रम रहो। इन परपदार्थोंके सम्पर्कसे बचो, क्योंकि इनके संसर्गसे ही चतुर्गति भ्रमण है। यह निश्चित बात है कि जिस पदार्थमें तुम्हारी आत्मीय बुद्धि होगी, कालान्तरमें वही तो मिलेगा। जाग्रदवस्थामें जिस पदार्थका विशेष संसर्ग रहता है, स्वप्नावस्थामें वही पदार्थ प्रायः सम्मुख आ जाता है। यह क्या है? संस्कार ही तो है। आपको सम्यक् प्रकार यह विदित है कि जब बालक उत्पन्न होता है तब माँका स्तन्यपान करता है। उसे किसने शिक्षा दी कि स्तनको इस प्रकार चूसो। यही संस्कार जन्मान्तरका साधक है। यही जीवको जतानेवाला है—जिसमें यह संस्कार है वही जीव है। ज्ञानका आश्रय है। यही जीवमें चेतनका चमत्कार है। यही इसे इतर द्रव्योंसे भिन्न करनेवाला असाधारण गुण है। यदि यह न होता तो संसारको उस व्यवस्था-को जो कि आज बन रही है कौन जानता? आत्मामें एक ज्ञान ही गुण ऐसा है जो कि अपने स्वरूपको दर्शाता है और अन्य पदार्थों की व्यवस्था करता है। इतना ही उसका काम है कि वह पदार्थों को जान लेवे। यह पदार्थ हेय है, यह उपादेय है या उपेक्षणीय है यह उसका काम नहीं। यह जो उसमें होता है वह उपचारसे होता है। अनादि कालसे इस आत्माके साथ मोहकर्मका सम्बन्ध है। इसके उदयमें आत्माका जो चारित्रगुण है वह विकृतरूप हो जाता है और तब यह जीव अनुकूल पदार्थोंमें उपादेय बुद्धि तथा प्रतिकूल पदार्थोंमें हेय बुद्धिकी कल्पना कर लेता है। इसके सिवा

जो पदार्थ न तो अनुकूल हैं और न प्रतिकूल ही, उनमें उपेक्षा बुद्धि कर लेता है।

डबरासे चलकर बीचमें कई स्थानोंपर ठहरे, पर कोई विशेष बात नहीं हुई। एक दिन डांगके महावीरके स्थानपर ठहर गये। यहाँपर एक साधु महात्मा था, जो बहुत ही शिष्ट था। बड़ा ही सौजन्य उसने दिखाया। हमारे यहाँ तो कुछ ऐसी पद्धति हो गई है कि अन्य मतावलम्बी साधुके साथ यदि कोई विनयसे बर्ताव करे तब यह कहनेमें संकोच नहीं कि तुम तो वैनयिक मिथ्यादृष्टि हो। अस्तु, कुछ बुद्धिमें नहीं आता। जो धर्म इतना उपदेश देता है कि एकेन्द्रिय जीवको भी बिना प्रयोजन क्षति न करो उसका व्यवहार संज्ञी जीवोंके प्रति कितना विशिष्ट होगा, यह आप जान सकते हैं।

गोपाचलके अञ्चलमें

डबरासे चलकर क्रमशः लश्कर पहुँचे। यहाँ तक चौकाका प्रबन्ध सहारनपुरवालोंकी ओरसे विशेष रूपसे था। लश्करकी महावीर धर्मशालामें बारात ठहरी थी, अतः तेरापन्थी धर्मशालामें ठहर गये। धर्मशाला बहुत सुन्दर है। कूपका जल भी मीठा है। वैशाख मास होनेसे गर्मीका प्रकोप था, अतः दिनके समय कुछ बेचैनी रहती थी। परन्तु रात्रिका समय आनन्दसे जाता था। यह सब होने पर भी बारह बजे रात्रि तक सिनेमाकी चहल-पहल रहती थी, अतः निद्रा महारानी रुष्ट रहती थीं। हाँ, बारह बजे से चार बजे तक आनन्दसे निद्रा आती थी। अनन्तर सामायिक क्रियामें काल जाता था। इसके बाद पहाड़ी

के ऊपर दीर्घशङ्कासे निवृत्त हो शुचिक्रियाके अनन्तर श्री मन्दिर जीमें जाते थे। साढ़े आठ बजेसे साढ़े नौ बजे तक स्वाध्यायमें काल जाता था।

यहाँपर सराँफाका जो बड़ा मन्दिर है उसकी शोभा अवर्णनीय है। इस मन्दिरमें चारों तरफ दहलानें हैं। तीन तरफ बिलकुल कपाट नहीं हैं। एक ओर जहाँ श्री जिनदेवका आलय है कपाट लगे हैं। बीचमें समवसरणकी वेदिका है। उसके दाँय बाँयें दो वेदिकाएँ और हैं। उनमेंसे एकमें स्फटिक मणिके बिम्ब हैं, जो बहुत ही मनोहर व एक फुटकी अवगाहनाके हैं। दूसरी वेदिकामें भी पाषाण और धातुके बहुतसे जिनबिम्ब हैं। मन्दिरसे बाहर एक दहलानमें बहुत सुन्दर चित्राम है। दो द्वारपाल ऐसे सुन्दर बने हैं कि उनके गहनोंमें सच्चे मोती जड़े हुए हैं। इसके बाद दहलानमें एक कोठी है। उसमें प्राचीन पत्थरके अतिमनोहर बिम्ब विद्यमान हैं। लगभग १२ बिम्ब होंगे। इसके बाद एक दहलान है, जहाँ सुवर्णका चित्राम है। इस चित्राममें ५२ सेर सोना लगा था, ऐसा प्राचीन मनुष्योंका कहना है। ऐसा सुन्दर दृश्य है कि हमारे देखनेमें अन्यत्र नहीं आया। चौकमें सङ्गमर्मर जड़ा हुआ है। वह इतना विशाल है कि दो हजार आदमी उसमें बैठ सकते हैं। दहलानके पीछे एक कूप और स्नानको स्थान है। यहाँ रात्रिको दीपक नहीं जलाते और न बिजली लगाते हैं। धोती-दुपट्टे छने पानीसे धुलवाते हैं। इस मन्दिरके प्रबन्धकर्ता श्री कन्हैयालालजी हैं। आप बहुत ही योग्य हैं, विद्वान् भी हैं। भोजनादिकी प्रक्रिया आपके यहाँ योग्य है। आपके सुपुत्र माणिकचन्द्र वकील हैं। आप सोनागिरि सिद्धक्षेत्रके मन्त्री हैं तथा इनके भाई श्री गप्पूलाल जी हैं, जो बहुत ही वाकपटु हैं। आपके दो सुपुत्र हैं। दोनों ही योग्य हैं, परन्तु जैसी धार्मिक रुचि और जैसा ज्ञान आपका है वैसा आपके औरस पुत्रोंका नहीं।

इसका मूल कारण आप ही हैं, क्योंकि आपने उस प्रकारकी शिक्षासे बालकोंको दूर रक्खा। आपके पास इतनी सचला सम्पत्ति है कि एक पाठशालाका क्या दो पाठशालाओंका व्यय दे सकते हैं, परन्तु उस ओर लक्ष्य नहीं। यहाँ पर और भी बहुत मनुष्य ऐसे हैं जो पाठशाला चला सकते हैं, परन्तु पढ़ना-पढ़ाना एक आपत्ति मानते हैं। इस मन्दिरसे थोड़ी दूरपर एक दूसरा मन्दिर तेरापन्थका है, जिसके संरक्षक सेठ मिश्रीलालजी हैं, जो बहुत ही योग्य हैं। मन्दिर बहुत ही सुन्दर बना हुआ है। चारों ओर वायुका संचार है। गन्धकुटीमें बहुत ही सुन्दर बिम्ब हैं। स्फटिक मणिके बिम्ब बहुत ही मनोहर हैं। श्रीपार्श्वनाथ भगवान्‌का बिम्ब बहुत ही सातिशय और आकर्षक है। उसके दर्शन कर संसारकी माया विडम्बरूप जँचने लगती है।

यहाँसे चलकर एक बड़ा भारी मन्दिर बीसपन्थ आम्नायका चम्पाबागमें है। मन्दिर बहुत भव्य है। जैसा सर्राफाका मन्दिर है, वैसा ही यह मन्दिर है इसका चौक और इसकी दहलानें बहुत सुन्दर हैं। वेदिकामें सुवर्णका काम बहुत ही चित्ताकर्षक है। इसके प्रबन्धकर्ता श्री सेठ गोपीलालजी साहब हैं। आप सुयोग्य मानव हैं। आपका ज्ञान अच्छा है तथा इसी मन्दिरमें सेठ बुधमल्लजी साहब भी हैं, जो योग्य व्यक्ति हैं। आपके सुपुत्र भी योग्य हैं। परन्तु उनमें आप जैसी धार्मिक रुचि नहीं। आप व्यापारमें कुशल हैं, परन्तु स्वाध्यायमें तटस्थ हैं। आपकी मातेश्वरी धार्मिक हैं। कोई भी त्यागी आवे उसकी वैयावृत्य करनेमें आपकी निन्तर प्रवृत्ति रहती है।

कुछ दूरी पर नसियामें शान्तिनाथ स्वामीकी खड्गासन मनोहर प्रतिमा है, जो एक कृत्रिम पर्वतके आश्रयसे विराजमान की गई है। प्रतिमा प्राचीन होने पर भी अपनी सुन्दरता और स्वच्छतासे नवीन-सी मालूम होती है। चेहरेसे शान्ति टपकती

है। यह प्रतिमा पासके किसी वनखण्डसे यहाँ लाई गई थी। उक्त मंदिरोंके सिवा यहाँ और भी अनेक मन्दिर हैं। गर्मीके प्रकोपके कारण मैं उनके दर्शनोंसे वञ्चित रहा।

यह सब होकर भी यहाँ पर कोई ऐसा विद्यायतन नहीं कि जिसमें बालक धार्मिक शिक्षा पा सकें। चम्पाबागकी धर्मशाला में पहुँचते ही मुझे उस दिनकी स्मृति आ गई, जिस दिन कि मैं सर्व प्रथम अध्ययन करनेके लिये बाईजी के पाससे जयपुरको रवाना हुआ था और आकर इसी चम्पाबागमें ठहरा था। जब तक मैं नगरके बाहर शौचक्रियाके लिये गया था तब तक किसीने ताला खोलकर मेरा सब सामान चुरा लिया था। मेरे पास सिर्फ एक लोटा और एक छतरी और छह आना पैसे बचे थे और मैं निराश होकर पैदल ही घर वापिस लौट गया था।

यहाँसे चलकर वैसाख सुदि ५ को गोपाचलके दर्शन करनेके लिये गया। गोपाचल क्या है, दिगम्बर जैन संस्कृतिका द्योतक सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ पर्वतकी भित्तियोंमें विशालकाय जिनबिम्ब कुशल कारीगिरोंके द्वारा महाराज डूँगरसिंहके समयमें निर्मित किये गये थे। लाखों रुपया उस कार्यमें खर्च हुआ होगा। पर मुगलसाम्राज्यकालमें वे सब प्रतिमाएँ टाँकीसे खण्डित कर दी गई हैं। कितनी ही पद्मासन मूर्तियाँ तो इतनी विशाल हैं कि जितनी उपलब्ध पृथिवीमें कहीं नहीं होंगी। खण्डित प्रतिमाओंके अवलोकनसे मनमें विचार आया कि आज कलके मनुष्य नवीन मन्दिरोंके निर्माणमें लाखों रुपया लगा देते हैं, परन्तु कोई ऐसा उदार हृदयवाला नहीं निकलता जो कि इन प्रतिमाओंके उद्धारमें भी कुछ लगाता। यदि कोई यहाँका उद्धार करे तो भारतवर्षमें यह स्थान अद्वितीय क्षेत्र हो जावे, परन्तु यह होना कठिन है। पञ्चम काल है, अतः ऐसी सुमतिका होना कठिन है। लश्करके चम्पाबागमें लाखों रुपयोंकी लागतके दुष्कर मन्दिर हैं, परन्तु

किलेकी प्रतिमाओंके उद्धारके लिये किसीने प्रयत्न नहीं किया और न इसकी आशा है। हाँ, सम्भव है तीर्थक्षेत्र कमेटीकी दृष्टि इस ओर जावे। परन्तु वह भी असम्भव है, क्योंकि उसके पास नौ रुपयाकी आय और ग्यारह रुपयाका व्यय है। यदि किसी भाग्यवान्‌के चित्तमें आ जावे तो अनायास इस क्षेत्रका उद्धार हो सकता है।

मनमें दुःखभरी साँस लेता हुआ वहाँसे चला और ढाई मील चलकर स्वर्गीय गुलाबचन्द्रजी सेठके बागमें, जिसके कि मालिक श्री गणेशीलालजी साहब खण्डेलवाल हैं, हम लोग ठहर गये। बाग बहुत ही मनोहर और भव्य है। बीचमें एक सुन्दर भवन बना है, जिसमें पाँच सौ आदमी प्रवचन सुन सकते हैं। भवनके चारों ओर चार सुन्दर दहलाने हैं। चारों ओर चार पक्के मार्ग हैं। मार्गमें वृक्षावली है। उत्तरकी ओर पचास हाथ चल कर एक सुन्दर भवन बना हुआ है, जिसमें दो गृहस्थ रह सकते हैं। पश्चिमकी ओर एक भोजनभवन है, जिसमें पचास आदमी एक साथ भोजन कर सकते हैं। दक्षिणकी ओर राजमार्गके तटपर एक सुन्दर मन्दिर बना हुआ है, जिससे आगन्तुकोंको धर्मसाधनकी सुविधा रहती है।

यहाँ पर आनन्दसे हम लोग रहने लगे। किसी प्रकारकी व्यग्रता नहीं रही। यहाँसे मुरार डेढ़ मील है। वहाँसे प्रतिदिन दो चौका आते थे। यहीं पर आगत ब्रह्मचारियों और अतिथि महाशयोंका भोजन होता था। दो अतिथियोंमें एक श्रीपूर्णसागर क्षुल्लक भी थे। चरणानुयोगकी पद्धतिसे यद्यपि बहुतसे मनुष्य इस भोजनचर्याको सदोष कह सकते हैं, परन्तु वर्तमान कालको देखकर संतोष करना ही अच्छा है। गर्मीका प्रकोप अधिक था, इससे प्रायः मुरार जाना नहीं होता था।

गर्मीके दिन शान्तिसे बीते। मुरारवालोंने सब तरहकी सुविधा कर दी। किसी भी बाह्य आपत्तिका सामना न करना पड़ा। कुछ पानी बरस गया, जिससे ठण्डा मालूम हुआ और आगे जानेका निश्चय किया। परन्तु मुरार समाजके प्रेम तथा आग्रहसे वहीं चतुर्मास करनेका निश्चय करना पड़ा। पण्डित चन्द्रमौलिजी साथ थे। उन्होंने सब त्यागीमण्डली तथा आनेवाले यात्री महानुभावोंकी सुन्दर व्यवस्था की और समय-समय पर होनेवाले आयोजनोंको परिश्रमपूर्वक सफल बनाया। आप एक कुशल व्यवस्थापक हैं।

पर्वके बाद श्रावण वदि एकमको वीरशासन जयन्तीका उत्सव समारोहके साथ हुआ। श्रीमान् पण्डित जुगलकिशोरजी मुख्तार साहबके शुभागमनसे बहुत ही तत्त्वचर्चा हुई। पं० दरबारीलालजी न्यायाचार्य तथा पं० परमानन्दजी शास्त्री भी आपके साथ थे। आप लोगोंके द्वारा प्राचीनताकी बहुत खोज हुई है। उसका प्रकाशित होना आवश्यक है। समय पाकर ही होगा। जितनी आवश्यकता प्राचीन साहित्यकी रक्षा करनेकी है उतनी ही संस्कृतज्ञ विद्वानोंकी भी है। यह सम्बन्ध बीजवृक्षवत् ही रहनेमें समाजका हित है। जितने धार्मिक कार्य हैं उनमें ये विद्वान् ही तो मूल होते हैं। इसी उत्सवमें बनारससे पं० फूलचन्द्रजी, पं० कैलाशचन्द्रजी, पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ, सागरसे पं० दयाचन्द्रजी, पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य, बीनासे पं० बंशीधरजी व्याकरणाचार्य आदि अनेक विद्वान् पधारे थे। अन्य जनता भी यथायोग्य आई थी। विद्वत्परिषद् कार्यकारिणी समितिकी बैठक भी इस समय हुई थी। मुरारकी समाजने सबके खान-पानकी सुन्दर व्यवस्था की थी। दो दिन उत्सव रहा, बादमें सब लोग चले गये। इसके बाद आनन्दसे हम लोगोंका काल बीतने लगा।

भाद्रमासमें पाँच दिन लश्कर और छह दिन मुरारमें बीते। शाहपुरसे पं० शीतलचन्द्रजी, खतौलीसे पं० त्रिलोकचन्द्रजी, सलावासे पं० हुकुमचन्द्रजी और सहारनपुरसे पं० रतनचन्द्रजी तथा श्रीमान् वकील नेमिचन्द्रजी साहब और मगरपुरसे लाला मंगलसेनजी भी आ गये। खतौलीसे लाला खिचौड़ीमल्लजी साहब बराबर दो मास रहे। आपका चौका प्रायः प्रतिदिन लगता था। आप निरन्तर तीन पात्रोंको भोजन दान देकर भोजन करते थे। आप छः माममें तीन बार रहे और निर्विघ्न रहे। आप दानशूर हैं। आपके नियम अकाट्य हैं। संयमी हैं। परोपकारी भी बहुत हैं। आप व्यापार नहीं करते। कुछ रुपया है, उसीके व्याजसे निर्वाह करते हैं। आपको पूजनका नियम है। स्वाध्याय भी नियमित करते हैं।

इन सबके समागमसे व्रतोंके दिन सानन्द बीते। क्षुल्लक पूर्णसागरजीने लश्करमें जातिसंघटनका कार्य प्रारम्भ कर दिया और प्रायः उसमें सफल भी हुए। मेरा उपयोग गोपाचलकी भग्न प्रतिमाओंके सुधारकी ओर गया। कई महानुभावोंने उसके लिये द्रव्य प्रदान करनेमें संकोच न किया। सबसे प्रथम श्रीयुत चन्दाबाईजी साहब आराने पाँच सौ रुपया दिये। इसके बाद एक हजार रुपये सिंघई कारेलाल कुन्दनलालजी सागरवालोंने भी दिये। इसी तरह मुरारवालोंने आहारदानके समय हजारों रुपये इस कार्यके लिये दिये। श्री सेठी संस्करणजीने अपना समय सुधार करनेमें लगाया, परन्तु बलिहारी इस समयकी कि जिससे अकारण ही विरोध होनेसे कुछ विघ्न आगया। सम्भव है विरोध मिटनेके बाद यह कार्य पुनः प्रारम्भ होकर अच्छी तरह समाप्त होगा, जिससे गोपाचल एक पवित्र क्षेत्र बन जावेगा।

पर्व समाप्त होने पर सब लोग अपने-अपने स्थान पर चले गये और हम आनन्दसे ब्रह्मचारीगणके साथ स्वाध्यायमें काल

लगाने लगे। निरन्तर अनेक मनुष्य आते थे। एक वेदान्ती महानुभाव प्रायः प्रतिदिन आया करते थे और उनके साथ एक साधु भी। दोनों ही जिज्ञासु थे। उनमें एक महाशय बहुत ही कुशल थे। वेदान्तमें उनकी अकाट्य श्रद्धा थी। जैनधर्मके व्याख्यान सुनकर उनके चित्तमें प्रसन्नता होती थी। परन्तु उनकी यह दृढ़ श्रद्धा थी कि यह सब प्रपञ्च मिथ्या है। मायासे ही सब दिखता है। वस्तुतः कुछ है नहीं। पर्यायदृष्टिसे सत्य है यह उनको मान्य नहीं। व्यवहार सत्य मानते हैं। व्यवहार सत्य व्यवहार कालमें तो है ही, परन्तु फिर भी मिथ्या कहना कुछ संगत नहीं मालूम पड़ता। अस्तु उनके आनेसे तात्त्विक चर्चा हो जाती थी।

भादोंके बाद आश्विन मास भी अच्छा बीता। कार्तिकमें दीपावलीका उत्सव सानन्द हुआ। यहाँ श्री दीनानाथजी जैन अग्रवालने, जो एक उत्साही पुरुष हैं, अष्टाह्निका पर्वके समय श्री सिद्धचक्र विधान करवाया। जिसमें पुष्कल द्रव्य व्यय किया। दश हजार मनुष्योंको भोजन कराया, पाँच हजार रुपया विद्यादानमें दिये, ग्यारह सौ रुपया श्री क्षुल्लक पूर्णसागरजीके आदेशानुसार ग्वालियरकी पाठशालाके लिये और एक सौ एक रुपया श्री गोपाचलके जीर्णोद्धारमें भी प्रदान किये। उत्सवके समय बाहरसे अनेक गणमान्य विद्वानोंको भी आमन्त्रित किया था। उन सबकी संस्थाओंको भी यथायोग्य दान दिया था। बनारससे पं० फूलचन्द्रजी, पं० महेन्द्रकुमारजी, पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ तथा सागरसे पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य, पं० मुन्नालालजी समगौरया भी पधारे थे। पं० चन्द्रमौलिजी यहाँ थे ही। प्राचीन पण्डित झम्मनलालजी तर्कतीर्थ भी, जो कि आजकल कलकत्ता रहते हैं, आये थे। प्रतिष्ठाचार्य पं० सूरजपालजी थे। आठ दिन तक दीनानाथ बागमें स्वाध्याय प्रवचन आदि बड़े समारोहसे होते रहे। पं० चन्द्रमौलिजी विद्वानोंके भाषण

आदिकी उत्तम व्यवस्था करते थे। इसी उत्सवके समय एक दिन सर्वधर्मसम्मेलन हुआ, एक दिन कवि-सम्मेलन हुआ और एक दिन स्त्री-सम्मेलन भी हुआ, जिसमें महाराजा ग्वालियरकी महाराणी भी आई थीं। आपने आगत जैन समाजकी महिलाओं को बहुत ही रोचक व्याख्यान दिया। पं महेन्द्रकुमारजी और पं० फूलचन्द्रजीके व्याख्यान बहुत ही रोचक हुए। उत्सव समाप्त हुआ। सब लोग यथास्थान गये।

एक बात यहाँपर यह हुई, जो कि इस उत्सवके पहलेकी है, श्री फुन्दीलालजीने एक दिन भोजन कराया और पच्चीस हजार बोर्डिंग बननेके लिये दिये। दस हजार श्रीपप्पूलालजी और सात हजार श्री फूलचन्द्र बुद्धूमल्लजी सेठसे भी मिले। इसी प्रकार अन्य व्यक्तियोंने भी सहयोग किया। आशा है अब शीघ्र ही बोर्डिंग बन जावेगा। यहाँ उसकी बड़ी आवश्यकता है। श्रीयुत सेठ बैजनाथजी सरावगी भी कलकत्तासे यहाँ पधारे। उन्होंने बोर्डिंग बनवानेमें यहाँकी समाजको अधिक प्रेरणा दी। पच्चीस सौ रुपया स्थायी फण्डमें स्वयं दिये तथा पाँच सौ रुपया गोपाचलकी मूर्तियोंके उद्धार कार्यमें प्रदान किये।

श्रीयुत हीरालालजी और गनेशीलालजीके प्रबन्धसे यहाँ मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ और गोपाचलके अञ्चलमें मेरे लगभग सात माह सानन्द व्यतीत हुए।

मुरारसे अगहन वदि ४ सं० २४७५ को देहलीकी ओर प्रस्थान किया। प्रस्थानके समय पं० राजेन्द्रकुमारजी, पं० फूलचन्द्रजी, पं० महेन्द्रकुमारजी, पं० चन्द्रमौलिजी, पं० मुन्नालालजी समगौरया तथा श्यामलालजी पाण्डवीय आदिके भाषण हुए। मुरारसे चल कर ग्वालियर आये। पानी बरसनेके कारण यहाँ तीन दिन तक ठहरना पड़ा। श्री क्षुल्लक पूर्णसागरके प्रयत्नसे ही यहाँ पाठशालाके

लिये पाँच हजारका नगद चन्दा हो गया और एक महाशयने पन्द्रह हजारकी कीमतका मकान देना स्वीकृत किया तथा एक वृद्धा माताने अपनी ही दुकान पाठशालाको देनेका निश्चय प्रकट किया। यहाँ श्री धन्नालालजी अग्रवाल बहुत ही उत्साही व्यक्ति हैं।

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमालाके

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. मेरी जीवन-गाथा भाग १ : द्वितीय संस्करण
(वर्णीजी द्वारा स्वयं लिखित) ६—००

२. ,, ,, भाग २ ,, ,, ४—२५

३. वर्णी वाणी : भाग १ (द्वितीय संस्करण)
(वर्णीजीके आध्यात्मिक संदेशोंका संकलन) ३—५०

४. ,, भाग २ ,, ,, ,, ,, ४—००

५. ,, भाग ३ ,, ,, ,, ,, छप रहा

६. ,, भाग ४ (वर्णीजीके अध्यात्मपूर्ण पत्रोंका संकलन) ३—५०

७. जैन साहित्यका इतिहास (पूर्वपीठिका) भाग १ :
पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री
(७५० पृष्ठोंमें लिखित जैन साहित्यका गवेषणापूर्ण अद्वितीय इतिहास-ग्रन्थ : पहली बार प्रकाशित) १०—००

८. जैन दर्शन (द्वितीय संस्करण) : डा० महेन्द्रकुमारजी जैन
(जैन दर्शनका सांगोपांग प्रामाणिक विवेचन) ७—००

९. पंचाध्यायी : मूल—पण्डित राजमल्लजी
हिन्दी रूपान्तर—पं० देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री
(जैन तत्त्वज्ञानकी विवेचिका अद्वितीय मौलिक कृति) ६—००

१०. श्रावकधर्मप्रदीप : मूल—आचार्य कुन्थुसागर महाराज
हिन्दी-संस्कृत टीका—पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री
(श्रावकाचार-विषयक सरल और विशद रचना) ४—००

११. तत्त्वार्थसूत्र : मूल—आचार्य गृद्धपिच्छ

हिन्दी-विवेचन—पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री

(जैन तत्त्वोंका प्रामाणिक और विशद निरूपण) ५—००

१२. द्रव्यसंग्रह-वचनिका : मूल—आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्ति०

वचनिका—पं० जयचन्द्रजी छावड़ा

सम्पादन—प्राध्यापक दरबारीलाल कोठिया

(जैन तत्त्वज्ञानकी प्रतिपादिका मौलिक सरल रचना) १—५०

१३. अपभ्रंश-प्रकाश : लेखक—डा० देवेन्द्रकुमारजी जैन

(अपभ्रंश भाषा व साहित्यका विशद परिचय) ३—००

१४. मन्दिर-वेदीप्रतिष्ठा-कलशारोहण-विधि :

सम्पादन—पं० पन्नालालजी वसंत

(जैन प्रतिष्ठा-विधिका उपयोगी एवं प्रामाणिक संकलन) १—२५

१५. अनेकान्त और स्याद्वाद :

लेखक-प्राध्यापक उदयचन्द्रजी जैन ०—२५

मंत्री,

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

१।१२८, डुमरावबाग-वसति, अस्सी, वाराणसी—५

संरक्षक-सदस्योंकी नामावली

१. श्री पं० बमोरेलाल पन्नालालजी जैन, अकलतरा
२. मेसर्स सेठ भगवानदास शोभालालजी जैन, बीड़ी वाले, सागर
३. श्री सेठ मोहनलालजी सेठी, दुर्ग
४. ,, पं० बालचन्द्र सुरेशचन्द्रजी जैन, गल्लेके व्यापारी, नवापारारजिम
५. ,, सेठ राजकुमारसिंहजी, इन्दौर
६. ,, ला० प्रेमचन्द्रजी जैनावॉच, दिल्ली
७. ,, बा० जुगमन्दिरदासजी जैन, कलकत्ता
८. ,, ला० मोतीलालजी जैन, दिल्ली
९. , मोतीलालजी बड़कुल, जबलपुर
१० ,, स० सि० धन्यकुमारजी, कटनी
११. , बी० आर० सी० जैन, कलकत्ता
१२. ,, बा० नृपेन्द्रकुमारजी जैन, जवाहर प्रेस, कलकत्ता
१३. ,, दि० जैन मारवाड़ी मन्दिर ट्रस्ट, इन्दौर
१४ ,, ला० रघुवरदयाल रत्नत्रयधारीजी जैन, दिल्ली
१५. , बा० महेशचन्द्रजी जैन, हस्तिनापुर
१६. ,, सि० बदलीदास छोटेलालजी जैन, किराना मर्चेण्टस्, झाँसी
१७. ,, ला० प्रकाशचन्द्रजी जैन, पूसारोड, दिल्ली
१८. ,, विजयकुमारजी मलैया, दमोह
१९. ,, बा० श्यामलालजी पाण्डवीय, मुरार (ग्वालियर)
२०. ,, बैजनाथ सरावगी स्मृतिनिधि, कलकत्ता
२१. ,, सि० हजारीलाल शिखरचन्द्रजी जैन, अमरपाटन
२२. ,, सि० भागचन्द्र जी इटौरया, दमोह

२३. श्री सेठ बाबूलालजी बांदा (यू० पी०)
२४. ,, बा० नन्दलालजी जैन, कलकत्ता
२५. ,, सेठ ब्रजलाल बारेलालजी जैन, चिरमिरी (सरगूजा)
२६. ,, बा० नेमकुमारजी जैन, आरा
२७. ,, सेठ मुन्नालाल भैयालालजी जैन, कपड़े के व्यापारी, टीकमगढ़
२८. ,, सेठ दयाचंद बाबूलालजी (मैनवारवाले) टीकमगढ़
२९. ,, पं० खुन्नीलालजी जैन, टीकमगढ़
३०. ,, चतुर्भुज राजारामजी जैन, टीकमगढ़
३१. ,, पं० किशोरीलालजी जैन शास्त्री, टीकमगढ़
३२. ,, सेठ धर्मदासजी बजाज, टीकमगढ़
३३. ,, सेठ तुलसीरामजी जैन, शाहगढ़ (सागर)
३४. ,, सिं० दौलतराम बाबूलालजी, सोंरई (झाँसी)
३५. ,, सती धर्मपत्नी सेठ मल्थूरामजी जैन, मडावरा (झाँसी)
३६. ,, भगवानदासजी सतभैया, सागर
३७. ,, सेठ मल्थूरामजी जैन, सागर
३८. ,, सती सिंघैन चम्पाबाईजी मातेश्वरी सिं० जीवनेन्द्रकुमारजी, सागर
३९. ,, सिं० रतनचन्द्र मोतीलाल जी जैन, पाटन
४०. ,, सिं० अमीरचन्द्र देवचन्द्रजी जैन, पाटन
४१. ,, लाला फकीरचंदजी जैन, दिल्ली

स्थायी सदस्य

४२. ,, स० सिं० श्रीनंदनलालजी जैन, बीना (इटावा)
४३. ,, पं० रविचन्द्रजी जैन, प्रभात वर्तन-भंडार, दमोह

●